



# हिन्दी नाट्य साहित्य और रंगमंच की सीमांसा

प्रथम खण्ड

लेखक

कुंवर जगन्मोहन सिंह  
आचार्य एवं अध्यापक, दिल्ली विभाग  
बड़ीका विरबिद्यालय बड़ीका

१९६४

भारती ग्रन्थ भण्डार

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

१, अमारी रोड, दरिया गंज दिल्ली-६

प्रकाशक  
श्रीरीशंकर शर्मा  
भारती ग्रन्थ भण्डार

© भारती ग्रन्थ भण्डार

वृत्त १२३०

मुद्रक  
आशुति त्रेव  
बहीश ।

नवग्रह डॉ० दशरथ शर्मा जी  
का  
सन्देश



## आत्म निवेदन

हिंदी नाट्य-साहित्य और रंगमंच की सीमासाँचा ग्रंथ हिन्दी प्रगल्भ के बरम्भ विद्वानों, दोषकर्ताओं और सम्प्रदायों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक संतोष का अनुभव हो रहा है। यह ग्रंथ मेरे शार्पशालीन अध्ययन और जोश का परिणाम है। यह ग्रन्थ सन १९२६ में ही प्रबिम्बाय छत्र जुका था किन्तु धनक अनिवाय कारणों से उसके प्रकाशित होने में विनम्र हो गया।

इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में भारतीय नाट्यपरम्परा का उद्भव और विकास के सम्बन्ध में विविध विदेशी एवं एतद्देशीय विद्वानों के जो मत व्यक्त किए हैं उनकी समीक्षा करत हुए उनमें भारतीय स्वस्व के उद्घाटन एवं प्रतिष्ठापन का प्रयत्न किया गया है। दूसरे, तीसरे चौथे और पाँचवें अध्याय में सम्प्रदायी हिन्दी नाट्य परम्परा का विस्तृत प्राथमिक अनुशीलन किया गया है। उनमें यह निश्चय किया गया है कि कुलसमाजों के धातुपात्र के परिणामस्वरूप राष्ट्र की नाट्यपरम्परा के सर्वथा विविधन अवकाश नियोक्त हैं। जाने की धारणा भारतीय स्वयं पर आधारित नहीं है। बलुग-दमनक-काम में सोर-नाट्य एवं धार्मिक सीमा-मात्रों के रूप में हिन्दी नाट्यपरम्परा का अभ्यास हुआ जिससे हमारे साहित्य की सार्वभौमिक समीक्षा प्राप्त मनुष्य एवं प्रभावित हुई। इसी काल के चारम्भ में मोरिन्द नामक प्रजा मनीषीय साहित्यिक मातृक विद्या गया। इस नाटक की उत्पत्ति शोध के क्षेत्र में एक मुगलरकारी प्रजा है जिसने हिन्दी की साहित्यिक नाट्यपरम्परा की प्राचीनता और घटना दोनों ही निर्विवाद बन गई है। इन लोगों के परिणाम स्वरूप हिन्दी की नाट्यपरम्परा की पूर्व सीमा का प्रस्तावित विस्तार हुआ है और यह धारणा सर्वथा निष्ठा प्रकाशित हो गई है कि हिन्दी नाटक का चारम्भ भारतगुप्त युग में हुआ। इन धारणों में रामनोता रामनोता सीमा की स्वयं प्रगति मात्र ध्वनि भेदाई, बाद या चरका अनेकान्यत्रों के उद्भव और विकास के ध्वनि में ध्वनि प्राथमिक विवरण का प्रभाव किया गया है और बहुधा सीमा सीमा एवं प्रजात मातृसी प्रभाव में नाट्य रूप है। इसे मात्र में और धारण अध्याय में मातृकधार धारणगुप्त शोध उनके समसामयिकों एवं मन्त्रागिणों की मातृक-नृतियों का उत्पन्न प्रजा धारण प्रगति ध्वनि वीरिका पर किया गया है और ऐसी धारण-सीमा प्रभाव में नाट्य रूप है जिसकी चर्चा प्रगति नहीं का रूप को।

हिन्दी के प्रायः सभी नाट्यशोधकों ने द्वितीययुगीन नाट्यप्रगति में एवं उत्पत्तियों को शोध की है। इस प्रभाव में विदेशी युग में हिन्दी रंगमंच की प्रजासीमा का विस्तार विवरण किया गया है। इस युग में ध्वनि ध्वनिध्वनि एवं ध्वनिध्वनि नाट्य प्रगति का उद्भव हुआ और ध्वनि

मन्त्र जैसे अनेक सर्वस्व त्यागी नाटककार एवं अभिनेता सामने आए उन सबका विस्तृत विवरण इस प्रबंध के अन्तिम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रबंध में पहले-पहल भाषाशास्त्री भगानी नाट्यशास्त्र का विवरण प्रस्तुत किया गया है। वह नाट्यशास्त्र अपने समय में हिन्दी रंगमंच को एक महान् उपलब्धि की पर इसका परिणाम हिन्दी साहित्य-जगत् को नहीं था। मुझे विश्वास है इस प्रबंध में प्रस्तुत सामग्री द्वारा हिन्दी के नाट्य साहित्य के अध्ययन को नई दिशा एवं प्रगति प्राप्त होगी। इस प्रबंध में प्रस्तुत सामग्री हिन्दी के अन्तिम भारतीय स्वतंत्रता की प्रेरणा प्रदान करती है।

इस काम के लिए सामग्री-संकलन लेखन एवं मुद्रण की दृष्टि में जिन विद्वानों से मुझे प्रेरणा और परामर्श प्राप्त हुआ उनके प्रति हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करना मैं अपना पुनर्निर्णय कर्तव्य समझता हूँ। इनमें प्राचार्य डा० जयदेवसिंह प्राचार्य बलदेव प्रसाद मिश्र एक प्राचार्य मन्दनसारे काजपेयी कादंबान प्रमुख हैं। प्राचार्य जयदेव सिंह ने मुझे इस विषय पर कार्य करने का प्रेरणा दी और प्राचार्य मिश्र ने मुझे इस विषय में निरन्तर मार्ग बताने के लिए प्रोत्साहित किया। इस कार्य के निमित्त मुझे जमनूसि राजस्वामि अध्ययनमार्ग प्रादि के सम्बन्ध-मन्त्र प्रकाश करने पड़े हैं। इन साधकों में मुझे अनेक मतों विद्वानों पुस्तकालयों के अध्यक्षों प्रादि का सहज सीद्धान्तपूर्ण सहयोग मिला है उन सबके प्रति भी मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता निवेदन करता हूँ। इन महानुभावों की भूमिका अपनी अधिक है कि उनका अत्यंत प्रयत्न उत्तम मध्यम नहीं। बिहड़र डा० बलदेव घोषा जैसे नाट्यसाहित्य के कुटी अर्थशास्त्रों के प्रति भी मैं अपना हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपनी साधना में इस मनीषा-दात्र को समृद्ध किया है। डा० घोषा ने सम्प्रकासीय हिन्दी नाट्य परम्परा की कठिन अध्ययन महत्त्वपूर्ण कटिबों प्रकाश निकाली हैं अतएव उनका कार्य विशदकरणीय बन गया है।

मेरे विद्वान् महोदय डा० मदनमोहन मनु का हार्दिक सहयोग इस ग्रंथ की महान् व्यवस्था में रहा है। उनकी धारणीयता का मेरा कृतज्ञता-अभिनन्दन अत्यंत गहरा है। मेरे साथ प्रा. भीराजीब त्रिपाठी ने सहायक-सम्बन्ध-सूची-संसार करने तथा पत्र की धारा के अन्तिम दौर की व्यवस्था का बुरा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है मेरे धारणीय के अधिकारी हैं। अन्त में मैं अपने उत्साही प्रकाशक श्री दीदीयकर चर्मा को बलपूर्वक देना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिसकी उत्तरदायित्व के अन्तर्गत यह ग्रंथ प्रकाश में है।

विश्राम है मुझे जनों के अनुयोगन की कृपित पर काम वाकर यह ग्रंथ अपने अस्तित्व की साधक करेगा।

प्रकाशक संस्था संपादक बाग बगीचा  
मुम्बई जयन्ती आश्विन २०२० दि०

अध्ययनमार्ग

## विषय-सूची

	पृष्ठ
प्रथम अध्याय	१—२२
भारतीय राज्य-परम्परा	
द्वितीय अध्याय	२६—४८
सम्यक्वासीन मोक्षधर्मी नाट्य-परम्परा	
तृतीय अध्याय	४९—१४
सम्यक्वासीन धार्मिक नाट्य-परम्परा (रामलीला)	
चतुर्थ अध्याय	१२३—१३
सम्यक्वासीन धार्मिक नाट्य-परम्परा (रामलीला)	
पंचम अध्याय	
सम्यक्वासीन नाट्यधर्मों की प्रतीति और ब्रह्मनाया के साहित्यिक नाटक	१३१—१७६
षष्ठ अध्याय	१७७— ८
भारतेन्दु-युग—नाटककार भारतेन्दु	
सप्तम अध्याय	२९—३६१
भारतेन्दु-युग—भारतेन्दु के नाटकों का शिष्टाचार	
अष्टम अध्याय	३६२—३७६
भारतेन्दु-युग—भारतेन्दु-युग के सम्यक् नाटककार	
नवम अध्याय	३७७—३८६
निबन्धी-युग—	
पूर्व पीठिका	
ध्यातव्य एवं ध्यातव्यनामिक रत्नसंक्षेप	
साहित्यिक नाटककार	
समाप्त दण्ड-सूची	३८७
(अ) हिन्दी नाटक	३८८
(आ) सम्यक् हिन्दी नाटक	३८९
(इ) नाटक-रत्न	३९०
(ई) नाट्य-रत्न	३९१





## भारतीय नाट्य-परंपरा

देश-विदेश के अनेक विद्वानों ने भारतीय नाट्य की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मतवादों की सृष्टि की है। उन सभी लोगों का ध्यान सबसे पहले भरत के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध उस रूप की ओर जाता है जिसमें ब्रह्मा द्वारा योगेश्वर होकर सृष्ट्येव में पादुय, यजुर्वेद में अभिनय नामवद से गान और अथर्ववेद से रत्न लेकर एक सांस्कृतिक नाट्यपद के रूप जाने की कथा कही गयी है।<sup>१</sup> विद्वानों ने प्रायः हम भारतीय नाट्य की ऐसी उत्पत्ति का सिद्धांत मान लिया है, और हमकी ऐतिहासिक कम्पीता में ग्रहण होकर विभिन्न अभिनय निष्कर्ष निकाले हैं। किन्तु हम प्रकार हम रूप का वास्तविक रूप उपेक्षित हुआ है और अनेक निराधार और अनाश्रयक कल्पनाओं को आधार मिला है। यह कथा एक रूप-मात्र है और इसका नाट्य के जन्म अथवा विकास की परंपरा के विवरण में कोई विशेष स्थान नहीं है। इसमें कवन नाट्यशास्त्र का स्वरूप और उसके आधारों का निर्देश दिया गया है।

### पैदिक संपाद—शुक्त

नाट्य की उत्पत्ति के विषय में अनुमान करने का उद्देश्य है उसके पूर्वतम रूप का ज्ञान लाना। भारतीय नाट्य का पूर्वतम रूप हमें वैदिक संपाद-शुक्तों

१—भट्टभाष्य १।११.११।

२—इत्येव कीच 'नरान् शय' पृ० १३।

में मिलता है। अथर्ववेद में ही इस प्रकार के प्राण-पंच सवाह-सूक्त मिलते हैं जिनमें बम-बमी, पूरुषा-उर्वशी, अगस्त्य-वीर्यामुद्रा, विरवाभिष-नदी-मुद्र-वामदेव आदि के संवाद हैं। निर्विवाद रूप से इन सवाह-सूक्तों में नाटकीय कथोपकथन के गुण विद्यमान हैं।

मिस्त्रमूर<sup>१</sup> का अनुमान है कि ऋग्वेद का ईद-मस्तु संवाद मन्त्रों के सम्मान में होने वाले यज्ञों के अवसर पर बुझाया जाता था। संभवतः दो दलों द्वारा इसका अभिनय भी होता था जिनमें एक ईद और दूसरा मन्त्रों और उनके अनुचरों का प्रतिनिधित्व करता था। प्रोफेसर लंबी ने भी इस धारणा की पुष्टि की है। इस बुझाये हुए उन्धोंने कहा है कि कामवेद से प्रकट है कि संगीत-कला वैदिक काल में पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुकी थी। ऋग्वेद में ऐसी कुमारियों का उल्लेख है, जो वसावंधाये से सुसज्जित होकर नृत्य करती हैं और अपने प्रेमियों को आकर्षित करती हैं। ऋग्वेद में आत्मीय-सिद्ध नर्तकी के रूप में उषा का मनोहारी वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में संगीत के साथ नृत्य करने वाले युवकों का विवरण मिलता है। अतएव यह मान लेने में कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती कि ऋग्वेद-काल में नाटकीय प्रदर्शन होने खत थे, जिनका स्वरूप धार्मिक था। इनमें पुरोहित वृष्ठी पर स्वर्ण की पग-नाओं का अनुकरण करने के लिए देवताओं और ऋषियों की भूमिका ग्रहण करते थे। इन ऋतु का स्वामात्मिक निष्कर्ष प्राफनर-पान-आयुधों के सिद्धांत में मिलता है। उनका कथन है कि सवाह-सूक्त और वज्र-सूक्त (ऋग्वेद १०। ११९) जैसे कुछ स्वगत-सूक्त भी वैदिक अष्टात्म-रूपों के अवशेष हैं, जो बीजरूप में मातृपीय काल से चले आ रहे हैं। इन रूपों की परंपरा का जन्म-साधारण में प्रचलित लोकप्रिय रूप द्वारा वर्ण-बाह-आज भी बंगाल की बाबाओं में मिलता है। इस प्रकार विपरीत सुमंजस तथा पुरोहित वर्ण के आशय में वर्णित वैदिक नाटक बिना किसी ठोकराधिकारी के हो समाप्त हो गया।

सवाह-सूक्त आध्यात्मिक नाटक (रूप) है, इस बात के समर्थन में डा० हर्लस ने एक नवीन तर्क उपस्थित किया है। उनका कहना है कि वैदिक सूक्त गाये जाते थे। गाने में एकाधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी,

१—Die Sagenstoffe des Rigveda P 27

२—११९१।८

क्योंकि गान समय एक ही गायक के मध्य विभिन्न कलाओं के बीच आवश्यक अंतर स्पष्ट कर सकना असंभव था। एक व्यक्ति ऐसा सभी कर सकता था जब वह स्वयं गाय में जात होता। यद्यपि इन सूत्रों में नाट्यकला का प्रारंभिक रूप मिलता है जिसकी गुणना 'गीत-गायिद' से की जा सकती है। इटल 'मुद्राध्याय' को अधिक विकसित रूप में एक पूरा नाटक मानते हैं। उनके मत में वैदिक नाटक का पूरक अस्तित्व महा, उसके विकास की एक गृहस्था है। श्रुत में वह कब कब अपने प्रारंभिक रूप में दिखायी देता है, 'मुद्राध्याय' में वह विकास के पथ पर है और पात्राओं में हम पुरानी शैली की परंपरा पाते हैं, जिसने हमें वैदिक नाटक में भारत के शास्त्रीय नाटक के विकास को समझने में सहायता मिलती है। इस दृष्टि से यह मत जान ऑपरेटर के मत से मिला है 'ऑपरेटर पात्राओं का प्रकृत संबंध परकाली नाटक से मानते हैं, जिसका विकास विष्णु-कृष्ण और कर्-सिंह सभ्यताओं के घनिष्ठ सम्पर्क से हुआ। उनके अनुसार पात्राओं तथा वैदिक संवाद-सूत्रों का मूल तो एक ही है पर विकास भिन्न है।

कीर्तिने ऑपरेटर के मत का गीन दिया है और इन सूत्रों की नाटकीयता को अमान्य ठहराया है। अपने मत का प्रतिपादन करने हुए ऑपरेटर ने श्रुत के संवाद-सूत्रों को प्रजनन-कर्मकांड (Fertility-ritual) के संतर्गत होने वाले नाटक का अंग माना है। कारण, उन्होंने भारतीय नाटक की उत्पत्ति भी पारंपरिक नाटक के उद्भव की भांति प्रजनन-कर्मकांड से जुड़ कराने का प्रयत्न किया है। कीर्ति का यह कहना ठीक ही है कि इन नाटकों में प्रजनन-कर्मकांड को गीन लाने का निम्न प्रयास किया गया है। परन्तु प्रजनन-कर्मकांड के अभाव में भी इन सूत्रों की नाटकीयता कम नहीं हो जाती। यथापि में जैसा कि माध्यस्थान में कहा गया है, भारतीय नाटक का मातृ वेद-व्यवहार को गार्भणिक मानना है।<sup>१</sup> अतः वेद के आध्यात्मिक और शारीरिक तत्त्वों को अभिन्नता द्वारा जन-जागरण के लिए भी प्रायः बनाने का प्रयत्न श्रुत-काल में ही बना जाता प्रतीत होता है। वे संवाद-सूत्र इन्हीं आध्यात्म-नाटकों के कथनोपपन्न भाग का मानते हैं। यह के आध्यात्मिक और

१—पृ० ४० ७० १०-१०

२—पृ० ४० ११२

अलौकिक सिद्धि मात्र समझ लिया जाता है। परन्तु यज्ञों का सूक्ष्म विरूपण करने पर यह बात भली-भाँति समझी जा सकती है कि शरणा में उनका लक्ष्य केवल सूक्ष्म आध्यात्मिक तथ्यों को अभिव्यक्त या कमझोड़ द्वारा सर्वप्रदर्शनी बनाना ही था<sup>१</sup> पीछे, कर्मझोड़ के आध्यात्मिक विस्तृत और जटिल हो जाने के कारण यह प्रधान लक्ष्य विस्मृत हो गया और नाटक से सादृश्य रसनेवाला यज्ञों का श्रेष्ठ विषय रूप प्राकट्य हो गया। फिर भी नाटक को यज्ञों से पूरी तरह नहीं भिन्नता जा सका और जो उद्घाटन वाले सार्वभौमिक यज्ञों के बीच-बीच श्रुतिजो और ब्रह्मजो के मनोरेखन के विषय प्रसन्नोद्य-कथात्म-के साथ-साथ कुछ मोटे-मोटे नाटक के ढंग के प्रदर्शन भी होते रहे। सोम-कथन तथा म्हाभारत के साथ होने वाली वृत्त आदि क्रियाओं को हम इसी प्रकार के प्रदर्शनों में गिन सकते हैं। अतः प्रोफेसर दिग्गज और कोनो का कथन ठीक ही है कि इस प्रकार की क्रियाएँ पूर्णरूपेण कर्मझोड़ीय नाटक हैं चाहे, जैसा कोनो का कथन है इनकी रचना समाजमें प्रचलित मौखिक स्थानों के अनुकरण में हुई हो अथवा स्मृत्युक्त कथन।

अन्तर्गत उद्घाटन काल में नाटक और यज्ञ के हस्त अभिव्यक्त सम्बन्ध का प्रमाण हमें नाट्यशास्त्र में सुप्रसिद्ध परम्परा से मन्त्री-भाँति मिल जाता है। यह बात निर्विवाद रूप से मानी जा सकती है कि वैदिक साहित्य और उसको व्यावहारिक रूप हमेशा यज्ञों के मूल में देवामुल-लक्षण तथा उसके अंत में होने वाली इन्द्र की विजय ही है। नाट्यशास्त्र से भी यही पता चलता है कि नाट्य प्रयोग का प्रारम्भ देवामुल-लक्षण में अमुर और राजाओं की पराजय के पश्चात् होने जाने महेन्द्र-विजयोल्लास के समय ही हुआ, जिसकी भाँती में देवों द्वारा देवों पर प्राप्त विजय के अनुकरण का समावेश था—

अत्रेदानीमयं वेदो नाट्यमंशः प्रपुन्यताम् ।  
 सततमस्मिन् यज्ञमहे निहतामुरदानवे ॥  
 प्रकृष्टामरम्यकीर्णं महन्त्रिजयोत्सव ।  
 पूर्वं कृता मया नान्दी आग्नीर्बन्धनसंपुता ॥

१—यह पदार्थ हिन्दू धर्म के वैदिक और वैदिक नाट्यशास्त्रों में है।

अष्टांगपदसयुक्ता विथित्रा वेदनिर्मिता ।

तदन्तेऽनुकृतिर्बद्धा यथा दैत्या सुरप्रिताः ॥

( ना० शा०, १५५ ५७ )

नाट्य-कथा-प्रचारात् जो नाटक-प्रामाण्य-निर्णय किया गया, उसमें भी देवों द्वारा दैत्यों और दानवों का विनाश दिखाया गया ( 'एक प्रकाश प्रारम्भ दैत्य-दानव नाशन' ) जिसमें कहा जाता है कि इस अभिनय में समस्त लोग अभ्यस्त हुए और उन्होंने विघ्न करना आरम्भ कर दिया । परन्तु इसमें वहीं गई हुए अपने स्वयं को बहाकर उसमें सारे विघ्नकारी समुहों को नष्ट कर दिया । यह दृग्गद देवता लोग बहुत प्रसन्न होकर बोले—'तुम्हारे दिव्य शस्त्र को चम्पकाल है । इसने सारे दानवों को सभी आग ज्वर कर डाले हैं । अब हमने सारे शत्रुओं और समुहों का ज्वर कर डाला है, इसलिये इसका नाम 'ज्वर' होगा और जो भी दिनक वध रहे है व हिता के प्रयोगन से ध्यान पर इस 'ज्वर' का दृग्गद इसी अभिनय की प्राप्त हो जायेंगे ।<sup>१</sup>

कहा जाता है कि उक्त 'ज्वर' नाम का इन्द्र-स्वरूप समुहों में रक्षा करने के लिये ही रंगशाला में स्थापित किया जाता था ।<sup>२</sup> समस्त यगों में स्थापित यज्ञों का भी प्रारम्भमें यही आशय था, पीछे जब यगों में हिता का प्रयोग होना लगा<sup>३</sup> तो उसमें पशु बर्चने का काम भी मिला जाने लगा जिसके कारण यज्ञ की आहुति भी कुछ विशेष प्रकार की होने लगी । इन विषय में यह बात स्पष्ट होन योग्य है कि आश्व-संध्या में यज्ञ की प्राप्ति इन्द्र का वध कहा गया है<sup>४</sup> और यज्ञ-उपका विगतक रूप नान्यथायत्न के उक्त ज्वर स्वयं में प्राप्तता मित्रता है । यज्ञ-युग के अनुक्रम-स्वरूप उक्त स्वयं को स्थापित करने की प्रथा कारण नान्यथायत्नो में हो नहीं परितु नाटक की रमिति ही वैदिक नाट्य तथा वैदिक कर्मकांड में उद्भूत और प्रभावित हनी प्रकार की अभ्य मिलाओ में भी प्राप्त होती है । उपर्युक्त के लिये जीतायत्नक वैदिक संबाद

१—ना० शा० १ ५७—५४

२—५६१ ११५६१ तुम्हीय देवैःश्वर्य, 'मिथिल स्तेन' पृ० ४ १

३—६०६ ५५६६६ दि ५५६६६ आश्व वध इन वैदिक नाटक-प्रामाण्य

४—५६० पृ०, ५५० ५६०५६०

प्रयोग मी होते थे जिनकी जे० कार्वेटियर ने 'लपु-नाटक' (Little dramas) कहा है। इसी बेबी में वे एक सा समाज साधुमता 'आते हैं जिनका प्रयत्न अशोक ने हिता परक 'समाजी' के रचान पर करवाना था और जिनमें स्पोटिफिक आदि का प्रदर्शन भी होता था।<sup>१</sup> डिता-गोमती, यद्विपारक, बेसंतर आदि के नाटक-कथानकों की नाटकीयता इतनी लोकप्रिय हुई कि उनके प्रयोगों से न केवल भारतीय जनता का मनोरंजन हुआ अपितु विदेशी बौद्ध-समाज में भी उनके अभिनय को रसालियों तक बादर मिलता रहा। खद की बात है कि कुछ सम्राज्यवादी पारबाल्य विद्वानों ने इस बौद्धकालीन नाट्यविधि की आवहेलना करत हुए यह निष्कर्ष निकालन का अचछ प्रयत्न किया है कि बौद्ध-काल में नाटक नहीं हुए। परंतु बौद्ध ग्रंथों में मिथुओं के लिए नाटक देखने का निरूप होना ही इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उस समय नाटकीय अभिनय इतने अधिक व्यापक और लोकप्रिय थे कि बीतराय मिथु मी उनकी और आकर्षित होते थे।<sup>२</sup> काकिदास से मी बहुत पूर्ण अक्षपोष जैसे समादत बौद्ध भ्यामिथु द्वारा 'सामिपुत्रप्रकरण' के समान नाटकों की रचना ई० पू० तृतीय शताब्दी में लीलाबंगा और जोगीमारा की गुदाओं में नाट्यप्रकाशों का होना,<sup>३</sup> तथा उतसे मी पूर्ण नाट्य-शास्त्र में इसी प्रकार की नाट्यशास्त्राओं का वर्णन देखकर यह भनी भूति प्रमायित हो जाता है कि बौद्ध काल में नाटक उक्त वेदवादी प्रमाण से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से विकसित होता रहा और उसके ऊपर कदुरदवी बौद्धों के निरूप का कोई प्रमाण न पड़ा।

१—इ० गिमास सिक्क-कैर- तुल०—इमेप्रमाण दामगुप्त कृत 'दि इंडियन स्ट्र' पृष्ठ ३०-३८।

२—विद्वानिथ कृत 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर', डि० १ पृष्ठ ५८ १३१ १५५; तुल-विद्वानशान १६ ३९ और सिक्कनिकान ( सि० इंडियन और कार्वेटर द्वारा संपादित ) दुनगा मण मूयिथ पृ ८ और पृ० १ का द्वितीय टिप्पणी।

३—विद्वानिथान का 'अकावाक तुल नाथन सीम; तुल० विद्वानिथ दि० ६, डि० पृ० ३९

४—डा कदाहोर कथास की रिपाई, आधर्वासीजिजल गर्वें जॉय इंडिय, १९०३ ४; मा० डा० ११९-११

जातक कथाओं में, जो ईसा से तीसरी शती पूर्व की मानी जाती है, 'नट', 'नाटक' 'समाज' और 'समाज-मंडल' आदि के अनेक उल्लेख प्रायः साप-साध मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में 'समाज' शब्द नाटकीय प्रयोगों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसा कि कण्वेरा जातक के अंतर्गत भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म की उस स्मार्तक कथा से प्रमाणित होता है जिसमें उक्त शब्दों का स्पष्ट प्रयोग हुआ है।<sup>१</sup> इस कथा के अनुसार जब कारी में ब्रह्मदत्त का राज्य था, उस समय बोधिसत्व ने एक प्रसिद्ध डाकू के रूप में जन्म लिया। उनके अंतक में प्रजा की रक्षा के लिए राजा ने उन्हें प्राणदंड दिया। कारी में राजा की प्रपत्नी श्यामा नाम की एक गणिका थी, जिसका उस पर बड़ा प्रभाव था। पर वह बोधिसत्व के प्रणय-पाश में बंध गई थी। उसने अपने प्रेमी एक बनी और सुन्दर बन्धु सुवक को एक हजार मोहरों देकर अधिकारी के पास भजा। परिणामस्वरूप बोधिसत्व तो श्यामा के पास भेज दिए गए और उनके स्थान पर उस बन्धु का बंध किया गया। तत्पश्चात् श्यामा ने अपना व्यवसाय छोड़ दिया और धरमिण बोधिसत्व के साथ निवास करने लगी। बाधिसत्व को शीघ्र ही यह धारणा हुई कि बन्धु की मालि कान्तर में उन्हें भी बेठा ही कुछन मागना पड़ेगा, अतः उन्होंने श्यामा का परित्याग कर दिया।

उनके बन्धे जन्म के बाद विरहिणी श्यामा अत्यंत अश्वीर हो उठी और उसने उन्हें प्राप्त करने के लक्ष संयत्त उपाय करने का सङ्कल्प किया। उसने कुछ नद्यों का कुत्ताप और उन्हें पुष्पजन द्रव्य प्रदान किया। नद्यों के यह पूछने पर कि उनको क्या सेवा करनी होगी, उसने कहा—

तुम्हाक अगमनत्थानं  
नमः' त्थि तुम्हें गाम निगम राजधानिय  
गन्ता समान्ज कत्वा समन्ज भड्ढे  
पट्टममेव इमं गीत गायेप्पाया ने  
पाराणमि तो निक्खमित्वा तत्था तत्था  
समान्जं वगेन्ता एकं पणन्त गामक गमिसी  
तत्था समान्जं करोता पट्टममेव गीतक गापिमि ।

१—'जि. ई. ई. बुद्धि' इति, १० ११०-१२० विट्ठल,  
दि. १० वि. १, १० ५८, १०१, १०२



मरत के मयोप्या छौट आने पर साकण्डेय आदि श्रुतियोंने मरमरइता के दुष्परिणाम सूचित करते हुए नाटकों का उल्लेख किया है—

नाराजके जनपदे प्रहृष्टनटनर्तकाः ।

उत्सवाश्च समाजाश्च वर्द्धन्ते राष्ट्रवर्द्धनाः ॥

( २।१५।५ )

इसके अतिरिक्त बल्लकांड के अन्तर्गत मयोप्यापुरी का बखान पढ़ने से मालूम होता है कि नगर में कियों के किये हुए मरने रंगराजगार्य भी ।<sup>१</sup> अतः प्रसाद जी का यह कहना ठीक ही है कि ' ये नाटक केवल पद्यमय ही रहे हों, ऐसा अनुमान नहीं किया जा सकता । समस्त रामायण काल के नाटक-संघ बहुत प्राचीन काल से प्रचलित भारतीय बस्तु थे । ' यदि व्यामिश्र का अर्थ मिश्रित मायाओं में मिला हुआ नाटक मानना ठीक हो, ' तो ये नाटक केवल ऐसे ही नहीं पढ़े भी जा सकते थे, जैसा राम द्वारा नाटकों के स्वाध्याय के विवरण से स्पष्ट है—

भैरव्य सास्त्रसमूहेषु प्राप्तो व्यामिश्रकेषु च ।

( बा० रा० १।१।१७ )

महामाख में ही हमें विष्ट-पर्व में एक विद्याल रंगमंच का उल्लेख मिलता है । इसी पर्व के अंतर्गत अमिष्यु उत्पत्ति-विवाह के प्रसंग में नंदो बैठाभिदो, सुनो और मागणो के साथ-साथ नंदो का भी नाम आया है, जिन्होंने सम्मानित अतिथियों का आमंत्रण प्रकार से मनोरंजन किया । वन-पर्व में बर्म के प्यनो का उल्लेख करते हुए सुषिष्ठिर ने बताया कि कौटिली के किये हमने समय समय पर नट-नर्तकों का उच्च प्रदान किया है ।

१—बहुनाटकमंथेयुः तनुवता चर्चिताः पुरीष ( बा० रा० १।५।१९ )

२—इदं ' हे० बाकहृत् ईदिकम रतेज ' पृ० १८ तथा दीपक ' संतुष्ट नाम' पृ० १९

संभवतः इनी काल के आसपास नाट्य-कला पर प्रथम ग्रीष्मि जाने लग ग जैसा कि ईसा से आठ या सात सौ वर्ष पूर्व पाणिनि द्वारा उल्लिखित कृष्णार्जुन और शिलापत्नी के नट-सूत्रों से प्रतीत होता है। यदि सतपथ ब्राह्मण (११. ५।१।१) के शिलापत्नी और पाणिन के शिलापत्नी में कोई अंतर नहीं है तो नाट्य-कला के साम्प्रदायिक अध्ययन का प्रारंभ ब्राह्मण-काल से ही मानना पड़ेगा।<sup>१</sup> इन ग्रंथों में कीय<sup>२</sup> का यह मत कि यहाँ नट का अर्थ अभिनेता नहीं है मानना ठीक नहीं जैवता। कारण नाटक के साथ 'नट' शब्द का जो अर्थ बौद्ध साहित्य नाट्य-शास्त्र तथा उसके परवर्ती संस्कृत-ग्रंथों में दिया जाता है वही अर्थ रामायण, पद्मावत तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी में क्यों न दिया जाय, जब कि इन ग्रंथों का समय उक्त साहित्य में से प्राचीनतम ग्रंथों में बहुत पहले का नहीं प्रतीत होता। इसके अतिरिक्त कैसा कि कहा जा चुका है स्वयं रामायण में ही नाटक, नट और नट नाटक-ग्रंथों का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र की भाँति पाणिनि और पद्मावत से पहले रामायण-काल में भी नट शब्द का अर्थ नाटक से अर्थवत् स्मरनेवाला ही अधिक स्वाभाविक है। यदि कीय<sup>३</sup> महोदय के कथनानुसार नट सूत्रों की कल मूल अभिनय का प्रथम मान दिया जाय तो यह बात समस्त में नहीं आती कि इस प्रकार के सूत्रों की परंपरा भाग क्यों नहीं खड़ी? इनके विरुद्ध यदि इन नट-सूत्रों को नाट्यकला के प्रथम माना जाय, तो हमें यह परंपरा नाट्यशास्त्र, दशरूपक तथा नाट्य-द्वय आदि में उसरास्तर विद्यमान होती हुई बराबर मिलती खती आती है।

सतपथ ब्राह्मण में पाणिनि के समय तक नाट्यकला पर प्रसंगिकता की सूचना करने में यह बात न भूलनी चाहिए कि ये ग्रंथ कर्मकांड-मुक्त नाटकों पर ही अधिक लागू होने होंगे, क्योंकि इस समय तक भौतकर्म-विरोधी भागिनन वैदिक कर्मकांड को दूर करने में इतना साधन न हो सका था जिससे बौद्ध-जैन में हुआ, जब कि जैना ऊपर लिखा गया है, नाटक का स्मरण रूप में प्रथम पूर्ण तथ में हो गया था। कर्मकांड-मुक्त बौद्ध-जैन नाटकों की

१-तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।४ सुत० पु० गोदावरी बभ्रुदेव वेनका  
'भार १४ नाट्य-शास्त्र' पृ० २३

मेथी के अन्य शास्त्रीय नाटकों का उल्लेख हमें वात्स्यायन के कामसूत्र में मिलता है जिसका समय ई० पू० पाँचवीं से तीसरी शती तक माना जाता है—

(१) गीतम्, वाद्यम्, नृत्यम्, आलेख्यम् नाटकाभ्या  
यिका दर्शनम् ।

(कामसूत्र १।३।१६)

(२) पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने  
नियुक्तानां नित्यं समाजः । हृत्शीलवाङ्मगन्तवः प्रेक्षकमेपां  
दष्ट । द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजानियतं समेरन् । ततो यथा  
भद्रमेपां दर्शनमुत्सर्गो वा । व्यसनोत्सवेषु त्रैषां परस्परस्यैक-  
कार्यता । आगन्तूनां च कृतममवायानां पूजनमभ्युपपत्तिश्च ।  
इति गणपधर्मः ।

(वही, १।४।२१)

अर्थात् पक्ष वा मास के किसी भी निपत दिवस पर सरस्वती-भजन में नियुक्त जनों का समाज हो और आगन्तुक कुशलित्व इन लोगों को प्रेक्षक (नाटकीय प्रयोग) प्रदान करें । दूसरे दिन इनको निपत रूप से पुरस्कार दिया जाय । व्यसन और उत्सव में इन लोगों की पारस्परिक एकतावता हो । आगन्तुकों तथा कृतकमवाय लोगों का पूजन तथा स्मरण हो । यह मन्वधर्म है ।

इस अन्वय से यह प्रतीत होता है कि मुष्णि-संपन्न शिष्टमनों (जिनके लिए ही यथार्थ में कामसूत्र लिखा गया है) के लिये सरस्वती-भजन धामक कला-मंदिर में एकाकी रूप से नियुक्त कुछ जनों द्वारा समाज (नाटकीय प्रयोग) होता रहते थे । इन समाजों में कभी-कभी आपस नाटकीय कौशल का प्रदर्शन (प्रेक्षक) करने के लिये बाहर से कुशलित्वों को भी बुलाना जाता था, जिनके लिए कदाचित् यह कला शालीयिका का स्थापन थी । जैसा इनके माम से ही प्रकट है, इस कला द्वारा पैस कमाते-कमाते संभवतः इनके शिल्प (धर्म) में भी दोर आ जाया करता था । नटी का यह धार्मिक विचार उल्लेख्य धार्मिक धर्मधर्म का परिणाम भी हो सकता है जो डा० जगद्विह के अनुसार हिन्दी वाद्यनेत्र के कारण हमारे समाज में प्रविष्ट हुआ— 'आर्च-गानि के श्रुतिराव

में छोड़ देनी पड़ना मजबूर हुई प्रतीत होती है जिसके कारण उसको अपनी संस्कृति-रक्षा के लिए कुछ सामाजिक प्रतिबंधों की सृष्टि करनी पड़ी।

इस प्रश्न पर आपन गंभीर विचार करने के पश्चात् मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि बहुत प्राचीन काल में ही हमारे देश में बाहर से कोई ऐसी जाति आई जो बेर्या-वृत्ति, पशु-वृत्ति आदि के साथ-साथ समाज में वर्गवाद तथा जाति व्यवस्था की नींव, क्योंकि ये अधिकतरपूर्वक बढ़ सकता हूँ कि ये बुराईयाँ वैदिक समाज में नहीं थी। इस परिवर्तन का प्रभाव काव्य मात्र पर पड़ा और नाट्य का तो हमने पूर्णतया बदल दिया। अन्तः नट, नर्तक और शैल्य आदि वैदिक काल में पवित्र लोग समझे जाते हैं परंतु रामायण तथा महाभारत में बड़ी गरिमा तथा आचार-श्रद्धा लगे जाते हैं। नाट्य का बाह्यकरण की यह विधि निमित्त रूप से नृक-काल में प्रारंभ हो गई थी, क्योंकि नृत्य, गीत, वाद्य आदि कौशल की भावना में भारतीय तथा पवित्र कलाएँ हैं, बड़ी पावरफुल पाठ-पूज में जिस वगैरे के लिये सर्वथा स्वाभाविक समझी गई है।<sup>११</sup> इसी लिए प्रतिदिन इनका संगठन हानिकारक समझकर केवल पद्य या गान में कभी-कभी बुझान की व्यवस्था की जाती थी।

सांख्यिक दुष्प्रभाव के कारण बुराईयों का प्रति वर्गमं अत्यन्तनीय होने हुए भी उनकी कला के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए न केवल उनको पुरस्कार प्रदान किया जाता था, बल्कि शायी रूप से निपुण अभिनेताओं से बढ़ भी आशा की जाती थी कि वे ध्येय की दृष्टि में बुराईयों के साथ सामाजिक सद्व्यवहार और श्रदानुभूति का बचाव करें। बुराईयों के प्रति यह सम्पूर्ण और बड़ा हमलियाँ आशयवत् थी कि निपुण अभिनेताओं तथा बुराईयों का रूप (वर्ग) एक ही था और इसलिये परस्पर प्रति और श्रदानुभूति का व्यवहार सम्माना गम्यम था।

सामाजिक व्यवस्था में उद्दिष्ट निपुण अभिनेताओं के समाज और बुराईयों के द्रष्टा का समान-असमान टक्केल होने में ऐसा प्रतीत होता है कि वर्गवाद में मुक्त होने पर नाटक की लौकिकता और लोकप्रियता के अतिरिक्त बचने के साथ ही अभिनेताओं में सांख्यिक दुष्प्रभाव के लिये चरमर भी अतिरिक्त होने लगे। संभवतः इसी दौर में नाटक का मुक्त करने के लिए दिव्य ज्ञान में

व्यवसायियों के हाथ से निकालकर उस एक नया रूप दिया। परन्तु इन दोनों प्रकार के अभिनेताओं की 'एककार्यता' का परिणाम व्यापक समझ नाट्यशास्त्र के लिए अत्यन्त ही दुष्प्रतीति होता है। यही कारण है कि 'अभ्यशास्त्र' में अभिनय और नाट्य को निर्दिष्ट तथा आसनों के लिये स्थाय्य माना गया है। गिरनार थियेटरों में उल्लिखित नव समाजों कर्तव्या बहुकम् हि दोषम्', नाट्य की इसी विवृति की और संकेत करता हुआ प्रतीत होता है। अथर्व शास्त्र द्वारा इतक परिहार का जो उद्देश्य हमें उसका थियेटरों में मिलता है वह वस्तुतः भारतीय समाज की उस व्यापक परिष्कार-प्रवृत्ति की एक उत्कृष्ट मात्रा है, जिसको एक विद्वान् के शब्दों में 'साहित्यवाद' कह सकते हैं। और जिसका द्वारा नाट्य आदि सभी सामाजिक प्रवृत्तियों की विवृति की दूर कर उस अद्विष्ट से संहित बनाने का प्रयत्न किया गया था। इस प्रकार नाट्य का वैदिक परिष्कार करने की जो प्रवृत्ति हमें काश्यप और अथर्व के थियेटरों में मिलती है उसका सर्वोत्तम रूप हमें भरत के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है, जिसमें हिन्दी अर्थों में हम फिर से मूल वैदिक (वेदवादी नहीं) कर्मकांड की उदात्त वैदिकता और रसवादी नाट्यवाद की व्यापकता का पुनरुद्धार होत देखते हैं। नाट्यशास्त्र नाटक लक्षित अभ्यास में एक आत्यन्तरिक वर्धन द्वारा रस वतन्वया गया है कि अंगवि द्वारा वेदार्थनयन पूर्वक वाले संहित नाट्य स जहाँ लोक-कल्याण, पशु और भगवत् की वृद्धि होती है वहाँ दुष्टचारपूर्ण अरलीन हास्य और प्रहसन का आभय लेने वाले नाट्य स सर्वथा पतन तथा अधोमति की निरिचत है। इस प्रकार का नाट्य का अभिनय करनेवाले, भरत मुनि के अनुसार 'निष्ठूता' हाकर नाट्यवाद का उस गर्व में निष्ठ है जिसमें नहुष द्वारा उसके पुनरुद्धार की कथा नाट्यशास्त्र में कही गयी है। नाट्यशास्त्र का अनुसार नाट्यक्रम एक 'व्रतभाषित' स्थान कम है। यही कारण है कि नाट्य के विभिन्न अर्थों में भारतीय नाट्यशास्त्र में सभी के लिए बहानुभूत्या स्थान का प्रयत्न होने पर भी केवल एक ही अस्ती स्थिति को अनुभूत्य रस तथा और रूपों में भी उन्ही प्रकारों का जनार अधिक दुष्प्रतीति मुक्ति, सदाचार तथा पर्याप्त का अभ्यास प्रकार में निष्ठा मान के। अतएव नाट्यशास्त्र में 'समवेतार' आदि के लिये बहुत स 'वन्द-वृत्ति' विहित कर दिये गए और प्रहसन में केवल 'श्रीकान्तार मुक्त बाण' का स्थान दिया गया।<sup>१२</sup>

पश्चिम के कनिष्ठ भारतीय विश्वविद्वानों से यह प्रभावित करने का प्रयत्न किया है कि भारतीय नाट्य का उद्भव और विकास यूनानी नाटक से प्रभावित था। ऊपर के विवरण में से यह सिद्ध हो जाता है कि इस प्रकार की धारणा निम्न है। यूनानी नाटकों के उत्कर्ष और प्रभाव-विस्तार का कास ईसा की पहली शताब्दी मानी जाता है, परन्तु भारतीय ( संस्कृत ) नाटक का विशिष्ट कालान्तर उद्गार इसके बहुत पहले संपन्न हो चुका था। संस्कृत में नाट्यकर्मों की जो विविधता विशालता और विराटता पाई जाती है वह ग्रीक नाटकों के पूरे इतिहास में अप्राप्य है। यूनानी रंगमंच की सबसे शान्तिशाली एवं कमर खड़ी बातों ही हैं। यदि यूनानी नाट्य का प्रभाव भारतीय नाटक पर पड़ा होता तो भारतीय नाट्यशास्त्र में बालक के उपकरणों का पूर्ण निवेश न होता, और रंगमंच पर मुद्र और मृत्तु के दृश्य वर्णन न माने गए होते। इसके विपरीत भारतीय नाटक के जो प्रमुख प्राणभूत तत्त्व भाव्य हैं उनका ग्रीक-नाट्य में अल्प ही नहीं है। तत्पर्य यह कि अभिषि और आशय किसी भी दृष्टि में भारतीय नाटक और ग्रीक नाटक में कोई समकालीनता नहीं है। परेके लिए प्रयोग किए जानेवाले ' पश्चिका ' शब्द को लेकर येमे ही धारणा बहिरंग भ्रम तथ्यों के आधार पर भारतीय नाटक पर ग्रीक प्रभाव दिखाने के लिए की स्वीकृति की गई है वह प्राप्त सिद्ध की जा चुकी है। विद्यमान भारतीय नाटक आरंभ से ही जिस उत्क्रियित मर्यादावादी प्रवृत्ति का पता पड़ रहा है, वह ग्रीक नाटकों के विकास की किसी भी धारणा से ठरमे नहीं पाई जाती।

उपयुक्त मर्यादावादी प्रवृत्ति को मातृ-नाटकों के कथानकों में स्तर स्तर भाव्य में उत्क्रियित कथन और कथिष्य दृश्योपर कृत ' वाचिपुत्र-वक्त्र ' तथा ' कानि-पुत्र ' के नाटकों तक उच्चोत्तर निरखता हुआ देखा जा सकता है। नाट्य-नाट्य के इन आधान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कर्म-कांड-मुक्त और कर्मकांड-मुक्त दोनों प्रकार के नाटकों के दोनो के परिवार की समता निगमन है। यही कारण है कि इन आधान के पक्षधर संस्कृत के भेरुन नाटकों की रचना हुई और कानिपुत्र की रचना ही राष्ट्र, दण्ड, मय मृति पिछान मय नागपथ, मुक्ति राजयोगर तथा सुदीर्घ आदि प्रमेह नाटककार हुए भिन्न ही कनिष्ठा नाटक दृष्टिकोण से संस्कृत नाट्य-नाट्य में उच्च कानि की मानी जा सकती है और भिन्न में कुछ की गणना तो विश्व-नाट्य के लक्ष्य रथों में की जा सकती है।

काष्ठान्तर में मनुष्य-परिष्कार की उक्त प्रवृत्ति ही संस्कृत-नाटक के हाथ का कारण बन गई। नाट्यशास्त्र ने नाट्यकला के विभिन्न अंगों का जो शास्त्रीय विवेचन प्रारंभ किया था वह आगे भी चलता रहा और एक समय आया जब कि इस प्रकार के शास्त्रीय ग्रंथ नाटककारों का पक्ष प्रदर्शन करने के स्थान पर उनकी उक्त स्वामात्रिकता का ही अपहरण करने लगे, जो किसी भी कलाकार के लिए अपनी प्रतिभा की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये आवश्यक है। भारत में इतिहास का यह वह समय था जब कि भारतीय संस्कृति में विदेशियों से आत्म रक्षा करने लिए रुढ़िवाद का अत्यधिक दृढ़ता से अपना विधा-या विचारावली सबसे अच्छा प्रकीर्ण हमें अलबेकनो के भारत वर्णन में मिलता है।<sup>१</sup> अलबेकनो इस बात पर आश्चर्य प्रकट करता है कि जो भारतीय जाति एक समय अपनी उदारता के लिए प्रख्यात थी, वह इसकी संकीर्ण विचारधानी और रुढ़िवादी कैसे हो गई कि अपनी भाषा और अपने ज्ञान तक की भी दूसरों के स्वयं से बचाने लगी। संस्कृत-नाटक के हाथ का सबसे बड़ा कारण यह हुआ कि इस समय से बहुत पहले ही संस्कृत-भाषा और साहित्य के साथ साथ ही संस्कृत-नाटक का क्षेत्र बहुत संकुचित हो गया था और उसका संबंध जनताधारण से छूट कर केवल शिष्ट वर्ग से ही रह गया था। जनताधारण की भाषा और विज्ञानों की भाषा का अंतर निरन्तर बढ़ता ही जा रहा था, दैनिक जीवन के व्यवहार की भाषा और नाटक की भाषा के बीच की खाई गहरी हो जाती जा रही थी। ६०० ई० के लगभग देखी भाषाओं में साहित्यिक रूप ग्रहण कर लिया था, जिसका फल हमें उच्छ्रांत के अप्रत्यक्ष अनुरूप प्रकार के साहित्य से मिलता है। फिर भी आश्चर्य की बात तो यह है कि इस काल के कई शताब्दियों बाद तक भी बहुत बड़ी संख्या में संस्कृत नाटक निराला जाते रहे। शिष्ट वर्ग की रूढ़ि ध्यान में रखकर निम्न गये इन बातों में नाटकीयता की अपेक्षा काव्यात्मकता अधिक होती थी और उनमें बैरिग की मरमा करन के लिये अनेक प्रकार के रूढ़ प्रयोग किए जाते थे। इन सब बातों के परिणामस्वरूप संस्कृत-नाटकों की नाटकीयता का हाथ ठा हुआ ही, उसका संबंध रंगमंच से भी उत्तरोत्तर विच्छिन्न होता गया। यद्यपि इस काल-काल में कपड़ों के इन प्रकारों की भी रुढ़ि दूर की विकास-कार्य में उठ हो चुके थे और जिनका लक्षण केवल मातृशाला से प्रारम्भ होने वाली

राष्ट्रीय प्रयोगों की परम्परा में मिल्ता है, परंतु फिर भी जहाँ नाट्यसाहित्य के अंतर्गत इन रूपों का उत्थेय इस बात को प्रमाणित करता है कि उस समय ये सभी प्रकार के रूपक लोकप्रिय रंगमंच पर खेले जाते थे वहीं इस हास-काल में इनके निर्माण से केवल उनके अस्तित्व की प्राप्ति और अतिप्रियता ही सिद्ध होती है।

इस ज्ञान-काल में निम्न जाने वाले नाटकों की गठानुगति तथा स्तुति-विशेषों का परिणाम हिन्दी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के नाटक के लिए अच्छा न हुआ। इनका समय पड़ा परिणाम यह हुआ कि चौदहवीं शती तक हिन्दी-नाटक को सर उठाने का भी अवकाश न मिला और चौदहवीं शताब्दी में जब विद्यापति के पारिजात-हल और इक्ष्मी-परिणय में हिन्दी न नाटक-साहित्य को निराल करने का, उपक्रम भी किया ता वह नाटकीय गीतों तक ही पहुँच पाए, पावों के कवोरकथन के लिए संस्कृत अथवा प्राकृत का ही आश्रय लेना पड़ा। इसके पश्चात् मैथिली, हिन्दी और ब्रजभाषा में यद्यपि लगभग तीस नाटकों का जन्म हुआ है, फिर भी नाटक को सार्वजनिक स्तर लोकप्रिय रंगमंच तक पहुँचाने में समय-समय पर अनेक प्रयत्न करने पड़े।

परंतु इस प्रयोग में यह सोचना भूल होगी कि उस समय हिन्दी में इन साहित्यिक नाटकों के अतिरिक्त अन्य कई नाटकीय परम्पराएँ भी थीं। बलुव व नाटक तो उस ज्ञान के अंतर्गत हैं जिसका प्रारम्भ श्रुत्युक्त के उद्गम-मूल, पुष्कर-उपरी आदि संवाद-मूलों में हुआ और जो मुलाप्याय जैसे रूपों को प्राप्त होती हुई संवाद-नाटक के विकास और हास के क्षेत्र में अतिरिक्त प्रगति हो रही है। वैदिक संवाद-मूलों में उपपन्न बीगापात्मक परम्परा भी रामायण, महाभारत आदि के पाठ अथवा शौभिषो के मूक अभिनय तथा प्रसिद्धों के चरित्र के वर्णन में होती हुई मूक अभिनय, छंद अभिनय, शब्द, कथा-वर्णन, काव्यात्मक संवाद आदि अनेक प्रकारों द्वारा होने वाली राम और कृष्ण की लीलाओं के रूप में आज भी पाई जाती है। इस प्रकार छत्रमूल, पापा-मेरुमूल, अक्ष-मूल, दम-यणी-संवाद आदि में पाई जा रही परम्पराएँ तथा



आध्यात्मिक नाट्य-परम्परा में जो प्रवृत्ति निर्याप देती है उसी को हम असौख्य कर्मीन विहारों<sup>१</sup> सांकेतिक प्रयोगों तथा हृन्मयस की बीजपट्टि, त्रिभुज, गोड तथा तथा नंद मयन की नीलाद्या के अनुकरण के रूप में वर्तमान पाते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक स्थाय, सदाया, नोटकी समाथा आदि विभिन्न नामों से प्रचलित होने वाले तथा जनसाधारण का मनोरंजन करने वाले नाटकीय प्रयोगों में जो परम्परा मिलती है, उनका भी पृथक् अध्ययन यदा होगा। सम्भवतः वैदिक काल में लेकर रामायण और महाभारत काल तक पाए जाने वाले पल<sup>२</sup>, योक्ष<sup>३</sup> कायस्थ आदि में वर्णित कुशीलव तथा हर्ष के समय कुवड काय की आह्वान करने वाले प्राचीन अभिनेताओं द्वारा पारित नाट्य-परम्परा अपने शुद्ध सांकेतिक रूप में परिदृश्य-मण्डली के बाहर प्राचीन जनता के बीच प्रचलती हुई उपयुक्त नाट्य प्रयोगों में प्रकट हुई। अतः हिन्दी-नाटक की उत्पत्ति और विकास का निकषण करन समय इन सभी परम्पराओं पर दृष्टि रखना आवश्यक है।

ऊपर के विवेचन में विभिन्न नाट्य-परम्पराओं की जो आचारमूर्त कृतियाँ प्रकाश में आती हैं, हिन्दी-नाटक में संबंध बिलान के लिए उनका हम दो भागों में विभाजन कर सकते हैं—(१) मुक्तकालीन की परम्पराएँ तथा (२) साधारण जनता में प्रचलित परम्पराएँ। प्रथम प्रकार की नाटकीय परम्पराओं के प्रचलन के अन्त में ही सीमा अधिकारी व जो आध्यात्मिकता तथा कलात्मकता आदि में पूर्ण होत व। इसके विपरीत दूसरी परम्परा जिसका अन्त जन-साधारण के बीच होता था, इस प्रकार के रचनाओं में रंध कर सङ्कलित नहीं होने पावी। प्रथमांश काल में मुक्तकाल परम्परा के अध्ययन एक ही साहित्यिक मार्ग प्राप्त है जिसकी मृष्टि मरुत-नाटकी का साक्ष्य मान कर संस्कृत भाषा-प्रतिभा के बीच हुई इन नाटकों के लेखक प्रायः मरुत-भाषा जानन वाले साधु और कवि होत व जिसमें उनका प्रचार भी अत्यन्त सीमित यदा होगा। दूसरे इन परम्परा में प्रभावान कृष्ण की उन गुरुमयी नीलाद्या का समापन होता है, जिन्हें मन्त्र गान 'राम' के नाम से पुकारत हैं। राम कर्तव्य की समान तथा

१—अतिरिक्त विहार कर कुत अथाह का परिधि

२ १—राजनेतिक संक्षिप्त अनुवाद १०१६ (सुतिथ्य सुगम, गोलाभ सङ्कलन) मुद्रा कर मृष्टि और वार वार मन्त्र-आवृत्ति।

उनके पपाय रस का आस्वादन करके के लिए प्रशंसकों में न केवल ठप्पे कोटि की महत्त्वता काँति थी, जो साहित्यिक नाटकों का रस लेने के लिए पराम समझी जाती थी, अतिशु उत्कृष्ट मग्नकृति, विषय-वस्तुमयता और अनुपम भाष्यात्मिक भाषना भी परभावशयक थी। वस्तुतः नाट्यशास्त्र में त्रिव रस-निर्णय की बात कही गयी है वह इन्हीं दो प्रकार के नाटकों में सर्वत्र मिलती है। जन-साधारण की नाट्य परम्परा की पूर्णतः रस के इस ऊँचे आदर तक नहीं हो सकती। इसके अन्तर्गत एक बार तो रसिगाथात्मक नाट्य-प्रयोग आने हैं और दूसरी बार स्वर्णिग भाषा, नौटंकी जैसे लोकप्रिय नाटकीय प्रदर्शनों का समावेश होता है। हिन्दी के साहित्यिक नाटकों के स्वरूप का भरी प्रकार समझने के लिए ऊपर वर्णित नाट्य की मनी परम्पराओं का भव्य प्रकार जान लेना चाहिए। बात यह इन सभी परम्पराओं का स्वरूप स्पष्ट कर लेना आवश्यक है।

---

## मध्यकालीन लोकधर्मी नाट्य-परंपरा

मंरुत-नाटक मध्ययुग में हास को प्राप्त हो गया था। यह भारतीय इतिहास का वह समय था, जब शताब्दियों तक मुस्लिम-सत्ता का अत्याचार उपभोग तथा अल्प ऐतिहासिक कारणों से राष्ट्र के जीवन में रुद्धिप्रियता संकुचित होने लगी थी। ऐसे ही समय मुसलमानों के आक्रमण भी हीम प्रारंभ हो गए जिनके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति की विशुद्धियों में अपनी रक्षा करने के लिए रुद्धिवाद का अल्प भविक दृष्टा से ग्रहण कर लेना पड़ा। इस परिस्थिति का प्रतिकूल प्रभाव सभी काव्य-कलाओं पर पड़ा और नाटक के सामने तो विशेष रूप से जीवनमरण की समस्या ही उठ खड़ी हुई। कारण, नाटकों के आचार्य और लेखक भारत द्वारा निर्धारित वेद-व्यवहार को सार्वजनिक अथवा सार्वजनिक बनाने के नाटक के प्रचार उद्देश्य का सा भूलने ही लगे, उनका हाथ निर्दिष्ट नाट्यशैली के आचारमूल तथा लोकावधारण को भी सर्वथा उपेक्षित कर बैठे। इससे परिणाम-स्वरूप जन-साधारण की भाषा और विज्ञानों की भाषा का अंतर भी बहुत बढ़ गया और दैनिक जीवन के व्यवहार की भाषा और नाटक की भाषा के बीच की गार्ह इतनी गहरी हो गयी कि नाटकों की प्राकृति में भी जन-भाषा का स्थान नहीं दिया गया और परंपरागत पुरानी श्राद्धों ही चलती रही।

इस क्षामयुग मंरुत-नाटक का मुसलमानों के आक्रमणों के परिणाम-स्वरूप बहुत बढ़ा पड़ा गया।<sup>१</sup> प्रसाद<sup>२</sup> जी ने ठीक ही लिखा है कि 'मध्य

१—मुसलीम का० लक्ष्मीकांत बालेव हूत 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' १० १११-११४।

२—अर्थ कला तथा अन्य विषय १० ७०-७१।

कालीन भारत में जिस आतंक और अस्थिरता का सामना था उसने यहाँ की प्राचीन रंगशास्त्रियों को तोड़-बोड़ दिया। यदि इस शासन का आगमन न हुआ होता, तो कम-से-कम वे अत्यन्त रंगशास्त्रों जो देवमन्दिरों, तीर्थस्थानों, राजमण्डलों और पुराणालयों से संभ्रम थीं, नष्ट होने से बच जातीं और प्रामाण्य-मार्गान्तर्गत नाटकों के विकास की मायका होती। किसी प्रकार की लीमापोती<sup>१</sup> से मुसलमानी आक्रमण और इस्लामी शासन-व्यवस्था के माये से यह कर्मक मिटाया नहीं जा सका। आश्चर्य है, श्रीजगदीश करनवाले बिजलू कन् १९४३ ई० से सन् १९६० ई० तक के मुगल-शासन काल के ऐतिहासिक साधन-सामग्री ही लेता जा रहा प्रस्तुत करते हैं,<sup>२</sup> उसके पूर्व की प्रायः तीन शतियों का मुहम्मद ग़ोरी से लगा कर इब्राहीम खोदी तक का शासन-काल का भुझा देत हैं, जिसमें प्रमुख शासकों और सैनिकों की पहुँच के मीतरे के कला और शिल्प के प्रायः सब निदर्शन प्रकट कर दिये गये थे, भास्कराचारि के पुस्तकालय जमि के भेंट हो गये थे और जिसमें मुसलमानों राजधानियों के आसपास के प्रदेशों की हिन्दू-जनता को मूढ-भ्रातृ पशु का जीवन बिताने को बाध्य होना पड़ा था। इस शासन के आतंक ने पश्चिम लौकिकता और जोगीधारा की श्रृंखला में द्वितीय दुर्ग नाट्य-शास्त्रों मर गये हैं कि उस शासन-काल में नाट्यप्रदों अथवा नाट्य-परंपरा की रक्षा देने की रणनीति में लम्बे वी जो देवली के बिहारी या दुर्गम थे। यही कारण है कि इस काल में जो भी नाटक लिखे या रचे जाते थे, वे प्रायः विविधा, उत्कृष्ट, बंगाल और बिछोटा दक्षिण भारत में ही प्रायः हैं। इस प्रसंग में यह बताना आवश्यक है कि विप्लव और विनाश की उत्पत्ति तीन शतियों के पश्चात् आनेवाले मुगलों के राज्य की कुछ ऐक्य 'हिन्दी साहित्य के भिन्न विभागों के मारण के लिए सामान्यतया बड़ा उपकरण' बरकर प्रत्युक्ति से तो काम लेत ही हैं, अतः उसमें उसके निष्पत्ति की निराशा है। यदि इस काल में शूर और गुप्ती आदि मत्त कवियों की कृतियों में हिन्दी काव्य आने परम उच्छास का पहुँचा या तो उच्छास अथवा अक्षय और उद्द्वेग

१—देविले का० गोमनाथ कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' पृ० १०—  
१२ और का० श्री कृष्णलाल कृत 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास' पृ० ११३-११४।

२—का० भास्कराचारि हि० भा० भा० ६० पृ० १०।

के 'सुबधि पूर्ण' होने को कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार भेष तो उस स्थान में कि-आन्धोत्तम की प्राप्त है जो मुसलमानों के भारत-प्रवेश के पूर्व ही दक्षिण भारत में प्रचलित होकर मुसलमानों के शासनकाल तक एक छिद्र से दूसरे छिद्र तक सार देश को व्याप्त कर चुका था। देश के विभिन्न छिद्रों को अक्षर और अक्षरों की 'सुबधिपूर्णता' प्राप्त भी हो कर लगी थी, अक्षर भी इस कि-आन्धोत्तम के रूपस्वरूप लक्ष कवियों की नर्मदाजी, राम, मेघ, सेना और सार्वजनिक एवं आध्यात्मिक स्थानों का दिव्य संदेश सुना रही थी। अक्षर की वह मागीरवी जन जन के मानस का मल धो रही थी। इसकी बेगमती द्वारा न केवल संप्रदाय का और मजहब आदि मान्यता के कृत्रिम बन्धनों को तोड़-फोड़ दिया था। बारी और लम्बों की अत्यन्त सखी-मनताकारी बरम प्रेममयी स्वर-स्वरों पलितपलनता के विभिन्न दृष्टि उपस्थित करने लगी थी। इसी प्रकार लक्ष तो वह प्रतीत होता है कि विभिन्न शक्तियों ने कबीर, खीम, रामानन्द आदि के सम्मान अर्थों को राम और कृष्ण का भक्त बना दिया था। इसी का अक्षरप्रमाण प्रमाण यह भी हुआ कि अक्षर और अक्षरों की 'सुबधिपूर्ण' हो हो गए। इस सार्वप्रकाश ऐतिहासिक लक्ष को अन्वेषण करके मजहबों के आन्धोत्तम में अक्षर और अक्षरों के शासन को खारिज करने का प्रयत्न करने का प्रयत्न करने का प्रयत्न ही कहा जा सकता है।

अब नाटक के उक्त काल के प्रसंग पर विचार करते समय उसकी कुछ अन्य बहसियों पर ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि उन्निवृत्त विरहीत पदस्थितियों में सबसे अधिक प्रतिफल होने वाली हमारे नाटकों की वह समृद्ध नागर परंपरा है, जिसे भारत में नाट्यकर्मों कहा है। इस परंपरा का अन्तिम नाटक संभवतः भी वैतन्य आत्मसु के शिष्य और अयोध्या की रामानन्द राव का निम्न हुआ "अगमनाथ मठ" है जो पुरी के शास्त्र भी प्रताप इस के आदेश से अगमनाथ जी के मन्दिर में अर्पित हुआ था। परन्तु मुसलमानों द्वारा विशेष रूप से आगमनाथ हिन्दी-भाषा-भाषी प्रदेशों में इस प्रकार के किसी अभिनय का उत्प्रेषण हमें इसके बहुत पहले से ही नहीं मिला। इस माध्यमकी परंपरा के अन्तिम और अन्तिम रूप हो जान पर वह परंपरा फिर भी आगमनाथ बनी रही जिसने भारत के शब्दों में अक्षरों की वह

मिलते हैं। इन परम्परा में 'संगम' पर इतिहासिक दृष्टिकोणों का प्रयोग बहुत कम होता था। इतिहासिक दृष्टिकोणों में मुख्यता और सुधारता की दृष्टि से इनका अर्थपूर्ण रहना और स्पष्टीकरण होते आना स्वाभाविक था। इन परम्परा के अन्तर्गत देश के विभिन्न भागों में इन समय प्रचुरता से विस्तार हुए मिलते हैं जिनका हम दो शाखाओं के अन्तर्गत ले सकते हैं - पुरानी धार्मिक और दूसरी लोकिक।

पहले लोकपरम्परा नाट्य-परम्परा श्रम में जन-साधारण तक ही सीमित रही, और पण्डित-ब्राह्मण तथा मित्र-जनों का समुदाय नाट्यपरम्परा के न रहने पर भी उसकी आरम्भिक भावना न हुआ। परन्तु चिकित्सक की सोचधी और चिकित्सकी शक्तों में जब मन्त्रि-आचार्यन न रात्र में नई चेतना भरी तब जहाँ एक ओर भय काय के मुक्त और प्रबोध नाम के दोनों भेद शुरू पलेटने लगे दूसरी ओर दृष्टिकोण भी उपस्थित नहीं रहा। संगमों के न रहने से पुरानी नाट्यपरम्परा परम्परा के पत्रन का अन्तर्गत ही नहीं रह गया था, इतिहासिक मन्त्रि-आचार्यन के समुदायों ने लोकपरम्परा के पुनर्स्थापन की ओर ध्यान दिया। परित्याग्य इतना मात्र में इन समय भारत में लोकपरम्परा नाट्य परम्परा की धार्मिक शाखा को समुदाय होकर विविध प्रादेशीय भाषाओं के नाट्यिकी प्रसारित करत हुए पाते हैं। संगम में चेतन्य व्याख्या नाट्य के नमोत्थान के अन्तर्गत प्रत्या-मोक्ष ही बन गए थे। नैतन्यमागत के अन्तर्गत अन्तर्गत ने किया है कि चेतन्य स्वयं-अन्तर्गतनीका करने से उनका अभिनय साधारण रूप में नमोत्थान होता था। उन्हीं के कारण संगम में 'बाबा' की लोकिकता बढ़ी और उनसे समुदाय होकर नाट्य का स्थान ले लिया। चेतन्य की ही अन्तर्गत चेतन्य अन्तर्गत प्रेरणा ने विविध में 'अन्तर्गत' और आन्तर्गत में 'अन्तर्गत' नामक नाट्यों का प्रचलन हुआ। अन्तर्गत चेतन्य की अन्तर्गत शाखा में शैली में 'अन्तर्गत' नामक विविध लोक-नाट्य की परम्परा गयी। उन्हीं में भी अन्तर्गत में १९७३ में काटिकट के अन्तर्गत राधा से अन्तर्गत की आधार बनाकर अन्तर्गत का प्रचलन दिया और कुछ ही समय बाद राजा और केरा अन्तर्गत 'अन्तर्गत' का प्रचलन दिया। इन समय के अन्तर्गत लोकिक भाषाओं के आधार पर अन्तर्गत नाम के अभिनयमात्र रूप का प्रचार हुआ। अन्तर्गत में भी अन्तर्गत अपनी दिनों बहुत अन्तर्गत का मे

बड़े माने वाले 'कलित' में 'हरिकृपा' और 'दशावतार' आदिक रूप में अधिक विस्तार प्राप्त किया। कलित बराहरे के अक्षर पर होता था, जिसमें मंगलान के चरित्रों का अभिनय होता था और अंत में राम के द्वारा राज्य का वध करवा दिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात और आसाम में भी इन्हीं दिनों रामचरित की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा अधिक बढ़ी आसाम में तो संग्रह की जात्राओं का भी प्रचार बढ़ा। इन्हीं दिनों हिन्दी-भाषा-भारी प्रान्तों में रामचरित और रामचरित में समुन्नत और लोकप्रिय होकर साहित्यिक नाटक की उत्पत्ति की।

छोड़चमों नाट्य-परंपरा की चार्मिक शाखा के इस वास्तविक नव विकास में जैसा कि स्वभाविक था, उसकी लौकिक शाखा के विकास में भी योग दिया, जिसके परिणामस्वरूप हम देश के विभिन्न भागों में लोकिक भाष्यानों के नाटकीय प्रयोगों का प्रचलन देखते हैं। इनमें महापट्ट का तमाशा, गुजरात की मंभारे, मलवा और राजपूताना का साध तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में स्वांग, लांग, भगति, तमाशा आदि के नामों से प्रचलित नौटंकी आदि हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

महापट्ट का तमाशा प्रारंभ में मनोरंजन का एक ऐसा साधन था जिसका प्रयोग और प्रचार दोनों ही निम्न वर्ग के लोग हुआ करते थे और इसीलिए उसमें अधिक प्राम्पता भी रहती थी। यही कारण है कि 'तमाशा' से सम्बंध रखने वाले लोग यहाँ पूजा की दृष्टि से दूरी पात थे। जामे चम कर रामचरित नाम के एक उद्योग के अत्यन्त उन्माही आचार्य तद्वत् 'तमाशा' का बहुत संस्कार किया और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी। आजकल तमाशा की दशा फिर खोबनीय हो गयी है, और यद्यपि उसका अभिनय आधुनिक नाट्यशास्त्रों में होन लगा है, किन्तु उसमें संशयान पक्षों से कहीं अधिक बढ़ गया है। 'तमाशा' एक सामान्य नाटक के द्वारा एक या मुख्य और एकद्वारे या तनने के साथ के साथ अभिनय किया जाता है। मूल के साथ उक्ति गमय के अन्तर में स्वांग भी मरे जान है, जिसका प्रयोग यह होता है कि देखनेवाले का ध्यान घंटे मनोरंजन हो, नाचनचारा प्रायः एक मधुबन और मुन्दर लड़का होता है या लड़की के बरा में लग कर और दोनों में परंपर बान कर नाच करता है। इसमें प्रायः नाचनियाँ गायी जाती हैं। गाँवन' नाम का एक और नाच

रूप भी महाराष्ट्र में प्रचलित है जिसका अभिनय करनेवालों की एक जातिविशेष होती है जो मोबडी कहलाते हैं। गोप्य एक ही पहिनावा में भारभ में अन्त तक खरुर खाग मरता है वह अकतार-चरित्रों का भी अभिनय करता है।

हिन्दी-भारत-भाषी प्रान्तों में राजपुताना और मानवा का मान और उत्तर प्रदेश की नौटंकी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राजस्थान और मालवा में लोकजादूओं के बहुत से रूप उपलब्ध हैं, पर इनमें सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय माना है। सकल निठाकर ऊपर चढ़नी ताल कर कने के लम्पों पर पुणों, चन्दनगर आदि से सजाकर मंच बनाया जाता है। मंच के आगे पर्यं विठा रहता है, जिसके छल और बसक बैठने है और बीच का स्थान अभिनय के लिए रिक्त रहता है। मान प्रायः किसी मन्दिर के सामने में होता है और अभिनय प्रारंभ होने के पूर्व सब 'स्वरूप' (पात्र) आकर मंच पर बैठ जाते हैं। प्राय एक व्यक्ति सरल-नाटकों के बान्सी की मति निहडबर्ती मन्दिर की छत पर चढ़ा हाकर गणेशादि देवताओं की कन्दना करता है, जिसे मंच पर खड़े हो कर सब अभिनेता बुझाते हैं। यह मंगलाचरण अथवा नान्दी-पाठ जिसे चन्द्राना कहते हैं इस प्रकार प्रारंभ होता है—

याने मनाऊँ गनपति जी काशी का वासी ।

आजो गजानन गूमता मेर आनन्द स्वामी ॥

मंगलाचरण के बाद जब अभिनय प्रारम्भ होता है, तो वह पर्यं के बीच के विद्यमान में ही होता है। अभिनय होते समय बीच-बीच में सबका सारंगी आदि वाद्य पद्यत रहते हैं। संगीत अधिकांश पञ्चत्वक ही होता है, जिनमें दादो और चौबानों का प्रयोग होता है। कभी-कभी राजा, रानी और सेनिक, मर बात-बात करन-करन श्रव्य करन लगते हैं। अभिनय समाप्त होने पर प्राय सब अभिनेताओं की शोभा-माया निरूपणी है। मान का अभिनय रात्रि में कभी दर के परमार्थ प्रारंभ करने की रीति है और वह दूकने गिने प्रातःकाल कभी दर तक कभी-कभी प्रदर दिन चढ़े तक चला रहता है।

मंच का अभिनय में कुछ ऐसी स्मोरेजक विशेषताएँ हैं, जो अन्य लोक अभिनयों में नहीं पायी जाती। मान की सबसे विशेषता यह है कि यह प्रातःकाल में ही मान हाथों में लम्बे-लम्बे बहिर्या निरु अभिनेताओं के दौड़ पद्यत रहने



कब्रें आने बाबे 'सन्निध' में हरिकथा' और 'दशावतार' आदि एक रूप में अधिक विस्तार प्राप्त किया। सन्निध दशहर के अक्षर पर होता था जिसमें मगवान के चरित्रों का अभिनय होता था और अंत में राम के द्वारा राक्षस का वध करवा दिया जाता था। ऐसा श्रुति होता है कि गुजरात और आंध्र में भी इसी दिनों रामचंद्र की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा अधिक बढ़ी आलाप में तो संघर्ष की जात्राओं का भी प्रचार बढ़ा। इसी दिनों हिन्दी-भाषा-भारी प्रान्तों में रामचंद्र और शतचंद्र ने समुन्नत और लोकप्रिय होकर साहित्यिक नाटक की उत्तिष्ठति की।

लोकप्रिय नाट्य-परंपरा की धार्मिक शाखा के इस वास्तविक रूप विकास ने जैसा कि स्वभाविक था, उसकी लौकिक शाखा के विकास में भी बोग दिया, जिसके परिणामस्वरूप हम देश के विभिन्न भागों में लौकिक भाषणों के नाटकीय प्रयोगों का प्रचलन देखते हैं। इनमें महाद्यु का तमाशा, गुजरात की भंभई, माववा और राजपूताना का माव तथा उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में स्वांग सांग, ममांगि, तमाशा आदि के नामों से प्रचलित नौटंकी अदि हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

महाद्यु का तमाशा प्रारंभ में स्मारजन का एक पना साधन था जिसके प्रयोग और प्रेरक दोनों ही निम्न वर्ग के लोग हुआ करते थे और इसीलिए उनमें आर्थिक प्राम्पता भी रहती थी। वही कारण है कि 'तमाशा' से तमाकू रानन वाले लोग बर्दा हुआ की दृष्टि से दूर जाते थे। आगे चल कर रामचंद्री नाम के एक उच्च कुल के ब्राह्मण उन्नाही ब्राह्मण तत्त्व में 'तमाशा' का बहुत संस्कार किया और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ा दी। आब्रह्म तमाशा की दशा फिर शीघ्र ही हो गयी है, और यद्यपि उनका अभिनय आधुनिक नाट्यशास्त्रों में होन लगा है, किन्तु उनमें संशयान वस्त्रों से कहीं अधिक बढ़ गया है। 'तमाशा' एक सामान्य नरक के द्वारा एक या मूर्ख और एकदमारे या समनने के नात्र के साथ अभिनीत किया जाता है। नृत्त के साथ ठनित भय के भ्रम में लोग भी भरे जाते हैं, जिनका बचावन यह होता है कि देखनेवाले का ध्यान पड़े, स्मारजन हा, माधनरास आदि एक मधुपुनक और सुन्दर नृत्य होता है जो गद्दों के दूर में नर कर दार देगे में पंचक बांध कर नाच करता है। इनमें प्रायः नाचनियं गयी जाती है। गोपच नाम का एक और नाट्य-

रूप भी महाराष्ट्र में प्रचलित है जिसका अभिनय करमेवालों की एक जातिविशेष होती है जो गोपनीय रहता है। गोप्य एक ही पदिनावे में आरम्भ से अन्त तक रहकर स्थाय्य भवता है यह अचतार-चरित्रों का भी अभिनय करता है।

हिन्दी-भाषा-भाषी घान्तों में शकपूताना और मायका का माय और उत्तर प्रदेश की नौदही विष्णु रूप से उल्लेखनीय है। शकपूताना और मायका में लोक-नाटकों के संयुक्त से रूप उत्पन्न है, पर इनमें सजावट प्रचलित और लोकप्रिय माय है। तत्काल विद्याभर ऊपर बाँदनी ठान कर कम के लम्बो पय पुणों, कम्बनकार आदि से सजाकर मंच बनाया जाता है। मंच के आगे पर्त बिछा रहता है, जिसके तीस आग दरारें बैठने है और बीच का स्थान अभिनय के लिए रिक्त रहता है। माय प्रायः किसी मन्दिर के लक्षिण में होता है और अभिनय प्रारम्भ होने के पूर्व सब 'भक्त' (पाय) आकर मंच पर बैठ जाते हैं। प्रायः एक ध्यति संस्कृत-नाटकों के नान्दी की भाँति निरुद्धकसी मन्दिर की छत पर गड़ा होकर गवैयादि देखताओं की कन्दमा करता है, जिसे मंच पर लड़े दो पर सब अभिनेता सुनते हैं। वह मसमाचरण अवकाश नान्दी-पाठ बिसे चन्द्राना कहते हैं इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

याने मनाऊँ गनपति जी काशी का वासी ।  
आजो गजानन गूमता मेरे आनन्द स्वामी ॥

मत्स्यारूप के बाद जब अभिनय प्रारम्भ होता है, तो यह पद्य के बीच क निरुत्थान में ही होगा है। अभिनय होते समय बीच-बीच में सबका हागगी आदि पाय बजते रहने हैं। संगीत अधिकांश पद्यात्मक ही होने हैं, जिनमें दोहों और चौपों का प्रयोग होता है। कभी-कभी राजा, रानी और कैमिन्, सब बाहुबल कर्मे-करण नृत्य करने लगते हैं। अभिनय समाप्त होने पर प्रायः सब अभिनेताओं की शोभा-यात्रा निकलती है। माय का अभिनय रात्रि में कारी देर क पर्याप्त प्रारम्भ करने की रीति है और यह दूसरे दिन प्रातःकाळ कारी देर तक कभी-कभी पूर दिन चढ़े तक चला रहता है।

माय के अभिनय में कुछ ऐसी अनारंभिक चिह्नरताएँ हैं, जो अन्य लोक अभिनयों में नहीं देखी जाती। माय की मंचमें विनोदपूर्ण चिन्तना उत्तम प्रकार है जो भले हाथों में लम्बी-लम्बी बहियाँ किए अभिनेताओं के बीच चला रहने

हैं। य प्रेरक कानूनी बहियों से बितना अंश पड़ते हैं, अभिमेवगण सात्र पर उसी की आशुति करते हैं। इन मासों में स्त्री-पात्रों का अभिनय बाल बाले विचार पर्यन्त हात है। प्रायः बड़े बड़े मुख्यद्वय बड़े शोक से स्त्री-पात्रों का अभिनय करते हैं, और कियों क आभूषण धारण करने में कोई कल-कल नहीं रखते। आपस इसभुक्तों को लम्बे पैंपट में ठिगाने का अमनस प्रयत्न करते हुए वे लज्ज-शीलता के नाट्य में दूर से नभकू से प्रतीत हान का प्रयत्न करते हैं, पर यदि उनकी पदर चार्गी और दृष्ट दाय-पैर उनके मास विस्कातपात कर जात है, तो इनमें उन बच्चों का क्या हो ? यह स्पष्ट है कि मास में पुनर ही स्त्री-पात्रों का अभिनय करते हैं। स्त्री-पात्र मास क भिन्न विरिद्ध मान जाते हैं। पर मासका क काल्पनिक उस्ताद ने यह परंपरा तोड़कर स्त्री-पात्रों को रंग-मंच पर उतारने का प्रयत्न भी किया था।

मास की अभिनय-प्रतिधि में धारिणीक विमोह और वैशिष्ट्य विस्था है। रात्रत्यान और मासका के मास में रंगमंच और अभिनय की व्यवस्था में कई प्रकार का अन्तर दिखाने पड़ता है, जो दोनों प्रदेशों के लक्ष्यों और रीति-निति में पाव जाने वाले ऊँची पायक का परिणाम है। मासका में ही मास की ही रूप के-रूप चार परंपराओं का वारता अनेके उद्भवियों से हुआ अन्त रूपानों से इनकी अन्त परंपराओं में बनी। यही बात रात्रत्यान के विद्यालय प्रदेश क मास के विषय में भी कही जा सकती है। मीने साक्षात्मा में मास का जो रूप दगा था, ऊपर उनी की सामान्य विवकलाओं का उल्लेख किया है।

कहा जाता है कि मासका में मास का विद्यालय 'ठारा-ठारी' के रोजों से हुआ। 'ठारा-ठारी' के रोजों का सम्बन्ध उन रोजों के जीवन-कृत में है, जिन्होंने रोजों, शीतलों और रीति-रिवाजों की रक्षा के लिए प्रयत्न समाज व्यवस्था के विरुद्ध किया। रात्रत्यान में पारी नाम की एक अभिनय प्रीति प्राप्ति रानी है, हा लक्षणा है 'ठारा-ठारी' का इनमें प्रयत्न मयका भद्र था। सम्बन्ध हा। अब लक्ष या नामकी उल्लेख है, उनके आपार पर मास की पुनर् प्राप्ति के विषय में कुछ अतिरिक्त निर्माणमक बात कह सकता कहिन है। पर 'मास' कात्र जिन रूप में प्रयत्न है उसके प्रमुख निर्माण काष्णुम्भु गुद करे गने है। मास की परंपरा में निम्नलिखित व्यक्तिों का कथन है कि काष्णुम्भु गुद ने म. १९०१ ई० में लक्षणी की प्रस्ता के मास की परंपरा

का पुनरुद्धार और संस्कार किया। उन्होंने सामान्य लोग मान लिये, जो राजस्थान और मध्य प्रदेश दोनों ही प्रदेशों में तथा बाहर भी आज तक अप्रत्यक्ष लोक गीत हैं। यन्त्रमुक्त गुरु से प्रेरणा पाकर उद्योगों के कवि काश्याम उस्ताद ने भी अनेक गीत लिखे। मान के अन्य उदाहरणों में शुकदेव और पद्मावत का नाम विशेष उल्लेखनीय है, कारण उन्होंने अपनी रचनाओं को सामाजिक एवं राजनीतिक जागरण का माध्यम बनाने का प्रयत्न किया। इनके अतिरिक्त मानका में मेल्, राजाकिशन गुरु तथा गूजर गौड़ की भी मान की अपनी अलग-अलग परम्पराएँ मिलती हैं। इन सब परम्पराओं के मानों में और एवं गूँगाएँ सब को प्रभावित हैं। मने मानकाओं में नायिका उस्ताद, सिद्धेश्वर सन एवं सदा परमार ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की है।

मान की जो परम्परा मने राजस्थान के सावावाड़ के राज्य में पाई गई पूर्णतया पारंपरिक है। उसमें राजस्थान के गाँवों की संस्कृति की सब विशेषताएँ अंतर्भूत हैं। मान का व्यावसायिक रूप कहाँ दिखाई नहीं पड़ा यदि कहीं हो भी तो उसका मुझे पता नहीं लगा। मान की इस परम्परा के सरल मुक्त उनके प्रति अत्यन्त निष्ठावान् प्रतीत हुए। वे लोग केवल मने की सीढियाँ करते हैं और प्रेम-वीर्याओं का मान के लिये अमात्र मानते हैं। वे लोग पोरण्डा प्रदाद, रामायण चतुर्पद, गैहरीना, मागरीना आदि के ही मान करते हैं। पर अनेक वीरस के मान भी राजस्थान में प्रचलित हैं, जिनमें राजा हमीर का मान बहुत प्रसिद्ध है। दावा-भारु, हीर-राजा, लदावुद्ध-सारांग आदि-जैमल, पचाहना और मूनायनी आदि के प्रेम-रूपात्मक मान भी बहुत लोकप्रिय हैं। इन सब में प्रेम-मार्ग के स्वागत, संकटों और व्यथा-वेदनाओं की बड़ी हृदयहारी अभिव्यक्ति हुई है।

मान ही की श्रेणी के अन्य अनेक सरल नाट्यरूप भी राजस्थान में मान होत हैं जिनमें राजा पार डोंगरी-जवाहरजी, गीरीयन्द धरणी आदि के अभिनयात्मक संवाद विशेष लोकप्रिय हैं। एक पूर्णतया और स्थापित माटवीय त्रयी का राजस्थान में आधिकारिक प्रचार है, जिसे 'कड़ा' कहते हैं। इसके विधान के अन्तर्गत एक नयाहा रहता है, जिस पर डंके लगते हैं। कुछ पदवी शब्दों की साथ पर लकड़ी में भी आवाज लगाने हैं। उसके साथ किसी वीर की कथा का गापन चलता है, जिसे एक व्यक्ति गाता है और उसके अनुरूप नृत्यांगी नृत्यते हैं। 'कड़ा' में पूर्णतया नाम के एक वीर की कथा

सर्वाधिक लोकप्रिय है। इनके अतिरिक्त अनेक संवाक्तामय प्रेम-कथाओं के अभिनयात्मक गायन का भी व्यवस्थापन में बहुत प्रचार है, जिसके अन्तर्गत 'देवनायक', 'रामदेव', 'टोला-मरकब', 'रतनो रबारी' आदि की कथाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गायक अकेला ही पापों की वचन-रचना, भाव-भूमिमा तथा विविध मुद्राओं का प्रदर्शन करता है। इन प्रेम-कथाओं में 'टोला-मरकब' की लोकप्रियता सर्वोपरि है, जिसमें कहीं-कहीं मनमोहन कविता के अत्यन्त रमणीय रूप के दर्शन होते हैं। जिस समय गायक अभिनय का कुछबौ फली के द्वारा दस्ता के पाठ मरकब-प्रेरित प्रेम-अन्देश का सामान्य गायन करता है, उस समय भीताओं की अपार भीड़ समझ और भाव-विमोह होठ देखी जाती है। उसकी सामर्थ्य का अनुमान एक ठाट से अंश से लगाया जा सकता है —

अगल्या बगन्या लो पगा छागणो  
 यीचा मैं सात सताम ।  
 एक सन्दसो मू लिखू नी डोला  
 गुणन्यो बिच लगाय ।  
 मरकब पाकी पाक आम व्यू  
 टपक-टपक रस आय ।

लैला मरकब की कथा का गायन व्यवस्थापन में तः १५०० रि० से होना था है।

मगार्ह (गुजराती लीक नादक)

गुजराती की मगार्ह दिदीके लाइनाटको का बहुत निष्ठ है, और इसके बगो में दिदी मया का भी प्रयोग होता है, इसलिए उलझा बिचल बही दिया जा था है।

मगार्ह शब्द की उत्पत्ति मुगलिश गुजराती नादयुक्तवाचि भी व्यक्तकर भुरी के मनाबुनार 'मन-बही' म भी हा-मराय साइक के मनाबुनार 'मन' से और श्री बदनराय शब्द के मनाबुनार भगवती (मन) से हुई है —  
 मगवती > ममवरी > मगार्ह । कुछ लोग मगार्ह का मन मे भी व्युत्पन्न मानते हैं।

भारत की उत्पत्ति के संबंध में कहा जाता है कि १४ बीं शती में उत्तर गुजरात के अंश नामक गाँव के देवाता परेश की पुत्री गंगा की मुकुटमाला खूबसूरत हो गई। परेश के पुरोहित अताइत ने अपनी कन्या से खूबसूरत को प्रसन्न किया और गंगा को अपनी पुत्री बताकर गंगा बनाया। बादशाह के सामने गंगा को अपनी पुत्री सिद्ध करने के लिए उसे उसके साथ एक यामी में भोजन करना पड़ा। परिणामस्वरूप अताइत ने अताइत का जाति बाहर कर दिया। जाति से बहिष्कृत हो जाने पर उनकी यजमानवृत्ति भी समाप्त होगी। अतः उसने १६० भवार्थों की रचना की और अपने तीन पुत्रों के साथ घूम घूमकर रचयित भवार्थों का प्रदर्शन किया। ये तीनों पुत्र जाति से बहिष्कृत थे, अतः 'तीन घरवाने' कहा गया। कालांतर में उनकी जाति ब्रह्मचर्या > ब्रह्मचर्या > घरवाला कहा गया। इन जाति के लोगों का मुख्य व्यवसाय गाँव गाँव घूमकर भवार्थ करना हुआ।

भारत में गीत नृत्य और संवाद तीनों का सम्मिश्रण है। प्रत्येक पात्र नाचता गाता खाता है और खाता है। भवार्थ में विविध प्रसंगों (वेशों) की शृङ्खला होती है। इनके लिए न रंगमंच की आवश्यकता होती है न परदों की। वेशभूषा पर अवश्य ध्यान दिया जाता है। भवार्थ सदा सुले मैदान में होती है, प्रत्येक गानेदार बैठते हैं। बीच-बीच में जगह में, जिसे आकर करते हैं माता की स्थापना की जाती है और धार्मिक प्रतीक के रूप में एक स्वस्थित मछली रखा जाता है। पहले माता की कथा या पूजा होती है, फिर दोष यात्रा समाकर प्रारंभ होनेका संकेत दिया जाता है। प्रत्येक के समाप्त रूप में आने पर भवार्थ प्रारंभ होती है। शुरू में गाने होते हैं। परंपरागत रूप से गणपति, फिर माता वसुधैव कुटुम्बकम् का वेश प्रस्तुत किया जाता है। माता का वेश समस्त मछली मादों के नारी का ही परिवर्तित एवं छात्राध्य रूप है। इन वेशों के बाद भवार्थ के शेष वेश आते हैं, और रातभर कार्यक्रम चलता रहता है। गुजराती में एक कहावत है कि रात थोड़ी और वेश घने। सामाजिक ऐतिहासिक धार्मिक वेश एक के बाद एक करके चलते रहते हैं। रात बीत जाती है पर म वेश समाप्त होना है और म प्रसन्न होकर चलने है। फाँटेन, गमक-मनक, शानक-शानक आदि के सुन्दर वेशों से लेकर मछली, लालची, बन्ना, गोमण्डल आदि वेश के वेश चलते हैं।

मर्दान का मुख्य रस शृंगार और हास्य होता है। चार्लस का जीवन का बचाव विफल और सामाजिक कुदृष्टियों पर करारी चाट करने का प्रयत्न मर्दानों में दिखा जाता है। अतः मर्दानों प्रायः सम्पीड भी प्रतीत होती हैं। पर जिस प्रकार महिलाएँ भ्रम-भ्रान्त कर गँवगी की ओर हमारा ध्यान आकर्षित कर देती हैं उसी प्रकार मर्दानों का अस्वीकृत्य भी अकारण नहीं होता। समाज के गलत ढंगों की ओर इन्हें आकर्षित करके वह हमारा बुरा दिल फरता है।

यद्यपि नई रीतों की बहानों और नाटक तथा सिनेमा के प्रचार न लालच को बल देता है, फिर भी गुजरात के गाँवों में पाना के मंदिरों में अब भी बड़ा बड़ा मर्दान की मूर्ति दंडी जाती है। गुजरात के मरु जीवन न हिंदी की जिस उदात्ता के साथ बचता है मर्दान विदेशों उसकी मर्यादा इतना प्रभाव है। मर्दानों की मर्यादा गुजराती होती है पर उनमें भी भी न हिंदी का प्रभु बूट जाता है। नीचे उनका एक उदाहरण दिया जाता है—

‘जन्ममा जोदणनो वन्द’ का एक अंश

[ मन्तराभा हाथ में धरती काटती बहने गीत—सुन सुन कर छ । ]

तुमने चालो मारी सँयरो

जल भरवाने जए

जल भरवाने जए

रुडा धडुला हाथ लए , मागी सँयरो

[ पीली वार हाथ बांधा पड़ी स्त्री आँग नोले छे भन मे रंगमंच मन्तराभा तामे जोड़े रहे छे पाड़ी स्वर्ण बाने छे ]

सूत्र : अब ये लोग को देखकर हम प्रसन्न हो गए ( प्रसन्न ) अब मन्तराभा अपने हाथ और नाथ हाँ ह ।

[ मन्तराभा गाव छे भन नाथ छे- ]

मन्तराभा : १

मारा जटाणा आगी आनो र

तुमने फुलदिये धपावे र

मारा ममराणा खोगी आबो रे  
 तमने धंदनीए छटायु रे  
 मारा धाएलियाणा आबो रे  
 मारा फामलियाणा आबो रे  
 तमने मावता भोजन लावु रे  
 मारा जटाणा खोगी  
 ममराणा खोगी  
 आबो रे

श्रुति अब तुमरा गीत गाओ । हम तुमारे धीउसे फखन हैं ।

अन्तर २

उलबेला अपिराज !  
 रमबा खमबा आविया रे  
 जटाणा खोगीराज !  
 क्यां यहुं तमे लाविया रे  
 अलबेला अपिराज !  
 मारा जटाणा खोगीराज !  
 रमबा खमबा आविया रे

[ नाय बर्दा बरो अन्तराणा एक बाबू पर उमी खे से. श्रुति ठट्ठले  
 १८६ना मो सागज मशाउ धरी तमने ध्यानवी बुझे से. परेणी अन्तराणे बरुव  
 पर से. ]

श्रुति—नेरा नाम क्या ।

अन्तरा—१ हीरापरी ।

श्रुति ना, ना ( धीउने ) तरा नाम क्या ।

अन्तरा—२ अन्तरापरी ।



श्रुति ऊँहूँ ! ( भीमसे ) तेरा !

अन्तर-१ कामकुइला ।

श्रुति तेरेकु भोग देना पड़ेगा ।

अन्तर-१ इस सब आपसो मेका बजावेग, में भीत गाऊँगी, य लीनमयरी  
होत बजावेगी, महाराज ।

अन्तर-२ : और कामकुइला जावेगी ।

श्रुति नहीं मही, ये कामकुइला रहेगी और तमग इसकु काम मही ।

[ गाव छ अन नाव छ ]

कामकुइला

तमे आ हुं बोत्तो छे

महाराज !

तपसी हुं सपसी पढ़ो छो ?

समने आवुं शोमे क

हुनिपज !

तपसी हुं सपसी पढ़ो छो ?

तमारी अठाना सम

अपिगज सपसी हु सपसी पढ़ो छो ?

हुभो महापज हुं कपानी छहने सपसी ने मारी भेन यदि गाव ।

अरि ओ हो तन भट्ठुं क्षमियान ! या पुणो पर जम्म से भने नारे  
अपानीं ॥ ॥ कामकुइला बजा ।

[—उद्यत-गुजराती लोक साहित्य भासा-मणको पदेमो  
( सं १९१७ ) पृष्ठ ४४१ से ४४३ तक शीबट मजारीमो बहा-तममा  
मोहममो केन संग्राहक सुपाबहन र दिमार्द । ]

नोटकी—

उत्तर प्रदेश और उनके आसपास कायी बुर तह मीकपरी नरुस तमरा  
५ ग भनेइ लोकिह क्य दयनित है, उनमे मारीकी का प्रकार नवन अरिह

प्राप्त है। नोटकी के अभिर्माण की छोड़ निश्चित स्थिति अभी नहीं बताई जा सकी है। 'प्रहार' जी न भिन्ना है, मध्यकालीन "धमाक्य आक्रमण" ने जब भारतीय रंगमंच के शिल्प का विनाश कर दिया तो रंगमंच से विहीन कुछ अभिनय बन गया, जिन्हें हम पारसी स्टेजों के पहिले भी देखत रहे हैं। इनमें मुख्यतः नोटकी (माटकी) और मांड ही थे। "इन प्रकार नोटकी की प्राचीनता तो निर्विवाद लगती है। इसका एक पुमाना उल्लेख हमें शौरङ्गजय के समकालीन मौलाना गनीमत की मसखी 'नैरञ्जे इरक' में मिलता है, जो १८८५ ई० के आसपास लिखी गई थी। मौलाना ने पारसी में जो कुछ लिखा है उसका आशय इन प्रकार है —

'आज शहर में सत्रय क्रिय क जाग जाय है जो एक तजो-सम्दाज क हाथ नकमें करत है और नमसालाज क साथ शायद दिलात है। जाय और मरत में व उत्साह है, मुग़ा जाबाज (मीट स्वर वाद) है। हमार इस्तिलाह (गाथा) में इनको 'मगतवाज कहत है। कमी चर्द, कपा चौख और कमी बरबे की नकल करत है, कमी परेशान बल मग्याली बन जात है कमी-रिहड़ी (अमेज) बन जात है। कमी इरकमी शारत और चर्द की नकल करत है कमी दाढ़ी बुझकर निबकी मूठ में नजर आत है। कमी मुग़ल की मुकल बनायेत है, कमी गुलाम पदबाल है, कमी जप्पा की दुनिया बनायेत है, जिनका कच्चा दाया की गाल में रोता है। कमी दूब बन जात है, कमी परी। गरब हर कीम का कच्चा दिखत है और हर मरद क इरका मगाम में काम लेत है।'"

कुछ लेखक समझते हैं कि मौलाना के उपर्युक्त उल्लेख में मगतवाजों की भाषा के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है इसलिए वे उनका पारसी भाषा में होने के सम्भावना का इरादा और किन्तु बचवा भी करत हैं।<sup>१</sup> पर मौलाना ने तो उपर्युक्त उद्धरण में उल्लिखित मरत्यों के अभिनेताओं को मगतवाज कहकर अपनी ओर से यह निश्चित साह कर दिया है कि इन जात्य प्रयोगों की भाषा हिन्दी थी और अभिनेता भी हिन्दुस्तानी ही थे। 'मगत' (मकि या मक का चरप्र थ)

१—बाइ, कला तथा अर्थ विभाग पृ० ७१

२—डॉ० नामवाण गुज इन हिन्दी-नाट्य-जादित्य का इतिहास क १०  
१७ में १८ उद्धृत।

३—वही पृ० १८

श्रुति : ऊँहूँ ! ( भीजीन ) रोप !

अन्तर-३ कामकुइला ।

श्रुति : तेरेकु भीन देना पड़ेगा ।

अन्तर-१ हम सब भापकी सेवा बजावेंगे, मैं गीत गाऊँगी, व लीजमसी  
होस बजावेगी, महाराज ।

अन्तर-२ : और कामकुइला नावेगी ।

श्रुति नहीं नहीं, ये कामकुइला खैली और तमग हमकु काम नहीं ।

[ गाव छे भन नाच के ]

कामकुइला

तमे आ छुं बोछो छे

महाराज !

तपसी छुं लपसी पढ़ो छो ?

तमने आवुं ओमे के

सुनिराज !

तपसी छुं लपसी पढ़ो छो ?

तमारी अटाना सम

अपिराज तपसी छुं लपसी पढ़ो छो ?

सुभो महाराज हुं लपसी ओटले तमरो मे मारी मेह नहि आव ।

श्रुति : ओ हो तने ओटले अमिमान ! आ पुष्पी पर जन्म से अने ठारी  
मसाहीनो बर कायोमूवही धरो ।

[ —इसूत-गुमराती लोक साहित्य भाषा-मणको पड़ेमो  
( सं १९५७ ) पृष्ठ ४४१ से ४४३ तक शीर्षक मचाईना बंश-जममा  
ओइजमो बंश, संपाइक सुधाबहन र वैसाई । ]

नोटकी—

उत्तर प्रदेश और उसके आसपास काही दूर तक जीवपर्यं नाट्य-परम्परा  
के जो अनेक लौकिक रूप प्रचलित हैं, उनमें नोटकी का प्रचार सबसे अधिक

प्रसार है। नौटंकी को अधिर्माण की कोट निश्चित तिथि अभी नहीं बताई जा सकती है। 'प्रसार' जी में लिखा है, मध्यकालीन 'धर्माग्र आक्रमणों में जब भारतीय धर्म के शिक्षा का बिनाश कर दिया था रंगमंच से विहीन कुछ अभिनय बन गये, जिन्हें हम पारसी स्टेजों को पहिले भी देखते थे हैं। इनमें मुक़ात मोटंकी (नाटकी) और मोह ही ब।" इस प्रकार नौटंकी की प्राचीनता को निर्विवाद ठहराती है। इसका एक पुराना उल्लेख हम श्रीगङ्गाधर के समकालीन योजना गनीमत की यमनवी 'नैरङ्गे शुक' में मिलता है, जो १८८५ ई० के भाग-याग लिखी गई थी। योजाना ने पारसी में जो कुछ लिखा है उसका आशय हम प्रसार है —

"आज शहर में अनेक किस्म के नाच घाय हैं, जो एक तर्जो-अन्दाज के साथ नर्तन करते हैं और नग्नोन्माज के साथ शाबद दिखाते हैं। नाम और नृत्य में ब ठप्पा है, मुख आवाज (मोह म्बर बाल) हैं। हमारे इस्लाम (माया) में इनकी 'भगतवाज' बदन है। कभी भर्ष कभी औरत और कभी बच्चे को नृत्य करत हैं, कभी पोराना बाल सम्पादी बन जात हैं कभी-दिल्ली (अंग्रेज) बन जाते हैं। कभी दरदामी औरत और बर्द की नृत्य करत हैं कभी दाढ़ी मुड़ाकर मित्रकी गूठ में नजर आत है। कभी मुगलों की शकल बनायेत है कभी मुलाम बनजात हैं, कभी जप्पा की हुप्पिा बनायेत हैं जिनका बप्पा दावा की गाढ़ म येता है। कभी दब बन जात है, कभी परी। गरज हर कोम का जन्म लिखात हैं और हर तरह के इश्वा जमान में काम भेट है।"

कुछ टेल्डर समझते हैं कि योजाना के उपर्युक्त उल्लेख में भगतवाजों की भाषा के सम्बन्ध में कोई लक्षण नहीं है हमन्विय के ठनक पारसी भाषा में होन के सम्पादना की कुराबद और किन्तु कल्पना भी करत हैं।" पर योजाना ने जो उपर्युक्त उद्धरण में उल्लिखित नृत्यों के अभिनेताओं को भगतवाज कहकर अपनी और में बह निगम्य गढ़ कर दिया है कि इन नाट्य-प्रयोगों की भाषा हिन्दी थी और अभिनय भी हिन्दुस्तानी ही था। 'भगत' (मक्ति या भक्त का चरण था)

१—१८८५, कला तथा धर्म विभाग पृ० ७१

०—१८० सामान्य गुण इन हिन्दी-नाट्य-नाटिका का इतिहास क १०

शब्द के हिन्दी होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। आज में इस परंपरा के नाट्य-प्रयोगों को मधुरा और धारण के साधन-पाठ 'भगति' ही कहा जाता है। धारण और उसके पास इन्हीं के लिए 'स्वांग' नाम रखता है और उसके पूरक के प्रदेशों में प्रायः नैटकी नाम रखता है। मारवाड़ी क्षेत्र इन्हें ही समझा करते हैं, कहीं-कहीं 'स्वांग' का संगीत नाम भी रखता है, जहाँ इसका एक नाम समझा भी था, पर अब वह प्रायः छूट गया है और उसका प्रयोग सीमित होकर कथा का साधन नाम के छन्द की रचना-प्रयोगिताओं तक ही सीमित रह गया है। मौजाना गनीमत के समझाव्यून हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि लखत सिंह चौहान के एक उल्लेख से भी इस बात की पुष्टि होती है कि उन दिनों स्वांगों का बहुत प्रकार था। उन्होंने अपनी भाषा-महामारत में स्वांग शब्द का प्रयोग किया है :—

कहूँ नृत्यकारी नचि गावैं ।

कहूँ नाटकी स्वांग दिखायैं ॥

चेता कि मैं दिखा चुका हूँ, अब आज भी 'स्वांग' और 'ममत' आदि एक ही अर्थ में प्रयुक्त हो रहे हैं, तो मौजाना गनीमत के 'भगतबाज' और ममत को क्रमशः लखत सिंह के 'नाटकी' और 'स्वांग' मान लेने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

इसी अभिनय-परंपरा के लिए मति और रीति का काल में कुछ प्रभाव, मीरखन गोपीचन्द्र और पूजनमठ आदि के चरित्रों की बहुत बड़ी संख्या में रचना हुई थी, जिनमें अभिनेयता और साहित्यिकता दोनों का सम्मेलन था। नरसिंहमठ का सुदासा चरित्र 'इसी परंपरा की एक प्रतिष्ठा कृति है, जिसमें कथास्तु एवं संवादों की नाटकीयता, अभिनय-सुकरता और साहित्यिकता आदि सभी गुण विद्यमान हैं। इसकी सुवीक्षित कथा छोटी होती हुए भी, नाटकीय वस्तु-विकाश की विविध अवस्थाओं से होती हुई, असीम एतिस्यक्ति में पूर्ण सज्जत होती है। मित्रवत् ही यह रचना उस काल के लोकचरित्र रंगमंच के विधान की दृष्टि में रखकर मिली हुई प्रतीत होती है। उसके संवादों के बीच में पड़ने वाले स्वयं कवि के कुछ कथन, जो कथावस्तु की जोड़ते हैं, नौटकी के 'रंगा' के कथन के समान ही साधारण नाटकों के वृत्ति का नाम के मधोपदेवक के समान हैं। बलुका कवि उसमें अपनी रचनाओं द्वारा बड़ी

काम न्याय है, जो रसिया पर प्रसारित होने वाली अनि-नायिकाओं में तथा अनन्य आपुनिक परिवर्षी नाट्य-प्रयोगों में भनाउंकर करते हैं। अतएव, इत प्रकार के चरित्रों की नाट्यीयता में संदेह करने को अन्याय नहीं हो जाता। इन प्रयोग में हमें यह स्मरण रखना पड़ता है कि ये चरित्र कदापि कृत 'परिमनी परिष', केवल कृत 'बीमसिंह दस परिष' आदि से भिन्न हैं, जो केवल पात्र या भग्न हैं अभिनय नहीं। इन्हीं भग्नकाव्यात्मक चरित्रों से भग्न बतान के लिए ही संभवतः (उक्त दृश्यकाव्यात्मक चरित्रों को नाट्यीय कहा जाता था या काव्यात्मक में नाट्यी 'होकर नाट्यी' कहलाने लगा। नाट्यी के आग के आभासिभक्त रूप को दृश्यरूप इस उक्तके प्रथम समुद्र स्वरूप की भी उपस्था करते हैं और विशिष्ट नाट्य-परंपरा के उत्तराधिकारी हान हुए भी मध्यकाल में नाट्यी के पूर्ण आभाव का रोना रीन हैं। आश्चर्य है, हमारे कुछ विद्वान् बनारसोदासजी समय तार नाटक 'जैसी शिष्टा दार्शनिक एवं सर्वथा अन्यायपूर्ण कृति के आग नाटक नाम सुझा दृश्यरूप ही उस नाटक मान लेते हैं, पर उपर्युक्त चरित्र-आदित्य की नाट्यीयता की परीक्षा करने का भी कष्ट नहीं स्वीकार करते।

आगे चलकर नाट्यी का क्या विकास प्राप्त हो गया प्रतीत होता है। एक विद्वत् होन का कारण संभवतः मुसलमानी प्रभावोत्पन्न नगणों में इतका संरक्ष था, जिसका आभाव बीजाना गनीमन के उक्त दर्श-विस्मयपूर्ण उद्गार में मिलता है। मुसलमानों के ऐसे ही संरक्ष के कारण बालगान्ध की परंपरा का 'भाव' भी मांदों की आर्क्ष-प्रवृत्ति में परिवर्त हो गया था। मुसलमानी प्रभाव से नाट्यी में जो आर्क्ष-स्वैच्छता आई, उसका सबसे उपर्युक्त प्रमाण अकालत की 'इंद्र भग्न' में मिलता है। मेरु है, डा० सोमनाथ गुप्त त्रैम लगती न हमें "प्राच्य रंगमंचीय नाट्यों में सबसे पुरातन नाटक" माना है और इनके मूल्य के प्रतिपादन में अनन्य फले रंग हैं।" इन प्रकार के कथन अपनी नाट्य-परंपरा की प्राचीनता के सम्बन्ध में प्रथमिष्ठ आक्षान्त का परिचय तो दन ही है, अपनी आक्षान्तों में भी अनन्य प्रकार के प्रयोगों की स्तुति करने हैं। नाटक तत्त्वतः दृश्य काव्य होने के कारण कलन रंगमंच-सारस्व अयोग्य रंग रंजक हैं आर्क्षमंचीय कृति नाटक नहीं स्वीकार की जा सकती। पुनरन

रंगमंचीय नाटकों की परंपरा भी हिन्दी में सीमाओं के रूप में आविष्टिक रूप से स्थापितियों से बनी आ रही है, जिसका विवरण हम आगे आचार्यों में प्रस्तुत करेंगे। तृती के समानान्तर नौटंकी की परंपरा भी अवाच-गति से चल रही है। इनके खते अमानत की इन्द्र समा को प्राप्त 'रंगमंचीय नाटकों' में भी सबसे 'पुरखर' स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्राप्य अघातु बिनको अमी प्रकार में आना है उनकी पका का अधिकार ही किने है। 'इन्द्र समा' वास्तव में नौटंकी अघातु स्वर्ग का वासिदमकोराह की रवि के अनुकूल सौजन्य (Adaptation) मात्र है।

'इन्द्रसमा' में ऐसे कोई विविध गुण नहीं जो नौटंकी और उत्तरीका की परंपरा में पहले से ही प्राप्त न हों। इसके अतिरिक्त मात्रा और मात्र होने की दृष्टि से यह ऐसी छह रचना है कि उसे हिन्दी-नाटकों की परंपरा में सम्मिलित करने का मोह ही विविध प्रतीत होता है। पं० प्रताप नारायण मिश्र न तो इतिवृत्त उनी समझ उमे 'कोर' विवेक से विभूषित किया जा और उन्हीं के समकालीन 'अक्षर गोरक्षा-न्याय' नाटक के केंद्रक जगत नारायण से उसे देश का नाश करने बाजी बत्ताया था।<sup>१</sup> कस्तुरा इस युग में मुब, प्रह्लाद, मोरपत्र आदि के प्राचीन आदर्श चरित्रों के कथानकों के स्थान पर बहुरंग मध्यम मुद्रावत, हरक-मुद्रिक, आधिक-भारत की भरमार हो गई। इसी बहरी हुई, अक्षर-लता के कारण नौटंकी को हमारे समाज में जो निम्ना और निम्नर श्रम हुआ, इससे वह आज भी पूर्वतया मुक्त नहीं हो पाई है।

नौटंकी के परिष्कार के लिए जो प्रयत्न हुए, वे उम्मेदनीय हैं। जान देने की बात है कि परिष्कार के य प्रयत्न प्रायः से ही आरम्भ हुए, बहों आचर्य की लम्बता बोड़ी बहुत अविशिष्ट थी। इस प्रकार के प्रमुख प्रयत्नों के अन्तर्गत जो तुषार हुआ उसके एक प्रमुख प्रयत्न तुलनाचर के उत्पाद इन्द्रमन धीरे थे। एक जनश्रुति के अनुसार यह प्रेरणा उन्हें अपने इच्छे से मिली हुई बर्ताई जाती है। उनके शिष्य हायरत के विरचितता की ने अने उत्पाद की परम्परा को आगे बढ़ाया। नौटंकी के इन दोनों आचार्यों ने धार्मिक सीमाओं का अपेक्षाकृत अधिक प्रचार किया। इन

१—२ प्रताप नारायण मिश्र हठ 'संयुक्त शाकुन्तल' की भूमिका और जगत नारायण हठ 'अक्षर गोरक्षा-न्याय' नाटक की प्रस्तावना।

## मध्यकालीन सांस्कृतिकी नाट्य-परंपरा

पद्मनाभने ने नौटंकी के रंगमंच और अभिनय-सम्बन्धी विधान को भी बहुत छल रखा। उसाद चिरंजीवास के शिष्य हायरल के नृत्याराम शर्मा ने नौटंकी के मूल विधान में अनेक कृत्रिम उपकरणों का समावेश किया। उन्होंने अपने सेहो में बहुतसम्पन्न पात्रों की योजना आरम्भ की। और आहार्य में भी बड़ाऊ और मङ्गलौले बच्चों तथा शयंकारों का सम्मिश्रण किया। रंगमंच भी उनकी प्रथा से अधिक सज्जित किया जाने लगा तथा अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग होने लगा। नृत्याराम ने नौटंकी के विधान में भी परिवर्तन किए वह संभवतः पारसी वियेटर के बहुतों हुए प्रभाव से प्रभावित होकर ही। मात्र भी नौटंकी पर सिनेमा का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और एक पार पार उसका मूलरूप संकटग्रस्त दिगामी देता है।

नौटंकी के मूल साहित्यिक रूप के उद्धार का प्रयत्न भार्तेन्दु जी ने किया। उनकी दृष्टि अपने रंगमंच की सब परम्पराओं पर गई थी। भार्तेन्दु जी को अपने समय में चार प्रकार का रंगमंच मिला था—एक रामलीला का, दूसरा रासलीला का, तीसरा नौटंकी का और चौथा पारसी कमनियों का।

धार्मिक प्रवृत्ति के लोग रामलीला और रासलीला के प्रेमी थे, लौकिक विरमों में डूबे रहने वाले विदेशी अधिकृत और प्रामीत्र लोग नौटंकी के अनुयायी थे। पारसी कमनियों का उदय अंग्रेजी-विद्या और संस्कृति के प्रसार के साथ-साथ नगरों में हुआ था, अतः वहाँ की अधिकांश जनता पारसी रंगमंच का प्रशंसक थी। भार्तेन्दु ने प्रत्येक प्रकार के रंगमंच पर कौली जाने वाली रचनाओं का परिष्कार कर प्रस्तुत करके दर्शकों की एक सामान्य परिष्कृत रुचि निम्न करने का प्रयत्न किया। काशी में जो 'रामलीला भीमान् महाराज कार्यान्तर भवशिरोमणि की कृपा से होती थी' उसके लिए उन्होंने अत्यन्त महत् पात्र प्रस्तुत किया। रासलीला को भी उन्होंने साहित्यराज-विदित नामक रूप के लक्ष्य तक ले कर 'चन्द्रावली' नाटिका के रूप में उद्घोषित किया। नौटंकी का समुन्नत रूप भी 'नीलदेवी' नाटिका में दिखाई पड़ा जिसे भार्तेन्दुजी ने गीति-रूपक कहा है। नौटंकी को साहित्यिक रूप देने का इस काम का दूसरा महत्पूर्ण प्रयास प्रतापनारायण मिश्र द्वारा 'संगीत शकुन्तल' है। इसमें लड़ी बानी, शयणी और ब्रजभाषा टीलों का प्रयोग है।



उच्चार्ण के लोग लड़ी बोली का व्यवहार करते हैं, मध्यम अथवा निर्धन वर्ग के पात्र प्रायः बोझते हैं और गीत ब्रजभाषा में है। इस नाटक की भाषा बड़ी सुलभ मुहावरेदार और प्रतिदिन के व्यवहार की बोली के निकट है। इस काल के कुछ द्रम्य लेखकों ने भी मार्लेन्डु और प्यारनासमण विधका अनुकरण किया। हमारे प्राबुद्धिक नाटक-लेखकों ने इसमें और मैटर्नलिक आदि को हिन्दी में लाने की ठापना तो की पर मार्लेन्डु-मुग के लेखकों के समान अपनी पाश्चीन नाट्य-परम्परा की अन्तर्निहित शक्ति को परछान का कुछ कमी-दोषकार नहीं किया।

### बाद या चर्चा—

संभवतः उपर्युक्त नाट्य-परम्परा से ही विनिर्मित पद्यात्मक नाटकीय संवादों की एक परम्परा भी मध्यकाल में बराबर चलती रही। 'नरहरि' नाम के कवि ने नाटकीय संवादात्मक अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ लिखे जैसे—'बन और निपा कौबाद' आदि। बुझारे कवि का निरा दुआ 'सोने सोहे को लपारे' अथवा 'सोने सोहे की बरबा' नाम का ग्रन्थ भी मिलता है। इन 'बादों' या 'बरबामो' का बागवैदम्प तो सराहनीय है जो कहीं-कहीं नाटकीय परिस्थितियों का उस समय की जनता की दृष्टि से कड़ा प्रमाणराली समावेश भी इनमें मिलता है। 'सोने-सोहे की बरबा' के अन्तर्गत सोने और सोहे का विवाद बड़ी कटुता के साथ आरंभ होता है। सोना सोहे का अपना दास और हस्तरा करता है तो सोहा उसे तैब कहकर अपनी बराबुरी की इंगि माछता है—“तुम्हें फलनकर सोम प्रेपली को सेव पर बाते हैं और मैं तो लख्यबाही शूर-वीरो का आभरण हूँ।” सोने-सोहे का यह विवाद क्यों तक चढ़ता है। अन्त में स्वर्न मयवान् विष्णु को गढ़ पर चढ़ कर मध्यस्थता के लिए आना पड़ता है। इस 'बरबा' के कुछ अंश नीचे दिए जा रहे हैं :—

लिखी बुझारे की। अब सोने सोहे की बरबा—

बरबा सोने सोहे की बरबा बड़ी बचाव।

मोहा मोही बुझन की तो कवि बरन बताव।

रेलता। जबाब सोने की—

मौनों जब कहैं सोहे जाकर मेरा।

मो सो पर पार कणो कुरम मेमेरा।

x

x

x

मध्यकासीन लोहधर्मी नाख-परंपरा

बादे जो गम करे हमरे जोती ।  
तेरी सुन छोड़ हागत बेती ।

पुषप मोरा की—

पोंछा जय छोड़ यात सुन है मोनो ।  
मोंहि देखि केर तोह गाढ़त कोमे ।  
ताह पहिर पावौ धरे तेज को ।  
मोंह पहर खर बीर करै तेग को ।  
तुमसे हमने खुझाज बहुतक बीगै ।  
अपने कर छोड़ वगम वो रन बीगै ।  
सूबा उमराय बांच बीगै डेरी ।  
मौन व करन चहै संसर मेरी ॥

जुषन सोने की—

सौमे अब कोप यात छोड़ सो कहै ।  
कीके ते हाथ सीस वीन के रहै ।  
हमही देख यिसमु माल कंठ हमे हो ।  
छातिछाति कमल के द्विषे वसै हो ।  
हमरो पुनि सीस पंच रंग घरे है ।  
x x x

लाव लंदे की—

संदर शिखर रंग वस सगदारे ।  
ननमुख संगम मार सदै हमारी ।  
ताको नाजीम दत वृष्य सुरारी ।

पुषप सोने की—

पुरपो पुरपा बुद्धर कार काम के ।  
भावस गजमाल पुरी हो हगाम के ।  
जमपर नमपार तीर मुचक बनाये ।  
मारे पन मगजीय यात हगाये ।  
x x x  
पेस संबाद बतिव वरम बीती ।  
माफि न फिर वोड हारा जीती ।

उक्त पुस्तक को प्रति मैने नागरी प्रचारिणी सभा में देली थी। यह प्रति खंडित है और किमि भी बहुत अशुद्ध है। उक्त ग्रंथ में लिखा है—

ये ते श्री सोमे कोट्टे की पोथी समपूरण समापात। मिति ज्येष्ठ सुदी ११। सं० ( स्पष्ट नहीं ) १८०० या १९०० मूकाम व्बारे ॥ लेयी मुब्बारे ॥ की क ओ कोठ बांधे सुने ताको राम राम। सीतारामराम महत् ॥ की महम की इडौत।

इन्हीं पद्यात्मक नाटकीय संवादों को भारतम्बु की ने मण्डप में पुनः प्रस्तुत किया था। इसी प्रकार के उनके दो नाटकीय संवाद 'हरिचन्द्रमैगरीन' में प्रकाशित हुए थे। एक वा दो मित्रों का चार्वाक्य ( कुलनाटक और विश्वम्बु दो मित्रों का समागम )<sup>१</sup> जिसमें ठरुं छिरी की अस्वामाविधता पर व्यंग्य था। दूसरा 'सबै चाव गोपाल की'<sup>२</sup> जिसमें खजिया प्राप्त करने के लिए शास्त्री का अर्थ बिगाड़ने वाले पंडितों का उपहास किया गया था।

सँपेरा—

नौटंकी की ही श्रेणी का 'सँपेरा' ( अथवा में 'सँपेड़ा' ) नामक लोक-नाटक भी है, जो अवध के प्रायों में बहुत अधिक लोकप्रिय है—कदाचित् नौटंकी से भी अधिक। यह भी नौटंकी की ही तरह का एक यौतिकम् है इसको अमिनद ब्यवस्था उलकी अपेक्षा अधिक सुकर है, यह प्रायः चारों ओर लुके हुए स्थानों में पर्तों पर ही अमिनीत होता है। मंच बनाने के लिए किसी प्रकार के तख्त इत्यादि सामान्य आङ्गार भी अपेक्षित नहीं होते। कुछ मित्राकर पाँच अमिनेता ( अधिक-से-अधिक छत्त ) ही एक मण्डली बना लिए हैं, ये छोय सँपेरे वा सँपेड़े ' ब्रह्माते हैं। लक्षनरु के निकटवर्ती बनरों में ' सँपेरे ' अधिक तर मुलमान होते हैं। लोक सँपेरा का मुख्य वाद्य है, बिकारे और मंजीरे उतका साथ देते हैं। नए सँपेड़े ' बिकारे के स्थान पर हारमोनियम का भी प्रयोग करने लगे हैं। लोक की बाप और बिकारों की सीढ़ों के साथ अमिनेताओं के संगीतप्रपक सवाह सुनकर ग्राम-मेखक मूम-मूम उठते हैं। सँपेरे की लगीत-बोली वही है जो नौटंकी की, कन्-विधान भी लगभग वही है। नौटंकी और सँपेरा दोनों ही संगीत-मयान रचनाएँ हैं, दोनों के कथोरकथन गीत-मयान होते हैं, और दोनों में ही वृत्त का प्रयोग संवादों के वृत्त के रूप में होता है।

१—हरिचन्द्र मैगरीन, १५ अक्टूबर, १८७१ ई०।

२— " " १५ नवम्बर, १८७१ ई०।

यद्यपि नौरकी और सेंपेरे में रूप-साम्य है, तथापि बभ्रु-विधान की दृष्टि से दोनों में बहुत अन्तर है। नौरकी की कथा-वस्तु में बड़ी विविधता होती है, उसके कथानक पौराणिक, प्रेमकथात्मक, ऐतिहासिक, साहसकथात्मक एवं सामयिक सभी प्रकार के होते हैं। किन्तु सेंपेरा की एक ही सुनिश्चित कथावस्तु है, सब सेंपेरे या सेंफेरे उसका अभिनय करते हैं। इसका कथानक आदिम मानव-जाति के अति प्राचीन विश्वासों और मान्यताओं के आधार पर सगठित हुआ है। यद्यपि सेंपेरा में कथा-विस्तार का अभाव है, किन्तु उसके छोटे से कथानक में आश्चर्य-भोग एवं संपर्क के अनेक हृदयस्पर्क उत्पन्न मिलते हैं। प्रचुर संगीत और नृत्य के साथ इसका अभिनय अर्धराशि से सर्वोच्च के बाद एक चञ्चल रहता है। सेंपेरे का कथानक छोटा ही है। कामरुप देश जादू-टोने की प्रसिद्ध राजधानी है। वहाँ नागर नाम का एक बड़ा सेंपेरा रहता है, जो बड़े-बड़े विद्वानों को बखीबूत करने की शक्ति रखता है। एक सौदागर उसे 'मंतरगढ़' (बगाल) में खूने वाली मोती नामक जादू-टोने में निष्ठाव आत्रानु-विश्रित पेशों वाली सुन्दरी का पता बताता है —

बगाला से दूर है मंतरगढ़ एक देश।

मोती है ताही नगर जाके लिये देश।

मोती के सौन्दर्य का वृत्त सुन्दर नागर के हृदय में अत्रणजन्य पूर्वराग का समुद्र स्वरूपने लगा है। वह योगी का येश चरण कर मोती को प्राप्त करने के लिए 'मंतरगढ़' के लिये अभिषेक करता है। नागर की प्रसिद्धता फली सुन्दर होने बहुत राखी है, पर उसका अनुनय विनय एवं अमुरीय रूप कुछ ध्वंस हो जाता है —

आँखों से अपने मुँहें नहि करता हूँ दूर।

दिल वश में मेरे नहीं इससे हूँ मजबूर।

हूँ इससे मजबूर करूँ तो दिल वश में नहि पाता।

आज धन मैं छोड़ के तुझको बगाले नहि जाता।

जाता हूँ मोती को लेने दियनदी के पार।

शुन गोविन्द तुही हूँ मेरा पार लगावनहार।

नागर 'मंतरगढ़' पर्यंत चर जादू-टोने की रानी मोती के प्रसार में प्रसिद्ध होता है। खूने मोती से उसका बभ्रुज हाता है, फिर दोनों में जादू की सद्धार

ठनवी है। मोती नगर पर बिपपर सर्प छोड़ती है, नागर उसे मंत्र के बल से पछीभूत कर लेता है, किन्तु अन्त में नागर की पराजय होती है, और मोती अपने मंत्र बल से उसे मार कर धरती पर लुप्त देती है। नागर पर आए हुए मृत्यु संकट का आभास उसकी पतिव्रता पत्नी सुन्दर की स्मरण में मिलता है। जादू होने और अमिताभ के ज्ञान में सुन्दर किसीसे कम नहीं है। वस्तुतः यह जादू की महासाधना भी है, यह सुखी नवियों में नाच बजा लकड़ी है, आत्मान के तारे तोड़ कर भा लकड़ी है, यनुष्य को पशु-पक्षी बनाने की सामर्थ्य रखती है, एवं मुर्दों को जिला देना उसके लिए बाएँ हाथ का क्षेत्र है :—

सुन्दर मेरा नाम है कहते लोग लहान।  
 दैद्य कामरूप में रहूँ, सर्वे जादू की जान।  
 सर्वे जादू की जान नहीं मैं सुखी नाच बजाऊँ।  
 जादू बल से तारे कड़ा कर आसमान से लाऊँ।  
 और मुड भोंविष्णुकी दायासे मुर्दा को भी निकालूँ।  
 आदम को चिड़िया कर डालूँ चाहिँ सौन बनाऊँ।

अतएव पतिव्रता सुन्दर नागर की खोजती हुई 'मंतराङ्क' पहुँचती है, और अपनी मंत्र शक्ति से पछिड़ी मोती को मार गिराती है। तत्पश्चात् यह अपने पातिव्रत एवं जादू-होने की सम्मिश्रित शक्ति से मृत नागर को जिला देती है। नागर के आग्रह से उसे मोती की भी जिला देना पड़ता है। सुन्दर की अनुमति से नागर मोती को अपनी पत्नी बना लेता है और दोनों के साथ कुल सं कामरूप में निवास करता है। इस प्रकार कुल कष्ट और मृत्यु को यह शक्ति क्या मुक्त-पर्वकलायी बन जाती है।

यह कथानक इस देश की किसी आदिम जनार्थ जाति की अस्ति प्राचीन कथा पर आधारित प्रतीत होता है। लोक-नाट्य के रूप में भी यह बहुत प्राचीन प्रतीत होता है। संभव है जादू-होने में निश्चित रहने वाली किसी सर्व-पूजक आदिम जाति के किसी प्राचीन स्त-रूप से उत्पन्न उद्भव हुआ हो। इसमें दृष्ट के मध्य और उद्भव दोनों रूपों के अणुरूप मिले-जुले रूप में पाए जाते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि नाट्य के विकास की पृथ्वी अवरुध में उसमें केवल एक अंक और एक ही अमिताभ था। उसके विकास की

दूसरी अवस्था में अभिनेता अनेक हो गये, पर अंक एक ही था। इसीलिए भी डी० आर० माँकड़ 'माण' तथा 'माणी' को प्राचीनतम नाट्य-रूप मानते हैं। उनका कहना है कि सब प्रकार के रूपक 'माण' से आविर्भूत हुए, और सब उपरूपक 'माणी' से। संवेदा भी 'माणी' का कोई एक विकसित रूप हो सकता है। संभव है, प्रारंभ में इसमें एक ही पात्र हो जो आकाशमारित शैली में अपना वृत्त प्रस्तुत करता हो। कार्यक्रम में उसमें अन्य पात्रों का भी समावेश हो गया होगा। समय-समय पर उसका काव्य रूप में अवश्य परिवर्तन होते रहे होंगे, पर इनका जादू-जोने वाला मूक आत्मन्तर तब भी वही सुरक्षित है। संवेदा का वर्तमान रूप 'नागर समा' कहलाता है। मध्य अनुमान है अमानत के 'हस्तर समा' के प्रभाव से यह रूपान्तर पड़ित हुआ है। प्राचीन सूक्त-रूपों का ही एक अवशेष अवशेष का निम्नी पोड़ी का नाव है। अनुमति है कि अवशेष के बादशाहों को यह बहुत प्यार था।

### बहुरूपिया—

इसी वर्ग में बहुरूपिया का उल्लेख भी आवश्यक है। नाम से ही प्रकट है कि बहुरूपिया वह अभिनय है जो अकेले ही अनेक रूपों का आरेख करता है और इन प्रकार विभिन्न रूप धारण कर लोगों का मनोरंजन करता है। मध्यकाल में बहुरूपियों का व्यवसाय बड़ा समृद्ध था जनता में भी वे लोकप्रिय थे और शाही दरबारों में भी उनकी कला को संरक्षण प्राप्त था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में निम्न अपने प्रिय-प्रकाश नायक ग्रंथ में बहुरूपियों की कला का विवरण दिया है। पर हमने यह नहीं समझा जाना चाहिए कि बहुरूपियों की कला का विकास मध्यकाल में ही हुआ। वस्तुतः यह हमारे देश की अति प्राचीन कला है। एक ही मनुष्य के अनेक रूप धारण करने की कला से ही विभिन्न नाट्य-रूपों का विकास हुआ होगा यह विश्वास धीरे-धीरे मान्य होता जा रहा है।

इस एक-सर्ग का अवर्णन कर 'माण' तथा 'माणी' को प्राचीनतम नाट्य-रूप माना गया है। मनुष्य के कलात्मक रूप मनुष्य अनुवाद में 'धिरूप' रूप आया है निम्नोक्तो विद्वत्कल्पवृक्षो नमो नमो रथिभ्यो रथेभ्यश्च नमो नमो नमस्तप्तभ्यो रथहारेभ्यश्च नमो नमो नमः कुक्काहेभ्यः शर्माहेभ्यश्च नमोनमो पुष्टिभ्यो निपादभ्यश्च नमोनमः । एतन्नुक्तं मे शिवं चण्डो का प्रयोग हुआ है, ये लक्ष्य सब सामान्य माम

बोद्ध है, इसलिये 'विश्वरूप' शब्द भी सामान्य नाम-वाचक ही होना चाहिए। इसलिए कुछ विद्वानों का अनुमान है कि आद्य का बहुस्तरीया ही वैदिक काल में कदाचित् विश्वरूप कहा जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी पुरुषमेव-संघ में 'शैल्य' और 'केतवती' शब्द साथ-साथ आए हैं। 'वंशवती' का अर्थ है कुछ परंपरागत नर्तक। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक काळमें के 'शैल्य' का अर्थ है नट शय्या अभिनेता। बहुत संभव है, तैत्तिरीय ब्राह्मण के 'शैल्य' और ऋग्वेद-संहिता के विश्वरूप दोनों का प्रयोग एक ही अर्थ में होता रहा हो।<sup>१</sup>

सम्यक्काल की हमारी नाट्य-परम्परा दरबारों के प्रभाव से सर्वथा छर्लंग और मुक्त रहकर खसी-फूली थी। वह सर्वसाधारण जनता की अपनी वस्तु थी। दरबारों से सम्बन्ध रखने वाले उच्च वर्ग के नगारिक उससे स्मौरंजन प्राप्त करने में आपसी हेठी समझते होंगे। ऐसे लोग नाटकों की रंजकता की कमी की पूर्ति साहित्यिक गौड़ियों और सम्मेलनों द्वारा करते थे। राज-दरबारों में इस तरह के सम्मेलन कभी-कभी हुआ करते थे। आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने नवम्बर १९४३ की सरस्वती में अपने सृति मित्र नामक निबन्ध में लिखा है—“संवत् १८७४ के एकादश वर्ष इमर ठपार आगरे में कवि-समाज एकत्र हुआ था। उसमें साहित्य के कई मर्मज्ञों ने योग दिया था। मुहम्मदशाह के समय में जब सृति मित्र और प्रवीण कवि थे तब ऐसा सम्मेलन हुआ था। ऐसे समाज राजधानियों में होते ही रहते होंगे यह अनुमान किया जा सकता है। इस प्रसंग में यह बात भी ध्यान में रखने की है कि इस काल में ऐसा साहित्य भी प्रचुरता से लिखा गया, जिसका बहिरंग तो प्रबन्ध काव्य शय्या मुक्तक का है, पर जिसमें दूर्य काव्य के अनेक आम्बन्धर तत्त्व उपस्थित होते हैं। केशव की रामचरित्रिका के संवाद इसका एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। सोइवर्मी नाट्य-परम्परा से दूर रहने वाले लोग इनसे भी नाटकों की रंजकता के प्रभाव की पूर्ति करते थे।

१—दे० कु० गौड़वर्मी आधुनिक केतकर हृत मण्डी प्रकल्प भारतीय नाट्यशास्त्र, पृ० १२४।

३

## मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा रास लीला

( १ )

विद्वान्ने अध्याय में लोकचर्मी नाट्य-परम्परा की त्रिस्त धार्मिक शाखा का उल्लेख किया गया है, उसमें होने वाले नाट्य-प्रयोग लीला नाम से व्यवहृत हुए हैं। यद्यपि लीला और नाटक दोनों ही दृश्य काव्य हैं, पर उनमें कुछ तारीक अंतर भी है। लीला कबल मगधसंरंभी ही होती है और नाटक का संरंभ जोधन क लौकिक पक्ष से होता है। लीला का उद्देश्य है तात्कालिक आनन्द के साध-साध दूसरे समय में भी बैला ही चिन्तन करके मगधसंरंभ में लय्य होना और नाटक का उद्देश्य है मनोरंजन के साध-साध लोक-संमह। सात्य यह कि लीला दर्शन, ध्यान और चिन्तन की वस्तु है और नाटक प्रेक्षण तथा प्रहस की। लीला अंतःकरण को मगधदाकार बनाती है और नाटक व्यक्ति का परिच-निर्माण कर लहने है तथा लयाव की एक निश्चित दिशा में ले जा लहने है। लीला मति-योग की सहायक है, वह एक प्रकार का साधयोग है और नाटक कर्म-योग का एक साधन है। लीला स्वात्म-मुखाय होती है, और नाटक के मूल में सामाजिक उपयोगिता की भावना खती है।

इस प्रकार की लीलाओं की रास और कृष्ण के भेद से रामलीला और गजलीला कहा जाता है जिनमें से रामलीला क नियम में आगे कहा जायगा। वस्तुतः रास लीला मगधजनों की आध्यात्मिक शिक्षता प्राप्त करने के लिए प्रचार-रूप रण प्रशुन करती है। यह अत्यन्त ललायन-परायण व्यक्ति की बुद्धि



को भी अंतर्मुखी बना सकती है। मंत्र के सुप्रसिद्ध घटकारी भी विहारिणात् के पुत्र राधाकृष्ण मिलित रास-सत्रम् 'ग्रन्थ के अनुसार यमदत्तेश्वरी ने रास के प्रयोजन का निरूपण इस प्रकार से किया है —

१-विषयविदूषितचित्तानामनेकोद्योगबुद्धीनामस्तु\* करणानि मगवद्विषयकानुपकरणवर्धनैः शुद्धानि भवन्तीति प्रथमं प्रयोजनम् ।

२-श्रीशुद्धाभाष्यभाषासेन पुरुषार्थचतुष्टय भवत्विति द्वितीय प्रयोजनम् ।

३-अनेकसाधनैर्योगादिभिर्मगवद्विषयनायैवतमातातापि सुखं सुखसुखमवतिष्ठति तृतीयं प्रयोजनम् ।

४-युगहेतुकविपरीतवाक्यैः समासां रासतासमबुद्धीनां सात्त्विकबुद्धिजननं चतुर्थं प्रयोजनम् ।

५-स्वतःशुद्धैरपि ब्रजवागिमिरेष स्वमरणं वैशोक्यद्विरेषैतद्वादेणसंपादनीयमिति पंचमं प्रयोजनम् ।

अर्थात् इसका पहला प्रयोजन यह है कि जिन लोगों के चित्त विषयों से दूषित हो गये हैं, और जिनकी बुद्धि अनेक उद्योगों में कँची हुई है, उनके अन्तःकरण मगवद्विषयक अनुकरण के द्वाया शुद्ध हो जाते हैं ।

इसका दूसरा प्रयोजन यह है कि जिनों और राज्यों को भी अनायास ही वापे पुरुषार्थ प्राप्त हो जाते हैं ।

तीसरा प्रयोजन यह है कि जो लोग रोग आदि अनेक साधनों द्वारा मगवद्विषय के लिए प्रयत्न करते हैं, उनके लिए भी सुख सुख सुख हो जाता है ।

चौथा प्रयोजन यह है कि कश्चियुग के परिणामस्वरूप निरपेक्ष परिस्थिति में उत्पन्न होने वाले तथा रास-तासम बुद्धिवाले जनों में सात्त्विक बुद्धि उत्पन्न हो जाती है ।

पाँचवाँ प्रयोजन यह है कि ब्रजवासी लोग स्वयं शुद्ध होने पर भी इसके द्वारा वैशोक्य पवित्र स्मरण—जीवन या आर्थविका—प्राप्त करते हैं ।

१ ॥ क०—अति विषयिणा शृंगारस्ताकृष्टानामपि स्वाभिमुखीकृतं तादृशी क्षितिमप्यधर ।\*

राजकीया के ये परम उत्कृष्ट और उच्च प्रयोजन जिस लोकर्म के साथ मिला होते हैं, उसका भेद इसके रङ्गमंच और अभिनय की उस व्यक्त्या को है, जिसमें कृत्रिम उपकरणों पर निर्भर रहने की आवश्यकता विद्यमान नहीं होती। गणनीया का रंगमंच अद्विष्टता से रचित और सादा होता है, और बहुत चाहे पात्रों से सब काम निष्पाद लिया जाता है। रास के उद्भव और विकास का क्षेत्र मञ्चभूमि विशेषतया वृन्दावन माना जाता है, और वहाँ रास दृश-सन्निहो में होता है, जो वास्तव में उसके स्थिर उद्भव स्थान है। वैसे यह द्रव्य सार्वजनिक स्थानों और माण्डविक्रमों के पर्यटनों में भी होता है। मन्दिर के प्रांगण में रासका रास के लिए निश्चित स्थान में प्रायः बंझ-बाइस फीट लम्बी और छत्तर-बीस फीट चौड़ी जगह रास के लिए छोड़ी जाती है जिसके तीनों ओर दर्शकों बैठने के स्थिर स्थान रहता है इसे उत्तमगडक कहते हैं। उसी के एक ओर पौन्य में एक चौड़ी खड्ग उस पर सिंहासन स्थापित दिया जाता है। सिंहासन के आगे एक पीले रंग का यावा अथवा किसी रंग का पद्म आभूषण दिया जाता है जो छत्तों के सहारे एक रस्ती से बँधा रहता है, जिसमें यह बंधाकर सरकाया जा सके। कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता और उसके स्थान पर जो व्यक्ति एक बाहर तान कर लड़े हो जात है। सिंहासन के ठीक सामने रास मण्डप के दूसरे ओर पर समाप्ती बैठने हैं। समस्त पद्मों में 'मण्डप' मण्डपारण प्रारम्भ करते हैं। मण्डपारण में रास का 'बाल कृष्ण' 'हरी रास' और इती प्रकार के संतों के द्रव्य पर तथा भीमप्रमाणक आदि के मन्दिर स्तूपों का गायन होता है। रास की आत्मा तो यह है कि गणनीया का प्रारम्भ होने के प्रथम अनुष्ठान की एक निश्चित विधि का पालन किया जाय। यह विधि बृहत् गोमती तंत्र, रामोत्पास-तंत्र संपलत्र तथा अन्य पुराण आदि ग्रन्थों में दी गई हैं। निश्चित कथों से आरम्भ, शोभायाम विनियोग, स्थान और स्थान के बाद वृन्दादेवी, यमुना, पद्मया आदि का रासके लिए आवाहन किया जाय, फिर रासोत्पास के स्वरूपों की रास-रचना में प्रतिष्ठा की जाय और 'उत्कृष्ट अनेक उपपातों से पूजन हो।' पर 'उत्कृष्ट उदित्य' नाटकों के मध्ये-अथवा स्थान, रंग-देवता-पूजन और रासों आदि में विच्छेद है। पर जिस प्रकार आज कल नाटकों में उसके पूर्व-रंग का लीन हो गया है, उन्हीं प्रकार गणनीया में भी इस विधि का पालन होता जाय कहीं नहीं दिगई देना

है। कोई-कोई रातबारी—सब नहीं, बढ-स्थापन तो कर लेते हैं पर तुरन्त ही मंगलआचरण प्रारम्भ हो जाता है और उक्त कर्मकाण्ड छोड़ दिया जाता है।

इधर मंगलआचरण खल्ला रहता है और उधर परदे के पीछे लली-स्वरूप—गोप-बपुर्रै—आकर सिंहासन के नीचे चौकी पर अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। पञ्चाङ्ग राधा और कृष्ण पधारत हैं थीर सिंहासन पर समासीन होते हैं। लली-स्वरूप राधा और कृष्ण के पधारने की सूचना 'अब हो' बलिहार आदि शेरों से देते हैं। परदा हटा दिया जाता है और वंशी बजाते हुए कृष्ण राधा राधा की संयुक्त छवि की एक मनोहर लकी शरोंको को मिलती है। फिर भारती होती है। छवियों में से ही एक आखी कली है, और अन्य आखी कुँबहिहारी की 'आदि पद गाती हुई राज्य करती है। 'भारती के बाद परदा फिर ढाक दिया जाता है। छवियाँ परदे के पीछे कृष्ण के पल्ल जाती हैं और तात्पुन भावि से उत्कृष्ट होकर लौट आती हैं। परदा फिर हटा दिया जाता है, और पुनः एकसम समासीन राधाकृष्ण की लकी दिखाई देती है। अब तब 'ललियाँ' उन्हें नृत्य और गीत के अनेक प्रकार के उपक्रमों द्वारा प्रसन्न करनेका प्रयास करती हैं। अपना नृत्य-गीत समाप्त करके वे मङ्गलान्तर रात-मङ्गल में बैठ जाती हैं। तब उनमें से एक उठकर कृष्ण से बहुत की मनोहरता, शरद-राशि की स्निग्ध-शिवलता राधा मनुना-रं और निकटस्थ कुम्बों की लीला का प्रमाकशाली वर्णन करती हुई एक संस्कृत के श्लोक में उनसे रासोत्सव में पधारने की प्रार्थना करती है। उस श्लोक का अंतिम वरत्त रहता है — 'रासोत्सवे गम्यताम्', जिसे अन्य सब 'लली-स्वरूप' भी एक स्वर से दोहराते हैं। 'प्रार्थिनी लली' इसका कारण मङ्गलापा राधा में भी निवेदन करती है। वह प्रार्थना सुनकर भीकृष्ण भीराधा से रासोत्सव में पधारने का अतिव्रत अनुयेन करते हैं। राधा की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर युगल स्वरूप रात-मङ्गल में उतरते हैं। भीकृष्ण वंशी के कुछ स्वर छोड़कर रास के प्रारम्भ का लक्षित करते हैं।

१—रास में अभिनेताओं के लिए बड़े आदर पूर्णक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, ललियों के लिए 'लली-स्वरूप' और भी राधा के लिए 'ललाम्नीस्वरूप' शब्द का प्रयोग होता है।

यह संकेत पाकर 'समाजी' 'ग्रामी एरी' नाचत मदनगोपाल और 'नाचत सातबिहारी' नचवत हैं सब नाचें' आदि पद गाते हुए साथ में नाच के कुछ लोक निहाजना प्रारंभ करते हैं। रास-मण्डल में एक ओर आकर श्रीकृष्ण खड़े होते हैं, और दूसरी ओर श्रीराधा को बीच में करके खिसिया<sup>१</sup>। भी कृष्ण बंटीजादन करते हुए नृत्य की चारियाँ बाँधते और कुछ गतियाँ छेते हैं और दूसरी ओर 'खिसिया' भी नृत्य प्रारंभ करती हैं। नृत्य करते हुए सब मिलकर मंडल का निम्न करते हैं और फिर मंडल-संयोग क अनेक प्रकार प्रदर्शित करते हैं। यह मंडल-नृत्य कला विविध रूप धारण करता हुआ इतल-उबार करते-करते कुछ समय बाद धाम्ति होकर राधा बैठ जाती है और उनकी खिसिया भी मयास्थान लड़ी हा जाती है। इस अवकाश, में श्रीकृष्ण श्रीराधा का नृत्य के कारण विपर्यस्त शृंगार सँवारते हैं। भ्रम-विह्वल हो जाने पर राधा पुनः रास-मंडल में प्रवेश करती है और नृत्य आरम्भ होता है। पुनः नृत्य प्रायः मण्डल में ही होता है, जिसमें परितन्त्र और लम्पितचरण के नाच-नाच हायो-वेते के उत्थेन प्रवेश, उपत्यर्ग्य अत्यर्ग्य, और आवर्तन आदि प्रयोग भी चलते रहते हैं। यह सम्स्त व्यापार समाजियों के वादन-गान का अनुगत<sup>२</sup> रहता है। नृत्य में मंडल-विधान की विविध विधियों का जो विस्तृत विवरण भरत के नाट्य-शास्त्र में उपलब्ध है, रास-नृत्य में उनमें कुछ का कुछ आभास तो मिल ही जाता है, मने ही वे अमिनेता और नर्तक प्रायः उनका शास्त्रीय स्वरूप और श्रुत प्रयोग न जानते हों। इस नृत्य के बीच कुछ सरल संगीतात्मक ठठि-प्रत्युक्ति भी रहती है, जिसका रूप इस प्रकार का होता है :—

राधा—एरी ग्रामी नाचत साठिनो नाचत—

कृष्ण—एरी ग्रामी, नाचत साठिनी माचत—

राधा—एरी ग्रामी नाचत साठमि बाते माचत—

१ शु० करिये मा. ना. रा. अ० १२ —

एतानि गीतानि समग्रानि, पुढे निपुणेषु पौत्रिमे य ।  
संन्यासप्राप्त्युप पुरस्कृतानि काव्यानि बाधानुगतानि तस्मै ॥

कृष्ण—एरी झाली नाचत बुधमासु बुझारी नाचत ।

सखियाँ— नाचत नाचत नाचत, काड़िलो, नाचत, नाचत  
नाचत काड़िली ।

इस प्रकार यह रास लगभग एक घंटे तक अवश्य चालता है, इसकी समाप्ति पर 'स्वस्व' लीला की तैयारी के लिए नेपथ्य में चले जाते हैं और लिहास के सामने पर्दा खोल दिया जाता है ।

यह निम्न रास कहा जाता है । पहले यह रास हो जाता है तब कोई अन्य लीला होती है । रास और लीला का यह संयोग, 'रासलीला' का अनुत्कृष्टनीच विधान है, और सम्भवतः यही इसके नामकरण का भी कारण है । कमी-कमी म्हायत भी होता है, जिसका बर्णन श्रीमद्भागवत की रासलयाध्यायी में है और जो शरदपूर्णिमा को बसुन्दा-पुलिन पर संपन्न हुआ माना जाता है इस म्हायत के आरंभ के पूर्व 'समाजी' तुर और नंददास आदि के इस प्रसंग के प्रास्ताविक एवं अन्तर्ध्वस्तक पद गा-गा कर रास के पूर्वचर की पीयूष-स्निग्ध व्योमना में बसुन्दा-वटवर्ती कबजकुंज में बंशीवादन-मिराज कृष्ण की कल्पना प्रेक्षकों के मन में जगा देते हैं । ठीकी समय मधुर स्वर से बंशीवादन करते हुए कृष्ण रंग भूमि (रास-बंछ) में पधारते हैं । उनकी बंशी की आनि सुनकर गोदियाँ अपने घरों की ओर दौड़ पिता पुत्र, पति सव की खानेना कर भीकृष्ण से मिलने के लिए दौड़ पड़ती हैं । पर भीकृष्ण अर्द्धरात्रि में इस प्रकार समाज और धर्म की बर्बाद का उत्सर्जन करने के लिए उनकी तीव्र मार्तण्ड करते हैं । कृष्ण के कठोर पवन उन्हें मर्मसाक पीड़ा पहुँचाते हैं और फिर उनका तथा गोदियों का बड़ा विराम प्ररुनोत्तर पलता है । कृष्ण उन्हें सामाजिक स्वाचार का आदर्श बतलाते और उस पर बहू खने-की सिखा देते हैं, पर गोदियाँ प्रेम और मक्ति में सर्वस्व समर्पण की ही उदात्तरण की चरम परिणति मानती हैं और कृष्ण को निश्चर कर देती हैं । उनके अनन्य निष्काम प्रेम को देखकर अन्ततः भीकृष्ण उनके साथ म्हायत में प्रवृत्त होते हैं । पूर्व-वर्णित शुभ गीतादि के विविध प्रयोग इस अवसर पर आत्यधिक तीव्रता, व्यत्ययता और उत्कर्ष प्राप्त करते हैं । कृष्ण अपनी योगबला के बल से अनेक रूप धारण करते हैं और

मंडप-रूप ग्रहण होता है जिसमें दो-दो गारियाँ के बीच में कृष्ण खड़े हैं ।<sup>१</sup> रूख के साथ-साथ समाजियों के द्वारा गाए जाने वाले मन्दराज और सूर आदि के रास-लीला के पदों की शक्ति से हम यह अनुभव करते चलते हैं कि इस समय देवता यह मोहोत्तर दृश्य देखने के लिए अपने विमानों पर आकाश में विराज मान हैं जिनमें प्रसा और भिन्न भी हैं । वे हरित होकर पुनः पुनः पुष्पवर्ण कर रहे हैं ( दण्ड प्रसन्न हो पुष्प-वर्ण करते भी हैं ) । सब और ठाल लगीत एवं नृत्य के इस सामंजस्य में सबों का स्वर और स्वरों की स्वर बना दिया है यमुना का प्रवाद रुक गया है, पवन स्थिति है, चन्द्रमा और नक्षत्रों की गति मारी गयी है । इसी बीच खाने कर का सम्मिलनी काम रास-मण्डप में आता है परन्तु श्रीकृष्ण के रूप को देख कर मूर्च्छित हो जाता है और रति उन्ने उठी अवस्था में उठा ले जाती है । यह प्रसंग 'समय-मयन-लीला' के नाम से प्रसिद्ध है ।

कुछ समय तक रास-धाम्ने के उपरान्त भक्त बल्लभ श्रीकृष्ण द्वारा अनेक प्रकार की सेवायें और परिसरों प्राप्त कर गोवियों को गर्व हो जाता है, कृष्ण यह जानकर तत्काज राधा के साथ क्षणार्धन हो जात है । इतर गारियाँ उनके शिष्ट में स्त्रिप्त करती रह जाती हैं और उधर श्रीकृष्ण राधा के साथ प्रकान्त बन-शिदार करते हैं । राधा के मन में अहंकार प्रवेश करता है और य क्षमयिक भास्ति-स्त्रास्ति के कारण नवने में असमर्पता प्रकट करती हुई

१—इस प्रकार पर 'समाजी' धाम' क्षयोक्तिस्तुत राधा ऐस ही क्षम्य पद गा-गा कर दृश्य को अनुभूति दीन करते रहत हैं :—

राधयो राधयादप्यतो माधयो माधयो मइसे पइने ।

हेम ककरजता घोरी बाहुमि कण्ठमाधया ।

तम-कइयासः कृष्णा दृष्टिने राधनीषया ॥

संग्रामांगनामंगरे माधयो माधयो चान्दरेजांना ।

राधयादप्यतो मंते मयन-संज्ञा यमुना देवनीन्दन ॥

मनो भाई पन पन कम्तर दामिनि ।

पन दामिनि दामिनि पन-अम्तर सरद दुर्ग दामिनि ।

कृष्ण के कानों पर आसन्न होमे का आग्रह करती हैं। श्रीकृष्ण शार्ङ्गना स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु क्यों-ही भी राधा उनके कानों पर बैठने का उपक्रम करती है, जैसे ही वे 'आओ कानों पर बैठ जाओ' कहते हुए एक मंद-स्मित का आभेद कित्तेर कर मन्थरान हो जाते हैं,<sup>१</sup> और भी राधा रोती हुई अकेली बिसाप करती रह जाती है। इसी समय सीराया और श्रीकृष्ण को खोजता और बिसाप करता हुआ गोपियों का समूह भी बड़ा पहुँचता है। इन्तनी राधा को लेकर वह, लुण, लुण-गुल्ल लक से कृष्ण का पता पूछती हुई गोपियों समुदा तट पर जाती है। वहाँ से श्रीकृष्ण के नाम कम का स्मरण और चिन्तन करती हैं, तथा उनकी मीमांसा का अभिनय करके अपनी म्वा राग करने का प्रयत्न करती हैं। फिर भी कृष्ण नहीं जात, वा वे मूर्च्छित होकर गिर जाती हैं। अब कृष्ण जागते हैं, तो गोपियों की भी लडा लौटती है। श्रीकृष्ण गोपियों के प्रति उनके अत्यन्त प्रेम के लिए आभार प्रकट करते हैं और उनके साथ पुनः रात में प्रवेश होते हैं। पूर्वकत् संगत-राग होता है, पर इस म्वागत का अनुष्ठान श्रीकृष्ण और गोपियों के अनेकानेक स्वस्म मिलकर पूर्ण करते हैं। अतएव इसका आभोजन कई-कई रात-मंडलियाँ मिलकर करती हैं, और यही कृष्ण के अनेक स्वस्म और बहुलक गोपियों की आभ्यस्तता की पूर्ति हो जाती है। बिना दिन रात होता है, उस दिन अन्ध कोई झीला नहीं होती, पर निरागत के वाद कोई-न-कोई लीला अभ्यस्त होती है।

हीला में म्वागत कृष्ण के जीवन का कोई एक प्रसंग लेकर उतका अभिनय किया जाता है। प्राक् विरुद्ध लज-लीलाओं का ही अभिनय होता है। लजलीलाओं से तात्पर्य है, कृष्ण के जन्म से लगाकर मधुर प्रवाह तक की लीलाएँ। कहर सिद्धांतानुवाची म्वागत के रातवारी मधुर की भीलाएँ नहीं करते। मधुर प्रवाह लम्बनी केवल एक उद्व-लौला ही अधिक होती है। कुछ

१ प्राक् इस अक्षर पर 'समाजी' समवेत 'स्वर से श्रीमद्भागवत के अष्टोत्तिश्व श्लोक का पाठ करते हैं—

एवमुक्तं विषामाह लक्ष्मणकथापि ।

तत्तत्तान्तर्ये कृष्णः सा बहुलकम् ।।

( श्री० म० भा० १० स्कन्ध )

राम गी मयुरा-प्रवास का 'कंच-वच' आदि सीताओं का अभिनय भी आदेश पान पर कर देते हैं, पर उनमें राम-चरितों तथा अष्टोत्तरसुखादि रामचरितों की रचि भी प्रायः कम ही पाई जाती है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि जिन संतों और मठवासी लोगों द्वारा लीलाभिनय के इस स्वरूप का विकास हुआ उनकी दृष्टि विगुह आस्थाभिरुचि की और वे इसे अपनी मक्ति-स्थापना का एक अनिवार्य अंग मानते थे। अतः इस परंपरा में कृष्ण के ब्रह्म-जीवन से सम्बन्धित मायुर्ध्व-म्राव की लीलाएँ ही अधिक महत्व की गईं। इन लीलाओं का मूलाधार भीमनागवत ही है पर अभिनय में यह और अद्भुत जैसे कवियों की वाणी का ही व्यापक उपयोग होता रहा है। प्रायः चलकर इसी लीलाभिनय से घेरना महज कर एक विशेष प्रकार के लीला-साहित्य का निर्माण हुआ उरुमकों में से कुछ के लक्षण इसमें अनेक रूपों में विद्यमान हैं।

लीला की ही, उसके अभिनय में लगभग तीन चरित्रों का समय लगता है और अधिक-से-अधिक छ-सात अभिनेताओं से ही सब काम निष्पन्न किया जाता है। प्रायः चार 'सन्नी-स्वरूप' रहते हैं (कुछ रात मंडलियों में तो मुझे तीन ही मिले) और 'आमिनी-स्वरूप' (राधा) तथा 'प्रभु-स्वरूप' (कृष्ण) के लिए वा अन्य अभिनेता अपेक्षित होते हैं। इसी प्रकार एक ही 'सन्नी-स्वरूपों' की भी आवश्यकता पड़ती है। प्रायः देखा गया है कि यदि किसी लीला में अधिक पात्रों की आवश्यकता होती है, तो सन्तियों का अभिनय करनेवाला ही पपायकाठ हुरी निहरी भूमिका सम्हाल लेते हैं। यदि नन्द-बरादा जैसे कुछ बराह्ड 'स्वरूपों' की आवश्यकता हुई, तो अमात्रियों में से कुछ लोग वह काम बना लेते हैं।

प्रथम-अंश पात्रों के अलग-अलग वेप होते हैं। कृष्ण का रंगबाला एक लाला बर पदन है जिसे चट्टि-बाछनी कहा जाता है और उस पर पट्टा बंधा रहता है। पीठ पर लम्बी हथियार पीरी म्हराती रहती है, मन्त्र पर मयूर पत्र और प्रकरण कानों में मुद्रण तथा नाक में गुलाब रहती है। वह हर समय हाथ में बरौ धारण किए रहते हैं और सभी चरित्रों का स्थान पर बाल-बन्दी भी पहनते हैं। राधा का वेश में गाड़ी और उलरीय के अतिरिक्त नाक में गुलाब और मन्त्र पर चट्टिका तथा बन्दी रहती है। गार्गियों का वेश सामान्यता राधा के समान ही रहता है, केवल उनके मन्त्र पर चट्टिका और बरौती नहीं रहती, उनके स्थान पर बरौट रहती है। नन्द एक हल प



वेश में रहते हैं, उनका श्वेत शमभु और निकम्मा हुआ पंथ रहता है। पशोना एक सतत अचमूँठनवती हवा के वेश में दिखाई जाती है। यदि पशोना का कार्य थोड़ा ही होता है, तो 'तमाशियों' में से कोई व्यक्ति सिर से पैर तक एक ओढ़नी ओढ़ कर सँह छिगाकर बैठ जाता है और उनका अभिनय कर देता है। सम्प्राम बगलवदी और पीताम्बर पहनते और मस्तक पर मुकुट धारण करते हैं। 'तस्ता-त्यस्म' (गाय-वाद्यक) केवल धोती पहनते हैं, उनके शरीर खुले रहते हैं, गले में मुजमला, कन्धे पर कम्बल और हाथ में सकुट रहता है। इनमें से केवल मन्तुला अथवा मधुमक्खन के वेश-विन्यास में कुछ विशिष्टता रहती है। मन्तुला यक्षशीला का विरूपक है, अतएव कुछ अश्व-संभारिणी उसकी वेश-भूषणा बहुत विरुद्ध कर देती हैं। उसके मस्तक पर कटी-पुचनी पगड़ी और झिनारी का बाँध रहता है, लम्बी मूँछें और शरीर में अनेक कृत्रिम मंग रहते हैं। संतुष्ट-नाटकों के विरूपक की तब यह बड़ा पैटू भी होता है। कुछ यक्ष-संभारिणी उसका वेश सम्प्राम जैसा भी रखती हैं, और प्रायः वह अपने पैरुन के प्रदर्शन के द्वारा ही हास्य की सृष्टि करता है। इसी प्रकार यक्षशीला के अन्तर्गत हर्य-विधान भी बड़ी सरल सुविधों से ढिंका जाता है। कृष्ण की नटवर मुद्रा के प्रदर्शन के लिए कुछ लोग उनके पीछे अनेक रंगों के कपड़े लान कर लड़े हो जाते हैं। सरोज के का हर्य दिखाने के लिए वा भादमी एक कपड़ा लान लेते हैं और गोविर्दा उसका पीछे से लीफती हैं। कुम्भ का हर्य दिखाने के लिए रंगमंच—विहंगन—के पीछे एक शाला लगा कर उसपर बहुत स रंग-विरंगे कपड़े लान दिए जाते हैं।

सातवां यह कि निताम्ब तादे और छोटे राजमंच पर कम-से-कम पात्रों से बिना उपयुक्त आहार्य और हर्य-हरयास्तर-विधान की सुविधा के परम भाष्यार्थिक रह-मिप्यति का यह प्रभाव सम्प्रामापूर्वक सम्भव होता है।<sup>१</sup> सेलर ने स्वयं उद्भव-शीला के अक्षर पर हजारों दर्शकों को, जिनमें अच्छे विद्वान् और ऊँची

१ गु० क० दिनेशचंद्र सेन लिखित 'हिस्ट्री ऑफ बंगाली लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर' पृ० ७३१—

"... Without scenery without the artistic display of costumes, could rouse emotions which nowadays we scarcely experience, while witnessing semi-European performances given on the stages of Calcutta theatres."

प्रस्था के मत पर करवा-विगठित होकर निरंतर अभिप्राय करते देखा है।<sup>१</sup> इस स्थिति का मूल कारण लीलाओं की सरस कथा-वस्तु और उसका समस्तर नट-रंग विन्यास है। यद्यपि इनका कथानक छोटा होता है, पर उनमें कार्य की तीन प्रवृत्तियाँ—प्रारम्भ प्राप्तिवादा और पत्रागम—स्पष्ट रूप से मिलती हैं। प्रारम्भ-प्रस्था में ही प्रदान का याग रहता है और पत्रागम में नियतस्थिति का समावेश। इसमें मुख्य और निर्देशक भूमि की योजना विशेष रूप से बड़ी रमणीय और विविध होती है। इस लिए प्रारम्भ और उपसंहार दोनों बड़े चमकदार होते हैं। बीच-बीच में हिनत ही सुन्दर भूर्वर्गों का स्फुरण स्वतः होता चलता है। वैशिष्ट्य की तो ये लीलायें काय ही हैं, और नर्म छादि विविध अंगों का ऐसा उन्मेष ता अनेक प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों में भी उपलब्ध नहीं होता।

इन लीलायों के कथानकों की सरलता बहुत कुछ इनके कथोपकथनों पर अवलंबित है, जो मध्याह्न और पश्चात्तम दोनों प्रकार के हाठ हैं। इन कथोपकथनों में भीष्मभगवत् के स्त्रोत्रों तथा मरुत कवियों के वदों का भी प्रयोग होता है, पर यात्रा प्रायः उनका आरम्भ प्रवृत्तियों में समाप्त देने है। स्त्रोत्रों और पद्या के अतिरिक्त वातावरण में विभिन्न प्रवृत्तियों का प्रयोग होता है। जिसे प्रवृत्तियों को विविधभूत नैसर्गिक भावुरी का आस्थादन करना हो उन वास्तव्य अवस्था देवनी प्राप्ति। कभी-कभी स्त्रोत्र के उपोद्घात अथवा उपसंहार में किसी स्त्रोत्र में लीला का आस्थात्मक रूप पर कृष्ण-मन्त्र का स्वर तथा तरंग भी कार्य-न-होई प्रायः अवश्य सम्मिलित होता है। लीला कभी दुर्गागा नहीं होती, और न अंत में कोई अवनिष्ठा ही मिलती है। अत्यंत कथन एवं नाट्य विवोध-प्रधान उद्गम-लीला (प्रमर्शित-वर्णन) भी अंत में सर्वप्रमाण ही दिखाई जाती है। जब गोरियों को सम्यक्-समस्तान उद्गम पर जान का गम गम हो जाता है और तथा दूरी की परम प्रमथी मूर्ति दृष्ट कर ब संशय में पड़ जाते हैं, तभी उनके अज्ञान और धर्म का दूर करने वाली एक बड़ी विविध प्रवृत्ति प्रकट होती है। प्रवृत्ति से भी अतिरिक्त मुकुमार निज का भोवन या वारण करके उन के अंतर्गत में प्रायः कुछ दिखाई पड़ता है। उनके कुछ गम वारण के कारण कथु हो गए हैं और वे अपने गुण की

१ मू० क० वेगाग इत्यं संग्रहण को कवयिता के 'लक्ष्मण्य' में 'राम' के संवत् में समस्तवत् दिखाती का मेरा कथानक का 'वेदान्त' भाग ११, १९९१ दि०, 'द्विजन्तियों का नाट्य-पर'।

अथर्व मृगुता और शोभा को बंशी-ध्वनि में समस्त हुए स 'नटनायक' की विष्ट लटक और गति' से उठ स्थान पर गये हैं, जहाँ अचानकबना मधुसूती राधादेवी गोपियों से प्यारी हुई उद्भव का ज्ञान और बाग का संदेश चुन रही हैं। वे बड़ी आदरसा और आकुशता से दौड़ कर बड़ी मनुहार के साथ राधा देवी का कुम्हलाया हुआ मुख-कमल छूते और उनके आँखें पोछते हैं। इस प्रकार उद्भव को इस सीमा के अन्त में राधा-कृष्ण के एकत्र दर्शन हो जाने हैं। उद्भव को यह बात हो जाता है कि जब ममवान् की 'नित्य विहार' की स्वामी हैं और राधादेवी मगवान् पुत्रपोषम कृष्ण की अंतरंगा अभिधा, स्वकृपा आकाशिनी शक्ति हैं। गोपियाँ राधा देवी की काय-धूह हैं, इसलिये वे भी यही सुख प्राप्त करती हैं जिसकी अधिकारिणी राधा देवी हैं। जब के इसी उपातिष्ठत सीक्षा-धर्म को सुरदास जी ने अपन भ्रमरातीत-मर्मंग के एक पद में समझाया है —

ऊँची कहियो यह संदेस ।

छोग कहत कुविद्या की मृगुता तुम सकुचहु तमि लंम ।  
कबहुँक इत पग बारि सिनारहु हरि ठहि सुखद सुखेस ।  
हमरे मन रंजन कीगई ते, क ही भुवन नरेस ।  
तब तुम इत ठहराहु रहोगे देखोग सब वंस ।  
बहि बैकुंठ अखिल मग्याहु जन बिनु सब हुत कलेश ।  
यह किहि मंत्र दिखौ नंदनदल, मन ठहि समत बिदस ।  
जसुमति लजनी प्रिया राबिका देखे औरहुँ देस ।  
इतनी कहत कहत दयामा पै, कहु न रह्यो अबसेस ।  
मोहनछाछ प्रधाछ मृगुल-मन लच्छन करी सुहैस ।  
को ऊँची को पुसहु बिरह-खबर को नृप नगर सुरेस ।  
कैसो ज्ञान कह्यो कहि कासौ किहि पठया उपदेस ।  
मुख मृगु छवि मुरसो रच पूरित गारन करधुरकस ।

१— .....अणुतं वृत्तचित्ते मे धर्मं मन्त्रमिदं । जगत्तं व्याप्ति  
रितुस्तथा व्याप्ताद् ब्रह्म उच्यते । गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं-ब्रह्म उच्यते ।  
अद्वैतं परं व्योतिर्मुक्तानां पदमध्यमम् ।

( श्रीमद्भागवत साहाय्य अ० १ । १९, २० । )

मटनायक गति विकट कटक तय, धन है कियो प्रथम ।  
अति मातृक अकुलाह पाइ पिय वीछत नयन कुसेम ।  
कुम्हिल्लाही मुक्त पदुम परस करि, देखत छविहि विसेस ।  
सुर मोम समवादि इत अज भारद निगम महिस ।  
निरय विहार सकल सुर भ्रम पति, कह गावै मुख मेस ।<sup>१</sup>

अभिज्ञ प्रह्लाद में भ्रम के समान कुछ नहीं, येकुठ भी उसकी समता नहीं कर सकता । मागवती यदि की पराकाष्ठा का ही दूसरा नाम भ्रम है इसलिये प्रत्येक भ्रम-सीमा के अंत में राधा और कृष्ण की एकतात्मकताओं की सीमाएं दिखाई जाती हैं । प्रत्येक सीमा इस परमात्मिक दार्शनिक एवं दार्शनिक अभिज्ञान की इच्छा से पड़ रही है । साम्प्रति से इन राक्षसीयों का सबसे बड़ा प्रकर्ष यह है कि इन्होंने ऊंची स-ऊंची और लक्ष्मी-सुरम मानवीय अनुभूतियों को जीवन का अभिज्ञ भाग बना दिया है । आचार्य भी नन्दकुमार काव्यपी की न राक्षसीय के मध्य का निरूपण करने हुए विराम है कि "कोई ऐसा स्थान नहीं कोई प्रथम नहीं कोई पर नहीं, कोई उच्च नहीं जो भी कृष्ण की महिमा में अन्तर्लान्न न हो । तब और न कल्प समर्थ हो जाने के परमाणु भीकृष्ण की अलंकार सत्ता ही दृष्टिगत होती है । सम्प्रति इसका सांकेतिक निदर्शन है ।"<sup>२</sup>

विरलेयन करने पर राक्षसीयों में तीन प्रकार की दिखाई पड़ती है—(१) नन्दभवन की सीमायें, जिनमें कृष्ण का वात्सल्य दिखलाया जाता है, (२) गौड़ की सीमायें जिनमें सराफों के साथ कृष्ण के वन-विहार और गोपारण आदि के प्रसंग रहते हैं और (३) निजुज-सीमायें जिनमें भीकृष्ण, राधा, तथा गौरीयों के प्रेम की अगाधता तथा शुद्धता अनन्त रूपों में अभिव्यक्त होती है । नन्दभवन और गौड़ की सीमाओं के अन्तर्गत कृष्ण रत्न, पूतनाचल शङ्कराक्षर, शिव का योगी वैष्णव, काशी-रत्न गोपवन-भारत ब्रह्मा आदि, स्वनाम्नादि-सीमा और दान-सीमा जैसी लक्ष्मीयें आती हैं, जिनका अभिज्ञान बहुत प्रथमिक और मोक्षप्रिय है । ये सीमायें वात्सल्यप्रदायिक हैं, और इनका आचार प्रमाणन आचार्य के कवियों की रचनायें हैं, या नन्दभवन

१—गुरुगार शिरीष गंध, दूरत नन्द ४०७८ ॥ ४९९९ ॥

२—महाकवि गुरुगार १० ११०

प्रभु ब्रह्मापाय अथवा गोस्वामी विश्वनाथ कश्चित्थि थे। अनेक अन्य ग्रंथों के आधार पर भी आज हम इन लीलाओं का अभिनय होता है, जिनमें 'ब्रजकिशोर', 'ब्रज विहार' और 'आइतागर' आदि प्रमुख हैं। निकुञ्ज छीन्नाएँ भी हमें दो प्रकार की मिलती हैं। इनमें से एक प्रकार की वे हैं, जिनमें भीराबा और भीकून्ज के प्रलय-संघ को व्यञ्जित करनेवाली विविध घटनाओं की नाटकीय रूप देकर उनका अभिनय किया जाता है और जिनके अंतर्गत छद्मलीलाओं का स्थान मुख्य है। दूसरे प्रकार की निकुञ्ज लीलाएँ वे हैं, जिनमें उनके प्रसङ्ग-जन्य विविध अदृश्य और अमूर्त भावों अथवा अनुभूतियों में से किसी एक को चुन कर अभिनय द्वारा उसे मूर्त और दृश्य बना दिया जाता है। पहले प्रकार की निकुञ्ज-लीलाओं के अन्तर्गत भीर-दरल-लीला, बंसी-स्निग्ध राजदान-लीला नौका-लीला गोमेवारी-लीला बीनाचारी-लीला और बोसी-लीला आदि अनेक प्रकार के प्रथम वर्ग के होते हैं, जो आज-कल ब्रजके राक्षसियों में बहुत प्रचलित हैं। इन लीलाओं के दूसरे वर्ग में भीषण लीला अवाधिक लोक प्रिय है। यहाँ अनेक वर्गों की एक-एक लीला के कथानक का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है, जो उनकी अत्यन्त विरोधताओं के निरूपण में लक्ष्यक होगा।

### नौकालीला

भीराबा के साथ एक दिन योगिनी रही केवले यमुना पार करके ग्राम तक चली जाती है। बहुत दूर जाने पर भी उस दिन उनकी किसी नहीं होती है अतएव उन्हें बड़ा दुःख होता है। इसी बीच दिन दल चढ़ता है। वे सीट कर अब तक यमुना-तट तक पहुँचती हैं तब तक पूर्व भी अस्तावसत पर पहुँच जाते हैं। देवसींग से तट पर कोई नौका भी नहीं मिलती अतः उनकी विषयता विनय होकर इस प्रकार प्रकट होती है—

मुँहों चढ़त पिप दूर नगरिया  
ना मरुग्रह न कोई नगरिया,

रही है पार की पार गुजरिया ॥

कहा कईगी युयती ग्राम की याद निहार निहार गुजरिया ॥

इस प्रकार लोचनी-विचारों हुई वे तब किङ्कर्तव्य-निमूद हो रहीं हैं, तब तब हम एक छोटे से बालक का कर धारण करके एक छोटी नौका

गने हुए दूर पर घास के मत्प में दिखाई देते हैं। क्या के कारण नहीं पट्टी  
दूर है, एक गोपी वृक्ष पर चढ़ कर उन्हें ध्यान से देखती और टिप केवट  
नम्र कर पुझाती है। कृष्ण कहते हैं, नौका नहीं आऊँगा—

‘ सुन्दर सुन्दर नवनिचा मेरी पट भूषन बहुत भार गुजरिया ।

निन्द आकर न उन्हें पार ले जाना स्वीकार न करके कहते हैं “ मेरी  
पट छड़ी-सी मुन्दर नौका तुम्हारे बलाभूषणों और दधि-भाण्डादिकों के भार से  
हूब जायगी क्या तुम देखती नहीं, पूर्व दिशा का प्रमथन बरत से परस्पर  
होकर बह रहा है, यमुना की तरंगें उत्पन्न होती जाती हैं, मेरे हाथ काँप रहे  
हैं और बहो बार-बार छूट-छूट जाती है—

उत धूरय पवन झक़ोर रही  
इत जमुना अधिक द्विगार रही,  
कर कभी छुटि छुटि काँप रही,  
हो धरमानेवाली। गुजरिया ।

बहुत अनुनय विनय के पश्चात् ये इन शर्तों पर उन्हें नौका में बैठाने का तैयार होने  
हैं कि पहले स्वामिनी उन्हें अपने धरन को लेने दें। इन पर राधा कहती है कि मैं  
इन सैन्य शक्ति के पीछर को अपने शरीर का शयन नहीं करने दूँगी। बहुत कहन  
मुनन पर वे कृष्ण को अपने पैर घोलने देती हैं। अथ कृष्ण पुनः बाधा उपस्थित  
कामे हुए कहते हैं कि मेरी नौका सब का एक साथ पार नहीं ले जा सकती  
इन्के हुए जाने की आशा है, इसलिए उन्हें एक-एक करके पार जाना होगा।  
गिरिों अनन्य प्रकार न प्रापना करके और प्रणामन देकर बड़ी कठिनाई से सब  
की सब एक साथ नौका में बैठन में मद्य हो जाती है। नौका चलती है ता  
केर-अप घाटी कृष्ण के सब राधा के मुखमन्त्र के चकार बन जाते हैं, इन  
र राधा अग्रगण्य हो गिरियों को उन्हें निशान करन का आदेश देती हैं। इसी  
रैन नौका मत्प पाग में पहुँच जाती है और कृष्ण का मयलार पुनः प्रारम्भ  
हो जाता है। ५ गिरियों से कहते हैं, इन दधिभाण्डों के भार से नौका बीच पाग  
में टगमग रही है, सब गारम मुक्त हो निग-निग कर इन्के यमुना में पेंक दा,  
नौका लम्बी हो जायगी, मुझमें भी नतल-शक्ति बढ़ेगी।’ विषय हाकर  
लपि रही करती है, किन्तु अब उनकी भीर में अग्र आगमिर्न बढाई जाती  
है। कृष्ण कहते हैं “ अरे नौका का भार तो अब भी दृढ़ता ज्यों हुआ। सुन्दर

इन भावपूर्णों का मार से मरी नौका विषय आक्रान्त है। इन्हें सीमा केँको ग्रन्थपा वह हूँ पावगी। तुम्हारे संकोच का मार भी कम नहीं है इसे भी दूर करो। जब तक संकोच है, जब तक गुम पार नहीं जा सकेगी।<sup>१०</sup> गोपिणी हारकर बाम्प पण उतार उतार कर केँक तो देती है, पर संकोच का निवारण के लिए क्या करें! बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दरार्द होकर कुण्ड करते हैं कि अष्टम से एक सब बसता हूँ, उसे जागे। यही तुम्हें पार उतारेंगा। मंत्र बताने के ब्याज से वे यथा के कान में 'कुण्ड' शब्द का उच्चारण करते हैं और फिर उनको वह भी बता देते हैं कि वे ही कुण्ड हैं। इस सीमा में संसार-सरिता को पार करने के लिए बिना त्वाग और बैराग्य के उचित गुरुमन्त्र के उदारे की आवश्यकता है, उसका निरूपण बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। इत्येकमे यह सीमा मन्त्रों को बहुत प्रिय है और कभी-कभी इसका अभिनय अनेक नौकाओं द्वारा रंगमंच बना कर समुद्र में विशेष समारोह के साथ किया जाता है।<sup>११</sup> यह सीमा कवित्विगोरीजीने गोपाळ मङ्ग गोस्वामी द्वारा विरचित 'कुण्डप्रेमामृत' नामक संस्कृत ग्रंथ के 'पारसीक' के आधार पर लिखी है।

### मौरा-सीता

यह चैतन्य-सप्रदाय के भेद कवि माधुरीजी, जो कन्योत्तामीजी के प्रिय शिष्य थे, की माधुरी वाणी के 'मंशीवत माधुरी' के एक प्रलेख के आधार पर अभिनीत होती है। इसका कथानक इस प्रकार है —

एक दिन समुद्र में नौका विहार करते हुए हृन्ग और यथा ने कमलों से एक दूसरे का गूँ गात किया—

कमलकनिके ककल रही पाँची परम रसाख।  
कमलकनिके अकल बने हर कमलकनिके की माख।  
कमलकनिके मूचण जहाँ तहाँ कलक मणि काँति।  
कमलकनिके शोभा निरखि निज कमलकन अघात।  
कमलकनिके नख कुँवर को कुँवरि करत सिमार।  
कमल-वरण की पाण पर राखे कमल संवार।  
कमलकन कामन कियो कलिका कमल मैगाह।  
कल माख नख कमल की कीनी मंग बनाह।

दिसा कमल से निकल कर एक झरर पहले कृष्ण की सरोज-माध पर गूँजता था, तब राधा के कमल से मुल पर आकर गुजार करने लगा—

खबरीक खलनि क आगे ते टरै न मैत्र  
खलित है प्यारी खल अँखल खसावही ।

परम कृष्टि दीट दिग ते न स्यारी हान,  
मामिनी मनलि भुज-सुता न । उड़ावही ।

तैमाई केवन कल वाजत कलि गति,  
साँवल करास हन-उत फिरि भावही ।

मधुप-ममूह जानि होत है विकल रूपो-रूपो,  
रूपो-रूपो मधुसूदन न मन सखुणावही ।

प्रियतमा की अत्यन्त विकल देखकर कृष्ण ने अपने ललाटे से उठ 'मृग मोद मत्त' झरर को उड़ा दिया और राधा से कहा—

मावधान हजे मिये विकल हात कैहि काज ।  
मधु-सूदन तो गृह गया कीने संग लमाज ।

पर इनने ही राधा मधु-सूदन का अर्थ कृष्ण समझ कर और उन्हें यरा हुआ मान कर सदा अत्यन्त व्याकुल हो जाती है, यहाँ तक कि ठामने बैठे हुए प्रियतम कृष्ण का भी ध्यान उन्हें नहीं रहता । अतएव वे धनेक प्रकार न निवृत्त-प्रयास करने लगती हैं—

हा मधु-सूदन, हा मधुर, हा मनमोहन लाल ।  
अहो कुँवर लोचन कमल गये कहाँ इहि काल ।  
कै सुली बनी कहँ गये सुमन हित थाह ।  
कै रुने रस हमने कै परिहान मुमाह ।  
हो प्रीतम हो प्राणपति, अहो प्रेम-प्रतिपाह ।  
रहे कहाँ भय लो कुँवर कीति गयो बहुकाल ।

गया भी पर विहायमा देखकर कृष्ण अत्यन्त निमित्त होते हैं, और प्राणतर्पण उठे बैठ न लगा लेते हैं । राधा को कण्ठ में ल्याते ही उनकी



मी बेसी ॥ दया हो जाती है और वे भी विकल हो कर पूछते लगते हैं कि मरी विधवा कहाँ है—

जब सुकुवारी भरि सीनी मंदवारी देखि,  
तहाँ ही बिहारी नू की प्यारी गति है गई ।  
कहूँ कीठ खारी कहूँ भ्रमकन कारी कहूँ  
पुखक पनारी सब मंगल मैं छै गई ।  
बिकल है भारी कछु सुधि न सैमारी कहूँ,  
कहाँ मरी प्यारी जब कठ खाह कै गई ।  
कहिये कहाँ की कहूँ न सुखकारी यह  
मिले हैं तुझारी कछु मेह गति है गई ।

श्री-मुगल की यह दया देखकर सब सखियाँ रोह कर जाती हैं और 'कोटि' उपायों द्वारा उनके इस भ्रम के निवारण का उपाय करती हैं, पण्डु उनके जंत्र मंत्र, तंत्र सब विफल हो जाते हैं। उन दोनों की यह विखूवावा सब दूर होती है जब सखियाँ कृष्ण के कान में—'उपा-वादा' और उपा के कान में 'कृष्ण-वृष्ण' करती हैं।

यह मत्स्यरूप धूम विखू की अवस्था है, भित्तों संयोग में ही विवाह का मंत्र खड़ा है, और जिस प्रेम-वैधियन करते हैं—

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रमोत्कण्डस्वभावात् ।  
या विस्लेपचिद्यार्तिस्तत् प्रमवैचिष्यमुच्यते ।  
अर्थात्

विह्वलन की अथ मिथुन की परे संधि सब जाह ।  
तो मन में सँस्रम भयेउ प्रेम विचिन्ति सुभाह ।

इसी प्रकार मानसिखा<sup>१</sup> में उपा की कृष्ण के प्यार्तिमय 'सत सुकुर प्रकाश' शरीर में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उनके अन्ध भी होने का भ्रम हा जाता है, पण्डुस्वरूप वे कठिन मान करती हैं—

निरखत निज प्रतिबिम्ब लग, मन सँस्रम जयाँ जानि ।  
उठन उठी कछु मान की और जिया सँग जानि ॥

# मत्स्यकामिनी धार्मिक नाट्य-परंपरा

बपय्य अपनी तेहि ठौर से कीना कठिन सुभाय ।  
 ऐनी जाय रिसाय के गर्बे सिद्धामन छाये ॥

कृष्ण अनुनय विनय करने हैं, भिराण्या और ललिता आदि अन्तरंगिणी लक्ष्मियाँ उन्हें सब प्रकार समझाती हैं पर उनका मान मग होना तो पूर, वह अप्रिकाधिक बढ़ता ही जाता है । जब सब प्रकार क प्रथम विरक्त हो जाते हैं तब ना पद मोड़कर प्रिये उनके शरीर की सहज दीप्ति द्रिय जाती है, राधा क वरन सस्य करते हैं । कृष्ण क शरीर में अपना प्रतिबिम्ब न देखकर वे लजित होकर मान छोड़ देती हैं— 'पट में न प्रतिबिम्ब देख्यो निज भंगनि का कलुक लज्जा रहती भीखे लाग डरिफ' । ऐसी ही अन्य भी अनेक लीलाय हैं । ऐसी सुलभतम—मन विधियों और अनुभूतियों को प्राय तीन चट तक प्रमिनीत होनेवाले स्वतन्त्र नाटक का रूप दे देना रासलीला की अपना कला है । नाट्याभिनय की ऐसी विशिष्ट परम्परा अन्यत्र नहीं मिलती परन्तु उस प्रसंग में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैष्णव मठों और सन्तों की दृष्टि से ही इन निरुक्त लीलाओं का तत्त्व ममता का सकता है और उनका स्व प्राप्त किया जा सकता है, अन्यथा इनमें स्व-स्व रूप परास्पर मल से जीव का मिश्रण करने और आनन्द रासलीला को स्व-स्वरूप परास्पर मल से जीव का मिश्रण करने वाली भावना मानते हैं । उनके अनुसार लीला राज्य में 'ली' का अर्थ है मिश्रण और 'ला' का अर्थ है प्राप्त करना । इस प्रकार से यह सिद्ध हुआ कि स्व-स्वरूप मल से जीव का मिश्रण प्राप्त कराये ठीकी का नाम है 'रासलीला' । अतः रासलीला ठस आध्यात्मिक प्रगति का प्रतीक है जिसके द्वारा मल अपन का समावेशन में लक्षित करता है । रास-नृत्य क सध्य-भ्रमण और अपसध्य प्रपन्न नाम के दो मर कह गये हैं । संभवत वे दोनों स्वकोप एवं परकीय भाव की आराधना क प्रतीक हैं । राधा महाभाव की प्रतीक है—'राधनोति इति राधा' । श्रीकृष्ण सध्य आराधना क प्रतीक है—'कर्ततेति इति कृष्ण' । १२ इस प्रकार प्रकट है कि मल का रास-नृत्यकृत्य पद परमोच्च आध्यात्मिक भावना के रूप में वर्णित हुआ ।

१—विष्यं लाति इति लीला । ली-मिश्रण, ला-प्राप्त करना ।

२—गुण्या करिए—कृति विनयति संनाराधनमिति कृष्ण का नि आध्यात्मिक भावनामिति कृष्ण परमात्मनि वर्द्धति ।—नापन्न मल इति 'भ्रमणविक' ।

## (२)

उपबृंह लम्बी प्रकार की लीलाओं का एक सुन्दर दार्शनिक आधार है। निम्नलिखित सूची में इसका निरूपण किया गया है, ये सूत्र शास्त्रियों-प्रणीत<sup>१</sup> कहे जाते हैं—

अथातो स्तो ब्रह्म ।१। सैवानन्दस्वरूपो ब्रह्मः ।२। तस्यामुकत्वात्तरात्मिका मक्तिः ।३। सा मन्वा १४। तेषामन्याभयसम्बन्धः ।५। तस्मात्सोपपद्यते ।६। सोऽपि क्रियामेवेवद्विधा ।७। गोक्षोभ स्थानमेव ।८। क्लृप्तादेवो दोषधोवत्त्वेन लभ्यते ।९। प्रेमदेवता च ।१०। व्यस्तगात् मलिम्यति ।११। परंपरैव ब्रह्मम् ।१२। निष्कामेन कर्त्तव्यम् ।१३। प्रवर्त विनैव फलचिन्तिः ।१४। नियमेन कर्त्तव्यम् ।१५।

अर्थात् रत्न ही ब्रह्म है ।१। वही आनन्द स्वरूप ब्रह्म है ।२। उसकी भक्ति अनुकरणात्मिका होती है ।३। यह नौ प्रकार की होती है ।४। उन सबका अन्वोन्माभय सम्बन्ध है ।५। उसके साथ उत्पन्न होता है ।६। वह भी क्रिया मेव से दो प्रकार का होता है ।७। गोक्षोभ ही उसका स्थान है ।८। वह क्लृप्ता देवी के पोम्बल द्वारा प्राप्त होता है ।९। इसका देवता प्रेम है ।१०। वह मूल संग से होना ।११। परंपरा से वह ग्रहण किया जा सकता है ।१२। निष्काम भाव से ही करना चाहिए ।१३। बिना प्रवास के ही <sup>२</sup>उत्पत्ति हो जाती है ।१४। नियम पूर्वक करना चाहिए ।१५।

ऊपर के अक्षररत्न से स्पष्ट है कि ब्रह्म रत्न स्वरूप है—‘रत्ना वै स ।’ आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही वह ब्रह्म है—‘कृष्यो ब्रह्मैव शास्त्रवत्म् ।’ उन्हीं ब्रह्म की अनुकरणात्मिका भक्ति से रास की उत्पत्ति हुई है, जिसका स्थान गोक्षोभ है । इस चिन्तन का परिपुष्ट रूप हमें वैष्णव-ग्रन्थों में मिलता है । उसके अनुसार रत्न-स्वरूप परमात्मा ही आत्माय-आत्मायक का रूप ग्रहण करके राधा और कृष्ण के रूप में प्रकट होता है—‘एकं व्योतिरभूत्प्रेमा राधाभावन रूपकम्’<sup>३</sup> राधा कृष्ण की आद्यादिनी शक्ति है—

१—दे० वि० का० कृत रास चर्चस्य में ‘राधादेव निरुक्तम् ।

२—कृष्णोपनिषद् १२२।

मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

यह स्वरूप सदा द्वै नाम

आनंद की आह्लादिनि स्वामा, आह्लादिनि व आनंद स्वाम ।

वैष्णव तंत्र की तीन शक्तियाँ मानते हैं—(१) अंतरंग (२) बहिरंग और (३) उदस्य । बहिरंग माया शक्ति है, उदस्य जीव शक्ति है, और अंतरंगा शक्ति वह है जो ब्रह्म के स्वरूप को अदृश्य बनाये रखती है । इस स्वरूपा शक्ति क भी तीन भेद हैं—(१) सत् की संचिनी, (२) चित् की संचिनी, और (३) आनंद की आह्लादिनी । आह्लादिनी शक्ति का ही मूल रूप भी शक्ति है—

प्रिया शक्ति आह्लादिनी, प्रिय आह्लाद स्वरूप ।  
तनु सुन्दरायन अगमग, इच्छा मन्त्री अनूप ।<sup>१</sup>

यह आह्लादिनी शक्ति ब्रह्मरूप—के अन्दर रहती हुई भी उनमें भिन्न रह सकती है । गोविन्दाँ उनकी काय-भूद मानी गई हैं । राधा की तीन मूर्तियाँ हैं—स्वमूर्ति परिणाम मूल (प्रकाशमूर्ति) और छाया । उनकी स्वयंमूर्ति ही गोलोक में कृष्ण के साथ निज-निकुल में नित्य-समुत्पन्न रूप में रहती है । उनकी परिणाममूर्ति कृष्णावतार काल में ब्रह्म में अवतरित होती है । इसलिए वैष्णव ब्रह्म में ही राधा की स्थिति मानते हैं क्योंकि वह राधा की परिणाममूर्ति है । ब्रह्मतर रहती स्थिति ही संभव नहीं क्योंकि सृष्टि में राधा नहीं सकता । इसलिए बाल्यविक राधा उस ब्रह्म में निज गोलोक धाम में ही होता है । राधा के भूद की ही राधा कहा गया है, अथवा जिसने राधा उदस्य होता है, उसे राधा कहते हैं ।<sup>२</sup> इसलिए राधा की नित्य स्थिति भी ब्रह्म में ही मानी गई है ।

इसी से राधा के तीन भेद हो जाते हैं—पहला अभाविक अथवा नित्य राधा दूसरा वैयक्तिक राधा और तीसरा लौकिक राधा जिस लंकाधुनिक कहते हैं । अभाविक अथवा नित्यराधा की योर्नन्द की लंका भी कहते हैं ।

१-दे० जीव गोविन्दायी कृत 'भागवत-संक्षेप' ।

२-महाभारती हरिश्चन्द्रा प्रिया जी ।

३- 'राधानां नमूने राधा' ।

४- 'रत्नेश्वरने परमेश्वर स राधा' ।

यह मगवान की अप्रकट सीमा है। यह रात गोष्ठी के दृश्य में स्थित निम्न कुन्दावन-धाम में होता है और परम रहस्य वस्तु कहा गया है। इस सीमा में मुर, जसुर, जीव झिली का भी प्रवेश नहीं, केवल निम्नलिखित परिष्कृत ही उसके अधिकारी हैं। इसकी भी तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था यह है जहाँ सविधेय सगुण ब्रह्म निम्न निम्न में निम्नवस्तु के रूप में रहते हैं जहाँ मान बिन्दु और भ्रम कुछ नहीं होता निर्दिष्टार ज्ञान्य मृगार की अवस्थित अवस्था काय प्रकाशित होती है। दूसरी अवस्था यह है जिसमें प्रकाश-रूप से जुगत मूर्ति अपनी सखियाँ—निम्न सिद्ध परिष्कृत—को सुख देने के लिए निम्न निम्न से बाहर निकलते हैं और उनके साथ रात करते हैं। जहाँ बिन्दु नहीं होता पर मान और भ्रम होता है। तृतीयावस्था भीत-सीमा तथा मान-सीमा यही होती है। तीसरी अवस्था यह है जिसमें नन्दगाँव और बरधाम की सीमाएँ होती हैं। नन्द-मगवान की सीमा अन्तर्गत बारहस्य-सीमा मानो जाती है। यहाँ यह धृष्टी तरह समस्त सेना आभ्यस्त है कि ये सब सीमाएँ निम्न हैं, और इनका भीमदमागन्तु आदि में वर्जित अवतार सीमाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। अवतार सीमाएँ नैमित्तिक रात के अन्तर्गत हैं, जो अवतार-काय में होता है। इन्हीं का वर्णन पुराणादि ग्रंथों में है और यह मगवान की प्रकट सीमा के अन्तर्गत है। आज्ञा के जो रात होता है, वह भीमानुकरण मान है। निम्न सीमा रात-रूप स्वरूप है। नैमित्तिक इसका प्रवाद है और सीमानुकरण प्रतिमा-स्वरूप है, जो साधना-समाधना और उपासना की वस्तु है और जिसके उद्देश्य तथा आदर्श का निष्कर्ष किया जा चुका है। ऊपर यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि अनुकरण निम्न और नैमित्तिक दोनों ही प्रकार की सीमाओं का होता है। हितहरिर्वंश हविषात तथा हविष्यात आदि निम्नार्क मगवानकी मगवान निम्न-सीमा के निम्न रात के उपासक से, उनके सगुणियों में मान की अप्रकट

१—कालिन्दी जैह नदी नीला निर्मलजल धारै ।

पम तल बेदान्त वेद्य हव रूप विराजै ॥

×

×

ता ब्रह्म महीं सीमायें पंकज कवि लागी ।

ताके मन में ठहिरि हीत जो कोऊ कहमागी ॥

भी हृदयन योगरीठ गोविन्द निभाता ।

तहाँ मगवान ज्ञान सदन सेवा की आता ॥

## मध्यकालीन सामाजिक नाट्य-परंपरा

निम्न निम्न-वर्ग की उपासना जमी आ रही है, गौरीय सम्प्रदाय में प्रकट ब्रह्म  
रस की उपासना होती है।

यदि हम राधा कृष्ण के पारस्परिक आस्था-आस्थादक सम्बन्ध पर  
दृष्टि डालें, जिसका संकेत ऊपर किया जा चुका है, तो यह सम्प्रदाय भेद अधिक  
तथा हो जाता है। निम्नांश और राधाकृष्ण की मानते हैं कि आस्था भी राधा  
और आस्थादक कृष्ण है, इसीलिए कृष्ण अनेक छद्म धारण करने तथा राधा  
के लिए अभिषार करने हैं। जाबा प्रितकृष्ण दास विभिन्न 'रस छद्म  
विनोद' और 'वदानीय लीला' आदि प्रयोगों का उत्प्रेषण हो चुका है, जिनमें  
कृष्ण का राधा के विषे विभिन्न छद्म धारण करने का वर्णन है। इन छद्म  
लीलाओं के अन्तर्गत 'नौकालीण' जैसी कुछ रहस्यमयी लीलायें भी हैं जिनका  
बायनिक आधार जितना पुष्ट और स्पष्ट है उनका अभिनय भी उतना ही  
हृदयहारी और विचित्र होता है। इनके विरहित वस्त्रम और गौरीय सम्प्रदायों  
के अनुसार आदराग कृष्ण और आस्थादक राधा रानी हैं। इसीलिए भीराबा  
भट्टाचार्य ने निम्न के लिए अनेक छद्म वेप धारण करती तथा अभिषार  
करता है, विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा अभिषिक्त रामलीलाओं में अनेक रूपों में  
यह भेद लक्षित होता है। निम्नांक सम्प्रदाय में निम्न-वर्गीय, विशेषतः  
छद्म अधिक प्रयुक्त है, और वस्त्रम सम्प्रदाय में बावर्त्त तथा सख्य-भाव की  
लीलाओं पर अधिक अनुगम है। निम्नांक सम्प्रदाय के रस में कृष्ण का सुकृद  
बाद और सुहा रहता है जो राधा की प्रभावता का सूचक है। वस्त्रम सम्प्रदाय  
के रस में कृष्ण के सुकृद की दाहिनी लटक रहती है जिसने कृष्ण का प्रभावता  
प्रकट होती है।

कृष्ण और राधा के सम्बन्ध में विभिन्न सम्प्रदायों की निम्न पर  
विचार करने में एक और तथ्य प्रकाश में आता है। वह यह है कि अधिपति एवं  
रत्न के भेद में कृष्ण में नायक के गण भावों का आसार दिया गया है। जब  
उनका राधा पर प्रकट अनुगम है, तब वह दक्षिण नायक है। राधा के माय  
है माय तब अन्य गोपीयों पर उनका समान अनुगम होता है, तब वह अनुकूल  
नायक है। उनमें शठ और पुष्ट नायक के भी सब गुण हैं जिनके बहुत मात्रा  
उदाहरण कृष्ण-भाषित में दिए जा सकते हैं। उन्नी परत राधा में भी नायिका  
के स्वर्गीय और परमेश्वरी गणों भावों का आशय दिया गया है। निम्नांक

सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण का विवाह राधा से होता है और उनमें स्वीकृत्य की सभी दशाओं और अवस्थाओं की स्थापना की गई है। राधाकृष्ण सम्प्रदाय में भी ऐसा माना गया है। गौड़ीय सम्प्रदाय में राधा एक अन्य गोप की पत्नी बताई गई है जो कृष्ण के प्रेम में परम विरक्त, गह-बागी संन्यासी की तरह कृष्ण की आज्ञा और शोक की मर्मांश छोड़कर सर्वत्र समर्पण कर देती है। इस निष्ठा-भेद से आपार पाल-भेद तथा रक्त-भेद की उत्पत्ति हुई है और सत्त्वानुकूल्य का कथन-पक्ष अधिक प्रौढ़ बना है। एक ओर तो उत्तरीय के छोटे-बोटे कथानकों में व्यापकता और विविधता का उन्निबद्ध हुआ है और दूसरी ओर एक ही शृंगार-रस के परिमित क्षेत्र में वैविध्य के समानेय का अनन्त अवकाश निकल सका है।

यहाँ यह न भूल जाना चाहिये कि राधा काम-राग-शून्य प्रेमकीला है जिसके मूल में उपनिषद् का सर्वात्मवाद है। अतः राधा का स्वीकृत्य और परकीयत्व नैतिकता की पार्थिव दृष्टि से नहीं समझा जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है राधा ब्रह्म की शक्ति है जिसके साथ ब्रह्म स्थिरावस्था और ब्रह्मांड में समान रूप से लीला-क्रीडा करता है। इस लीला-क्रीडा की प्रत्यूक्ति सम्प्रजन अपने भीतर करते हैं जिसका सुन्दर विभव देव के इस रूप में मिलता है।

हो ही भज कृष्णभजन मोही मैं वस्तुतः सदा,  
अमुना तरंग दयाम रंग अचलीन की।  
बेझीबद तब नठ नागर नदत मो मे  
रास के विकास की मधुर ध्वनि सीन को।  
बहुँ और सुन्दर सपन बन देखियत,  
कुशल में सुनिगत गुंजनि अखीन की।  
मरि रही मनक बनक ! तान ताखन की  
तनक तनक तामे बनक पुरीन की।

१—५ क० श्री पूर्णेश्वर दासपुत्र सिंह की उक्ति भागवत पुराण, १९०१, पृ ११४ ११५—

“..... The heart of man is the seat of this Lila which can be reproduced at all times in the heart of every real Bhakta..... The Lila is constantly performed in Goloka and it is produced over parts of Brahmanda according to the will of Krishna.”

अतः स्वर्गायत्न और परकायत्न दोनों भाषना और अनुभूतिरापेक्ष भाव है। स्वर्गीयत्व आत्मा और परपाया की सहज अभिमतता की उस तीव्र अनुभूति का प्रतीक है जिसकी अभिव्यक्ति कबीर आदि ने अपने को 'रामकी बहुरिया' कहकर की है, और परकोपात्र आप्यात्मिक सीधना के मार्ग पर अभिभार की उस स्थिति का सूचक है, जब एक व्यक्ति देवी जीवन की सीमा में प्रवेश करत ही पार्थिवता के वैशेष-अवैशेष सभी कथन स्वतः छूट-छूट जाते हैं।

सौत्रानुसारकमें भी उसकी आप्यात्मिकता धर्मुत्पन्न रहनेके लिए अभिन्न स्वभाव की कठोर नियम बनाए गए हैं। ब्रह्म के ब्राह्मण बाउंड ही, जिन्हें यशोपवी-रादि सरकार हो गए हैं, राधा-कृष्ण और गारिवी का स्वस्म बांरण कर सकते हैं। धर्मविहारी को आवेद्यावतार माना जाता है, और अनेक प्रैरक से यह आशा की जाती है कि वेद सौत्रानुसार करने वाले स्वरूपों में आगबधुद्धि रहते। स्वरूपों के सामने कोई उपायन पर अवका अचिन्तित मुद्रा में नहीं बैठ सकता। नंद के समय। राधब्रह्म के बीच से निष्पन्ना एक अनुचित माना गया है। सर्व प्रेक्षात्र के सामने अंतरंग रहस्यमयी निहु-बहोलाका अभिन्नय वर्जित है और छिने में बाह्य यत्र के पेशाव-छिन्ना होना मर्यादा-विरुद्ध है। एवं ही नहीं, पर कुछ उल्लंघनियों आत्र एक इन नियमों का निष्ठा से पालन करती कपी आई हैं।

१—गाठ गाठ ये दुआहनी बंजल जाय।

मेरे मिह आम्ह राधा राम भरतारा।

बाधि कंमल बहि बेरी रहितै ब्रह्म गिपाने उषारा।

राम राह सो बूलेहू पीहमी अत भेद भाग्य हवाय।

१—उ० क० आनन्द कुमार स्वामी द्वारा 'राजपूत वैदिक' अध्याय १।—

'This Krishna is constantly represented as betraying the folk minds of Braja—the souls of men—from their lawful attachment. .... Christ also condemned the illusion of family'

( येर आगने दुह वर )



। ११ १५

( १ )

ऊपर उलझीला के जिस स्वरूप का विवेचन किया गया है उसका उद्भव और विकास मंत्र में ही माना जाता है, परन्तु उलझीला किसी न किसी रूप में देश के प्रायः सभी प्राणों में पाई जाती है। आत्मा के मनीपुर-प्रान्त में उलझा का बहुत प्रचार है जिसमें राधा और कृष्ण के प्रेम प्रसंगों का अभिनव होता है। वे सर्वदा काष्ण्यम्बरधर्य होते हैं, और उनकी मूक प्रेरणा धार्मिक होती है। मनीपुर के प्रत्येक प्राय में राधा-कृष्ण, कृष्ण-बलराम अथवा कृष्ण-वैष्णव का एक मंदिर खड़ा है, जिसके समीप-मंडप में वे स्तंभों होती हैं। इन मंदिरों में उलझीला नामक एक नृत्य-प्रोत्सव भी होता है, जो निरन्तर बाद्य विनों तक चलता रहा है और जिसमें प्रसिद्ध वैष्णव कवियों के पदों का गान भी साम-साध चलता है। कभी-कभी नर्तकों के साथ गावकों राधा नामों का स्मरण भी होता है। परन्तु प्रायः नर्तक ही स्वयं गायन करते हैं। नर्तक, गायक, बाद्यक सबकी वेशभूषा अत्यन्त सुन्दर और बर्ग-वैविध्य के कारण आकर्षक होती है।

"However deeply men may believe.....in morality there must ultimately come a day for each when it will be realized that these are but a game and its rules which the greater life transcends: it is then that reputation becomes of no significance, the soul is made para-kīya, and goes forth on abhishara into the darkness of the unconditioned, to yield herself to Him who waits at the place of trusting. And though the soul—Radha, Sophia, Beat, or by whatever name we speak of her—may return to the world and its dharma, she will strain at last to that bhava—sammlan or inner union which is the *sva-rupa* or own form of Kṛishna, and knows no severance. The momentary ecstasies and illuminations which this life affords us are intimations of that perpetual reality which we have temporarily forgotten. This is the significance of the Vaishnava symbolism. — .....In other words, the games in the Kṛishna Lila are like Jerusalem and other names employed by Blake and the Western mystics to indicate states."



बासकों को दिखा दे रास-वर्चन का प्रत्यक्ष अनुभव करो। मत्त के स्वामी हरिदास भी वही कविपुत्र बन्य महारमाओंको संग लेकर मत्त गंग और यहाँ से हंस माधुर माधुर्य बासकों को केन्द्र राखीला की। वे बासक शिवा के हाथ में लया के लिए समर्पित हो गए। यहाँ से फिर वह बरसाना के निकट 'कल्याण' नामक ग्राम में गए और यहाँ अवसरण और वेमकरण नामक दो माधुर्य अनुभवों को दिखाने के लिए उनके द्वारा रास-वर्चन का प्रचार किया।

रास-वर्चन के प्रत्यक्ष के समान में इसके कुछ निम्नी-सुखी अनुभूति बल्लभ समारंभ में प्रचलित है। इस अनुभूति का पूरा विवरण करता ग्राम के प्रसिद्ध रास-वर्चन भी विद्वानों का एक रास-वर्चन भी रास-वर्चन में अपने 'रास-वर्चन' ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। रास-वर्चन परंपरा का निरूपण करते हुए उन्होंने लिखा है—

नगर स्वाध्याय निकल एक ग्राम चरेका नाम ।  
 पमंड देव को मुकुट को धरत अथो सिद्धि ग्राम ॥  
 खरहू रास आछा भई भरी न काहू आम ।  
 बिस्तु स्वामि समत करन मयुरा पहुँके आनि ॥  
 तह संमत कर पुन मुकुट सबै धरत ग्राम-प्रीति ।  
 पुनि निर्मायो रास अत प्रथमहि वर्णन कीन ॥  
 पुनि पमंड स्वामी गए ग्राम करदक्ष माहि ।  
 अवसर करत अब वेमकर द्विजभाता, पुन ठाहि ॥  
 तित्तहि हुआकर अत कही करहू रास मदि देव ।  
 मदि बिनि देव परम्परा समा सबै ग्राम हीन ॥<sup>१</sup>

इस मठ के अनुष्ठान भी एक पमंडदेव अथवा पमंडस्वामी रास-वर्चन परंपरा के प्रथम कर्ता माने जाते हैं। ठमका अन्य स्थान परमाय का दीनद्वन गाँव मरीं बरन् आश्विन का भिक्षुपर्वी परमा नामक ग्राम कहा गया है। वह उनाय माधुर्य के, पर मिथ्या के समग्राम में निज पमंडदेव की प्रतिष्ठा है वे योहू दे। निज निनी पमंड देव को मुकुटों का वर्चन हुआ और रास करने की

मध्यकासीन 'मार्मिक' नाम-परंपरा

आधा पिंडी उन्ही दिनों धूम्रानके सुपविष्ट सप्त भी स्वामी हरिदास को भी  
रसनीता के उद्धार की प्रेरणा मिली—

रास बिहारी छाछ दूधन से दूर भयी लख ।  
तिमिर प्रसित भ्रम भाष नाहि ज्ञाने कोऊ तप ॥  
भी स्वामी हरिदास ज्ञान खलिता बसु तिनको ।  
मकद, कुरत मई रास मइल से आधा जितको ॥

भी स्वामी हरिदास सिद्ध कल और प्रसिद्ध संगीत कलाकोविद थे ।  
वायनाचार्य ताननेन तक इनका शुकन सस्मान करते थे । रसनीता के उद्धार  
की वैसी प्रेरणा से अनुप्राणित हो वे मध्यप्रदेश बल्लभाचार्य के पास गए और  
उनसे रास-वृत्त को ज्ञान में प्रकट करने का उपाय करने की प्रार्थना की ।  
आचार्य भी अग्रिम ने मातापाम बहादुर प्यान किया । उसी समय मुकुंद  
उठते हुए दिखाई पड़े । उस समय मध्यप्रदेश की समा में वायना राजा  
उपस्थित थे । उन्होंने मुकुंद को उठते हुए देखकर आश्चर्य-चकित होकर पूछा,  
हर क्यों उठ रहे हैं ? इस पर महाप्रभु बल्लभाचार्य ने उत्तर दिया—

रास मीठा करो कही यह बात जतावन ।  
बहि यामे कछु बोय यही है हमारी कामन ॥  
ताम्रपत्र में मुहर करो सखे हमई किन ।

तब स्वामी हरिदास कही जब देर करत किन ।  
छिन पल हमको कोटि करप सम पीतत है इत ॥  
'माधुर भक्ति पेरायन तिनकी निकट बुलाये ।  
परम मतो हम देख जग बाबन समसाये ॥  
ताही छिन से गये छाछ नामक ले लाये ।  
की कदि तिनकी महिमा जो भी मनुष्य बुलाये ॥

१—देखो 'रास-गुरु' ।

२—परी ।

३—परी ।

इस प्रकार रात में अमिनय करने के हेतु माधुर बाबूजी के बासकी के आ-  
 जाने पर स्वयं मध्यम बुद्धिमान् ने कृष्णस्वरूप का नृत्य कर दिया तथा  
 स्वामी हरिदासजीने राधा स्वरूप का—

धी स्वामी हरिदास<sup>१</sup> कियो भू गार<sup>२</sup> प्रियो<sup>३</sup> के<sup>४</sup> ।  
 की<sup>५</sup> आचार<sup>६</sup> देण कियो फोहन<sup>७</sup> रसिया के<sup>८</sup> ॥  
 पुनि<sup>९</sup> वृंदावन भाय<sup>१०</sup> रस मीठक निमीन्यो<sup>११</sup> ।  
 वेद पुराण पाक<sup>१२</sup> तबन<sup>१३</sup> रीति बकाणो<sup>१४</sup> ॥  
 ता मयि युगल<sup>१५</sup> किछोर<sup>१६</sup> भायि पुनि सखि पधरोई<sup>१७</sup> ।  
 आपुन<sup>१८</sup> कियो समाज<sup>१९</sup> कृष्ण<sup>२०</sup> धीस्य<sup>२१</sup> तब गार<sup>२२</sup> ॥  
प्रहारास<sup>२३</sup> तब कियो<sup>२४</sup> काक<sup>२५</sup> मये<sup>२६</sup> अन्तर्धाना<sup>२७</sup> ।  
यन<sup>२८</sup> बन<sup>२९</sup> हूँ हूँ फिरे<sup>३०</sup> सखी<sup>३१</sup> करि<sup>३२</sup> करि<sup>३३</sup> गुण<sup>३४</sup> गानर<sup>३५</sup> ॥

इस प्रकार बहुत अभेद्य करने पर श्री कृष्ण-स्वरूप और राधा-स्वरूप का  
 कुछ भी फरक न लगाया जा सका । तब ही इन बासकी के अभिभावक माधुर  
 बाबूजी ने अत्यन्त मृदु होकर अपने पुत्री के प्रसन्न करने का आग्रह किया ।  
 जब वे मरते-भरने की उधत हो गए तब आचार्य मध्यम बुद्धिमान् ने उनके  
 पुत्री को कृष्ण के विरह के निर्वृत्त लेज्जे हुए दिखा दिया ।<sup>१</sup> तब ही वे उरह  
 माधुर बाबूजी इस अपेक्षार से अभिभूत होकर अपने-अपने घरों को चला गए  
 और आचार्य मध्यम ने ब्रम्हदेव को आज्ञा दी कि तुम अब में अपनी विष्णु-  
 परम्परा स्थापित कर रात-रात का नृत्य करो—

अपने<sup>१</sup> अपने<sup>२</sup> घरन<sup>३</sup> माधुरन<sup>४</sup> कियो<sup>५</sup> पदावन<sup>६</sup> ।  
 ब्रम्हदेव सो कियो<sup>७</sup> सुनो<sup>८</sup> गुण<sup>९</sup> किर<sup>१०</sup> पराधन<sup>११</sup> ॥  
 तुम जन के वासीन<sup>१२</sup> ग्राहि<sup>१३</sup> कीजै<sup>१४</sup> द्विप<sup>१५</sup> राधा<sup>१६</sup> ।  
 तिनसो<sup>१७</sup> यह मादन<sup>१८</sup> हूँ बदाओ<sup>१९</sup> सुनि मम<sup>२०</sup> भाषा<sup>२१</sup> ॥  
 ऐसी आज्ञा पाई<sup>२२</sup> गये अपने अपने<sup>२३</sup> घर ।  
 ब्रम्हदेव पुनि गये<sup>२४</sup> ग्राम<sup>२५</sup> सजित<sup>२६</sup> ।<sup>१</sup> अह<sup>२७</sup> करहम<sup>२८</sup> ॥  
 उद्य<sup>२९</sup> करण<sup>३०</sup> अर<sup>३१</sup> करण<sup>३२</sup> से<sup>३३</sup> आता<sup>३४</sup> द्विपद<sup>३५</sup> ।  
 तिनहीं<sup>३६</sup> सो यह रास<sup>३७</sup> प्रथा<sup>३८</sup> बनी<sup>३९</sup> सुनो<sup>४०</sup> रसिक<sup>४१</sup> बरना<sup>४२</sup> ॥

मध्यकावीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

उदय करण को पुत्र नाम चिकम हो जावो ।  
मति प्रताप बल पौरुष घरनो नाय म हाको ॥  
मोदग साह के समय रास तिनहीं ने कीनो ।  
परबो दीनो ताहि मारि करवर नम छीनो ॥

'रासनाख' के रचयिता श्री राधाकृष्ण के अनुसार इस प्रकार रासानुकरण की परम्परा चली । जब तक यह परम्परा उपकोटि के सन्तों और साधनाशील भक्त रासचारियों के आश्रित रही तब तक उर्वरक आध्यात्मिक स्वरूप भक्तुण्य रहा, पर कुछ समय उपरान्त जब यह परम्परा शुद्ध मनोरंजन चाहन वाले लोगों से प्रभावित हुई तो उसमें अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गई—

तिनहे पीछे सुनौ रनिक इस सवे चिनसिगा ।  
— दम, काम मद, श्रोम रासप्रानि उर पसिगो ॥  
हवे गय सब निहंन्द रासचारी मवही ते ।

— झट करी मय रीति। श्रोम वस है तबही ते ॥ —  
जाति अजाति कुजातिन के पावक ले के सयो ।  
कृष्ण के चरि वने वामे मारेण पाव्यो तेव ॥ —  
महा नीच मति दुष्ट कामधस असुर समाना ।  
गनक देखता आदि गाय पामर मनमाना ॥

— कई लोग घरनी जाय दुष्ट भस रीति बनार ।  
भोका खात डूब बने मृगव्य सवे लछार ॥ —  
इहि बिधि जग में सुने मो प्रियत वपे रम मेय ।

विष बिहारी लाल पुनि प्रकट कियो यह पंच ॥ —  
श्री राधाकृष्ण ने इस प्रकार रासानुकरण-परम्परा का सचित्र चित्रण प्रस्तुत करने हुए बताया है कि उनके पिता पितादेवान रासचारी ने उनपुत्र विकृति से उमरा उदार किया । इतने सिद्ध है कि रास परले बेबल भगवद गुनगान के निर होता था, उनका कोई आर्थिक भ्रष्ट म था । अपिक लोग के समे या बने के कारण ही उपर्युक्त विकृति उत्पन्न हुई ।

इस प्रकार 'संस्कृत' के रचनात्मक, 'संस्कृत' के 'संस्कृत' का भव  
 नहीं था। 'संस्कृत' और 'संस्कृत' को प्रयोग किया है। 'संस्कृत' का भव  
 प्राकृत्य का भव भी 'संस्कृत' में ही दिया है।

दक्षिण पश्चिम कोय में मन्तराज है माम ।  
 मन्तराज सेरा कोय में भक्ति प्रसिद्ध हो ठाम ।  
 लहो ध्यात गुह सरित वर प्रकट है तह ।  
 नारद जी के भक्तानि मन्तराज नाम ॥  
 'संस्कृत' भूगुणोत्तरी सुदृष्टि रश्मि सेर सुख साहि ।  
 संवत् सोरह है जलो आठ अथिक्त है माहि ।

जब हमकी 'संस्कृत' बाज्य भरत की है। 'संस्कृत' चम्पे जव में बाहर तीर  
 'संस्कृत' के उद्धार और मन्तराज की 'संस्कृत' की 'संस्कृत' प्राप्त हुई।

मन्तराज भवति सुभी भवति बाजी, मन्तराज में बाज्य वसो तुम शानी ।  
 राधा कुंड-बोल निज मेरो, सीरे तुमकई सुखदे वसैरो ॥  
 तीरव वर मन्तराज में है अति, कान्त सुमाह ॥  
 करहु माह तिनको, बहारा, पुनि मन्तराज की, बिस्तारा ॥

इस प्रकार, 'संस्कृत' बाज्य भरत की 'संस्कृत' को 'संस्कृत' किया—

पुनि तिदि जल को कियो पवाना, लेकत मन पुर वन सरि नामा ।  
 वर्ष तीन में जल में जाये, राधा कुंड रहे 'पुनि छाये ॥  
 सात वर्ष तह बिचरेह सरि संवत् से वस संवत् माहि ।  
 बरताने माहि कैंसे, मामा पास कियो मन्तराज सुख पाया ॥  
 लह सचह से बौरह साडी, मन्तराज, 'संस्कृत' कनमाडी ।  
 करहु रास रस सीति उजागर जेहि कारण मन्तराज गुणभागर ॥  
 लह सचह से विम-बोलीह, राम रूप कल्याणह राह ॥  
 वासी रहे, बरहका करे, किय विषय उपदेश बनेरे ॥

१. पुनि एक वसन्त नृतक वर, बाह्याह की व्यास । -  
 नाम, मन्तराज, 'संस्कृत' बाज्य, 'संस्कृत' रश्मि जल बाज ॥ -

# मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

ताते विविध नृत्य सिखवाई राम बिलाल प्रकटता गाई ।  
 कुछ दिन पाछ मयठ बिचारू, प्रगण्ड भाष तदपि संभारू ॥  
 राम बिलाल स्वामिनी प्यारी, मखी भाष बिन नहि अधिकारी ।  
 प्राचन दम्पति स्त्रीला माहीं परिचारक कोठ प्रबिधत माहीं ॥  
 रद्वै पान तेहि मयमर, बानी जे स्वामिनि को कृपा निवानी ।  
 प्रभु के मक्त अनेक विधाया, उज्जल मक्ष्य दाम रम हाता ।  
 तिन कहैं सुन उपजे जेहि मांती प्रभु पद में रह मन दिन राती ॥

जेहि प्रकार हरि प्रम हू मिथिल मक्त मन होइ ।  
 निज निज रुचि हरि माव कर सुख पावै सख काइ ॥  
 मन विचारि हरि को कछित स्त्रीलन को अनुकार ।  
 रसिक नारायण भट्ट ने प्रचित कियो संभार ॥

उपयुक्त विवरण से यह प्रकट होता है कि भी नारायण भट्ट न मी  
 लीलातुकरन के प्रचार के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कथला के ही दो  
 भासनों का शिष्य बनाया । वज्रम नामक बादशाह के एक अवकाश-भात नर्तक  
 ने मी उनको अपने कार्य में सहायता मिली, परन्तु कुछ समय पश्चात् उनको  
 यह अनुभव हुआ कि सांसारिक मायाय अनधिकारी व्यक्तियों के प्रवेश और  
 मयमर के काल्य रास की प्राप्ताधिकारता लौकिकता से सम्प्राप्त होती जा रही है ।  
 उन्होंने सोचा जब मननीय दाम्पत्य-लीला में पर-प्रवेश निरिद है तो मगवान्  
 की पास दिव्य दाम्पत्य-लीला को सार्वजनिक बनाकर उसे सपुर रास के अनभि  
 राग व्यक्तियों के लिए उपभोग्य बना देना समाज के निये अनिष्टकर ही होगा ।  
 इसलिए उन्होंने रुचि और प्रवृत्ति-मेव से विभिन्न प्रकार के भक्ति के प्रापिकारियों  
 के लिए उपायन सफल और दास्य आदि रासों की मगवान् की लीलाओं की  
 अनुकूलि का प्रचार और प्रसार किया ।

राणाह्वय के इस विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि मात्र शिव परितो  
 ही रागीय प्रवृत्ति है वह उनका मूढ शक्त नहीं है । स्वामी हरिदास के  
 स्वामि ब्रह्मपार्ष के सहयोग से केवल राणातुकरन का प्रचार किया य  
 जिन रास पुनिया में समुदा तट पर गोरियों के साथ मगवान् कृष्ण  
 भाषोक्ति रागीया का ही एक निरिचल विधि में अग्निपारम्य प्रभु  
 किया जाता था । जय लीलाओं का समारोह उनमें नहीं होता था । मा  
 ब्रह्मपार्ष के आदेश से सम्भवतः इसी राणातुकरन का प्रचार पमदे



धर्मद्वेषात्मी ने कथला के उदयकरण और लोमकरण को विध्वंस बनाकर ब्रज में किया। जब भी मारमण मन्द ब्रज में आये, तब वहाँ इसी कर्म गठानुकरण का प्रचार था। परन्तु गणपुरसाग्रित इस विशुद्ध आध्यात्मिक धीमा क अपिचारियों क प्रभाव के कारण इसने धीकिकता का प्रवेश होते देखकर उन्होंने इसके धाव-साय नाना धीकानुकरण का प्रचार किया।

बहुत प्रयत्न करने पर भी ऐसे प्रमाण उपलब्ध नहीं हुए जिससे उपयुक्त दोनों मतां में से किसी एक को निव्यात्मक स्वीकार किया जा सके। उपयुक्त दोनों ही मत धर्मद्वेष नामक किसी आचार्य को रसलीला का प्रवर्तक मानते हैं, और कथला-ध्याय निवासी उदयकरण तथा लोमकरण की व्याख्या से इस परंपरा का प्रवर्तन स्वीकार करते हैं। संभव है निम्नांक एवं सलम दोनों ही संम्प्रदायों के धर्मद्वेष एक ही व्यक्ति हो और संम्प्रदायमेव से भिन्न रूपों में उनके संभव की जनप्रतियों का प्रचार हुआ हो। यह भी संभव है कि धर्मद्वेष द्वारा रसलीला के प्रवर्तन के संबंध की कोई पुरानी अनुभूति खली आ रही हो, जिससे दोनों संम्प्रदायवाला न परस्परिक प्रतिद्विष्टता और लीचतान के आवेग में अपने ही संम्प्रदाय को रसलीला के शास्त्र का भेद देने के लिए अपनी सुविधानुसार लोह-मरोह किया हो। यह भी संभावना है कि यह जनप्रति पहले इनमें से किसी एक ही संम्प्रदाय की संघर्ष प्रववा उद्भावना रही हो और फिर बाद की वृद्धे न भी अपनी बलि के अनुकूल इसका उपयोग किया हो। इन दोनों मतां की प्रतिद्विष्टता बहुत पुरानी है जिसका प्रमाण यह अभिलेख है जो दोनों संम्प्रदायों में इस बात को लेकर खला था कि बरखाने की बूढ़ी लीला में कृष्ण के मुकुट की

१—सन् १९३४ में बरखाने की बूढ़ी लीला के अवसर पर कथावन के निवासी ठाणुओं से विवाद होने पर कथला के रसधारियों ने ध्यामह किया कि हम निवासी गृहकार (बायें मुकुटादि) न केकर बल्लभी गृहकार (बाहिना मुकुट) करेंगे। इस पर बड़ा विवाद हुआ और दो वर्ष तक मुद्दमा चलता था। इस विवाद के बीच लुव मारलीट हुई और कायगिग तक की नोबल कार्य।

२—ब्रज में प्रचलित इस समय की तक से प्राचीन धीमा परंपरा बरखाने की है, यह अपनी प्राचीनता के कारण बूढ़ी धीमा कहलाती है। यह मात्रपद की सुरत नीली से पूर्णमा तक होती है।

लटफ दासिनो हानी पादिए या पायें । यह शनों ही मत स्वामी हरिदास जी  
 के नाटक और महात्म्य में सम्पूर्णता का प्रवचन मानते हैं । स्वामी हरिदास  
 सोनहरी शरी में हुए थे इनके ही सदाय में इनकी जन्मतिथि सं० १५१०  
 वि० के माघ-सप्तम्य शुक्ल को अष्टमी मानी जाती है ।

सीता मठ भी नारायण मठ जी को रास का आचार्य मानता है । ये  
 भी चैतन्य महाप्रभु के पार्श्व भी गदाधर पण्डित के शिष्य थे । रास सर्वस्वकार'  
 ने इनके विषय में जो कुछ लिखा है, उसकी पुष्टि गोस्वामी जानकीप्रसाद  
 त्रिपिरत सरस्वत-विरचित 'नारायणाचार्य चरितामृत' से होती है । गोस्वामी जानकी  
 प्रसाद का समय सं० १७९२ के आसपास माना जा सकता है । गोस्वामी जानकी  
 प्रसाद के उक्त ग्रन्थ से निर्दिष्ट होता है कि श्रीनारायण मठ का जन्म दक्षिण  
 भारत में गदाधरी जी के मठ पर मथुरा के निकट किसी गाँव में सं० १५६८ में  
 हुआ था । ये नाटक जी के अवतार थे । पार्श्व वर्ण की भक्तस्था प्राप्त करते ही  
 उन्हें भी उपाध्याय ने उद्योग दिए और भक्ति दी कि शिष्य स्वदास्य जाकर मेरी  
 सेवाओं का प्रकाशन करो । तबलुगार के ब्रह्म में आए, और वहीं ब्रह्मज्ञान के  
 पान औन्नत्य में निवास किया, तबन्तर भी कृष्णानन्द ब्रह्मचारी से दीक्षा लेकर  
 ब्रह्मज्ञान ब्रह्म के सब भागों और सीता-स्थानों का उद्घाटन और उद्धार किया ।  
 उक्त ग्रंथ के उद्धरणों से सात होता है कि भगवान ने जिस स्थान पर जो  
 सेवा का भी श्रीनारायण मठजी ने उस स्थान पर उही सेवा के अनुरूप  
 की परंपरा अंगन का उपक्रम किया, और धर्म-रचना आदि की परंपरा का  
 भी प्रवचन दिया ।

‘अथ नारायणाचार्य श्रीकृष्णाशास्त्रप्रणीतः,  
 आचार्य सुवरे वाक् कृष्णाश्री विधाय च ।  
 राधायेश तथा वैकुंठ गोपीयैर्वाङ्मयापरान्,  
 रामसीतां न मयत्र कारयामास दीक्षितः ।  
 रंगदेवी मन्त्रादिष्टा दीक्षितं पश्यते यतः,  
 रामोऽस्मये च गोपीनां जमीप दीक्षितोऽयम् ।  
 कुत्रचित् गोपययेत् नारायणं आरयन् हरिः,  
 तथा सीतां च कृष्णान् वाङ्मयाश्रयमादिनाम् ।  
 मोक्षिहारयन् चापि राधा गोपीविदेश च,  
 भगवाच्चतुर्विधा लीला या या कृष्णद्वन्द्वद्वार ह ।

बमइश्वादी ने कच्छला के उदयकरण और लोमकरण को धिम्प बनाकर प्रज में किया। जब भी नाट्यमंच मन्दिर नज में आये, तब वहाँ इसी समय रातानुकरण का प्रचार था। परन्तु सधुरताभिष इस विशुद्ध आध्यात्मिक लीला के अधिकारियों के प्रभाव के कारण इसमें लीङ्गिकता का प्रवेश होते देखकर उन्होंने इसके साथ-साथ नाना लीङ्गानुकरण का प्रचार किया।

बहुत प्रयत्न करने पर भी ऐसे प्रभाव उपलब्ध नहीं हुए, जिनसे उपभूक्त दोनों मतों में से किसी एक को निर्वाहात्मक स्वीकार किया जा सके। उपभूक्त दोनों ही मत बमइश्व नामक किसी आचार्य की राखलीला का प्रवर्तक मानते हैं, और कच्छला-ग्राम निवासी उदयकरण तथा लोमकरण की कथावता से इस परंपरा का प्रवर्तन स्वीकार करते हैं। संभव है, निम्नार्क एवं कलम दोनों ही समझायों के समकक्ष एक ही व्यक्ति हों और संस्कारमेव से निम्न कला में उनके संभव की जनमुक्तियों का प्रचार हुआ हो। यह भी संभव है कि बमइश्व द्वारा राखलीला के प्रवर्तन के संबंध की कोई पुरानी अनुसृष्टि लब्धी का रई हो, जिसका दोनों संस्कारमहाशयों ने परस्परिक प्रतिद्विष्टता और लीङ्गानुकरण के आवेष्ट में अपने ही समझाव की राखलीला के शक्त्य का भेद देने के लिए अपनी मुक्तिानुसार लीङ्ग-मार्ग लिया हो। यह भी समाधान है कि यह जनमुक्ति पहले इनमें से किसी एक ही समझाव की संरक्षि प्रपचा उद्भावना ली हो और फिर बाद का वृत्ते में भी अपनी रक्षि के अनुकूल इसका उपयोग किया हो। इन दोनों मतों की प्रतिद्विष्टता बहुत पुरानी है जिसका प्रभाव यह अभिनिर्ग<sup>१</sup> है जो दोनों संस्कारों में इस बात को छेड़र सला था कि बरखान की बूरी<sup>२</sup> लीलाओं में कृष्ण के मुकुट की

१—सन् १९१४ में बरखान की बूरी लीला के अवसर पर कदाचन के निवासी छात्रों से विवाद होये पर कच्छला के राखलियों ने आप्रह किया कि हम निवासी गृहकार (बायें मुकुटादि) न छेड़र बरखानी गृहकार (दाहिना मुकुट) करेंगे। इस पर कहा विवाद हुआ और दो बरें तक मुकुटमा बलता था। इस विवाद के बीच लख मारपीट हुई और परपरिय तक की मौफ्त आई।

२—जब में प्रथमिव इस समय की लख से प्रचीन लीला परंपरा बरखाने की है, यह अपनी प्राचीनता के कारण बूरी लीला कहलाती है। यह मारप्<sup>३</sup> की शुक्ल नीली से पूर्णिमा तक होती है।

## मध्यकाशीन धार्मिक नारायण-वर्णन

सदय दक्षिण हार्नो चारिण या बायें। यह दोनों ही मत स्वामी हरिदास जी के माध्य और सहारा में सम्मिलित का प्रवर्धन मानते हैं। स्वामी हरिदास जी कोनहरी शरी में हुए थे इनकी ही सहाय में इनकी जन्मतिथि सं० १५३७ वि० के माध्य शुक्ल की अष्टमी मानी जाती है।

श्रीनारायण मठ जी को रास का आचार्य मानता है। ये भी चैतन्य मठप्रभु के पारंपरिक भी गवाहर पंडित के शिष्य थे। 'रास सर्वप्रकार' १ इनके विषय में जो कुछ लिखा है, उसकी पुष्टि गोस्वामी जानकीप्रसाद लिखित संहृत-ग्रंथ 'नारायणाचार्य चरितामृत' से होती है। गोस्वामी जानकीप्रसाद का समय सं० १७३९ के आसपास माना जा सकता है। गोस्वामी जानकीप्रसाद के उक्त ग्रंथ से विदित होता है कि श्रीनारायण मठ का जन्म दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के तट पर मयूरा के निष्ठ किरी गाँव में सं० १५८८ में हुआ था। ये नारायण जी के अवतार थे। बापू जी की अवस्था प्राप्त करते ही उन्हें भी राधाकृष्ण ने दर्शन दिए और अम्मा दी कि श्रीम कृष्णन जाकर मेरी मन्ताओं का प्रकाशन करो। तदनुसार वे ब्रज में आए, और वहाँ बरसाने के पास जैनप्राम में निवास किया, तदन्तर श्री कृष्णदास ब्रह्मचारी से दीक्षा लेकर उन्होंने ब्रज के सब बानों और स्त्री-स्थानों का उद्घाटन और उद्धार किया। उक्त ग्रंथ के उद्धरणों से शत्रु हाता है कि भगवान ने जिस स्थान पर जो चीज का थी, श्री नारायण मठजी ने उस स्थान पर उन्हीं स्त्री के अनुकरण की प्रणय चराने का उपक्रम किया, और श्रीमती-रचना आदि की परिपक्वी का भी प्रवर्धन किया।

अथ नारायणाचार्यः श्रीकृष्णाष्टावक्रोक्तिः,  
प्राप्त्यं सुन्दरं धाम कृष्णयश विधाय च।  
राधायशं तथा श्री गोपीधनोत्सवापरान्तं  
रामलीलां च समग्रं वारणस्याम दीक्षित।  
रंगदेवी मन्त्रायिष्टा दीक्षिते यत्तत्ते यतः,  
रामोत्तमये च गोपीनां समीपे दीक्षितायमी।  
शुत्रयिन् गोपयेयन् गावामान् चारयन् हरिः,  
तथा स्त्रीणां च कृष्णान् कालीयदमनादिनाम्।  
मांसिकारबन्ध कापि राजा गोपीमित्रेय च,  
भग्या यदुचिषा स्त्रीला या या कृष्णदयकार ह।

सर्वा लीलाभुकराय कारयामास नारत्न  
 य प्राप्नुव्यता सर्वे मुनयो ये भूतव्रता ।  
 तत्प्राप्नुमसुता सर्वे लीलादर्शनार्थं सुरैः,  
 यस्मिन् दिने यद्यसौ वा कृष्णो लीलां चकार ह ।  
 तस्मिन् दिने स्थले तस्मिन् मद्रोमाङ्कर मम ह,  
 कारयामास तां लीलां बालैः कृष्णादि विपिमिः ।  
 ततः प्रभृति सर्वत्र यनेषु पञ्चमेषु च  
 भ्रमे तीर्थेषु कुजेषु रासलीला यभूवह ।  
 भव नारायणाचार्यो भजयार्ता चकार ह,  
 सर्वेश्वर वैष्णवैर्विप्रेरभ्येक्षयापि जने सह ।<sup>१</sup>

यह सब करने के बाद उन्होंने कृष्ण-निवासी ब्राह्मणों को शिष्य बनाया और बल्लभ नामक एक नर्तक की सहायता से, जो बादशाह की नौकरी छोड़कर उनका अनुगत हुआ था उन लोगों के बीच उन्होंने रासलीलाभुक्त्वा एवं रासलीला परंपरा चलाई। यद्यपि मंत्र की बूढ़ी सीमा के आदित्य के त्रियम् में १५३४ में विप्लव स्वामी संग्रहाय और निवासे संग्रहाय के अनुपायियों के बीच हुआ पर पर इस सीमा के कायाचार्य और प्रवर्तक भीनारायण मह ही प्रतीत होते हैं। इसके कतिपय प्रथम प्रमाण कुमुद सरोवर (गोबर्द्धन) के विद्वान् उक्त बना कृष्णदास<sup>१</sup> जी ने प्रस्तुत किए हैं। उनका कहना है कि बरताना, बड़ी उच्च सीमा होती है, की वास्तविक मौमोदिक स्थिति को प्रभाव में लाने का भेद यह नायकन जी को ही है। बरताने की अपेक्षा आन भी भी अपेक्षा जी है, उनके प्राकृत्य और भीनम्भायी भयपना का कार्य या नायकन मह जी ने किया। बड़ी सीमा का सीमा सम्बन्ध भी लादिली जी से है, और बड़ी सीमा भीनायकन मह जी के द्वारा विरचित 'प्रमाण'।

१—देखो 'नारायणाचार्यपरिताम्य' तीसरा आल्पाद ।

२—देखो 'रासलीलाभुक्त्वा और भी भीनारायण मह' पृ० १४

३—उक्त प्रमाणों पर माहर्षि कृतान् मुनि ।

अथ च बहो प्रयाग नारायणविनिर्मिताः ॥

यत्र कृष्णस्य अन्नादिलीला सर्वाः प्रकीर्तिताः ।

दानलीला च कृष्णस्य मीमांसा च परस्परम् ॥

## मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

नाटक के आधार पर अथावधि अभिनीत होती है। इतना ही नहीं, नारायण मठ जी ने अपने प्रथम 'ग्रजोत्सव पत्रिका' में बूढ़ी लीला के प्रत्येक विधान का सविस्तार निर्देश किया है। किस तिथि को किस स्थान पर कौन सी लीला की जाय इसका संतुल्य विचार उन्होंने किया है और बूढ़ी लीला का कार्यक्रम अनन्त घरों में घ्राज्य और इतका अनुगत है। 'बूढ़ी लीला' के अंतर्गत घ्राज्यकल तकसे अत्यंत लीला 'मठकी कोहनी लीला' है, जो माद्रशुक्ल तैलस को होती है। इसके विधि विधान का पूरा निर्देश भी नारायण मठ जी के उक्त ग्रंथ में मिलता है—

'तत् माद्रशुक्ल अयोध्यायां प्रातः समये सांघरी खोरिमायासी ही पर्वतो परित्यक्तौ लीला कथयन्ती। तन्मस्त्यां सांघरीखोरिमाया राधा गोपीभिः सादर विभामात्रं मस्तकोपनिषाद्य विष्णुनाम्नवतात्पूर्वमागतस्तथाता। ततः श्रीकृष्णः ब्रह्मन्मनसित्वा दानं वयस्ये। मय्याह पयतं बीलाकृतास्तस्मिन्चाहविमलं मंजूवा इति भक्ष्य।' (यं यं प्रथम प्रकाश) बरसाना-विषयौषी के जमींदार भीनारायण मठजी की शिष्य-प्रतिष्ठा पर्वरा में है। अतएव, यदि परसने की बूढ़ी लीला का घ्राज्य राखलीना मानी जायगी तो भीनारायण मठ को ही उसके आदि प्रवक्तृ सिद्ध होने की अधिक सम्भावना है। घ्राज्य के सब पुण्ये राखलीना घ्राज्य की उत्पत्त्या के उपेक्षा में समाचारण करते हुए भीनारायण मठ का स्वरण करते हैं—

मठ नारायण अति सरस घ्राज्य संवत्स लों हेत।  
 ठौर ठौर रखना वरी निकट जालि संवेत ॥  
 साहित्यिक नाटकों के उपलब्धता में भारत-वाच्य जोर कर भारत के प्रायःसर्वत्र की अभ्यर्चना की जाती है। संभव है, उसी परंपरा का पालन करते हुए बरिष्ठ राखलीना संगणनरण में राखलीना के आयाचार्य की वंदना करते हुए और श्रुति के श्रुत में उच्च होने का उपक्रम करते हो।

'मठमाल' के प्रतिद्वंद्वी टीकाकार भी विदादाज जी के विवरण से भी रोलायी जानकी प्रकाश के उपलब्धों की पुष्टि होती है—

मठ भीनारायणस्य मये घ्राज्य पराएण,  
 जाय जाहि घ्राज्य तद्वा घ्राज्य करि ग्याय है।

हिन्दी नाट्य-साहित्य और रंगमंच की दीर्घता

बोधि के सुनावें इहाँ अमुक स्वरूप है व  
 लीलाकुंड धाम धाम प्रकट दिखाये हैं।  
 ठौर ठौर राम के विहास छै प्रकट किये,  
 जियें सौं रसिक जन कोटि सुख पाय हैं।  
 मधुग से कही चखो येनी पूछे येनी कहाँ  
 सँघे गाँव आये बोधि छोट को खसाये हैं।

इनके प्रतिरिक्त 'लघुनाट्यमहचरितामृत' ग्रंथ में भी जो संमन्त  
 इन सबसे पुराना है, भी नाट्यम मंड की क राखलीखानुकरण के आचार्यत्व  
 का उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup>

'महामात्र क इतरे टीकाकार म्हायज प्रताप सिंह ने भी अपने  
 मल कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि नाट्यम मंड की लेख्य "जहाँ  
 जहाँ जो चरित्र और विहास मगवत् किये गये सब चरित्र किये, मानो श्रीकृष्ण  
 अवतार को नवीन कर दिया और सब तक यह राखलीखा की परंपरा  
 वर्तमान है" ए० ए० ए० भाउल ने भी मधुग डिस्ट्रिक्ट मेन्शायर 'नामक  
 ग्रंथ में लिखा है कि कल और सनातन गौत्वायी की शिष्य-परंपरा में नाट्यम  
 मंड की ने ही पहले मूळ बनवाया और राखलीखा की परंपरा प्रतिष्ठित की।<sup>२</sup>  
 इन उल्लेखों से राखलीखा के उद्भव और विहास की परंपरा में श्रीनाट्यम  
 मंड का ऐतिहासिक महत्त्व सिद्ध है। नाट्यम मंड की परंपरा कोटि के  
 शास्त्रविद विद्वान् थे। उन्होने संस्कृत में अनेक ग्रंथों की रचना की है।  
 मंड का ऐतिहासिक महत्त्व सिद्ध है। नाट्यम मंड की परंपरा कोटि के  
 शिष्यनाथ चक्रवर्ती जैठ परबर्षी प्रकाश पंडित ने भी उनकी छवियों का  
 उल्लेख किया है।

इस प्रकार जब हम तीनों सर्जों का समग्र समीक्षण करते हैं तो कई  
 निष्कर्ष निकलते हैं। परन्तु यह कि ईसा की चौदहवीं शती में राखलीखा की

- १ प्रसन्न मगवानाह मधुग कुंज पुष्प ।  
 राधाकृष्णविहारविषया काम्याणि निश्चितम् ॥  
 इत्युक्त्वा सुहृदं ब्रूया कश्चन पुरासिद्धम् ।  
 कृष्णलीलाविहारवि कारयामास वै मुनि ॥
- २ ..... It was their disciple, Narayan Bhatt who  
 first established the Banjara and Rasliha.

## मत्स्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

वर्तमान अभिनयात्मक परंपरा का आविर्भाव हुआ। मर्त्य ने इसको अपनी उपासना का साधन बनाया था। दूसरी बात यह कि इन परंपरा के विकास में स्वामी हरिदास और धीनारायण मठ का महत्वपूर्ण योग था। तीसरी बात यह कि ये तीनों ही मत करतना नामक ग्राम के ब्राह्मणों के सहयोग से राम धारी-परंपरा का आरम्भ मानते हैं—कदाचित् सभी उद्यम करने और येम करने का आदि राखवारी मानन के पक्ष में है। अतएव अथ विवाद का विषय केवल यह जाता है कि राख-परंपरा का आयाजार्थ किसे स्वीकार किया जाय ?

निर्वाह और बल्लभ दोनों ही संप्रदायों में परमेश्वर देव को राखनील का प्रवर्धन माना जाता है। ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे, यद्यपि एक ही व्यक्ति का दोनों संप्रदायों ने अपन अपने वैशिष्ट्य के रंगों में रंगा है, यह बात स्वयं नहीं। परमेश्वर के सम्मुख में ठठ संप्रदायों के जो उल्लेख मिलते हैं उनका कोई ऐतिहासिक आधार यद्यपि प्रामाणिक अनुमोदन प्राप्त नहीं होता। नाम-इस के 'मन्त्रमान' में उस काल के सभी महत्वपूर्ण मर्त्य या स्वर्गों की प्रमुख विशेषताओं एवं वृत्तिल का उल्लेख संक्षेप में संकेतित हुआ है। उसमें बल्लभ नरेश को राम में ख बरसाने बाप अवश्य कहा गया है पर परमेश्वरी की क विषय में इतना ही कहा गया है—

पृथ्वायाम की माधुरी इन मिल आस्वादन कियो।  
यमही युगल किशोर अथ मृगम जीव हृदय लियो।

इस विषय-स्तर में भी यह स्वीकार किया है कि 'नामाजी के इस छप्प कि भगवान् क परमेश्वरी और राखवर्धन' क यद्यपि निर्वाह संप्रदाय द्वारा सामने लगे गए परमेश्वर अथवा यमही स्वामी एक ही व्यक्ति हैं। ये इन दोनों में ही भिन्न दो ही भेदों के व्यक्ति भा हो सकते हैं। यदि ये एक ही हो, तो भी 'मन्त्रमान' के परमेश्वरी या नाथ राम का कोई प्रत्यक्ष यद्यपि पक्ष सम्बन्ध निर्दिष्ट या स्वीकृत नहीं हुआ है। 'मन्त्रमान' के उद्देश्य यद्यपि अत्यन्त मंजित है कि भी उनमें नामादास जी ने प्रत्यक्ष मंत्र के जीवन की मुख्य उपलब्धि का लक्ष्य अवश्य कर दिया है। विद्यानाथ जी यद्यपि 'मन्त्र कर्म' क रचना

१—मृत्यु नाम गुण निधुन राम में हम बरमायन।  
अथ हीरा कृष्णादि यत्नि दम्पनिदि रिमायन।



महायज प्रताप सिंह ने भी इनका नाम कहीं नहीं रिया है। मुखदास जी ने धर्मवी नाम के एक संत का उल्लेख अवश्य किया है पर रावजीब्राह्मण के साथ उनका भी किसी प्रकार का सम्बन्ध कहीं संकेतित नहीं हुआ है। इसलिए मुखदास जी के 'धर्मवी' ही ब्रह्मसंघदाय अथवा निर्वाक संघदाय के ब्रह्मदेव हैं, यह अनुमान करने का कोई आधार नहीं मिलता। उससर्वत्र प्रथ में ब्रह्मदेव का उल्लेख अवश्य मिलता है पर वहाँ वह पुराने विवरण का सम्बन्ध है यह प्रथम वह एक जनधर्मियों के संरक्षण से अधिक मुखदान नहीं समझ या एकठा जब एक इसमें प्राप्त विवरणों की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो जाती।

स्वामी हरिदास जी भी नारायण मठ में रावजीब्राह्मण की आराधना करते माना या उल्लेख है। दोनों ही महत्त्वा ऐतिहासिक यद्वापुस्त हैं। स्वामी हरिदास संगीत के परमाचार्य थे वे समझेन एक कथक माने जाते हैं। रावजीब्रा में उनकी विशेष रुचि होना प्रामाणिक ही समझा या उल्लेख है। जब मैं एक जनधर्मिय यह भी है कि स्वामी हरिदास जी ब्रज के वास्तव्यों को इकट्ठा कर उन्हें भाग्यस्थ से उजा कर तथा गेरु आदि से रंग कर उनकी कृष्ण भाव से उपासना किया करते थे। आगे चलकर इसी का विकास श्रीमाम्निष के रूप में हुआ। स्वामी हरिदास नारायण मठ से अथवा में बड़े भी थे। स्वामी श्री हरिदास जी का जन्म बृन्दावन के अति निम्न स्थित राजपुर ग्राम में स. १५३० में माद्र शुक्ल अष्टमी का हुआ था। श्री नारायण मठ का जन्म वैशाख शुक्ल १४ (वर्ष १५८१) को स. १५८८ में दक्षिण भारत में मदुरा ग्राम में हुआ था और वे स. १६०९ वा स. १६०३ में ब्रज आए थे।<sup>१</sup>

१—धर्मवी रस में मुखर्षि रक्षा ब्रह्मदेव निज धाम।

बड़ीवड तट वास किज गावे दयामा दयाम।

—मुखदास कृत भक्तनामावली टीका<sup>१</sup>

१—अथर्व्या पापितो भद्रतया प्रादुर्भाविकम् ॥

राष्ट्र सीमा ब्रज रावजीब्राह्मण प्रकथय ॥

एवं हर्ष रोषमानो दीक्षितः स दिने दिने।

वर्द्धन तार्क्ष्येन मतो यौवर्द्धन मितिम् ॥

( श्री श्री नारायण मठ चरितम् पृष्ठ ११-१० )

इसने सिद्ध है कि बिना समय के-प्रारंभ में आए, उस समय स्वामी हरिदास १५-१६ वर्ष के बच्चे हो चुके थे। ऐसी स्थिति में यदि स्वामी हरिदास रात-सीतानुकरण, मयवा सीताभिनय के प्रदर्शन की ओर अभ्युक्त हुए हों, तो उन्हें ही सीतानुकरण का आधा-आधा मानना होगा। परन्तु ऐसा मान लेने के मार्ग में बरते बड़ी बाधा यह है कि स्वामी हरिदास जी मात्र-सेवा-परचय मक व। आग्रा शहर के पूर्व में स्वामी हरिदास जी के टहनी संस्थापक के आचार्य से मिला था। उन्होंने मुझे यह बताया था कि रातसीता के प्रदर्शन में स्वामी हरिदास जी ने केवल मात्र-सेवा की ही बात कही है, अनुकरण की नहीं। वे कुबचिहारी (बिधा-नियत) के नियम विहित के उपासक थे, जिसे इस संस्थान के मुख्यालय पर गोपनीय रख आते हैं। यदि इस साम्प्रदायिक निष्ठा को प्राथमिक माना जाय, (उत्ते प्रामाणिक न मानने का कोई कारण नहीं) तो हरिदास जी को ब्रह्म रातसीतानुकरण की अभिनय-परिषद का प्रवर्तक बनाने का यह आग्रह उचित नहीं प्रतीत होता। एक विद्वान् ने हरिदास स्वामी के एक पद के आधार पर स्वामी हरिदास और राधावल्लभी संस्थापक के प्रवर्तक में हरिदास जी को एक साथ रात में गान करते हुए मान लिया है, और इस पद के आधार से उन्होंने स्वामी हरिदास को स. १६०६ के पूर्व के रात में उपस्थित मान कर उन्हें ही रातसीतानुकरण का प्रवर्तक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु एक विद्वान् द्वारा दक्षिण पद और उनकी एक पदों इस तथ्य को सिद्ध नहीं कर पाती। कारण, इस पद से यह बात सिद्ध नहीं हो पाती कि इसमें निर्दिष्ट योत्सव में रातसीतानुकरण आध्यात्मिक कल्याणियों का अभिनय ही हुआ था। यह पद अधिक से अधिक इसका ही बताया है कि इन योत्सव में हरिदास और हरिदास जैसे महान् मन्त्रों ने, मन्त्र किया था, और उन दोनों से राधावल्लभी की सीताओं का भावना में रिपट होकर गायन-वादन किया था। किसी प्रकार का अभिनय भी इस योत्सव का अंग था, इस प्रकार का कोई उचित रूप से कम इस पद में नहीं मिलता। आग्रादास जी ने भी हरिदास जी को जो प्रशंसा मिली है, उसमें उन्हें 'गामकना गन्धर्व'।

१-देसिके की मूल, विद्यार्थी सोलहवीं शताब्दी 'स्वामी हरिदास और रातसीतानुकरण', 'विराणा'—प्रकाशक, १९६५.

२-हरिदास हरिदास गार्ग्य, सुपर प्रवीण राधावल्लभी।

महात्मा प्रताप सिंह ने भी इनका नाम नहीं रखा है। मुबदास जी' में पमण्डी नाम के एक सत का उल्लेख अवश्य किया है, पर राजपूतानापुराण के साथ उनका भी किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं संकेतित नहीं हुआ है। इसलिए मुबदास जी के 'पमण्डी' ही बरखम संप्रदाय अथवा नियार्क संप्रदाय के पमण्डदेव हैं यह अनुमान करने का कोई आधार नहीं मिलता। 'राजर्षि' ग्रंथ में पमण्डदेव का उल्लेख अवश्य मिलता है, पर वहाँ ठीक पुराने विषय का सम्बन्ध है, यह ग्रंथ तब तक जनसूक्तियों के संकलन से अधिक मूल्यवान् नहीं समझा जा सकता जब तक इसमें प्राप्त विवरणों की प्रामादिकता सिद्ध नहीं हो जाती।

स्वामी हरिदास और श्री नारायण मह में राजपूतानापुराण का आयाचार्य कितने माना जा सकता है? दोनों ही महात्मा ऐतिहासिक महापुरुष हैं। स्वामी हरिदास संगीत के परमाचार्य थे वे जानते थे कि वे गुह मान जाते हैं। राजपूताना में उनकी विशेष प्रतिष्ठा होना स्वाभाविक हो सकता था। राज में एक जनसूक्ति यह भी है कि स्वामी हरिदास जी राज के बाजनों को हकका कर उन्हें मोरपक्ष से लवा कर तथा घेक आदि से रंग कर उनकी कृष्ण भाव से उपासना किया करते थे। आगे चलकर इसी का विकास श्रीकामिन्य के रूप में हुआ। स्वामी हरिदास नारायण मह से अलग-थलग में बड़े भी थे। स्वामी श्री हरिदास जी का जन्म बुन्देलखण्ड के अति निकट स्थित राजपुर ग्राम में सं० १५१७ में मात्र शुक्ल अष्टमी को हुआ था। श्री नारायण मह का जन्म वैशाख शुक्ल १४ (वर्ष १५८८) को सं० १५८८ में दक्षिण मध्य में मधुरा ग्राम में हुआ था, और वे सं० १६०९ वा सं० १६०९ में राज आए थे।<sup>१</sup>

१—पमण्डी इस में सुमहि रह्यो बुन्देलखण्ड निज ग्राम।

वैशेषिक तब जात किय गाये इयामा इयाम।

—मुबदास कृत पञ्चनामावली टीका<sup>२</sup>

१—अथर्षा पापिती महत्तया द्वादशवर्षिकम् ॥

गच्छ हौम' नरै राजपूतानाग्रामं प्रकम्पय ॥

एवं कृष्णं सेवमानो वीरिन् स दिने दिने।

वर्णद्वयन सार्धेन प्राप्नो योवर्द्धनं गिरिम् ॥

(श्री श्री नारायण मह चरितम् पृ० १३-१४)

इसने सिद्ध है कि जिस समय वे जन्म में आए, उस समय स्वामी हरिदास १५-१६ वर्ष के बूढ़ हो चुके थे। ऐसी स्थिति में यदि स्वामी हरिदास यत्न-शीलानुकरण अपना शीतलामिनस के प्रथम की ओर उन्मुख हुए हों, तो उन्हें ही शीतलानुकरण का ध्यानाचार्य मानना होगा। परन्तु मान लेने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह है कि स्वामी हरिदास की याच-सेवा-परवण भक्त थे। मगधम धार्य वर्ष पूर्व में स्वामी हरिदास की के टीही सदाशय के आचार्य से मित्रा था। उन्होंने मुझे यह बताया था कि राखीला के घरों में स्वामी हरिदास की ने केवल याच-की ही सेवा करी है, अनुकरण की नहीं। वे कुंभबिहारी (विद्या-विप्रलय) के मित्र मित्र के उद्यतक थे, जिसे इस संप्रदाय के प्रसिद्ध परम गोपनीय तत्त्व मानते हैं। यदि इस साम्प्रदायिक मित्रा को प्रामाणिक माना जाय, (उक्त प्रामाणिक न मानने का कोई कारण नहीं) तो हरिदास को को बनाने राखीलापुत्रस्य की अभिनव-परंपरा का प्रवर्तक बनाने का यह आग्रह उचित नहीं प्रतीत होता। एक विद्वान् ने हरिदास व्यास के एक पद के आधार पर स्वामी हरिदास और राखीलापुत्री संप्रदाय के प्रवर्तक द्विज हरिदास की को एक साथ राख में गान करते हुए मान लिया है, और इसी पर के आधार से उन्होंने स्वामी हरिदास को सं० १९०६ के पूर्व के राख में उपस्थित मान कर उन्हें ही राखीलानुकरण का प्रवर्तक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। पर उक्त विद्वान् द्वारा उल्लिखित पद और उनकी वक्त पदमि इस समय की सिद्ध नहीं कर पायी। कारण इस पर से यह बात सिद्ध नहीं हो पायी कि इसमें निर्दिष्ट योत्सव में राखीलानुकरण अपना कृष्णजीताओं का अभिनय भी हुआ था। यह पर अधिक से अधिक इतना ही बताया है कि उन योत्सव में हरिदास और हरिदास जैसे महान् महान् थे, ध्याय किया था, और उन दोनों ने राखीलापुत्री की लीलाओं का ध्याना में निरत होकर गायन-वादन किया था। किसी प्रकार का अभिनय भी इस योत्सव का अंग था, इस प्रकार का कोई संकेत कम से कम इस पर में नहीं मिलता। नामादास जी ने भी हरिदास जी की जो प्रशंसा लिखी है, उसमें उन्हें 'गानकला गम्बर्' १-२

१—देसिने भी सरल विद्या योत्सवों विधित 'स्वामी हरिदास और राखीलापुत्रस्य', 'विद्यापार'—यमकूर, १९३५.

२—'हरिदास हरिदास गानकला, सुपर प्रवीन राखीला गानकला' १९

अपराध क्या है, पर 'सीतानुकरण' के साथ उनके प्रत्येक या अपराध संबंध का स्निग्ध नहीं बिना है—

युगल नाम सो मेम अपत नित कुंजबिहारी ।

अवदोक्त रहे कैकि सखी सुख के अधिकारी ॥

गातकछा गधब स्वाम-स्वाम को तोये ।

असम भोग अभाव मोर मर्कट तिमि पोसे ॥

गुपति द्वार छोड़े रहैं दर्शन आछा सास की ।

आसपीर उधोतकर रसिक छाप हरिदास की ॥

इस प्रपंच में महात्मा हरिदास जी की 'कैकि सखी सुख के अधिकारी' भी कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वे प्रिया-प्रियातम के नित्य-निर्गुण के शुद्ध नित्य विहार के उपलब्ध हैं, जिसमें ब्रह्म संबंधों 'स्वास्तिकी' व्यवस्था का अभाव नहीं। हरिदास जी की वैद्वान्त्रिक विद्या के अनुसार नित्य-निर्गुण का शुद्ध नित्यविहार हृद-स्वरूप माना गया है और 'स्वास्तिकी' वृत्ता अर्थात् व्यवस्था खोतक्य मानी गई है। अनुकरण और अभिनय इसी व्यवस्था का हो सकता है, हरिदास जी की नित्य निर्गुण की नित्य विहार की उपलब्धता की निश्चय ही मानना की गच्छ है। अमरास जी ने हरिदास जी की प्रशंसा में उन्हें 'भावनालीन' लिखा है, उससे भी इस बात का पुष्टि होती है—

नमी नमी हरिदास बुद्धाविपिन-वासकर

प्राग सरयस सदा बकि विहारी ।

स्वामा-स्वाम सुगच्छरूप माधुर्ये ॥

रसिके रसिहार प्रेमावतारी ॥

परम वैरागनिधि निधुवन असत सदा

भावनालीन सो प्रवीण भारी ॥

कामना वचनसह सकल संतापहर

अमरास अछि कल्याणकारी ॥

इस प्रकार जब हरिदास जी की नित्य विहार की मानवी उपलब्धता या परमा की वैद्वान्त्रिक दृष्टि से सीतानुकरण के प्रकार के 'साथ संगति महीं बैठती,

तो फिर भी उन्हें ठोका प्रचारक और प्रवर्तक कहते रहना हरिदास जी जैसे परम अनन्य भक्त की गौरव-वृद्धि का निमित्त नहीं माना जा सकता है। अतएव मेरा अनुमान यह है कि जिन ठोकेलों के आधार पर हरिदास जी को रासलीला का प्रवर्तक कहा गया है, वे रासलीला का अनुकरण होने का अर्थदिग्ग निदेश नहीं करते। वे भक्तों के समग्र के ऐसे आयोजन प्रतीत होते हैं, जिनमें रासलीला का जीवन और गानमात्र होता होगा। हरिदास स्वयं के उल्लिखित पद में भी यही स्थिति है, और एक अन्य पद में भी उन्होंने इस बात को अधिक स्पष्ट कर दिया है—

अनन्य सृपति श्री स्वामी हरिदास ।

श्री कुतबिहारी सेये बिन एक छिन न करी काह की भास ।

सेया सावधान ज्ञानिदिन गावत सुपर रसरस ॥

संप्रदायीय संत व्याकृति ब्रुवदास जी ने भी यही किया है कि स्वामी श्री हरिदास जी नित्य विहार का गान करते थे, उनके द्वारा अनुकरण होने का उचित उद्देश्य नहीं दिया है—।

रसिक अनन्य हरिदास न गावो नित्य बिहार ।

सेवा दू में वृरि करि विधि निषेध अछार ॥

—'भक्तनामावली' ।

भक्तों के ऐसे समग्र जिनमें भगवान् की प्रीति-भावों का वाचन, वादन, जीवन आदि होता है, अब भी प्रबल होते हैं। मुझे बताया गया है कि स्वामी हरिदास जी के यही संप्रदाय वे अब भी ठोका प्रचार के समग्र होते हैं, पर रासलीला का अनुकरण और अभिनय नहीं होता।

व्याख्या श्री विद्वान् विपुल जी, श्री स्वामी हरिदास जी के मामा के पुत्र, शिष्य और उच्चधिकारी थे, के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना होने लगी और मुझे है, उनसे भी मेरी उत्सुक धारणा और हरिदास जी के संप्रदाय की उल्लिखित वैद्वान्त्रिक निष्ठा की प्रतीति होती है। कहा जाता है कि वे दोनों मेरी में पूरी बंधन एक ही स्थान पर बैठे रह कर, नित्य विहार के ध्यान में लगे रहते थे। सं० १९११ में स्वामी हरिदास जी की मृत्यु हो जाने के बाद किसी समय हरिदास व्यास जी उन्हें रासलीला के एक कार्यक्रम में भागदूख

सिखा से गए, पर वहाँ भी उन्होंने अपनी भाँसों की वही नहीं खोजी। तब कुछ लोगों ने उनकी वही धृष्ट्या के लिए रसमंजरीय प्रिया-स्वस्म से प्रार्थना की कि इनका हाथ पकड़ कर मेरा खोलने की आज्ञा दिये। प्रिया स्वरूप ने ऐसा ही किया और कहा कि 'मैं ही जो राधा हूँ, मेरा खोल कर दर्शन करो।' उन्होंने निरुपेक्ष को सूर्यय के भाषावेश में मेरा ही खोल दिया, पर उपस्थित सम्राट को देखकर तत्काल प्राण छोड़ दिए और प्रिया-प्रियतम के निरुपेक्ष विहार में लक्ष्य के लिए सम्मिलित हो गए। इससे सिद्ध है कि भ्रातृभाव निकल विपुल भी की दृष्टि में सम्यक्ता रासलीलाशुकरण का वह भावोन्नत उनकी निरुपेक्ष विहार की बर्पादा के अनुकूल नहीं था। वही सीख-कर और अपनी अनन्य निष्ठा में व्यापक पदों हुआ देख कर उन्होंने प्राण त्याग दिए और निरुपेक्ष विहार की निरुपेक्ष लीला में समा गए।

एक दूसरी संभावना भी हो सकती है, जिसको भोर में पहले उचित कर चुका है। मैंने आगे यह दिखाया है कि रास की परंपरा इस देश में बहुत प्राचीन है, प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी यह कभी पूर्ण रूप से अक्षय नहीं हुई। इतिहास सार्वभौमिकताओं के अभिर्भाव-काष्ठ से भी यह परंपरा बच रही थी, पर उत्तम रूप जिस समस्त संभवता संगति-रूप-प्रधान हो गई थी, अमिनव का समवेध इस में बाध की दिया गया। मैंने यह भी दिखाया है कि आज रासलीला निरुपेक्ष रूप में होती है, उसके स्पष्ट दो भाग हो जाते हैं—एक तो निरुपेक्ष रास का अनुकरण और दूसरा किसी न किसी भवलीला का अनुकरण। संभव है 'रास' और 'लीला' का बड़े तीव्र ही उसके रासलीला नामकरण का कारण बन गया हो। मेरा मत है कि स्वामी इतिहास की दृष्टि से अधिक निरुपेक्ष 'रास' के संकीर्ण-पूर्ण-प्रधान प्राचीनत्व में, जो परंपरा से किसी न किसी रूप में बने जा रहे थे, उपस्थित भागों का सकते हैं, उनकी भवलीलाओं के अनुकरण का प्रदर्शन या पथ-प्रदर्शन मानना उनकी ऐतिहासिक निष्ठा को रक्षते हुए उचित नहीं प्रतीत होता।

१—भी कृष्णदास ने 'हमारी मूर्त परंपरा' नामक ग्रंथ में महर्षि दत्तहरिवंश की रासलीलाशुकरण का प्रथम प्रदर्शन कहा है। उनके कहना है कि 'महाराज दत्तहरिवंश ने महात्मा परमहंसजी तथा बाबा हरिदास को निर्देश दिया। रसलीला में दिखाई देने वाली रासलीला की धीमंसा का अनुसंधान प्रकाशन हुआ। मीठियों का प्रतीकन रूप दत्तहरिवंश भी ने किया।

# मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

प्रिय प्रकार स्वामी हरिदास जी को राखत्रीली की अभिनयात्मक परंपरा का मोचाप सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है, उसी प्रकार डॉ. दशरथ शोभा और डॉ. विवेकानंद स्नातक ने द्वित्वरिचं जी को राख का प्रवर्तक सिद्ध किया है। पर द्वित्वरिचं जी की राख का प्रवर्तक मानने के संबंध में भी यही कठिनाई हमारे सामने आती है, जो हरिदास जी के संबंध में है। कुछ वर्ष पूर्व राधावल्लभी संप्रदाय और राखीमानुकरण के प्रचार के संबंध-वृत्तों की खोज करता हुआ मैं इस संप्रदाय के कुछ अधिकारी भाषाओं और विद्वानों से मिला था। उन लोगों ने मुझे बताया कि राधावल्लभी संप्रदाय की उत्पत्ति है। इसमें बहुत का अपमान माना गया है। इसीलिए राधावल्लभ की मंदिर में कभी राखीया नहीं होती। इस विषय में इस संप्रदाय के सिद्धान्त का धार है— लोक बानगी यदि सदा विवर्तित है 'राख रा'। इस संप्रदाय में भुवदास जी जैसे डेढ़ मजों और कवियों ने जो लीलाएँ लिखी हैं, वे मात्रा के लिए हैं, अनुकरण के लिए नहीं। डॉ. विवेकानंद स्नातक ने भी यह स्वीकार किया है कि "श्री गोस्वामी द्वित्वरिचं ने भी अपनी वृत्ति 'द्वित्वरिचं' में भावनात्मक स्थापना का ही वर्णन किया है।" "विद्वत् ब्रह्मदेव उपाध्याय जी ने भी 'मागवत संप्रदाय' नामक ग्रंथ में लिखा है कि 'हरिचंरी संप्रदाय बन्धुत राख संप्रदाय है जिसमें प्रेमाभूतपूर्ति श्री राधा तथा लाल जी के लिए भिन्न के अक्षर पर राखक सम्प्रदाय से उनकी सुवाह सेवा में लगा रहता है। इस सेवाभाव का ही वह अपने जीवन का परम लक्ष्य मानता है।" ज्योत्स्ना जी ने अधिष्ठित ब्राह्मणी के तथा बाबा कृष्णानन्द जी गोस्वामी बायोड्राफ्ट जी 'उत्तमदास', जयकृष्ण, मगध मुनि, गौतम

१—हिंदी मातृक : उद्भव और विकास, पृ० १०-११;  
२—राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ० १८९

३—वही, पृ० १७३

४—मागवत संप्रदाय पृ० ४४४

५—राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ० १८१

६—वही, पृ० १८४

७— " , १८६

८— " , १८४

९— " , १४४-१८८



अमी' आदि के आ उल्लेख और उद्धरण दिए हैं उनमें दामोदरवर गोस्वामी के कवन को छोड़ कर कोई ऐसा—नहीं है जिसमें यह सिद्ध किया जा सके कि उसमें निर्विघ्न रास भावनापरक न होकर अनुकरणात्मक है। इस से कम 'भृंग' 'धामी' के उन उल्लेख अनुकरणात्मक रास की अपेक्षा भावनापरक रास पर ही अधिक परित हाते हैं। डॉ. स्वातक ने इसी प्रसंग में यह भी लिखा है कि " श्री मंगल सुद्धि और श्री उद्यमबाध की ने अपने शिकमास में श्री हरिवंश कावि लिखते हुए उन्हें 'रासकेतिल रासिकन बीनो' कहकर स्तुति किया है।" किसी निश्चित प्रमाण के अभाव में 'रासकेतिल रासिकन बीनो' का यह अर्थ कर लेना कि रासकेतिल का हरिवंश की ने रासिकों की रासक्रीड़ा के अभिव्यक्ति के भावोन्मत्त द्वारा दिया टीका नहीं माना जा सकता। रासिकों की रासकेतिल का रास देने के अन्तर्भावनावादी कवन भी हरिवंश जैसे मन्त्रों को मुख्य में, जैसे रास प्रवचन, रासिमात, रासाव, संगीत, कोर्तन आदि। फिर उनके संग्रह के किसी उल्लेख की अपेक्षा उनकी की वैदिकान्तिक विद्या की अपेक्षा करते हुए करना उचित नहीं है। डॉ. कातक ने यह भी लिखा है कि 'नित्य विहार' की विद्युद्भावना केवल रासावज्ञानी संप्रदाय में मिलती है, उनके मत से वैतन्य निम्नार्क और ब्रह्म संप्रदाय में नित्य विहार की एकांत विद्युद्भावना का अभाव है।<sup>१</sup> उनका यह भी मत है कि वास्तव, संस्कृत, वास्तव्य भाव भी नित्य विहार में नहीं समाते ... अतः गौडीय संप्रदाय में हम छद्म नित्य विहार की भावना की स्थापना नहीं पाते हैं।<sup>२</sup> गौडीय संप्रदाय में छद्म नित्य विहार की भावना है अथवा नहीं, यह वृत्त करना है। किंतु यह छिद्र प्रश्न ही जाता है कि रासावज्ञानी संप्रदाय के किंतु नित्य विहार में वास्तव संस्कृत, वास्तव्य नहीं समाते, यह अनुकरण और अभिनय की वस्तु कदापि नहीं हो सकता। मैं स्वीकार करता हूँ कि रासावज्ञानी संप्रदाय की 'नित्य विहार' की भावना का स्वरूप नहीं है जो स्वातक की ने लिखा है। मैं यह भी मानता हूँ कि रासावज्ञानी संप्रदाय की 'नित्य

१—रासावज्ञानी संप्रदाय : ठिहान्त और साहित्य पु० २८८

२—वही पृ २४०

३—" = २२०

विहार' की मजदूरियों का स्वयं ही है जो डॉ. स्नाथक ने बताया है।  
इसीलिए राजनीतिज्ञानुसार के प्रचलन और प्रचार के साथ ही हिन्दुविचारों की  
का प्रत्यक्ष संबंध निरूपित करना मैं उनकी मायना, आदर्श और सिद्धांत  
निम्न के विरुद्ध समझता हूँ। राजनीतिज्ञान के एक अधिकारी  
विद्वान् भी कलकत्ताप्रान्त गोस्वामी जी ने तो यहाँ तक बताया है कि  
अन्यथा संबंध निरूपणा से नहीं बल्कि सोवियत संघ में उनके सम्बन्ध में  
स्वीकृत नहीं है। राजनीतिज्ञान के सम्बन्ध में उनके सम्बन्ध में  
है। यहाँ भी उनके सम्बन्ध में दिए गए हैं, जो निम्न राज-विचारों की मायना के  
अनुसार पड़ते हैं। अतिसंयोजक ने बताया है कि 'वही' नैतिकता उनके  
सम्बन्ध में प्रदीप्त है जो निम्न सेवा के अंग बन गये हैं और स्वयं अपने निम्न  
सेवा के संग रहते हैं—

नैमित्तिक उत्सव जिसे निम्न दृश्य के अंग ।

स्थूल सूक्ष्म भेदा रटि मिलेब कृत्य के संग ॥१॥”

कि 'भी द्विहरिवंश की मायी उनके हाथ बँधित 'नित्य विहार' का वादमय-स्वरूप है।' इत कथन में 'धरित नित्य विहार' शब्द ध्यान देने योग्य है, जिस का अर्थ सापना मचाना अनुभूति-सम्य नित्य विहार का स्वरूप ही अभिव्यक्त प्रतीत होता है, अनूकृत या अभिनीत नित्य विहार नहीं। हरिवंश काष्ठ के एक प्रमुख पापीकार भी सेवक भी न भी नित्य विहार के अतिरिक्त ब्रजेन्द्र नंदन की मन्त्र अनेक प्रकार की छींताओं के चक्र को चित्त की अस्मिता बनाने वास्तु संकल्पित किया है और रस-रूपा की मिठाबट-प्रदित छद्मता को द्विहरिवंश की उपासना की विशेषता बतलाया है।<sup>१</sup> 'मैंने प्रेमस्वरूप ब्रजेन्द्रनंदन के उदात्त-वैभव का मन्त्रन करके देखा है, किंतु यहाँ अनेक प्रकार की छींताओं का चक्र चित्त को जामने नहीं देता। ... भी हरि की कंठी के रूप भी हरिवंश का, हरीश्रिय, मैंने हड़ता से अनुभव किया है।

... एक ही रस-रूपा का मायम् एवं उक्त रस-रूपा की मिठाबट-प्रदित छद्मता भी 'मिठाबट' की उपासना की विशेषताएँ मानी जाती हैं।

... मठा बंशीजोड़ हाथ उदमावित नित्य रस-रूपा में किसी प्रकार की मिठाबट की संभावना नहीं है।<sup>२</sup> ब्रजदास जी ने भी द्विहरिवंश की के हाथ निरूपित रस-रूपा को समझते हुए बताया है कि इत रस में नाचक-नाचिका नहीं होते एवं रस ही केन्द्र का प्रबोधक होता है—

भावक तहाँ न नाचिका रस करवावत कैलि।<sup>३</sup>

उन्होंने यह भी बताया है कि नेत्रों के पड़ते हुए भी रस रस के अभिव्यक्ति को देखा नहीं जा सकता—

प्रगट जगत में जगमगै कुर्या बिचित्र बहूप।<sup>४</sup>

नेत्र अछत देखत नहीं यह माया की रूप।<sup>५</sup>

(रंजित, पृष्ठ ४)

१—भी द्विहरिवंश पौराणीक संस्कृत और साहित्य पृ० २३।

२—वही पृ० २३-२४।

३—वही पृ० १०३।

इन उद्धरणों से निम्न है कि दिन हरिवंश और उनके प्रमुख अनुबन्धियों की दृष्टि में उनके संशय का गुरु निष्पत्ति-विहार-सत्य अभिनय और अनुकरण की वस्तु के रूप में प्राप्त नहीं था वह काव्य की रमणीयता की अपेक्षा दृढकाव्य का नियम भी नहीं बनाया जा सकता था। समीक्षापरण गोस्वामी ने भी स्वीकार किया है कि 'राधाब्रह्मण्य रचितों ने प्रारंभ से ही अपने रस के व्याख्यान के लिए काव्यरस परंपरा की किसी ओर में भी अंगीकार नहीं किया है और उन्होंने रस को जिन दृष्टि में रखा है उनके अनुसार वे रस भी नहीं सकते थे।' इस प्रकार के गुरु रहस्यपूर्ण कथनों से यह निम्न है कि इस संशय की साधना काव्य उदात्तता के बिना कल्पन मन के भावों द्वारा सेवा संभव करने का निर्देश करती है। साधक का लक्ष्यजनों के भाव से भावना में स्थिर रहकर भावना-बन्धी को समृद्ध बनाने का उद्देश्य ही इस संशय में दिया गया है—

इत्ये भावनास्येयं स्वस्मिन्वास्मभिः कृता ।

समृद्धा भावना यती न वक्ष्या भवति ध्रुवम् ॥

(भ. वि. ७)

इस भाव-सेवा द्वारा इच्छित निष्पत्ति-विहार परम रहस्यमय है अनुकरण का विनय नहीं—

मेघ महल परया कुँही राजत कुंज निकुंज ।

बैठे मेह की सेज पर करत केलि सुख पुंज ॥

(आनंद मत्ता ११) १

खेलत रहस्य-निकुंज में अतिदि रहसि निजु केलि ।

सपरी प्रेम तमाख सौ मनी रूप की केलि ॥

(रहस्य मत्ता)

राधाब्रह्मण्य संशय की रामलीला-संबंधी इनकी दृष्टि मान्यताओं की अराधना का यह काव्य समीचीन नहीं माना जा सकता कि राधाब्रह्मण्य संशय में निम्नरात्र

१ भी दिन हरिवंश गोस्वामी संशय । और साहित्य-दृष्ट ४५५

२ यती

कि 'भी हितहरिवंश की बाणी उनके प्रायः वर्णित 'नित्य विहार' का वास्तव-स्वरूप है।' इस कथन में 'वर्णित नित्य विहार' शब्द ध्यान देने योग्य है, जिस का अर्थ साधना अथवा अनुभूति-सम्पन्न नित्य विहार का स्वरूप ही अभिप्रेत प्रतीत होता है, अनुकूल या अभिनीत नित्य विहार नहीं। हरिवंश ठाक के एक प्रमुख, बाणीकार भी सेवक जी ने भी नित्य विहार के अतिरिक्त ब्रजेन्द्र नन्दन की मध्य बनक प्रकार की सीतामों के एक को चित्त को अस्तिद बनाने का सा संकेतित किया है और रस-रीति की मिश्रावट-रहित छद्मता को हित हरिवंश की उपासना की विशेषता बताया है।<sup>१</sup> मैंने प्रेमलक्ष्म ब्रजेन्द्रनन्दन के पदाग्र-बैराग्य का मञ्जन करके देखा है, किन्तु यहाँ अनेक प्रकाश की सीतामों का एक चित्त को जमाने नहीं देता। ... भी हरि की बाणी के रूप भी हरिवंश का, हरीश्रिय, मने इवता सं आभय किया है।

एक ही रस-रीति का आग्रह एवं उस रस-रीति की मिश्रावट-रहित छद्मता भी 'निताचार्य' की उपासना की विशेषताएँ माननी जाती हैं।

... मत 'वैद्यनाथ' का उद्गमार्थित नित्य रस-कीड़ा में किसी प्रकार की मिश्रावट की संभावना नहीं है।<sup>२</sup> प्रबदास जी ने भी हित हरिवंश की के द्वारा निरूपित रस-रस को समझते हुए, बताया है कि इस रस में नायक-नायिका नहीं होते स्वयं यह ही केशि का प्रयोग होता है—

१. 'नायक तहाँ न नायिका रस करवावत केहि।'

उन्होंने यह भी बताया है कि नेत्रों के खले हुए भी इस रस के अविज्ञान की देखा नहीं पा सकता—

१. 'प्रगट सागर में सागरवे हुआ बिपिन मनुष।'

१. 'नेत्र अछत देखत नहीं यह माया की रंग।'

(सुपिन कण्ठ)

१—भी हित हरिवंश गोस्वामी, संस्करण और सारिख पृ. ११.

२—भी पृ. ११.

३—भी पृ. १३.

इन उद्धरणों से सिद्ध है कि हिंदू हरिवंश और उनके प्रमुख अनुयायियों की दृष्टि में उनके संश्रय का गुरु नियम-विहार-तप आश्रम और अनुश्रवण की वस्तु के रूप में प्रायः नहीं था। यह काव्य की रमणीयता का अथवा दृष्टकाव्य का विषय भी नहीं बनता था मरना था। कलितानुश्रवण गोस्वामी ने भी स्वीकार किया है कि 'राजावतंसवत् रसिधौ जे प्रारंभ से ही अन्तराल के व्याख्यान के लिए काव्यरस परिपक्वता का विद्यो अंश में भी अंगीकार नहीं किया है। और उन्होंने रस का अर्थ उचित न देखा है उसके अनुसार वे कह भी नहीं सकते थे।' इस प्रकार के गुरु रहस्यपूर्ण कथनों से यह सिद्ध है कि इस संश्रय की साधना वास्तविकता के बिना अथवा मन के माधुर्य द्वारा सेवा संश्रवण का निर्देश करता है। साधक का सर्वोच्चों के माधुर्य से माधुर्य में स्थिर रहकर माधुर्य-वादी को समृद्ध बनाने का उद्देश्य ही इस संश्रय में दिया गया है—

इत्यं भावनास्यैव स्वस्मिस्थासमिच्छिता ।

समृद्धा भावना यस्मि न क्षण्य भवति ध्रुवम् ॥

(म. वि. ७)

इस मन-स्था द्वारा 'संश्रवण नियमित' ज्ञान उत्पन्न है, अनुश्रवण का विषय नहीं—

मेघ महल परदा फुँझी राजत कुंज निकुंज ।

बंटे नैह की सेज पर करत केलि सुख पुंज ॥

(जानक कथा १२) १

खेकत रहस्य-निकुंज में अतिहि रहसि निष्ठु केलि ।

लपटी प्रेम तमाल सौ मनी रूप की येलि ॥

(रहस्य कथा)

राजावतंस संश्रय की राजसीमा-संबंधी इतनी दृढ़ मान्यताओं की अवहेलना कर यह कथन समीचीन नहीं माना जा सकता कि राजावतंस संश्रय में निम्नराज

१ श्री हित हरिवंश गोस्वामी संश्रय । और साहित्य-पृष्ठ ४०५

के साथ यौक्तिक पूर्वाभिव्यक्ति पर—अनुकरण द्वारा सीखा करने का विधान है।<sup>१</sup> अतएव गोस्वामी रामादरवर द्वारा 'इस्तामसक' की इस्तखिबित प्रति के जिस उल्लेख<sup>२</sup> के आधार पर डॉ. विजयेश्वर सातक ने राजावाल्मी-संप्रदाय में अनुकरण-शैली को विहित माना है, उसे हम उक्त साम्प्रदायिक मिथ्या का व्यतिरेक या अन्तर्द्वार ही मान सकते हैं। गोस्वामी रामादरवरजी का जन्म सं १६१४ बताया गया है, तबका समय में लौकानुकरण का व्यापक प्रकार प्रचलन में हो गया था अतएव उनके उल्लेख का औचित्य स्नेहसंपादकता की दृष्टि से ही व्यूहना जा सकता है। सखियावरण गोस्वामी या श्री मान्य है कि राजावाल्मी संप्रदाय के वाचा हितवृद्धावन वाच कैस परवर्ती मन्तों और कवियों ने ऐसी अनेक बातें स्नेहसंपादकता की दृष्टि से ग्रहण कर ली हैं, जो संप्रदाय में पहले से स्वीकृत या विहित नहीं थी।<sup>३</sup>

इसके विपरीत गारावच मठ के श्रीजीवांसंप्रदाय में राजनीत्यानुकरण साधना के रूप में प्राप्ति का, 'चैतन्य भागवत' के किष्क की बुद्धिमान्वास का संदर्भ प्रस्तुत हुए पहले ही सिद्धा का पुष्ट है कि महाप्रभु चैतन्य स्वयं हृष्यभैला के अभिनय में भाग लेते थे। उनकी प्रेरणासे धार्मिक अभिनय के अनेक रूपों का प्रचार हुआ वह भी बताया जा चुका है। चैतन्य संप्रदाय के परम कृती महाप्रभु रूप गोस्वामी जी ने 'किरन माचन' 'अक्षित माचन' और 'चानकेति कोमुरी' जैसे मधिरसपूर्ण नाटक लिखे हैं, और गान्धर्वनाम परानी 'नाटक बंदिष' नामक भेद प्रबंध लिखा है। इसी संप्रदाय के कवि, कर्णपुर ने 'चैतन्य चोरोहन' नामक एक अत्यंत सरल नाटक लिखा है, जिसमें महाप्रभु चैतन्य और उनके परिवार कर्षीतप्रभु अमल राधा और कृष्ण की भूमिकमें अवतरित होवे दिखाए गए हैं। श्री गारावचमठ-परितामूर्त में बताया गया है कि गारावच मठने 'प्रियाधुर' नामक नाटक लिखा

१ वे डॉ. विजयेश्वर सातक द्वारा 'राजावाल्मी संप्रदाय सिद्धान्त और साहित्य' पृ. २८१

२ 'राजनीत्या की ती मन्वेवासी के वासक हैं।' उनके अतिष्ठ में अब प्रभु के अतिष्ठ में गलापि न करे। ज्यों सरप त्यों कैव पहले युगत भाग फलवती एके तब सब सखि भेष आगे चरें।' कवी पृष्ठ-२२१

३ सखियावरण गोस्वामी द्वारा लि. इ. ग्री. सं. वा. प. ४९४-४९५

या जिसमें अन्धमूर्खता सामयिकता मगरोकनी लीला पारस्परिक यात्रिदान लीला वनविहार लीला सौंदरी लीला पुण्यचमन लीला, निर्दुःखरचना लीला, निर्दुःखोपदे मादि लीलाएँ वर्णित हैं।<sup>१</sup> ‘प्रेमाङ्कुर’ नाटक की विन्यासुद्धमणिध से सिद्ध है कि वैष्णव संप्रदाय में वास्तव्य और सत्य जाति रसोंकी लीलायें भी निर्दुःखलीलाओं के समान ही आम्नाय और प्राज्ञ हैं। इस संप्रदाय में लीलाओं का अनुष्ठान मोक्ष-स्वरूप माना गया है जिसका अर्थ यही हो सकता है कि वास्तव्य और सत्य रस की परंपरा, नाट्य एवं वनविहार की लीलायें तथा मधुर रस की निर्दुःख लीलायें सभी निम्न और उच्च हैं। उच्चमें से मधुर रस-परिपाक की दृष्टि ही बिना जा सकता है। इस मधुर रस की निर्दुःखलीलाओं में प्रकृति अधिक माना गया है, अन्य किसी प्रकार का तालिक मेह कल्पित उच्चमें स्वीकृत नहीं। अतएव परंपरा और सिद्धांत दोनों ही दृष्टियों से वैष्णव संप्रदाय का परिकर ‘लीलानुकरण’ के विकास के लिए अधिक अनुकूल दिखाई पड़ता है। इसलिये इस संप्रदाय के नारायण मठ का लीलानुकरण के प्रवर्तन की ओर विशेष रूप से उन्मुख होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। लीलानुकरण समी मध्यसंप्रदायों में आम्नायिकता को अर्थ-साधना का माध्यम बनाकर उद्दिष्ट करनेवाला प्रयत्न करके वैष्णव संप्रदाय व ही पहले-पहल किया था। ऐसी स्थिति में लीलानुकरण की संघीत-नृत्य-प्रवर्तन परंपरा को अपना लीलानुकरण की अस्मितात्मक परंपरा में परिणत करने का काम हममें भी पहले-

१ ततः प्रेमाङ्कुरं नाम नाटकं कृतवान् मुनिः ।

अन्ये च बहवो प्रथा नारायणचिन्तितान् ॥३०॥

वत्त इत्यास्य कुमारिलीला सभाः प्रकीर्तितः ।

शामलीला च इत्यास्य गोपीनां च परस्परम् ॥३१॥

X X X

गोपीनां तु कथमेव स्थितिः तत्र तत्र हि ।

निर्दुःखं शारदास्याय भीष्मपुण्यकीर्तनम् ॥३२॥

कुकेन वै शारिक्या भीष्मपुण्यकीर्तनम् ।

इत्यादि बहुधा प्रोक्ता लीला प्रेमाख्य नाटक ॥३३॥

( श्री श्री गो० ना० प्र० मठ लिखिते श्री श्री नारायण मठ परितामृतम् ।

पृ० ८१-८४ अन्वय ५, स्तो १८-२० । )



यह इसी संस्कृत के महात्मा भारद्वाज से लिया है तो कोई आश्चर्य नहीं।  
 भिन्न ऐतिहासिक और परंपरासिद्ध प्रमाणों के आधार पर भारद्वाज भट्ट जी की  
 रसलीला की अनुसंधानमय परंपरा का प्रतीक माना जाता है। उनमें से कई का  
 उल्लेख मैं पहले कर चुका हूँ। उनके अतिरिक्त प्राचीन और नवीन अन्य भी कई  
 महत्त्वपूर्ण साक्ष्य इस विषय के उपलब्ध हैं। 'अनु श्री भारद्वाज भट्ट चरितामृत'  
 श्लोक में श्री गोस्वामी जगन्नाथ प्रसाद भट्ट विदित चरितामृत से उनके का बतलाया  
 जाता है। इनके हस्ताक्षरों के प्रतीक होने की बात कही गई है —

पुनरेको द्विजो प्राप्तो महारायणात्मकम् ।  
 मंत्रं श्रुत्वा तं प्राह माकां देहि मम प्रभो !  
 प्रसन्नं भगवानाह मधुर्कं कुरु पुत्रक ।  
 पद्माह्वयविहारपि त्वया कार्यपि निश्चितं ॥  
 इत्युक्त्या मुकुटं दत्त्वा कच्छपुर वासिनम् ।  
 कृष्णलीलाविहारपि करपासास वै मुनिः ॥  
 अद्यापि प्रज्ञा भूर्माते गुराः स्वामिषयं गताः ।  
 तद्वद्व्यास्तत्र भ्यामे तु कृष्णलीला रचति वै ॥

सुप्रसिद्ध पुण्यवक्ता श्री कृष्णदास बाजपेयी जी भी भारद्वाज भट्ट जी रस का  
 अविष्कारक मानते हैं। उनका कहना है श्री भारद्वाज भट्ट का नाम बड़े महत्त्व  
 का नाम है। इन्होंने न केवल रस का अविष्कार किया अपितु बनेक प्रयोगों की  
 रचना कर उनके वैभव को मारग में फैलाना प्राचीन लीलात्मक्यों की खोज की  
 तथा नव बीरावी कोस यात्रा का आरंभ किया।<sup>१</sup>

इस प्रसंग में यह विचारणीय है कि भारद्वाज भट्ट जी के नाम के  
 साथ कहीं कहीं रसलीला की बात आई है नहीं उसका अर्थ लीलापुष्प ही है।  
 पर हरिवंश की आदि के विषय में यह कह सकता कहिन है, यह मैं पहले ही बता  
 चुका हूँ। जो आतंक है हरिवंश की ओर पूर्णतः पर अनुसंधान द्वारा रसलीला के

१ प्रकलोक संस्कृति पृष्ठ १४०

तुलना करिए डॉ. गोपीबन्धु तिलक विदित 'अवधाना भावक' निवेद्य हिंदी  
 अनुसंधान वर्ष १९ अंक १ दृ. २९।

मध्यकालीन धार्मिक मान्य-परंपरा

प्रधान का धर्म प्रदान कर के सिर्फ सबसे अधिक उदारता हरिदत्त व्यास जी की बाजी से दिष्ट हैं, वे भी संघ इसी कोटि के हैं। बिना खींचताम के समझे अनुकरणीय किन्ना अभिमान-प्रधान राजसीका का अर्थ नहीं निकलता जा सकता। उदाहरणस्वरूप उनका यह पक्ष उद्धृत किया गया है—

राधायस्तुम के गुन गाव् छेहु

पावन पुसिन रासमेखल में मन ई तनहि नचाहछेहु ।  
गव्गव् स्वर कोमल पुलकित चित्त आनंद नीर बहाव् छेहु ॥

इसमें 'तन का नचागा' गव्गव् स्वर 'पुसकिन कोमल चित्त' होकर आनंदराधु बहना आदि अनुकरणीय स्वर की अपेक्षा संगीत श्रवण रास के ही अधिक सुन्दर हैं।<sup>१</sup> व्यास जी न केवल ही के छट पर ओछा में रासोत्सव की जो बोझा की भी उसके नी जा विवरण मिलते हैं, उनसे भी उसके संगीत-मूल प्रवाह होने का ही आनास मिलता है।<sup>२</sup> व्यासजी का कर्म सं. १५९७ वि में हुआ था और वे सं. १५९९ के लगभग प्रथम बार बृदावन गए थे। द्विहरिवंश जी का बृदावन-ग्राम-काळ लगभग इसी समय अर्थात् संवत् १५९० के आसपास बताया जाता है। उस समय ब्रजभूमि में द्वि हरिवंश जी का प्रभाव बड़ी पर अवश्य था। पर उसके बहुत पूर्वी वैतन्य महाप्रभु बृदावन का उनके थे, और उनके संप्रदाय के संगतन रूप आदि महाप्रभु योगवासिनी में द्वि हरिवंश जी का प्रभाव बड़ी पर अवश्य काटिक प्रचार प्रसार कर दिवा था। कहा जाता है, इनके प्रभाव से बृदावन के झालरी तक में हरिनाम का प्रचार किया था। इतना ही नहीं वैष्णव सत्त-आन्दोलन के इसी प्रधान प्रवर्तक महाप्रभु ब्रजभाषाय का जीवनव्यापी कार्य सं. १५९०-९९ के बहुत पहले पूरा हो चुका था। देश के बहुत से भागों में पर्यटन कर और बड़े बड़े विद्वानों को आचार्य में पराकृत कर अंत में वे अपने आराध्य कृष्ण की सम्मति में गद्दी स्थापित कर निवास करने लगे थे। सं. १५७९ में योगेश्वर पर्वत पर श्रीनाथजी का महिर् बन हुआ था, जिस में भगवान् की अकित लीलाओं के विस्तारितोद्घ

१ ओं वि सातक— रा० सं० सि० सा 'पृ० २४९ -

२ गज बलि व्यास जी से— बाबुदेव गोस्वामी पृ० ११४-११५.

प्रत्यक्ष सूरदास कीर्तन सभा में नियुक्त थे। से १५८८ में ब्रह्मनाथजी की मृत्यु हो गई थी और गोस्वामी विदुतनाथ जी गद्दी पर आ गए थे और उन्होंने अपने संप्रदाय के आठ दास कवियों को चुन कर आश्रम-की स्थापना भी कर दी थी। इससे स्पष्ट है कि इन संप्रदायों के भक्तों की स्थापना म. सं. १५९०-९१ के बहुत पूर्व ब्रजभूमि को पुनः कृष्णमय बना दिया था। इतना ही नहीं इस महात्मा भक्तों के प्रसार से सारा ब्रज ब्रजवासी के नाम-का लीला और धाम का अमन्य अनुरागी हो गया था। यदि से १५९ के पूर्व के हिन्दी-साहित्य का ही क्या पात्र तो उस में अनेक बार रासलीला-विषयक कहे हो उचित मिलते हैं। जैसे हरिवंश जी का रासलीला का प्रत्यक्ष सिद्ध करने के लिए उद्धृत किए गए हैं। मैत्र जी क्या स्वप्न यह दिखाना है कि सूरदास जी के द्वारा लिखी हुई अनेक लीलाओं में रास की अस्मिता-परंपरा का पूर्ण आनुवंशिक और अनुसरण है। अतएव इन्हीं सब बातों को ध्यान रख कुछ देखें<sup>१</sup> न ब्रह्मनाथजी को रासलीला का प्रतीक कहा है, और हरिदास द्विहरिवंश कवीश्वर और नाटयन भट्ट जी का इस कथ्य में चमत्कार सहजानी बतलाया है। बस्तुतः महाप्रभु ब्रह्मनाथजी और श्रीकृष्ण संप्रदाय के कोसामियों के कवियों को मुकाम पर हरिदास व्यास की रचनाओं से संरक्षित उल्लेखों बतला इसी प्रकार के संरक्षण अर्थात् उनके अन्य उद्धरणों के आधार पर द्विहरिवंश जी को उन्हीं की ऐतिहासिक निष्ठा के विपरीत अस्मितामय रासलीला का प्रतीक सिद्ध करना ठीक नहीं। इस विषय में हरिदास व्यास के शास्त्र विद्वत्त्वनीय नहीं माने जा सकते। कारण श्रीकृष्ण संप्रदाय से उल्लेख परंपरागत कविता सिद्ध है। उनके पिता तुमोहन मुकु ने वैष्णव महाप्रभु के गुरुमुख माधवदास नामक संन्यासी से माधव संप्रदाय की सीढ़ी प्राप्त की थी। व्यास जी ने अपने पिता की ही संप्रदाय सीढ़ी मुकु बतलाया था 'व्यास बाबा' में इसके प्रमाण मिलते हैं—

जय जय श्री गुरु मुकुल बंस उदित भवों।

ऊर्ध्वा है अस्त मास तिमिर जग को गयो ॥<sup>२</sup>

इसकी पुष्टि करनेवाले अन्य अनेक उल्लेख भी मिलते हैं। राधाब्रह्मजी संप्रदाय के भक्तों ने लिखा है कि माधव को उन्होंने द्विहरिवंशजी से प्रमाणित हो

१ डॉ. स्वप्न परमार इस आश्रमकी गद्यपरंपरा पृ. १९

२ रामुदेव गोस्वामी द्वारा 'महा कवि व्यासजी' की शुरु श्रेष्ठ व्यास-बाबा

पर उनसे वीरता के ली थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी न भी संभवतः इसी को प्रमाण मान कर लिखा है कि 'पहले वे गौड़ संप्रदाय के ब्रह्मचर्य से पीछे हित हरिवंश के शिष्य होकर राधाभाषणी हो गए।' डॉ. विजयेन्द्र आचार्य ने भी अपने ग्रंथ में इसी बात की पुष्टि करने का प्रयत्न किया है।<sup>१</sup> आचार्य जी न व्यास जी के स्थिरे हुए संस्कृत के दो अनुसूच्य ग्रंथों की बचा की है वे हैं 'नवरत्न' और 'स्वयमेवम्यति'। अब वे ग्रंथ मिल गए हैं और प्रकाशित हो चुके हैं।<sup>२</sup> उनका बचने से पता चलता है कि वे दोनों ब्रह्मचर्य असंग्रह ग्रंथ न हो कर दो भिन्न परमायवाची ग्रंथों से प्रसिद्ध एक ही वृत्ति हैं। व्यास जी न ग्रंथका नाम 'नवरत्न' इसलिए रखा है कि उसमें माधवत क नव प्रमेयों का धृति स्मृति पुराणादि के प्रमाणों द्वारा निर्णय किया जाता है—

हरिः परतमः सत्यं जगद्भवेवस्तु तात्त्विकः,  
जीवाः धीविष्णुवासास्तत्तारतम्यं परस्परम्।  
मुक्तिहरिपद्मातिस्तत्तुमकिरुत्तमा,  
प्रत्यक्षाविजयं मामं वेदबोधस्तु माधवः।

यान्याप्यो नवरत्नानि प्रमेयाप्याह साः प्रभुः,  
धीमध्यस्तत्तत्तत्तानि संमतानि हि।<sup>३</sup>

व्यास जी के वीरगुरु-संबन्धित शिष्यों पर वासुदेव गोस्वामी ने भी अपने ग्रंथ 'महा कवि व्यासजी' में कुछ मूल महत्वपूर्ण तथ्य दिए हैं।<sup>४</sup> उन सब को केन्द्र और 'नवरत्न' की प्रामाणिकता की पूर्ण परीक्षा करने के बाद इस निष्कर्ष पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यद्यपि व्यास जी के वीरगुरु से संबंध रखनेवाला यह निवार साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नहीं किंतु अब उसके द्वारा महत्वपूर्ण

१. हिंदी साहित्य का इतिहास पृ० १८९।

२. राधाभाषण संप्रदाय सिद्धांत भार साहित्य पृ० १-२, १०५, १८१ आदि।

३. नवरत्न आचर्या स्वयमेवम्यति— बाबा कृष्णदास कुमुद सरोवर राधापुत्र मयुर।

४. महा कवि व्यासजी पृ० ५४-६७

साहित्यिक निर्माण निम्नलिखित का प्रक्रम लिया जाता है। तब इन सब तथ्यों का पुनर्गोचर अभिमान हो जाता है। प्रमुखतः महत्त्व की मेरी दृष्टि है कि 'वीरराज' का निम्नलिखित इतिहास है कि इसमें द्वितीय और व्यास जी के पारस्परिक संबंधों में कोई न्यूनता नहीं आती है। व्यास जी ने अनेक ज्यों में द्वितीय जी के प्रति गुण जैसी भक्ति प्रकट की है और यदि द्वितीय जी व्यास जी के वीर-गुण नहीं भी होत हैं, इससे द्वितीय जी के महत्त्व की न्यूनता और व्यास जी के महत्त्व की उद्भि नहीं होती है।<sup>१</sup> वस्तुतः व्यास जी वही मोक्षदायी अर्थात् उदार एवं क्षीण और सब प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णताओं के ऊपर उठ कर महत्त्वा प्रतीय होते हैं। उन्होंने अनेक द्वितीयदिवस जी के प्रति ही नहीं अपने समय के सभी भिन्न महत्त्वा और संता के प्रति सहृदय भाव सहमान व्यवस्था है। इनमें मधुरभाष्योक्तक सनातन<sup>२</sup> रूप<sup>३</sup> हरिदास<sup>४</sup> प्रबोधानंद<sup>५</sup> विद्यारिण<sup>६</sup> आदि<sup>७</sup> तो हैं ही पिता के गुण पौरोष्य भावप्रदता भी हैं जिससे उन्होंने 'भावप्रदाय सारण में आने' कहकर बंदना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सदास परमानंददास मीठवाई के निम्न में भी उसी भावसे प्रेरित होकर लिखा है कि इसके बिना 'का अथ तन की तपन पुसाई'। उनकी सम्पूर्ण रचनाएँ सदास परमानंद राघवानंद आदि रामोपसर्गों को भी प्राप्त हुई हैं<sup>८</sup> और गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रति उनकी भक्ति का संकेत भी एक पद में मिलता है —

जिनके धन वदाराय-सुत भारपी, माया कनक-कुरंग ।  
तिनके कहत 'व्यास' प्रभु सुमरयो साधर घसुप-निधरा ॥<sup>९</sup>

१ मद्र-धर्म व्यास जी 'मृगिका' पृष्ठ १ ।

२ १ साधु-सिरोमणि रूप सनातन । — पृ १९५

३ अनन्य रूपति स्वामी हरिदास । — वही पृ० १९१

४ प्रबोधानंद ही कवि बोरे । — वही पृ० १९५

५ साधु प्रीति विद्यारिणराय — वही पृ १९५

६ वही — पृ १९६

७ वही — पृ २४६

इतना ही नहीं उन्होंने नामदेव का भी, पीता निकोबन बैरास जैसे निर्मुक्तगामक  
 सत्ता का भी अन्तर्गत कर, धर्म-मार्ग के साथ सम्मिलित किया है।<sup>१</sup> ऐसे फलश्रुति  
 मन्त्र के सारसंगीत-संगीतों से ही एक संप्रदाय की ही उत्पत्तिपत्रक निष्ठा की  
 सूचना देत है। यह नाम देना करिण है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. रामकुमार  
 वर्मा जैसे विद्वानोंने व्यासजी का प्रकाशमन-काल स. १६२० माना है। संभव है इसके  
 पहले भी वे ब्रह्म गए हों क्योंकि १५९९ वि. एवं स. १६११ वि. में भी  
 उनका ब्रह्म ज्ञान के उल्लेख मिलते हैं। पर प्रमाण ऐसा होता है कि स. १६२९  
 वि. स. वे स्वामी रूप से ब्रह्म में रहने लगें थे। उस समय तक आचार्य मह. जी  
 ब्रह्म पहुँच गए थे और अभिध्यात्मक रासलीला का व्यापक ज्ञान ब्रह्मभूमि में हो  
 जाता था। अतएव सांप्रदायिक ज्ञानों और अभिधियाओं का उत्पन्न मात्र से  
 अनुसंधान करने से मेरे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि सत्माचार्य और वैतन्व  
 महाप्रभु जैसे महापुरुषों के ब्रह्मज्ञान के परिणाम-स्वरूप संभवतः इन्हीं लोगों की  
 प्रयत्न-कर्मज प्रेरणा से, रासलीला की संगीत-नृत्य-प्रधान परंपरा हरिवंशजी आदि  
 के पहले से ही ब्रह्म पहुँची थी जिसमें केवल ब्रह्म महापुरुष लीला का अनुकरण होता  
 था जो भक्तान्ता कहानि सारूप्यता की राशि में गोपियों के साथ यमुना-तट पर  
 रसक की थी। 'रासकस्त' के केवल रासचारी राधा कृष्णस्त के उत्पन्न  
 उल्लेख भी इसके संगीत-नृत्य-प्रधान होने के अनुमान की पुष्टि करत है, क्योंकि  
 उन्हीं की—

— महापुरुष तब किपों छान सये संतर्जना ।

१) बन मन वंदत फिर सखी करि करि गुण गाना ॥

वाते बिबिध नृत्य सिखाई । रासबिलास प्रगटता गाई ॥

लिखा है। इसमें महापुरुष लीला के बहिर्लोक अन्य जीवजनों का समावेश नहीं था।  
 वह अनात्म मर्त्यों के समाज के रूप में होता था जिसमें गायन-गीतन और  
 नृत्य ही प्रधान का कर्तव्यफल और अभिमत थीन था। वस्तुतः महापुरुष  
 कृष्ण की महापुरुष लीला अपने मूलरूप में भी संगीत नृत्य-प्रधान है। भोक्तृ-  
 भावता में नहीं कुक्कुट भी ने ही इस महापुरुष लीला का अनुकरण निश्चित  
 बनाया है —

नतत् समाचरेत्तां ममसापि द्वानीश्वरः ।  
 भिनदयत्पाचरन् मीश्याद् यथास्तोऽभिज्ञं विगम् ।  
 ईश्वराणां यथा सत्यं तथैवाचरितं कथितम् ।  
 तेषां यत् स्वर्गचोयुक्तं बुद्धिर्मास्मत् समाचरेत् ।

भीमद्वयपत्र १ ॥ १३॥ १ ३० ।

जब नारायण भद्र जी ब्रज में आए, तब इसी परंपरा का प्रचार वही था । संभव है सामाजिक दृष्टि से इसमें कुछ विचार भी आने लगें हों क्योंकि मुकुन्द जी ने भी लोक हित की दृष्टि से ही इसे प्रवर्तित ठहराया है । ठीक ही है, माहल-वैपरी कीला में जब किसी का प्रवेशाभिचार नहीं तो भगवान् की परम शुभ निर्मुक्त कीला का ऐसा प्रष्ट प्रकार साधु, विसे मान्य का स्मरण था । अतएव नारायण भद्र जी से महापुत्र कीला के अतिरिक्त का साध साध सत्त्वान की अन्य सभी प्रकार की कीलाओं के अनुकरण की परंपरा बकाई । जिस प्रकार अग्निस्व अग्नि के आदेश से अनिष्ट के पुत्र के पुत्र ब्रह्मनाम ने भगवान् कुन्ध ने जहाँ-जहाँ कीला की थी, उसके अनुसार उस स्वानन्द नाम रख कर अनेक गौं बचाए और दिव्य ब्रजभूमि का पुनरुद्धार किया था । उसी प्रकार नारायण भद्र जी ने भी ब्रजभूमि की विस्तृत भागोत्थि अवस्थिति की पुनर्स्थापना की । हाथों के आधार पर उन्होंने ब्रजभूमि के अनेक स्थल की प्रत्यक्ष स्थापित की और जिन विषय जिस मध्य जिन स्वयं का प्राम में जो कीला भगवान् ने स्वयं की थी उसी उसी समान उसी उसी स्थान पर भद्र जी ने उसी कीला के अनुकरण की पूर्ण अभिप्रेतप्रमद परंपरा बकाई । 'ब्रज की जीवित्ति' वही कीला 'मुझे' उनका इसी

१ ब्रजस्तु तत्सहस्रानेन शक्तिस्वस्वाप्यनुपहृतम् ।

भोमिद्वयोऽप्योपीना कीलास्त्वान्धनानुपहृतम् ॥

विभक्त्याभिचयाऽऽन्वाप्य प्रामान्यमासम्बद्धम् ।

५० मुकुन्द कृपापि पूर्वोक्तं विचारित्वापनेत्यत्र ॥

भीमद्वयपत्र १ ॥ १३॥ १ ३० ।

१-२ तस्मिन् दिने बहो वा कुन्धो कीला बकाई है ।

तस्मिन् दिने स्वयं तस्मिन् भद्रो मास्वरसम्बद्धः ।

कारणमात्र तां कीला बने; कुन्धादिपेधिमिः ॥

योस्वामी जानकी प्रदाता 'माहल' नारायण भद्र करिणामर्त

मध्यकालीन धार्मिक गद्य-परंपरा,

विष्णु उपाय का व्यवहार और स्तुति-विन्द प्रतीत होती है। अतएव रासरीता की यह अभिमन्य-परंपरा जिसको रक्ष्य कर विशिष्ट धर्म के औत्तमानाटक मध्यकाल में लिखे गए, नाट्ययन यह के द्वारा ही प्रवर्तित हुई प्रतीत होती है। नाट्ययन यह जी के द्वारा प्रवर्तित इस परंपरा का पुरानी संगीत-गुल किंवा अभ्य-अभिमन्य प्रभान परंपरा का साथ जोन बनित हुआ। मैं बता चुका है कि रासरीता की वर्तमान प्रसिद्धि में भी दो पंरपराओं का यह जोन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मगजाउ गुल्य की बहुतरुमयी छलित सीताओं के अनुकरण के प्रवर्तन की इस पटना का आज भी रासधारी नाट्ययन यह का नाम लेकर ग्यारण करते हैं। इस विषय के प्रार्थन और नवीन उद्देशों का निर्देश यह के किना जा चुका है, जिनसे सिद्ध है कि मध्यकालीन गद्यपरंपरा के प्रवर्तकों में भी नाट्ययन यह का स्थान अन्यतम है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि मारुप में रासरीता के प्रति गहन निष्ठा सभी जन्मसिद्ध-संस्कारों में निष्पन्न थी। इसीलिए जब उसकी अभिव्यक्तिक परंपरा का प्रवर्तन हुआ तो सब संघर्षों के मूल्यों में ने उत्साहपूर्ण उसमें सहयोग प्रदान किया। यही कारण है कि रासरीता के प्रवर्तकों और उद्गारकों में कुछ नाम सभी संस्कारों की सूची में मिलते हैं। इस परंपरा के प्रवर्तन के आरंभ से ही उसमें हम काल के सब महान् संतों के सहयोग के प्रमाण मिलते हैं। यह तो निर्विवाद है कि लोगों में आज वैसा साम्प्रदायिक दुरम्य पाड़ा जाता है, वह उन संतों को सबपा भ्रष्ट था। हो सकता है, इस युग की साम्प्रदायिक बीजतानी ने उस काल के संतों के प्रवर्तकों को आन्धकारित कर दिया हो। इस अनुमान को कुछ जनधुतियों से बच नी सिद्धता है। एक बरिष्ठ रासधारी ने मुझे बतलसा था कि यह एक पुरानी जनधुति है कि निवर्तकी परंपरा और नाट्ययन यह मिल ने और उन दोनों के सहयोग से ही सीतागुल्यन का प्राकट्य और निरुद्ध हुआ था। सोच की वर्तमान स्थिति में हमने आगे कुछ यह कहना करिने है।

सब मन और जनधुतियों करिहा से ही रासधारी-परंपरा का प्रवर्तित होना माननी है। यह ठीक नी मान्य होती है, क्योंकि आज भी सारे प्रबर्तक में करिहा के रासधारीयों की प्राचीनता और वैदता निर्विवाद रूप से मान्य है। इसका साथ ही यह स्वीकार कर देने में नही कोई विरोध बाधा नहीं होती है कि यह रासधारी-परंपरा उद्भवकर और संवेक्षण से नहीं क्योंकि कोई मत इसका



विरोध नहीं करता। बल्लभ ने भी जिन स्वरूपों का भी गणराज्य मंड की ओर से उत्तमोत्तम के अभिन्न में वीक्षित किया था वे भी करुणा क ही थे। उत्तमराज्य प्रेय के डेढ़क य जगत् को उदयकरन और सैन्यकरन का बंधन कहा है और उसने जगत् प्रेय में एक बंधनमयी भी की है जो बीच में समाज १० बीड़ी तक संवित होन के कारण पुनस्तथा प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। उक्त डेढ़क न वह भी जिज्ञा है कि उदयकरन के पुन विराम के समय में लीलागुच्छर की बहुत उत्पत्ति हुई स्वयं औरंगजेब ने विक्रम के रास की परीक्षा की। इसी प्रकार आज बल्लभ जमपुर के किसी राजा ने भी रास की परीक्षा की और उसमें ईश्वरी बल्लभर इक। कुछ दिन तक इस प्रकार उत्पत्ति का केन क बाध फिर लीलागुच्छर ने बहुत ही विविधियों का कई और इसविध महात्म्याओं ने उसका अभिन्न पर प्रतिबंध मण दिया। फिर स्वामदास तथा विहारीदास ने इसका पुनस्तथा किया। विहारीदास जगत्तम ही बने पूर्ण हुए हैं। उनकी उत्पत्ति प्रथम में जलस और जलुच्छरीय मानी जाती है। उन्होंने उस लीलागुच्छर-विश्वक बड़े कठोर नियम बनाए थे। विहारीदास के पुन रासराज्य के समय में भी सैन्य-सौण्ड्य अनुभव रहा। फिर केदारदेव जी हुए, जिनकी मीठरी विद्वानों को भी गई। उन्होंने उस के कलात्मक को विशेष समुचित किया। उल्लिखित महारत्ना स्वामदास के शिष्य प्रथमतः चौहरे ने भी रास लीला के पंचांग का महत्त्वपूर्ण कार्य किया था।

विहारी दास के समयकालीन छात्र कुन्वर काल रास के अन्त्य अनुष्ठी थे। कहा जाता है, उन्होंने रास में जगत्तम-आठ काय करण कर दिए थे। इनके रास में

### १. देखो 'रास-सर्वज्ञ'—

‘सिनते पीछे छुमै रसिक रास सखि सिनकिने  
 बंम कम मंद सोम रासचरित्त उर बसिबो ।  
 है गए सख निर्धन रासचारी कबहुँ त  
 भव करी सख पीछे सोय बस है तब हीं त ।  
 बाति अबाति कुजातिन क बाधक है के रास  
 छुम्य बेपथर बंध नाम पारग भावौ तब ।  
 महावीर मति हुइ कम बस अतुर समाला,  
 मज्ज रैकटा बादि कम पामर मज्जमाज ।

# साम्प्रदायिक धार्मिक शास्त्र-परम्परा

सा-सा एक गोपनीय रहती थी और जब यमुना में डाली-सीला होती थी तो रंग स यमुना की पारा लम्ब हो जाती थी। उनके रास का वह अनुपमपनीय नियम था कि उन्हें कोई बैठे कर नहीं देना सज्जा था। उनके द्वारा आयोजित राससीला को बड़े-बड़े लोग छिन कर देना करते थे। सखिद्विधारी जी स्वयं भक्ते वशिष्ठ उन्हें सपुराण दक्षिणा नामक प्रत्येक तिला एवं पुरान मछों का संतों की बालियों का छोड़ कर अपने ही पत्नों से सीलमें करवाती अरुम कर में। इस पर इन्द्रासन के साधुओं ने इनकी सीला में जाया बंद कर दिया। सखिद्विधारी जी की ही तरह बाबा इन्द्रासन जी ने भी राससीला पर प्रचुर व्यय किया है। कहा जाता है लगभग ५००००) उन्होंने अनेक रास से राससीला अनुक्रम के निमित्त व्यय किया था। उनके रास का प्रत्येक प्रत्येक प्रचार और पूरा माला केन्द्र ही उसमें प्रवेश प्राप्त कर सज्जा था।

राससीला की प्राचीन पौरवर्तनी आध्यात्मिक परम्परा अब फिर संकटालय है। हमें हरे एक राससीला में ही-बार विरक्त साधु रहा करने से जो इन मन्त्रियों का अनुमोदित रहते थे और स्वयं मित्रों में कर बात थे। पर इतर विरक्ते १५-१० वर्षों में यह प्रथा लुप्त हो गई है। तथापि आज भी ब्रह्मचर्य में कुछ पुरानी रास मन्त्रियों और ऐसे विरक्त साधु हैं, जो रास के विरक्त आध्यात्मिक रास के उचित, संग्रह एवं सलग आगच्छा प्रहरी हैं।

(४)

यद्यपि राससीलाओं की आधुनिक परम्परा में रास की उत्पत्ति ब्रह्म में ही साक्षात् होती में मानी जाती है। परंतु अनुसंधानों की दृष्टि से विचार करने पर रास का प्रारम्भ बहुत पहिले हो गया प्रतीत होता है।<sup>१</sup> पश्चिमवर्त की बालुवधरान

१ तुलना कीजिए मार्कण्डेयपुराण नामी विभिन्न राज्ञात गोपनीय भाग १ पृ. १८-१९.

2—"Certain of the Krishna mysteries such as the Rasa Mandal may have a very remote ancestry perhaps an esoteric Vaishnava tradition remained more or less secret, until in the (हय मयके पृष्ठ पर)

अप्रवास में अर्धरत्न के एक-सूत<sup>१</sup> का उद्घेस करत हुए निर्देश किया है कि मङ्गलकर रासदूत की बाक-रसरा का दर्शन संसृति के आरम्भिक युग में ही मिल जाता है।<sup>२</sup> कम से कम ईसा की प्रथम सताव्वी तक के इसके साहित्यिक चरित्रों को मिलत ही है।<sup>३</sup> रास-सम्बन्धी प्राचीनतम संश्लेष भरत के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। भरत ने रास या रासक को उपलक्ष्य माना है और उसके तीन में से का भी निर्देश किया है—रासरासक ईडरासक और मंडल रासक।<sup>४</sup> नाट्यशास्त्र का रचना काल ईसा की प्रथम सती से लगभग ईसा पूर्व की दूसरी सौसती सती तक माना जाता है। मध्यकाल और विश्वविख्यात टीका अमिनस्य मारती के रचयिता अमिनस्युत पारतबारि न नवी सती में रास को हस्तीसक के नाम से अभिविष्ट किया है—

‘मंडलेन तु यन्मुत्थं हस्तीसकमितिस्सुतम्।’

अमिनस्य मारती की रचना के बहुत पूर्व वात्स्यायन न भी (ई० द्वतीय सती) अपने कामसूत्र में हस्तीसक और मध्यरासक का एक साथ उल्लेख किया है—

Bhagavata Purana and the subsequent medieval Sanskrit and Hindi Literature of devotion, it became the leading theme of religious art. But we must understand that none of this development has a pedantic character. It is determined only by the fact that a school of inspired mystic poets found in the matter of Vrindaban Lila just that material suited to the expressions of their intuitions of divine love.<sup>५</sup>

१. श्लोकां कर्षे सति के सुसंख्या<sup>६</sup> अतिष्ठत। १२४। ३॥

२. मन्तव्यो मङ्गलामिह तीव्रो रेणुजायते। (शु० १०।१२।११)

३. हे रास और रासाम्बयी काव्य-प्रवाहना हू १३

४. वशिष्ठ श्री कृष्णदा नामपयी का निर्देश, ‘अमलोक संसृति’ हू १३९ १४३

५. ‘रासरासक नामस्वात् तन्नेवा राससंस्मृतम्।

ईडरासकमेवैव तथा मंडलरासकम्।

हस्ताक्षर हीननेकायनेनदिरासकैः<sup>१</sup> कामसूत्र के शीकाकार मशायर न हस्तीशक  
नृत्य की म्यस्या करते हुए दिखा—

‘महलेन च यस्तस्त्रीणां नृत्त हस्तीसकं तु तत्’  
‘नेता तत्र भवेदेवो गोपस्त्रीणां यथा हरिः ॥’

अथवा जियों का संग्रह के द्वारा जो नृत्य होता है उसी को हस्ताक्षर कहते हैं। योपियों के बीच में कृष्ण के समान इसमें एक नेता होता है।

इस प्रकार के नृत्य के बड़े पुराने निम्न की पाए जाते हैं। अंग्रेज़ों की शीकाओं में भी वा ऐसे दृश्य हैं, जिनमें एक पुरुष अनेक जियों से साथ नृत्य करता हुआ दिखाया गया है जियों कुछ बंसी बजा रही हैं, कुछ गा रही हैं और कुछ नृत्य कर रही हैं।<sup>२</sup> बाय-गुफ में भी जो सातवीं शती की मानी जाती है, वो इसी प्रकार के निम्न है। जिनमें स्त्री-नायिकाओं के दो समूह अंकित हैं। पहले में सात नायिकाएँ हैं, जो एक अग्रेजी व्यक्ति को पेर कर खड़ी हैं, जिनकी केस-भूषा विभिन्न है। उसकी अग्रेजी कन्वों तक फैली है वह पैरों में बाणधार पायजामा पहने हुए हैं और उसके हाथों पैरों की स्थिति नृत्य की सारा की सूचक है।<sup>३</sup> वह कुनों तक ‘बाहुबलमुख’ ‘बोसना’ (deaved bodio) पहन है, जो कुछ सफेद और कुछ हरा है।<sup>४</sup> उसकी हथेलियाँ अन्य नृत्यियों के ही समान ऊपर की लगी हैं, हाथों में बन्धन है, और मस्तक पर दुइरी धारियों वाला ‘केन’ बैठा (Scarl)। दूसरे निम्न में भी एक समूह एक नाक के पास खड़ा है। इस समूह में दो नायिकाएँ हैं। नर्तक एक लंबा हरा ‘बोसना’ (bodio) और बाणधार पायजामा पहने हैं, कानों में कुन्डल तथा हाथों में बन्धन धारण किए हुए हैं। ये दोनों ही शीकाओं के निदर्शन माने जाते हैं।

‘पुराणों में राजक-नृत्य के जो विवरण मिलते हैं वे बहुत कुछ एक ही अंश हैं और उनमें शीकाओं के साथ उमराव अमेद प्रभावित होता है। बाबी

- १—काम सूत्र २। १०-१५।  
२—दे० रविशंकर रायन ‘अंग्रेज़ों का काम संग्रह’ पृ. ३२  
३—दे० ‘बाय गुफ’ इंडिया सोसाइटी संस्कृत द्वारा प्रकाशित।  
४—मध्याह्न ८० इलाक १३ ४२

के, सास्त्र से इसका सर्वथा सुनिश्चित करने वाले कुछ ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं।<sup>१</sup> इनका निर्दिष्टार्थ है की रासक बनने प्रसंगोद्भव-काल में एक आदिम नृत्यरूप<sup>२</sup> मल्ल का संभवतः नाच-मनसका प्राप्त करके ही यह हस्तगोचर या हस्तगत कहा गया। यह भी सम्भव है कि हस्तगोचर या हस्तगोचर श्री आरम्भ में रासक का ही समानान्तर कुछ वर्तन नृत्य रूप रहा हो किन्तु अन्तान्तर में जब दोनों का वरिष्ठता और पारङ्गता झूट हो गया हो तो केवल प्रयोग एक ही अर्थ में होने लग्य हो। अग्रे चल कर जब रासक में वास्तव एवं अभिजात के विविध तत्त्वों का समावेश हो गया तो नाट्यरासक के रूप में उसकी परिणति हुई और दृश्य में उस रूप का एक अतिशय भेद मान लिया गया।

‘भाव प्रकाशन’ में नाट्यरासक का वा विवरण मिलता है, उसमें आरम्भ में बताया गया है कि इस में छोटा, बालक या बाल नायिकाएँ पिछोवचादि नृत्य करती हैं। वास्तव में यह रासक का ही परंपरा प्राप्त संस्करण है—

चोड़दा ब्राह्मणाष्टी वा यस्मिन्नुत्पति नायिकाः ।  
पिछोवचादि विन्यासाः रासकं तदुदाहृतम् ॥

कि यह नाट्यरासक क्यों कहा गया। यह रासक ‘भाव प्रकाशन’ में इसी प्रसंग के अगले श्लोक में बताया गया है—

कामिनीमिर्मुहोमर्तुश्चेष्टितं यच्च नृत्यते ।

रमाद्वसंतमाखोप्य च ज्ञेया नाट्यरासकः ॥

१—आस्य मस्यग्रतः प्रोक्ता पावसा समुदीरितम् ।

तुलना तु रासकं तन्वी मर्त्येभ्या मुनैश्चरतः ।

पार्ष्णा मनुजमत्तमस्मात् आस्यं ब्राह्मणसुखम् ।

तथा ब्राह्मणी गायः तस्मिन् वीर्यपूजो दिता (१ बोधिता) ॥

तामित्रा विविधा नाम्नी नामा ज्ञानया चरा ।

एवं परंपरा प्राप्ते ततो लोके प्रविष्टिभिः ॥

२—ये ही आर मोंके की ‘टापस आँक संस्कृत भाषा’ पृ. १४ और १४३ ।

# मध्यकालीन धार्मिक भावना-परिणाम

अर्थात् भावनात्मक की स्वकीय विशेषता यह है कि उसमें उन्मुख मूल्यपरायण नादिकधर्मों की रचना के चरित्र और इति को अपने मूल्य द्वारा प्रकटित करें। इसी राजा के चरित्र और कर्तृत्व का मूल्यमय प्रदर्शन सम्बन्ध रचना हो सके इसलिये उसका शास्त्रीय कोटि-क्रम भी निर्धारित कर दिया गया। साहित्यदर्पणकार के अनुसार उसमें एक ही अंक होता है, भावक उत्थाप, उदनायक पीठमर्द और भाविक भावप्रयोजन होती है। इसमें सब सम्मानों का होना आवश्यक है। इसका अंगी रस मूल्य परित होना होता है और दो अथवा चार (प्रतिमुख क अतिरिक्त) संविधों होती हैं। अन्य पूर्ववर्ती और परवर्ती भावार्थों ने भी इसी प्रकार भाव रसक की शास्त्रीय मर्यादा निर्धारित की है। भावार्थ हवारी प्रसाद द्वितीय ने ठीक ही लिखा है कि रसक, वस्तुतः एक विशेष प्रकार का केस या मनोरञ्जन है। उस में बड़ी मात्रा है। रसक भी ऐसा ही शब्द है। कोक में इन मनोरञ्जक किनोचों को रस संस्कृत के भावसाहित्यकों ने इन्हें अपने और उपर्युक्तों में स्थान दिया था। शब्दों का अर्थ विशेष प्रकार के किनोच और मनोरञ्जन थे।<sup>१</sup> कहा का कुछ कि भावप्रयोजन में भावरासक की कार्यय विवेकता यह बताई गई है कि इसमें किसी राजा के चरित्र का प्रदर्शन हो। मेरा अनुमान है कि इसी दृष्टमूल विवेकता के उन्मुख के फलस्वरूप चरित्रधर्मों की यह परम्परा बनी, जिसमें चरित्रनायक के नाम के साथ उसी नाम जोड़ना शुरू हो गया है, और मध्यकाल में उसी केवल चरित्र-धर्म का सूचक रह गया।

अन्यत्र में अनेक उसकों की रचना हुई, इसमें बरहमाज का 'संवेष्ट रसक' विशेषरूप से उल्लेखनीय है। भीनामसर सिंह ने लिखा है कि 'संवेष्टरसक' को देखते हुए लगता है कि इस प्रकार के रसक कालों का संबंध गोप-गोपियों की रास क्रीडा से अनन्य रहा होगा," यह कथन अधिक से अधिक अधिक सब ही भासा जा सकता है। 'संवेष्ट रसक' में जिस दृष्टरूप की ध्वनना है, वह रासक्रीडा के मूलरूप से उठे ही बाहरी साम्य रहता हो पर रासक्रीडा के विद्युत जाग्यात्मिक स्वरूप का कुछ भी जामात बरहमाज की रचना में नहीं मिलता। या दृष्टारप जोता ने 'संवेष्ट रसक' के अध्ययन के

१—दे० द्वितीय साहित्य का आभिरामक पृ० १००-१०१।

—२—दे० द्वितीय भागक—उत्पन्न और विद्युत पृ० २३

प्रकाश या निर्वर्ण मिश्रता है, वह भी निवारणीय है।<sup>१</sup> उनका कहना है कि यह रसक पूर्णतया विकसित माटकों के आरंभिक काल का वह रूप है जिसमें अम्य-अम्य अभिनेय-कला की छायावता से इस काव्य में परिलक्षित हो रहे हैं। बहुरूपियों द्वारा प्रदर्शन होने का सम्बन्ध इस बात का प्रमाण है।

मैंने ऊपर रसक के विकास का जो क्रम निरूपित किया है, उसके देखत हुए हों। बहरण अथवा का वह निर्वर्ण संश्लेष प्रतीत होता है। मैंने यह दिखाना है कि जिस समय 'संरस रसक' की रचना हुई, वही उस समय 'पृथ्वीराज रासो' और 'बीसक बेग रासो' की तरह के बहिर्-काव्यों की रचना की परंपरा में बस पड़ी थी। अतएव स्पष्ट वस्तुनिष्ठता तो यह प्रतीत होती है कि इस काव्य जन्म अभिनेय गुणों और उपकरणों को छात्र कर मम्य काव्य में परिणत हो रहा है। पृथ्वीराज रासो में परिकल्पना की यह किता पूरी हो चुकी है, और संरस रसक में अभी यह आगे मार्ग में ही है। इसका प्रमाण यह है कि 'संरस रसक' पूर्ण अभिनेय रचना नहीं, अर्द्धमात्र का साधन भी उस काल के रसक, रासो या रास का काल या अम्य-अम्य ही सिद्ध कर सकता है। अर्द्धमात्र का कहना है कि उसके समय के रास बहुरूपियों द्वारा साक्षित होते थे, प्रेरित या प्रदर्शित नहीं। 'बहु बहुरूपि निरुद्ध रसक साक्षित'। अर्द्धमात्र के इस कथन की टीका में भी यही बात पुष्ट की गई है—'अपि बहुरूपिनिर्मितो रासको मायते'। इससे यह सिद्ध होता है कि रास जो नाट्यरसक के रूप में कभी पूर्ण अभिनेय कलाकृति बन गया या अब ज़ेबल बहुरूपि के संभावन की वस्तु हो गया था।

जैसे काव्य-नाट्य के बहुरूपिता इन रासकों के पात्रोंकी कथन-रचना मात्र मेंनिमा तथा विविध मुद्राओं का प्रदर्शन ठीक प्रकार पाठ करते समय कुछकला के साथ करते थे, जिस प्रकार आज-कल के बहुत से कुरूप और सफ़ल कथावाचक करते हैं। येरा अनुमान है रसक की नाटकीयता का विकास और इस एक पद के रूप में हुआ है। छद्म मुद्रा-रूप से आरंभ करके रसक-नृत्य से काव्य से मुक्त हो नाट्यरसक के रूप में पूर्ण अभिनेय नाट्य-का रूप प्राप्त किया। फिर जब उसके इन गुणों का हास होने लगा तो उसने 'संरस रसक' केसा एक अर्द्धनाटकीय नाम दे-नाम्य रूप प्राप्त किया। अतः नाटकीय विशेषताओं को छोड़ कर वह रस काव्यमय रसक न रहा का पृथ्वीराज रासो केसा अम्य-अम्यमय रसक बन गया।

हिन्दी-साहित्य के आरम्भ में रसधाम्यों की धम्म-धम्मों के रूप में परिणति की जो प्रक्रिया हो रही थी हिन्दी नाटक का इतिहास समझने के लिए उस पर ध्यान देना आवश्यक है। अग्रप्रस के अधिकांश उसके इसी प्रक्रिया की कोई न कोई अवस्था व्यक्त करते हैं। जो समय है धीमे-धमका के संदर्भ में रहनेवाले कुछ उसके रूप इस प्रक्रिया के प्रभाव से कुछ छूटा अपनी मूल वाचकीयता अनुप्राण हो सके हो पर अद्यावधि उपलब्ध मात्र सभी साहित्यिक उसके इस प्रकृति का निरूपण प्रस्तुत करते हैं। डॉ० एकराव जोषा व 'गवमुकुमार नाटक' को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है और इसी नाम किन्नर की संरक्षी समझी से हिन्दी नाटक के विकसित रूप की परंपरा की अवधारणा सिद्ध की है।

यदि 'गवमुकुमार' एवं 'संदेश' उसके की तरह नाम-उत्पत्तियों के हस्त की प्रकृति सुनिश्चित नहीं बनाया तो उसे नाटक मान देने में हमें आपत्ति नहीं। पर जब उपस्थान के प्रयासों में अब भी अवश्य उसके रूप अव्यक्तता में पड़े हैं जो 'गवमुकुमार' एवं 'संदेश' की ही हिन्दी का प्रथम नाटक सिद्ध करने का अवसर उपलब्ध नहीं प्रतीत होता। अस्तुतः भारतीय नाम-परंपरा का पूर्ण हास का धन कमी नहीं हुआ समय-समय पर उसने वा-वाए का अवसर ग्रहण किए। अग्रप्रस-नाटक के संस्कृत के नामक तो सिद्ध हो जा रहे थे इसलिये आरम्भ के अवसर में जन-नाटकों के ही प्रथम पात्र की संभावना थी। अग्रप्रस व जिन जन-नाटकों का निम्न संदर्भ किया अग्रम उसके वां एवं प्रभाव है। पर अग्रप्रस के साहित्यकारों के संनक में जगत् रसक अग्रम कुरंग होकर धम्म बनने लगा, यह बाद कम दिखाई जा चुकी है।

इस प्रसंग में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य भी ध्यान में रखना आवश्यक है। वह यह कि इसमें 'अभिनेय और रसधाम्य की परंपरा का बड़ा विकास निरूपण कुछ और मात्र रूप तथा साधन में निरूपित संरक्षों की एक ऐसी जाति हो बन गई जो वैधानुक्रम से उच्च परंपरा के संरक्षण के लिए उत्तरदायी रही। इन परतों के संरक्षण के लिए प्रतिपक्ष में प्रत्येक रूप के ऐसे अभिनेय-संरक्षों को विकसित हुआ किन्ति इस महाभारत और रामायण जैसे निरूपण धम्मधाम्यों की संभावना पर अभिनेय बना कर प्रस्तुत कर दिया जाता था। दक्षिण भारत के अनेक मंत्रियों की विविधता पर इस प्रकार के अभिनेयों के धिग मिलते हैं। अभिनेय की रूप परंपरा व किसी भी प्रथम की इति को अभिनेय और रसधाम्य बनाकर प्रस्तुत करने की समता थी।



संगम है, अग्रप्रवेश-काल में ऐसे अभिनय रहें हों जो अर्द्ध नाटकीय या अर्द्धमन्य रूपों का अभिनय प्रस्तुत करते हों। हाँ सचता है, अग्रभाग में 'बहुहसि' 'कहकर उम्हीं' की ओर संकेत किया हो। आगे बढ़कर सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में जब रासपारियों की परंपरा बली तो उन्होंने भी सुरदास मन्दास द्वितीयदासमदान आदि कवियों की निजी हुई सीमाओं को अभिनेत्र बता कर उपस्थित करने की पूरी पटुता प्रदर्शित की। वे सीमाओं साहित्यिक नाटकों की मर्यादा का पालन नहीं करती पर वे रास के रंगमंच और अभिनय के सबसे अनुकूल हैं। रासपारियों का उनही नाटकीयता या संविधान के सिद्ध में किसी प्रकार की कोई आश्रय नहीं। कारण रास सीमा नाटकों का प्रवेता इस अभिनय परंपरा से पूर्णतया परिचित हैं और उन्हीं के अनुरूप रचना भी करते हैं। इस परंपरा से अनवरत रहने के कारण ही अभिनेताओं में मन्दासजी सीमा-नाटकों के सिद्ध में दुर्लभ उत्पन्न हुआ है।

अग्रप्रवेश के रास-नाटक अधिकोश धीरे-धीरे और कुछ धार्मिक भी थे। पर सत्रहवीं सताब्दी में जब में किम राससीमा-नाटकों के प्रगमन और प्रेक्षण की परंपरा बली वे अधिकोश परमोक्त आध्यात्मिक भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित थे वह रिकामा का कुछ है। राससीमा नाटकों का वह उद्योग द्वितीय-नाटक साहित्य का सबसे मुख मान्य का सचता है। डा० दशरथ बोसा का कहना है कि राससीमा नाटक की परंपरा मन्दास से आरम्भ होती है। सत्य यह है कि योगेश्वर जीका नाटक की रचना कर मन्दास जी ने राससीमा नाटकों की नई परंपरा चलाई। पर पता नहीं डा० बोसा सुरदास जी के सीमा नाटकों को क्यों भूल गए? उन्होंने मन्दास जी की पाँचवीं सीमा में जो नाटकीय निराकारों निरूपित की हैं वे सुरदास जी की फलक-सीमा और दामनीता आदि में भी मिलती हैं। सूर की 'मनकट-सीमा' में हरि मित्रोदयति पुरनखनीं बारह बरों का छह नाम्नी है। दामनीय में भी 'मनकटि के पुनरायक सार' ऐसा ही बारह बरों का नाम्नी है। दोनों में ही प्रेक्षकों का चित्त आकृष्ट करने के लिये मण्डान के अंतर्भाव और मन्दासप्रता का वर्णन किया गया है। डा० बोसा ने सीमा-नाटकों के तीन पुन बचाए हैं—मनोरंजन, सम्मुख की प्राप्ति और निवेदन की धिक्। वे तीनों पुन भी सूर की समुक्त सीमाओं में निरूपित हैं। सूर ने दाम-सीमा के उपोद्घात में कहा है—

मध्यकालीन पारमिक नाट्य-परंपरा

‘सकट में जिन जहाँ पुकारयो । तहाँ प्रगटि तिनको उदारयो ।  
सुल मीतर जिन सुमिरन कीन्हौ । तिनकी वरस तहाँ हरि दीन्हौ ।

× × ×  
सुर स्वाम सग सखनि बुलाया । यह लीला कहि सुख उपजाया ।

इस उद्धार में मनोरंजन सम्बन्ध एवं निःशेषता दोनों की व्याख्या है। यहाँ वह निश्चित मत है कि ‘सुरसागर’ के अंतर्गत लीलागाण के विस्तृत प्रकरण हैं, वे सब लीला-नाटक ही माने जाने चाहिए। सुरसा जी के ममसात्मिक आर सहायगी प्राण सभी कवियों ने इस प्रकार की अभिनय लीलाएँ लिखी हैं। इन रास लीलाओं के प्रवेष्टाओं के नियम में अवास्तविक आकर्षक उत्प्रेक्षा दिख गयी है।

१। सुरसा ओझा ने रास बैठी की आठ भिरोस्तारें बताई हैं—

१—संपूर्ण नाटक छंदोबद्ध एवं गेय होता है।

२—रास-नाटकों में मधुमाग सर्वथा उपेक्षित रहता है।

३—नाटक के सभी पात्र अथवा सेविकाएँ एक रंगमंच पर ही विद्यमान रहते हैं। पात्रों के प्रवेश और निष्क्रमण का संकेत नहीं मिलता।

४—संपूर्ण नाटक गुरु और गीत पर अवलंबित होता है।

५—इन रास नाटकों का दीक्षाबरण और प्रसक्ति-पाठ खान नाटकों के समान होता है।

६—रास के अंत में नाट्यकार नाटक लिखने का प्रयोजन बताते हैं, और उनके द्वारा पुष्पफल की प्राप्ति का संकेत करते हैं।

७—रास नाटक में स्वर्ग के संपूर्ण सभी दूत पद-परिवर्तन-रहित होते हैं। इनमें संस्कृत-नाटकों के समान अंक प्रवेशक, निष्क्रमक तथा अंत्यवतार आदि नहीं होते।

८—रास की भाषा में तत्सम शब्दों का प्राबल्य अत्यंत अभाव तथा वेश्या और वस्त्र शब्दों का बाहुल्य है।

इन विशेषताओं से रस-नीली के नाटकों का सम्यक् परिचय तो हा ही नहीं पाया, अर्थात् कुछ प्रेम प्रसंग होने की, सीमाबद्ध अवस्था उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण स्वरूप डा० ओझा का यह कथन अधिक सत्य है कि रस-नाटकों में यन्त्र-माय घबैरा उपेक्षित होता है। मैंने यथास्थान रस-नाटकों के अभिनेत्र में पात्रों के संवाद के अंतर्गत प्रयोग में लाए जाने वाले यन्त्र का उल्लेख किया है। अक्सर केन्द्रों ने रस-नाटकों में यथायथ नहीं बोधे हैं, पर रसधारी यथास्थान यन्त्र का प्रयोग प्रायः प्रत्येक संस्कारात्मिक में करते हैं। यथार्थता की जिस यथुरता की प्रसिद्धि है उसका यथार्थ स्वरूप रसलीला के अन्तर्गत उसके गद्यत्मक कथोक्तवर्गों में ही परिलक्षित होता है। बड़े-बड़े यथोक्तक कवियों की रचनाओं की साहित्यिक माधुरी इस बोधोक्त की यथार्थता प्रकट माधुर्य के समक्ष पीछी समझी है। यह कहना भी ठीक नहीं कि रस नाटकों का मंगलकारण और प्रसिद्धि-संघ स्त्रीय-नाटकों के समान होता है। मैंने अक्सर में ही बताया है कि रसलीला-नाटक के पूर्व रस की विस्तृत विधि चर्चनीय प्रयोगों में मिलती है। इसका पूरा पूरा पक्ष्य अब भले ही न होता हो पर स्त्रीय नाटकों के पूर्वीय से तो यह निश्चय ही अधिक उन्नत और परिमार्जित होता है। रस-नाटकों की भाषा के संक्षेप में भी डा० ओझा का यथ मान्य नहीं। जिन निबन्धों को केन्द्र ने रसलीला-नाटक की परंपरा का प्रभाव माना है, उन्हीं की भाषा में 'सत्तम चर्चों का प्रेम मिथ्या अवस्था नहीं अर्थात् उल्लेखनीय बाहुल्य है।<sup>१</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मन्दरास के विषय में लिखा है कि उन्होंने कृष्ण की रसलीला का अनुवर्तारि कुछ साहित्यिक भाषा में विस्तार के साथ वर्णन किया है। 'अनुप्रास और संछुट पर-विन्यास आदि की ओर इसकी प्रवृत्ति' प्रसिद्ध है, तो फिर डा ओझा फिर रस नाटकों की भाषा की ओर संक्षिप्त कर रहे हैं, यह संस्र में नहीं आता। प्रसिद्ध गीतों को केन्द्र पर उन्हीं भाषा के विषय में वे ही बातें कही जाती तो संभव है ठीक होती। इसके अतिरिक्त रसलीला-नाटकों की कुछ कथोक्त विशेषताओं का उल्लेख भी डा० ओझा ने नहीं किया है। इस विवेचन में यथास्थान उन सब का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनके विषय रसलीला निरूपण ग्रन्थ मनोद्वय के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाती।

१—रसलीला में संछुट के संवाचों का भी कभी कभी प्रयोग होता है।

इसी प्रसंग में राजनीति के उत्पत्ति-स्थान की समस्या पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। कुछ विद्वान् सौराष्ट्र-का राज का उत्पत्ति-स्थान मानते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि वहाँ की स्थितियों में जब भी राज-मूल्य का प्रचार है। किन्तु गुजरात के ही समान आसाम के अन्नगढ़ मणिपुर का राज-मूल्य भी प्रसिद्ध है। जैन वेद के कुछ अन्य भागों में भी इस प्रकार के मूल्य का प्रचार है। ऐसी स्थिति में किसी अन्धत्व प्रमाण के अभाव में राज के प्राकट्य-स्थान का निर्धारण कठिन है। यदि माना जाय कि जैन और जैन-सौदा से संबंधित स्थानों का महत्व दिया जाय तो जब अथवा सौराष्ट्र का ही राज का उद्भव-स्थान माना जा सकता है। यदि माना जाय कि जैन के धर्मिक को केन्द्र बना कर राजनीति की परंपरा बनी होगी, तो उसका प्रसार पहले जैन में हुआ होगा और फिर वह मानव के इरादा-बलात् के साथ-साथ सौराष्ट्र को गई होगी। सौराष्ट्र में राज की परंपरा अनेक रूप से बसती रही किन्तु मुसलमानों के आक्रमण-काल के बाद के निकट होने के कारण जैन में वह खंडित हो गई होगी। सोमवंशी-सम्राट् सती में महाप्रभु ब्रह्मावर्त स्वामी हरिहर भी भीमराज का जैसे महान् मन्त्रों और छंदों की प्रेरणा और प्रबल से राजनीति-मंचन के रूप में नई शक्ति के साथ इसका नवोद्भव करित हुआ। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि राजनीति-मंचनों की जिस परंपरा का हिंदी के साथ सीमा संबंध है उसका उत्पत्ति स्थान जैन ही है।

राजनीति-मंचनों की प्रविष्टि का बड़ा व्यापक प्रमाण मध्यकालीन हिन्दी-काव्य पर पड़ा। मरु कवियों की रचना में गैरता और अतिगैरता का जो विशेष उत्कर्ष देखा जाता है, उसका मूल में ही राजनीति-मंचनों की ही प्रेरणा प्रबल है। ऐतिहासिक कवियों पर भी राजनीति-मंचनों का प्रभाव उन्हा का सकता है। अनेक प्रमुख ऐतिहासिक कवियों में ऐसे छंद मिले हैं जिनमें शत्रु का अथवा छत्र छीकाओं का राजनीति संबंध देखा गया है। अतएव अत्यंत देव का एक छंद उद्धृत किया जा सकता है—

राज पीरिया के रूप राये को बनाई लाई,  
गोपी मधुरा से मधुवन की छतानि में।  
देरि कह्यो ब्रह्म सों, बली हो फल चाहि तुम्हें,  
कह्यो कह्यो लूटत सुने हो बधि-बानि में

संग के न जाने गए डगरि डराने दिघ,  
 स्याम ससजामे से पकरि करे पानि में ।  
 छूटि गयो छल्ल सो छवीली की चिलोकनि में,  
 डौली भई भीहँ वा छवीली मुसकनि में ।

भारतन्तु जी ने रासलीला नाटकों की परंपरा और प्रविधि का अद्भुत कलात्मक प्रयोग अपनी 'बन्नाबली' नाटिका में किया है। बिजोरी हरि जी की 'सहस्रनामिनी' नाटिका भी इसी शृंखला की एक कड़ी है।

### ( ५ )

मैंने लिखा है कि वैदिक संसार-सूक्तों में उपलब्ध वीरगाथात्मक परंपरा ही संभवतः शौमिष्यों के मूक अभिनय के रूप में परिणत हुई और आज बल्कर उही में से मूक-अभिनय छंद-अभिनय शौकी कथावाचन काल्पात्मक संसार नाटिक के माध्यम से संभव होने वाले रस और कृष्य की सीमाओं का प्रसार हुआ। अज में कतिपय मूक-अभिनय-महान सीमाओं का भी प्रसार है जिनको हम रासलीला का ही एक विशेष प्रकार और परिचय मान सकते हैं। इनकी परंपरा बहुत प्राचीन है और लोकप्रियता में तो ये अद्वितीय हैं।

### प्राचीन नाटकीय आयोजनों के आयोजन—मेले

धार्मिक नाट्य की अलावन्तवनी से दो तीन दिन पूर्व मधुरा में कृष्णचरित संबंधी कुछ मेलों का आयोजन होता है। परंतु इन मेलों के नामों में 'मेला' शब्द का प्रयोग तथा कुछ पानों की कृष्ण-वसन्त आदि के रूपों में अवतारका इस ठाण की ओर इंगित करती है कि कुछ समय पूर्व ये मेले बड़े रंगमंच वाले छोड़-नाट्य ही से आए परबती नाम में इनकी बढ़ती हुई सार्वजनिकता के कारण इनमें से नाटकीयता का खोप हो गया और आज इनमें से बोलीवुड सीमा कुचलवापीय बच-सीमा, आदि का मेलावप मात्र जीवित है।

अलग-नवमी से एक दिन पूर्व गोराधनी के दिन मधुरा में आज भी मेघारण सीमा तथा बछनी के दिन केनाथ सीमा बड़े पराव के साथ मचाई जाती है।

कागज का एक बड़ा गीछी बंस का पुतला बनाया जाता है और उसे बंस के टीसे पर खड़ा किया जाता है। तदुपरान्त साकेच्छम होने पर बत्तुर्वेदी लोग खाली प्राचीन पोशाकों तथा प्राचीन हथों को केवल उसे मांगने के लिए बंस के टीसे पर लाते हैं। इसी समय हथ्य और बसबस के समस्त हाथी पर खबर होकर भाते हैं बार वृत्त से ही अपनी छोटी दिखाते हैं। फिर बत्तुर्वेदी लोग उस कागज के बंस को खूब पीटते हैं और बार में कोई उसका फिर कोई उसकी हस्त और कोई उसकी तलवार केवल लाचले हुए बाजार में निकालते हैं। छत्तरबात सब मिल कर विधानमंडल पर हथ्य-बसबस की जातरी करते हैं। सभी बत्तुर्वेदी लोग अपने अपने हथों को धोते हैं और दूसरे दिन बंसबस के प्रायश्चित्ताय मधुरा, कुन्दावन की परिक्रमा भी करते हैं। इस प्रकार यह मेला संन्य होता है, जिसमें गद्यकीयता के शुभ भाव भी देखने पर स्पष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार के मेले आज के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी होते हैं। कागज हाथी के दिन संन्य होने वाला वस-विहार जिसके अंतर्गत नामकीका, कुम्हवापीद-बचलीका, संतुलीका आदि होती है अथ के छोटे छोटे ग्रामों तक में अनेक लोकप्रिय है। अन्य प्रदक्षों में भी ऐसे आयोजनों का अभाव नहीं। इस प्रकार के आयोजनों की प्रविधि पर रामलीला का प्रभाव एवं उसका सम्वन्ध होता है। निश्चयतमक रूप में यह कह सकते हैं कि ये आयोजन रामलीला के वर्तमान रूप में प्रवर्तित हो जाने के बाद हथ्य-बसबस द्वारा उसके अनुकरण में बनाए गए हैं अथवा वे उससे भी बहुत पुराने किसी गद्यकीय आयोजनों के अवशेष हैं।

### मूक अभिनय

मधुरा में आज भी वृत्ति बत्तुर्वेदी (बैशाख सुक्ल पक्ष) के दिन वृत्ति तीस का मूक अभिनय होता है। इस अभिनय परंपरा का मधुरा का बत्तुर्वेदियों के साथ अत्यंत प्राचीन संबंध है। आज भी विशेष पात्रों का अभिनय कुछ विशिष्ट कुम्हों का व्यक्ति ही अपनी परंपरागुसार करते बसे आ रहे हैं। इन बत्तुर्वेदी-कुम्हों के साथ उनके द्वारा प्रतिभर्ष अभिनीत होने वाले वरिष्ठ का नाम विदेवक क रूप में सुद्ध गया है। अतः कुछ बत्तुर्वेदी-परिवार 'वृत्ति के' और कुछ 'ठाकुर के' कहाते हैं।

वृत्ति बत्तुर्वेदी की रूढ़ि को इस अभिनय के प्रारंभ होने के पूर्व संप्रदाय समय सभी अभिनय-उपकरणों का भिन्न भिन्न मुद्राओं में सापेक्षितिक प्रदर्शन होता है।

इन उपकरणों को 'बेहरा-मोहरा' कहते हैं। तबुपरान रात्रि में लगभग बारह बजे इस अभिन्न का प्रारंभ "राजारानी" के स्त्री के आगमन के साथ होता है। बाद में भौमासुर, बारह, इशुमान वीर्यी मोंघड़ा आदि के स्त्री अपने अपने जन्म विशेष बेहरे सख्कर निकलते हैं। वे प्रथम तो बिछे हुए तबुत पर ओ रसमय का काम करता है। नाचते हैं। फिर धड़क पर आ मैदान में उतर आते हैं। इस पुरुष-अभिन्न में तबुता पुरुष तथा अरा आदि बाध एक विशेष तान में बजाए जाते हैं जिससे रीत एवं भवनात् रसों के वातावरण की सृष्टि होती है। रातभर यह काम चलता रहता है और प्रायः सबैष्यम प्रवाही का स्त्री निकलता है, फिर महादेव जी ताड़का और अंत में श्री नृसिंह जी एक कावच की कोठी कावच प्रकट होकर हिरण्यकश्यपु का वध करत है, और प्रवृत्त जी के स्थान पर उस वर्ण के नवयान सिद्धों को नृसिंह जी भवारत है। अंत में आरती और भोग लगता है और इस प्रकार यह उत्कर्ष समाप्त होती है। इस लोचनीय अभिन्न की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संपूर्ण मूल-अभिन्न में कहीं भी वेषाद का प्रयोग नहीं होता।



(६)

# मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

रामलीला

(१)

आनन्द कुमार स्वामी ने रामलीला और कृष्णलीला (रामलीला) का विवरण  
करते हुए लिखा है —

"... that the Ramayana is Pseudo historical  
and is designed to be a social ideal, while the  
Krishna Lila is symbolic and eternal, and Brindaban  
is not this world, but the heart of man. The Rama  
yana tells how man by a righteous life may  
approach to a nearer Union with the Lord the  
Krishna Lila explains the very nature of union  
accomplished. "These are different matters."

अर्थात् दोनों में तात्त्विक भेद है। रामायण बड़े ऐतिहासिक है और उसका  
समस्त सामाजिक आदर्शवादी है। इसके विपरीत कृष्णलीला प्रतीकवादी और आदर्शवादी है।  
कृष्णलीला भौतिक जगत् नहीं बरन् मनुष्य का हृदय है। रामायण बताती है कि जिस  
प्रकार मनुष्य पवित्र जीवन व्यतीत करता हुआ मर्यादा के सामीप्य और सार्वभौमिक  
अधिपति बनता है। किंतु कृष्णलीला मर्यादाति के सुख अथवा मर्यादा के  
सार्वभौमिक के स्वयं की व्याख्या करती है। विद्या के अन्तर्गत का अन्तर्गत यह प्रतीत होता  
है कि रामलीला साधना मार्ग का निर्देश करती है और कृष्णलीला निष्ठावत्ता के  
मनुष्य और आनन्द का प्रतीकवादी प्रकाशन है।<sup>१</sup> रामलीला के चित्ररूप का



आवश्यक स्वीकार किया जा चुका है। दोनों का मेरु को डीक-डीक सम्मेलन के लिए रामलीला का दार्शनिक आधार का संक्षिप्त विवरण भी आवश्यक है।

देवताओं के अनुसार मन्त्रों में वायव्य अथवा अधिकांश-मेरु से रसागुम्फन की पीक प्रक्रियाएँ होती हैं—(१) मधुर, (२) वास्तव्य (३) सरस (४) दास्य और (५) शीत। देवतावाच्यों में इन्हें पीक स्वतंत्र रस ही माना है और इन पाँचों रसों की अव्यतिरिक्त रसि क पीक रूप (पंच स्वादी भाव) माना है—मधुर की कान्ता या मधुरा वास्तव्य की कान्ता स्वयं की प्रेय दास्य की प्रीति और शीत की शीति। यह बात संदेह स्थल में रखन की है कि साहित्यिकों का और मन्त्रों का रस में मौखिक अंतर है? 'यहके अनेकगुण होत हैं, इसारे (मन्त्रों के) चिन्तुन।' <sup>१</sup> ब्रजकीया जगना एत में प्रकान्तवा वास्तव्य स्वयं और मधुर रसों की ही अभिव्यक्ति हुई है। यह बताया जा चुका है कि कृष्ण की मन्द भवन की सीमाओं में मधुर रस की प्रकल्प हुई है। वास्तव्य रस की निष्पत्ति के लिए एत में (ब्रजकीया मर में) अवधारण हो गयी। कभीरु का निरुपम मर के मन्त्रों की शायी में एत रस की प्रकल्पना है। रामलीला में दास्य रस की अभिव्यक्तता प्रकल्प है। 'वायव्य जगत् का प्रतिरिक्त हो जगत् का होता है—संक्रमण और वीरवर्णन। मयवाह का प्रत्यय स्वरूप का प्रति संक्रम और गुहता का भाव एतके बात भक्त इसी भेदी में जात है। दास्य-रस का नियम रूप आत्ममन्यन मयवाह का वह प्रत्यय रूप है जिसके इशारे पर मया कोटि कोटि मयवाह की सृष्टि करती है, जो रामलीला के नी एत है, जिसकी वसति का एक एक कम निदर को उद्गाहित करता है और जो एत न्याय गरी सुम-मने गरी के अकार है। मयवाह के इसी अङ्गि विधि सेवित रूप के प्रति बाह्य मर जनक बात होने का अभिव्यक्त करता है।' <sup>२</sup>

१—६० 'अधिक रसागुम्फन चिन्तु।'

२—पुनः रावण मयाह निकामा। यह वायु मर विरचित भावा ए  
यहके मर विरचित हरी ईसा। पावत सजत हस्त दस शीता ए  
आ मर शीत वरन सहस्रान्न। अङ्गकोट ससत विरि वास्तव्य

(येन अङ्गकोट पृष्ठ पर)

### मध्यकालीन धार्मिक भाषा-परंपरा

वास्य या प्रीति रति की साधना अथवा अनुमृति के लिए किसी प्रकार की पुष्प या रत्न की धारणा की आवश्यकता नहीं। वह सब के लिए सुलभ है क्योंकि उसका मार्ग सीधा-सादा और स्वाभाविक है। वास्य-रस की प्रीति सेवक-सेव्य भाव की भक्ति द्वारा निपट होती है। उसके रसिक कुछे हुए निम्न के बीच मगबान की कला की भावना करते हैं। सेवक-सेव्य भाव की भक्ति का निश्चय बतात हुए गाथावासी जी न भिन्न है—

“सो अनन्य अस, जाकर मति न टर हनुमन्त ।  
मैं सेवक सचराचर रूप रासि मगबन्त ॥”<sup>१</sup>

इस प्रकार की भक्ति की भावना अत्यंत प्रार्थना कम से बली आ रही है। जलवेद के पुरुष-सूक्त में ‘सचराचर’ में मगबान की ही ‘हृष्यसि’ की भावना मिलती है। यह भी कहा गया है कि ‘तस्मिन् ह तस्सुर्बुध्नानि विश्व । अथार उस प्रजापति पुरुष (प्रजापत्या) में विश्व-सुबन्ध-सारे-लोक स्थित हैं। वेतों में इस बाधन के अन्य अनेक मंत्र हैं। एक मंत्र में प्रजापति पुरुष से प्राधना की गई है कि ‘ह पुरुष । श्री वीर वस्मी मायकी पत्नियों हैं,<sup>२</sup> दिन और रात पदार्थ हैं, नक्षत्र ही रूप हैं। मेरे लिए इस लोक और उस लोक में मंत्र की भावना कीजिए।’<sup>३</sup> वेतों में जिस पुरुष कहा गया है सतत में उसे ही नम्रायन कहा गया है—‘पुरुषा इ नम्रायनोऽब्रह्मयत अतिरिष्ठ य सर्वाभिभूतानि । नाज्यन के निम्न रूप के स्पष्ट उल्लेख इसी प्रसंग में मिलते हैं—‘निपुक्तान् पुरयान् ब्रह्मा वसिष्ठ-

परी जो विविध वह सुरक्षाता । तुम्ह से मरन्त निश्चयन दाता ॥  
हर दोरक करिज कहि मंत्रा । तेहि समेल रूप इस मन्त्र मंत्रा ॥  
छरबपुत्र अतिरा मन्त्र वाली । बने सकल अनुमति बलदासी ॥

कोई बच सब लेस त जीतक सचराचर क्षारि ।  
ताम्र रूप मैं आ करि हरि जानक प्रिय नारि ॥

१—वेदिए मुरकांड

२—दे० ह० प्र० दि० इत्यदि० सा मू० पृ० ८१

३—अद्वयते अर्धमन्त्र पन्था ।

पुत्रनेत्र गायत्र्योन्मेषिणैति सहस्रशीषा पुत्रः सहस्राद्याः सहस्रतद्विधं तेन  
 घोऽऽर्चयेत् । महाभारत नाम एक पाँचवें इन्हीं पुत्रों में एक का नाम गायत्र्योन्मेष  
 सातवें पद पाँचवें पद के नामों और भाग्य के नामों से  
 प्रसिद्ध हो गये । महाभारत के अंतर्गत गीता में कृष्ण का विष्णु रूप-वर्णन  
 बस्तुतः भगवान् के स्वरूप की ही व्याख्या है । यदि इस विचार परम्परा को  
 ध्यान से देखा जाय तो इसमें सगुण-सत्त्व-रूप और अद्वैत दर्शन के सम्बन्ध का  
 प्रवास भी स्पष्ट दिखती पड़ेगा । यह सम्बन्ध गीता महाभारत के गायत्री-मंत्र  
 एवं और विष्णु पुराण आदि सब में मिलता है । गायत्री-मंत्र में भगवान्  
 श्री रामानुज व इस पुराण में भगवान् को मुख्य दार्शनिक आधार माना गया और  
 उसे सार्वभौम स्वरूप के नामों से विख्यात<sup>१</sup> रचना के नाम से प्रसिद्ध है ।

रामानुजाचार्य ने तीन प्रकार के पदार्थ माने हैं : उन्हें तत्त्व-त्रय भी कहते  
 हैं — (१) अविद्य, (२) विद्य और (३) ईश्वर (प्रत्यक्ष तथा चोक्षर  
 जितने भी पदार्थ हैं वे सब अविद्य हैं और जीवन्मा विद्य है । अविद्य अज्ञान  
 है, और उसके भी तीन भाग हैं — (१) अज्ञान अविद्य अज्ञान (२) मोक्ष  
 अज्ञान अविद्य अज्ञान और (३) अज्ञान अविद्य अज्ञान । ईश्वर अविद्य का नाश  
 और उद्धार है । यह अज्ञान-विज्ञान का स्वरूप है और सब जीवों का मित्रता  
 है । विद्य और अविद्य दोनों उही प्रकार ईश्वर पर आश्रित हैं जिस  
 प्रकार आत्मा पर शरीर । इहोक्तिं विद्य और अविद्य दोनों को ईश्वर का  
 शरीर कहा गया है । अविद्य विद्य और अविद्य शरीर है, ईश्वर शरीर है,  
 वे अज्ञान हैं और ईश्वर अज्ञान है । जिस प्रकार यह इन्द्र-प्रादिक विद्य  
 भौतिक वेद अज्ञान का शरीर कहा जाता है उही प्रकार अविद्य और विद्य  
 पदार्थ अविद्य अज्ञान और जीवन्मा दोनों का परमात्मा का शरीर कहा गया है ।  
 भगवान् के अनन्त गुण और दो प्रकार के रूप हैं, एक परमात्म-रूप अविद्य  
 अज्ञान-रूप और दूसरा स्वरूप अविद्य विज्ञान । यह परमात्म-रूप अविद्य  
 अज्ञान-रूप ईश्वर सर्वमिच्छता और सर्वमिच्छता है इसलिए भगवान् को ईश्वर  
 और वेद्व्य भगवान् कहा है तथा जीव को दास और सेवक । परमात्म-रूप

१—इहोक्तिं रामानुजाचार्य द्वारा 'विद्य-विज्ञान, विद्य-विज्ञान और विद्य-विज्ञान' प्रतीक  
 गीता-भाष्य में प्रस्तुत-भाष्य आदि ।

और विग्रहों के अतिरिक्त प्रचलित मंगलार्थ यंत्रों के लिए समय-समय पर अन्य पाँच प्रकार की मूर्तियों धारण किया करते हैं—अर्थात् विमल स्मृति, सुख और अन्तर्दामी ।<sup>१</sup> प्रतिमादिक को अना कहते हैं। मन्त्र, वाराह, कूर्म आदि अवतारों का नाम शिख है। वायुदेव वरराम प्रद्युम्न अविद्वत् आदि स्मृति है। शिव विरोध विमल, विभिन्नत सप्तशत और सप्तशत (वर्णनशाली) फलदा का नाम सुख है और सब जीवों की विघ्नता मूर्तिविघ्न का नाम अन्तर्दामी है। मंगलार्थ की इन पाँच प्रकार की मूर्तियों की उपासना भी पाँच प्रकार की मानी गई है।

उन पाँचों विधियों के नाम हैं (१) अमिगमन (२) उपादान (३) इज्या (४) स्वाध्याय और (५) नाम। देवता का छह और मार्ग के माध्यम तथा केपनादि को अमिगमन कहते हैं। मेषपुष्पादि पूजा की वस्तुओं का आबोधन उपादान है, मंगलार्थ की पूजा का ही नाम इज्या है। अर्घ्योपपूर्वक मीनभाष, वैष्णव सूत्र और स्तन का पठ मन्त्र-संस्कार और शास्त्राभ्यास को स्वाध्याय कहते हैं। ध्यान, वारणा और समाधि इत्यादि कृपा की प्राप्ति के जो उपाय हैं उन्हें नाम कहते हैं।<sup>२</sup>

आगे चलकर स्वामी रामानन्द जी हुए जिन्होंने रामानुज का उपासक तत्त्ववाद पूर्णरूप से स्वीकार करते हुए अमिगमन के स्थान पर सीताराम की उपासना प्रवर्धित की। रामानन्द ने विष्णु के सब अवतारों में लोक-कल्याण विचार करने वाले राम-रूप को संसार के लिये अत्यधिक मंगल-विषयक समझकर पुनः मनुष्य मात्र को राम की भक्ति का अधिकारी, धारित किया और राम की उपासना के क्षेत्र में बने-बोरे अथवा जाति-भेद आदि सब धार्मिक प्रतिषेधों का प्रसारण किया। जोमाह, कर्क, रैवत, वषाट, पर्वा, माघ और सैम मास मानी उनके प्रधान दिनों में से हैं। इस प्रकार उन्होंने राम-भक्ति का भारत-

१—४० सर्वदर्शन सिल्ला—१

२—४० सर्वदर्शन सिल्ला—२ रामानुज वचन।

३—४० रामानुज हस्त श्रेष्ठमास

आपी आशेस्य भक्त्या जिसके तर्जमाबात से हिन्दू-जाति के बहुत से रसि-  
बन्धन बंधे हुए । रामानन्द द्वारा प्रवर्तित राम की उपासना दास-भाव की है ।  
दास-रस के सबसे बड़े रसिक इसके चरम परम आध्वर्यव आत्मभक्त भी हुन्मा-  
न हैं । इसीलिए सीताराम की उपासना के साथ-साथ उनकी उपासना  
की लोक में चमक पड़ी । रामोपासना के अन्तर्गत लज्जन और मरणादि विन  
मूर्ति-मूर्तियों की खोज होती है उनमें दास्य सम्भाव के प्रीति रस का ही  
उत्कर्ष प्रयोज्यता देखा जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य श्री  
रामानन्द ने लोक की दो पुरातन मान-धारों के सामञ्जस्य-विधान द्वारा  
विशिष्टाश्रय वर्णन की प्रशिक्षा की । रामानन्द ने दास्य-रसिक के प्रचार द्वारा  
उत्ते सार्वभौमिक और सर्वजन सुखमय रूप प्रदान किया जो अस्संग आशेस्यगी तथा  
आत्महारीक सिद्ध हुआ ।

रामानन्द तथा रामानन्द के वर्णन और साधना की समस्त भी और  
यदि योस्वामी तुलसीदास जी के साहित्य में प्रत्युत्थित हुई । योस्वामी जी ने  
अत्यन्त रूप से दास्य भाव की मूर्ति बध्ना दास्य का प्रीति रस का ही सग-  
त्ताति का सर्वोत्तम साधन और मयकप्रति का सुसमयत उपाय माना है,  
अर्थात् स्पष्ट कहा है सेवक-सेव्य भाव बिना संसार तरसा अचम्बल है ।<sup>१</sup>  
रामचरितमानस में एक स्थल पर स्वयं भगवान् इस बात की घोषणा  
करते हैं <sup>२</sup>—

सब मम प्रिये सब मम उपजाय ।

सबसे अधिक मनुष्य माँहि माय ॥

तिन्ह मह द्विज, द्विज माँहि श्रुतिधारी ।

तिन्ह मह निगम धर्म अनुसारी ॥

तिन्ह माँहि प्रिय विरक्त पुनि जानी ।

व्यामिहुँ ते अति प्रिय विदानी ॥

१—अधिक सम्ब भाव विनु मम न रहिय जरगारि ।

२—रामायण—उत्तर काण्ड ।

मध्यरात्रीन शर्मिक नाख-परंपरा

तिन्हु हैं मोहि पुनि प्रिय निज दासा ।  
जेहि गति मोरि न बूसरि आसा ॥

पुनि-पुनि सत्य कहौ तोहि पाहीं ।  
मोहि सेयक सम प्रिय कोठ नाही ॥

दास-नाम से भजन करने वाले ऐसे सेवक निरंतर मगवान् के नाम<sup>१</sup> का जप, रूप का ध्यान<sup>२</sup> लीला का स्मरण<sup>३</sup> और नाम का सेवन<sup>४</sup> करते हैं। लीला का स्मरण हो प्रकट हो सकता है। एक है मगवान् राम की लोक-मंगल-निवासी ललित लीलाओं का यान करने वाले प्रनों का स्वाध्याय और ध्यान जिससे मन पवित्र होता है और जीव कमलः समलयाति का अविचारी बनता है। दूसरा प्रकार है मगवान् की दिव्य कर्म और कर्म-सम्बन्धी लीलाओं का अनुकरण अथवा अभिनय। रामलीला और रामलीला दोनों ही अन्तर्गत-मे<sup>५</sup> से इस लीलाभिनय के दो रूप हैं। मगवान् की जो बार प्रकट की मातुरी है उसमें से श्रीकृष्ण-मातुरी जेपु-मातुरी और बिमल-मातुरी की शक्त रामलीला में मिलती है।<sup>७</sup> सकल अथवा प्रेरणितवी गोमतीला कीला-

१—ये रामचरित मानस के बालकाल के अन्तर्गत नाम-बन्धना ।

२—‘ज्येष्ठ बालक जिह्व करि राखे ।  
रखी दास अलख अभिलाखे ॥

निरखी छिन्दु सरित सर बारी ।  
रूप छिन्दु बल होहि सुपारी ॥ (रा. ज्योत्स्नाकण्ड)

३—रामचरित भिन्नामनि बार ।  
छेत सुमति विम सुमय विगल ॥

सेवक मन मानस भराक से ।  
पावन मग तरंग मान से ॥ (रा. बालकण्ड)

४—बारम राम तीरथ पछि जाहीं ।  
राम बरहु दिन के मन माहीं ॥ (रा. उत्तरकण्ड)

५—‘कर्म कर्म ज मे दिव्यम’ (गीता)

६—ये रामलीला का अंग

७—माणव १ १५, १४ १५

माधुरी के मंतर्गत है और मैत्रु-माधुरी भगवान की अद्वैत और पुत्र निर्दुर्लभा का गंध है। रामलीला में और समस्त राम-साहित्य में भगवान की ऐश्वर्य-माधुरी के अनुभव और अभिव्यक्ति की ही प्रशंसा है।

सात्य-माय की शक्ति का उत्कृष्ट भगवान की ऐश्वर्य-माधुरी के अधिकारिक बाप पर निर्भर है, इसीलिए इस भेषी के मुख उसके द्वारा भगवान के अभावात्, हरनाग-वस्त्र और कदवायतन रूप का ध्यान और विस्तृत प्रतीति के अन्वेषण के लिए करते हैं। मुख अपने हृदय में ईश्वर का अतिशय अभिव्यक्ति अनुभव करेगा भगवान के ऐश्वर्य-रूप का बोध उत्पन्न ही उत्पन्न होगा और ईश्वर राम की अनुमति भी उत्पन्न ही उत्पन्न होगी। ऐसे मुख की छवि भगवान की ऐश्वर्य स्तम्भों की भाव का ही नहीं सकती और न इस अधिक मार्ग में पुत्र भगवान का प्रतीति को प्रत्यक्ष मिल सकता है। ऐश्वर्यमयी तुलसीदास जी ने राम को 'अत्यंत' से अधिक 'बड़ा' और 'अत्यंतवादी' से अधिक 'बहिर्वादी' बताया है—

“मंतर्जामिदु मे बहु पाहिरासि हैं राम के नाम छिय ते ।

फेज परे प्रहस्यहु के प्रगटे प्रभु पाहन ते न छिय ते ॥ १

अथवा

“हम सब हमहिं हमार कछ, हम हमार के बीच ।

“तुलसी मन्त्रकहिं का कही राम नाम जपु नीच ॥ २

इसीलिए राम से सम्बन्ध रखने वाले कव्य और दृश्य दोनों प्रकार के कव्य में उनकी सांकेतिक सम्बन्धमयी जीवन-स्तम्भों का ही प्राधान्य रहा प्रेम मंदिर और विनाश की गथाओं के लिए अन्वेषण ही न निरन्तर रुका नहीं करता है कि रामलीला में जो राम-रूप का कव्य है, अत्यंत-वैशिष्ट्य और नए नए प्रसंगों की उद्भवना का अभाव है। इसके निपटीत महार-रसाक्षित रसकीला में ऐश्वर्य-बोध का—मधुररस की परंपरवी प्रति होने के कारण—अभाव है और भगवान की ऐश्वर्य स्तम्भों का प्राधान्य है। रसकीला और रामलीला का यह भेद अधिक-साधना के रास्ते की प्रशंसा का निर्देश करता है।

१-२

१—दे. ११ ‘कविताकली उत्तराध्याय ।

२—दे. ११ हृद ‘दोहावली’ ।

(१)

१. रामकृष्ण की बतनाम अभिनयात्मक परम्परा का प्रचलन जब और किसके द्वारा हुआ इसका निर्णय करना कठिन है। प्रायः सारे देश में किसी न किसी रूप में रामकृष्ण का प्रचार है। देश के बाहर बाम्नी, आवा और मध्य अफ्रीका दोनों में भी अत्यन्त प्राचीन काल से इसका व्यापक प्रचार चल आ रहा है।<sup>१</sup> स्वाम में भी कठपुतलियों के द्वारा रामकृष्ण का प्रदर्शन होता है। स्वाम का 'रामकृष्ण' और कोलकाता का 'रैयानचेर' मध्य रामकृष्ण के रूप में प्रसिद्ध हैं और उनमें वर्णित बतनाम बहों के प्राचीन मूर्तियों में भी लक्ष्मी है। बर्मी में भी बतनाम 'रामबायल' (रामायण) का प्रचलन किया है और रामकृष्ण संकेपी 'बामयें' नामक नाटक में बहों प्रकटित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्राचीन प्रमाणिक उल्लेख भी मिलते हैं, जिन्हें सुदूर अतीत में भी राम-नटकों की लोकप्रिय और नाट्यबर्मी दोनों ही परम्पराओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। वैदिक काल में ही हमारी मध्य-परम्परा का प्रारम्भ हो गया था, इसका उल्लेख हो चुका है। यह परम्परा संस्कृत से सुसम्मानों के अग्र के पूर्व तक बखली रही, यह भी बतसनाम का सुच है। इन मध्य-परम्परा के विकास में वैष्णव धर्म का प्रभाव सुदूर था। वैष्णव धर्म के बीच कहीं तक में वर्तमान है और उसका पूर्ण विकास महाभारत तथा गीता के काल तक हो गया था। संस्कृत और महाभारत काल के बीच वैष्णव धर्म द्वारा अनुप्राणित नाट्यप्रयोगों ने लौकिक और साहित्यिक दोनों ही प्रकार के अनेक रूप धारण किए, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। विष्णु के विविध अवतार चरित्रों का अभिनयात्मक प्रदर्शन होता था इसका सबसे बड़ा प्रमाण महाभाष्य में वर्तमान है। 'कंसवध' और 'बलि-वध' नामक नाटकों का उल्लेख है जिसका अभिनय धौमनिक या धौमिक परमाणु वाले नट सांकेतिक स्थानों पर किया करते थे। इतिहास में भी लिखा है कि जब प्रहसन, साम्य आदि, यमव, राजकुमार प्रमाणादि-रूप के विष्णु वाक्पराज बतनाम के मगर-में गए थे तब उन्होंने बहों राम-कृष्ण और रंग-विहार नामक नाटकों का अभिनय किया था। इन उल्लेखों से यह तो सिद्ध

१—बर्मी और आवा के राम-नटक नुद तथा बलि-मुदीब नुद सम्बन्धित नाटक प्रसिद्ध हैं।



ही है कि उस समय बिष्णु के प्रधान अवतार राम तथा कृष्ण के चरित्रों का अभिनेता व्यापक रूप से होता था। राम और कृष्ण के चरित्रों से सम्बद्ध नाटक बहुत प्राचीन काल से लिखे जा रहे हैं। अलिखित से भी प्राचीन मान जाने वाले महाभारत मास द्वारा रचित बाण-चरित नामक नाटक कृष्ण के नाम चरित से संबंध रखता है।

उसके प्रतिमा नाटक में राम-वनवास तथा सीता-हरण से प्रेरणा कर राम-वध तक की घटनाओं का समावेश है और अभिनेक का वर्णन है। इन दोनों नाटकों में बाणभट्ट के अतिरिक्त रामायण के अन्य सभी कालों के कथानक का समावेश है। ७ - ई के सम्मग मन्मथि के 'महावीर चरित' और 'उत्तर-रामचरित' में सीता-वनवास से पुनर्मिलन तक की कथा है। मन्मथि के नाटक उज्जैन में सम्राट काकस्थि के मंदिर में अभिनीत भी हुए थे। अष्टम शती के उत्तरार्ध में मुरारि ने 'अनर्क रायण' नामक नाटक लिखा था जिसमें विश्वामित्र के ब्रह्म की रक्षा के लिए राम के वन-प्रसंग से प्रेरणा कर राम-वनवासोत्तर राम के राज्यारोहण तक की कथा है। अष्टम शती के पूर्वार्ध में राजसेखर ने बालरामायण नामक नाटक लिखा जिसका अभिनेता भी बालकृष्ण नरेश महेन्द्रप्रसाद के पुत्र महीनाथ की आज्ञा से हुआ था। चौदहवीं शती के मध्यम अवधि में 'प्रसन्नरायण' नामक मुद्रित नाटक लिखा जिसमें राम के चरित का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत-नाटक के इतिहास में भी राम-कथा-संबंधी अनेक नाटक लिखे जाते रहे। रामायण वीरचित व सप्तमी शती में 'आनंदीरसिंह' नामक नाटक लिखा था और इन्हीं के सम्प्रदायी महारथ ने 'अद्वैत रस' लिखा जिसमें अंग के राज्य से राम के राज्यारोहण तक की कथा वर्णित है। अष्टम शती के मध्यम अलिखित नामक केरल देश निवासी कवि ने 'आचार्य ब्रह्ममणि' लिखा जो सात अंकों में रामकथा-सम्बन्धी अष्टम रस प्रधान नाटक है। ११ वीं या १२ वीं शती के आस-पास बिरनाथ अथवा विहगम नामक मिथली कवि ने 'कुम्भमास' नामक नाटक लिखा। इसमें भी रामायण की ही कथा है और इस पर मन्मथि के 'उत्तर रामचरित' का विशेष प्रभाव है। मधुसूदन मिश्र विरचित इस अंकों का 'हनुमान्नाटक' और रामोदर मिश्र द्वारा चौदह अंकों का उली नाम का महाकाव्य भी रामचरित-सम्बन्धी अर्द्ध नाटकीय प्रयोग है। कवि मयूरन के 'उत्तरावध' के कथानक का आधार भी रामायण ही है। १३ वीं शती में सुमन कवि ने 'वृत्ताष्टक' नामक एक अर्द्ध नाटक

# मध्यकालीन धार्मिक नाट्य-परंपरा

लिखा जिसका अन्तिम १०४३ ई० में लखनऊ के वास्तव्य राजा मिर्जान पाल की समा में हुआ था। इसमें राम का दूत बन कर अंगद के संघ जान की कथा है।

१५ वीं सदी में रामपुर के कलचुरि नरेशों के राजधर्म व्यास थी रामदेव लिखित तीन नाटकों में जो छाया नाटक बतलाए गए हैं 'रामायुद्ध' भी है जिसमें संक्ष-विजय सीताकी अभि-परीक्षा और राम के मायोया जीतने की कथा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत में राम नाटकों की यह साहित्यिक परंपरा ईसा के पूर्व से प्रारंभ होकर प्रायः १० वीं सदी तक अविच्छिन्न रूपसे चलती रही। इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि ये राम नाटक निम्न-निम्न समूहों में तो लिखे ही गए, कन्नडपुराण विहार, बंगाल मध्यप्रदेश गुजरात केरल आदि सभी प्रांतों के कवियों ने भी इनकी रचना में योग दिया। इससे यह सिद्ध है कि इस महावेश के विभिन्न प्रांतों में रामचरित का अमिमम अनेक रूपों में निरन्तर लोकप्रिय रहा। साधारण नाटकों से लगाकर छाया नाटक तक में राम के जीवन की विविध घटनाओं का प्रदर्शन होता रहा। वहीं तक कि कटपुस्तकियों के लेख के भी अविकीर्ण कबालक रामायण से ही लिए जाते रहे हैं। ई० पी० हाउसिन्ग ने लिखा है—

"The Hindus never seem to tire of a story told of the saintly Ram. The Nepalese theatre in the north is known to have produced 'Rama plays as early as the fourteenth century of our era. The Tamil theatre in the south has shown itself no less partial to the Ramayana.... Hosts of Indian dramas are derived from the Ramayana." १

१ ई० ई० पी० हाउसिन्ग रचित इन्डियन थियेटर्स पृ० १५४-१५९ —  
 "..... As a rule the subject is taken from the traditional lore of the two national epics."  
 २. ई० ई० पी० हाउसिन्ग इल्ट 'इन्डियन थियेटर्स' पृ० १४०-४१

“हिन्दू अर्थात् साधुजीव राम की कथा से कभी तुम ही नहीं होते उत्तर में वेगली रंगमंच पर १४ वीं शती में ही राम नाटकों का अभिनव प्रारम्भ हो गया था। इतिहास में सामाजिक रंगशास्त्र में भी रामायण के प्रति कम अनुपम नहीं रहा। ‘‘सैकड़ों, सार्वजनिक नाटकों का उद्गम रामायण से ही हुआ है।’’

राम-नाटकों की इस विशिष्ट-व्याख्यापी अति प्राचीन साहित्यिक-परम्परा को इकट्ठा हुए यह मान लेना चाहिए नहीं है कि राम चरित्र के अभिनव की शैक्षिक अपवाद कोकबनो परम्परा भी इस घर में सर्वत्र सर्वसाधारण के बीच इससे बहुत पहले से नहीं तो कम से कम समानान्तर अवस्था बचती रही होगी।

रामचरित्र के अभिनव की वही शैक्षिक अपवाद कोकबनो परम्परा देश भर में आज रामलीला के नाम से विख्यात है। रामलीला राम की ही भक्ति के समान व्यापक तथा प्राचीन है। ‘‘हिमात्म्य के गर्म से रंगा के सद्गुण का समग्र वस्तु सच्चा जितना फैलता है, उतना ही फैलता रामलीला के शास्त्र का बाज बताना है।’’ राम के भक्त तो रामलीला की इस परम्परा को अग्राहि करते हैं। उनके अनुसार हिन्दू धर्म के अनादि एतद् की अनादि लीला की यह अभिनवप्रसक्त परम्परा भी अनादि ही है।<sup>१</sup> इन मालुम जगहों के बीच एक धियवन्ती प्रचलित है कि मेला कुतू में जब राम पिता की आश से वन को चले गए थे तो अनाथा के उनके परीजन पुरजल और प्रयागनो ने राम के बाज-चरित्रों का अनुकरण और अभिनव करत हुए चौदह वर्ष के नियम नियम के दिवस करते थे। इन स्त्रोत्रों का ऐसा निदास है कि। लड़ी से रामलीला की अभिनवप्रसक्त परम्परा का आविर्भाव और विप्लव हुआ। ऐसी ही कथा, अमरुमायव के, अंतर्गत उपसंवाद्यापी में है। बापियों के बीच विद्वान् करत हुए भीहूअ कम अनुपम है। गये ता थे उनक हुसद नियम का तब शयन करने के लिए उनके बाज और कैपल चरित्रों का परम्परा अनुकरण करने कभी। ऐसी विवेकियों और निदासों से, रामलीला और रामलीला की मार्मिकता प्रतीकता की निहा ही अमल हाटी है।

१. बाबू-स्थापनित निर्याद सारितरण महीतके।

२. नाट्यरामायण कथा कोकियु प्रचरिप्यति ॥



का धन प्रदान करती हैं। काशी में गोस्वामी जी की बसाई हुई रामलीला अभी तक बची आ रही है। यह आधुनिक मास में होती है और इसका भरत-मिताप बहुत प्रसिद्ध है।

गोस्वामी जी के द्वारा प्रचलित होने के पश्चात् रामलीला की अभिनयप्रकार प्रविधि ने दो रूप ग्रहण किए। इसका एक रूप यह है जिसमें रामलीला का अभिनय एक ही स्थान का प्रेक्षास्थल में सीमित न रह कर भिन्न भिन्न स्थानों का गावों के मिला मिल मुहूर्तों में प्रस्तुत किए जानेवाले रूप के अनुरूप, अधिक से अधिक यथासंभव रस-रस और परिवेश में किया जाता है। गोस्वामी जी ने काशीमें जो रामलीला बसाई की उसका रूप यही रहा। उसका दूसरा रूप यह है, जिसमें एक सुनिश्चित और चारों ओर से घेरे हुए स्थान को घेर कर प्रेक्षास्थल बना लिया जाता है। इस प्रेक्षास्थल के एक ओर अयोध्या और दूसरी ओर लंका रखी है। दोनों के बीच में सब प्रकाश की लीलाएँ चलती होती हैं, और दर्शक सोते उन्हें चारों ओर से देखते हैं।

काशी में रामायण के जिस प्रसंग का जिस स्थान-विशेष पर अभिनय होता था गोस्वामी जी ने तदनुसार उसका नामकरण भी कर दिया था। वे सब नाम आज भी बड़े आ गे हैं और उनमें से बहुत से—जैसे लंका आदि—तो काशी के मुहूर्तों के नाम ही बन गए हैं। इसी प्रकार अयोध्या में उन्होंने चैन मास में रामलीला बसाई की तथा काशी की तरह वहीं भी विभिन्न अभिनय-स्वरूपों को फटना और प्रसंग के अनुरूप नाम प्रदान किए थे। अयोध्या की रामलीला की वह परंपरा अब सुप्त हो गई है, केवल गोस्वामी जी के लिए हुए अभिनय स्थलों के नाम अभी तक बड़े आ रहे हैं। अयोध्या के इस इलाक़ा परितः अनुसंधान को कराते हैं। बहुत खोज करने पर भी इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि अयोध्या की गोस्वामी जी की बसाई हुई रामलीला की परंपरा अब तक चलती रही और फिर वह किस समय और किन कारणों से छप हो गई। आजकल अयोध्या में अनेक रामलीलाएँ आधुनिक मास में होती हैं, पर उनमें से कोई भी बहुत प्राचीन नहीं सब ती नव के इतर की ही हैं। अयोध्या की सबसे पुरानी अभिनय-परम्परा अजहल में होने वाले राम-विवाह अथवा धनुस्सूक्त की है। यह गोस्वामी भी रामप्रसाद जी महाराज ने जो अयोध्या के एक प्रसिद्ध सन्त हुए हैं, बसाई की। गोस्वामी भी रामप्रसाद जी महाराज ने सन् १७६० वि० के लगभग

एक घड़ी की स्थापना की थी जो अब बड़ी जगह के नाम से विख्यात है। अयोध्या के सब पुरान तथा जानकार लोगों ने तथा स्वयं बड़ी जगह के महन्त जी न मुझे यह बतलवा कि उनके यहाँ राम-मिठाह का अभिनय अभिषिक्त रूप से गोरखानी रामप्रसाद जी के समय से होता आता आ रहा है। इस प्रकार अनुपमज की यह परम्परा दो सौ वर्ष से भी कुछ पुरानी प्रतीत होती है।

गोरखानी की काशी की रामलीला आश्रित भास में विख्यात इक्ष्मी के अवसर पर कराते थे और अयोध्या में चैत्रमास में राम के जन्म-महोत्सव के उपलक्ष्य में उसका आयोजन करते थे। अयोध्या में गोरखानी जी-प्रतिष्ठा रामनवमी के अवसर पर रामलीला की व्यवस्था के लिए पधारते थे और कहा जाता है कि उनका राज काशी के प्रसिद्ध 'मेधा भगत' भी माना करते थे। रामलीला जिस स्थान से आरंभ होती थी उसे आजकल तुलसी बहुरा कहते हैं। इसी स्थान पर गोरखानी जी ने रामायण की रचना भी शरंभ की थी।

काशी और अयोध्या की रामलीला के समय में अंतर होने से गोरखानी जी को दोनों में संमिश्र होने तथा दोनों की समुचित व्यवस्था करने की मुश्किल तथा अवकाश रहता होगा, परंतु इसका मुख्य उद्देश तो क्याचित यह होता कि राम के जीवन की दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं—उनका जन्म और उनके द्वारा 'राज-वच'—की स्मृति सार्वजनिक रूप से सम्यक् सुरक्षित रहे। आजकल भी रामलीला के ये ही दोनों समय हैं। उत्तर प्रदेश के अधिक भागों में रामलीला आश्रित में होती है और राजपूताना, मालवा आदि में यह वैष्णव में होती है। इस प्रकार, रामलीला के अभिनय-समय पर ही गोरखानी तुलसीदास जी की व्यवस्था का प्रभाव स्पष्ट है।

मरि हम बोरी बेर के छिपू यह भी मान ले कि रामलीला का समय निर्धारित करने के सम्यक् में गोरखानी जी ने कोई नई बात नहीं की बरन उन्होंने एक पुरानी बची आती हुई परम्परा को ही ग्रहण कर उसे पुनर्जीवित किया तो भी हिन्दी-भास-भाषी प्रांतों में रामलीला की प्रबलित परिपक्वी पर अनेक रूपों में गोरखानी जी का प्रभाव मान लेने में किसी प्रकार की बाधा अबका कठिनाई का अनुभव नहीं होता। यही कारण है कि आज बहुत से लोग गोरखानी जी को ही रामलीला का आदि

अवगत माने बैठे हैं। यह बताया या सुना है कि रामलीला की परम्परा मैसूरनी प्राचीन है। एक जोर यह भी मिलता है कि मोरामी जी के द्वारा रामलीला प्रारम्भ होने से पूर्व काशी में मेधा<sup>१</sup> मयत की रामलीला होती थी। ऐसा अनुमान हो सकता है कि विभिन्न परिस्थितियों से आक्रान्त होकर रामलीला की यह अभिनय-परम्परा काश्मिर में हस्तोन्मुख और विरक्त हो गई हो और मेधा मयत छरीके साधु सन्त उसे काशी जैसे स्थानों में उन्हीं स्थानों परसे बसे कर रहे हों। इसी का पोस्वामी जी ने चद्दार पिना और नए सिरे से उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की। अतएव मोरामी जी यदि रामलीला के आदि अवतक नहीं तो उसके स्वयं के नवीन निर्माता तथा उत्तरक तो निर्विवाद रूप से सिद्ध हैं। पोस्वामी जी जैसा महाद्व कवि और परिपूर्ण कलाकार रामरत्न नाथ काव्य को रामचरितमानस में परम उत्कर्ष तक पहुँचा कर तत्सम्बन्धी हस्त-काव्य रामलीला की उपेक्षा करता यह सम्भव भी नहीं था।

रामलीला में मूक-अभिनय (dumb shows) का भी बड़ा उदा है। ई० पी० हारविज<sup>२</sup> ने लिखा है—“The people of India look upon dumb shows with as much favour as the English do on Christmas Pantomimes.”

मर्बाद ‘भारतीय मूक अभिनय को उतना ही पसन्द करते हैं—कितना औरतें बड़े दिन के अवसर होने वाले त्यौथों को।’ हारविज ने विषय हेतु के विवरण का हस्तका भेजे हुए लिखा है—

“Bishop Haber describes the “Selse of Lanka as he saw it performed at the Ram Lala festival in Allahabad. Havana’s palace was constructed of bamboo reeds, and decorated with coloured papers. Doors and windows were gaily painted and a frightful paper-giant stood on the roof of the building. The ogre was fifteen feet high, and had

१—ये का प्र समा काशी से प्रकाशित रामचरित मानस की मूद्रिका।

२—इण्डियन रिव्यू पृ० १५८ ई० पी० हारविज।

twelve arms with some kind of weapon in each. At his feet sat a little girl meant to be Sita, two green dragons made of inflated bladder were guarding the prisoners. The little mite was wrapped in a gorgeous veil, and must have felt very tired for she drooped her curly head and was soon fast asleep. Hanuman having a monkey's mask pulled over his ears was capering and gambolling outside the City gates. He had a long bushy tail and his skin was dyed with indigo."

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि रामलीला में मूक-अभिनेता का स्थान बड़ा प्रमुख रहता है, पर रामलीला में उसकी योजना के लिए सम्पादिकात्मक व्यवस्था रहती है। रामलीला का रंगमंच जिसका विस्तार और समुच्च है, रामलीलाका उत्तम ही समुच्च और संमित। पर रामलीला की ही तरह रामलीला की भी विभिन्न अभिनेता प्रविष्टि का उत्तम विचार हुआ है और उसने भी एक सीमा तक हिन्दी-भाषा परम्परा को प्रभावित किया है। रामलीला के प्रारम्भ में पूर्वार्णव की एक निश्चित विधि का पालन किया जाता है जिसमें स्थान-मेर से प्रथम-मेर की देखा जाता है। वहीं यह समय भगवान् के मुकुटों के पूजन में आरंभ होती है और वहीं इसी प्रकार के अन्य कर्मकाण्ड से। रामलीला की प्रविष्टि का विचार करने वाले जो कतिपय ग्रन्थ लिखते हैं, उनमें उनको के पुस्तक-संरचना निर्देश दिए गए हैं। उनमें के लिए यह आवश्यक माना गया है कि वे सब बहुत ही उत्तम स्तर से जोड़ने वाले हों। राम, लक्ष्मण, भरत, सुगुण सब कुमार अवस्था के हीर बहुत हों। सीता कुमारी और कोमल प्रकृति की हों। अर्जुनरा पतनी कम्बे की हीर और सगुण लक्ष्मण प्रकृति के हों। इसी प्रकार रामलीला की रंगमंचीय व्यवस्था और पात्रों की कल्पना के नियम में भी निम्नलिखित निर्देश प्राप्त होते हैं। "अनन्द रामायण" में रामलीला के विधान का सविस्तर विवेचन प्राप्त होता है। --

रामलीला के अभिनेता का आचार रामचरितमानस है। लक्ष्मणिका करने वाले पात्र रामचरितमानस की नीपादनी का कंड कर केते हैं और कथोपकथनों में प्राक् कंडी का प्रयोग करते हैं। यदि उन्हें नीपादनी कंड नहीं होती तो



सुनकार मक्का व्यास उनकी फूट हैं और अभिनेतागण उनका भाव अपने चेहरे में व्यक्त करते हैं। रामलीला के रंगमंच और प्रेक्षकालय का निर्माण किसी मैदान में बाग बोंप कर किया जाता है। लीलाभिनय में मांग देने वाले पात्र इन्हीं में घूम-घूम कर लीला करते हैं। वे थोड़ी थोड़ी बूट चलकर खड़े होकर अपना पात्र प्रस्तुत करते हैं।

जिस प्रकार रामलीला की प्रक्रिया ने हिन्दी-साहित्य पर अपना प्रभाव डाला है, उसी प्रकार रामलीला का भी प्रभाव पड़ा है। अस्ति-काल के अंतर्गत, संस्कृत रामलीला की अभिनय एवं रंगमंच की परम्परा को व्यास में रख कर ही कबीर प्राणचंद ने 'रामायण महानाटक' लिखा और इंदरराम ने 'हनुमानाटक' की रचना की। 'रामायण महानाटक' में कवि ने गोस्वामी तुलसीदास जी के मानस की छेरी का स्मरजन किया है, और कथावस्तु के संयोजन में वात्सीकि की रामायण से भी सहायता ली है। टीली के महाराज बिदयाधर सिंह ने टीलियाल के अंतर्गत हिन्दी का प्रथम माना जाने वाला नाटक 'अनन्त रत्नमय' लिखा। यह नाटक भी रामलीला की अभिनय-परम्परा से प्रभावित है। उसीछरी तथा सीखी छरी में भी कई रामलीला नाटक लिखे गए। इनमें उदात्त कवि-कृत 'हनुमान-नाटक' 'राम कथा' (महमद संग्राम नाटक) नाटक और अहिंसावादी छैला इंदिरा का 'अनन्त-रामचरित'; लक्ष्मण चरण 'मधुच्छ' का 'रामलीला चित्रण' विशेष उल्लेखनीय है। जाग चक कर मारतनु ने इस नाटक-परंपरा की अंगीकृत वास्तविक शक्ति का भी साक्ष्यकार किया और उन्होंने छापी की प्रसिद्ध रामलीला के लिए धरत पात्र का प्रथम किया जिसमें 'धरत' और 'भारत' दोनों के लिए उपयुक्त सामग्री मिलती है, साथ ही सूत्रधार के लिए अनन्तक रव-निर्देश भी दिए गए हैं। उसके आरंभ के कुछ अंश यहाँ व्यूट किए जाते हैं—

## श्री राम-लीला

(सं० १९३६)

पद

हरि, लीला सब बिधि सुकलाई ।

कहत सुनत वेकत जिय मानत हैति भगति अचिकलाई ॥

प्रेम बढ़त भय नसत पुष्प-रति जिय मैं उपगत आई ।

याही सौ हरिचैद करत सुनि निव हरि-चरित यकलाई ॥१॥

## मध्यकालीन धार्मिक गान-परोपमा

शाय

जाहा । भगवान् की लीला भी ऐसी दिव्य और चमकदार है कि कल्पित-मनोमय जनों को सरस ही प्रभु की ओर-मुख देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यों न हो-यही तो परमेश्वर के रंग में रंग ही जाती है । विशेष कर के चमक इस लीला के माध्यम कि धीमान् महापुरुष कश्मिराज भक्त-सिरोमणि की कृपा से होता है फिर बंगाल की सुवि और बैकुण्ठ और खैरसगर की हॉली से नेत्र झुकाव होते हैं । फिर तो आनन्द का समुद्र भी सम-जन्म का महोत्सव है जो देखने ही से सबैव रकता है, कानेही बात नहीं है ।

कविच

राम के जनम मौहि आनंद उछाह जौन  
सोई दरमायो येनी लीला परकासी है ।

तैसे ही मवन बसरय राज रानी भावि  
तैसे ही आनंद भयो दुख-निसि मासी है ।

सोदिलो बघाई द्विज दान-गाम बाजे वज्र—  
रंग पूज-वृष्टि, चाक वैसी ही-निघासी है ।

कलिभुग जेता कियो नर-मय देव कीन्हें  
आहु कपरीराज जू भक्त-ज्या कीनी कमी है हर

फिर भी रामदेव की बाक-लीला सुणन कण्ठेय कनेक रिश्ता लेम्ना भावि ज्यों का त्यों होता है हरने से मनुष्य, मनुष्य-युग युग से खोता है । फिर निश्चयि भाव है—संग में धीराम की को, सलुब से जाते हैं । माग में तादिस सहाय का बच और फिर बरष-रेणु से अहिम्मा का तारना । अहा ! चमक प्रभु के पद-पद्म जिनके एक से कहीं मनुष्य पारस होता है देखता बनता है कहीं पथर तरता है । इस प्रभु की रीन बरसात पर भी ममहापरा की उक्ति ।

## दीहा

हम जानो तुम बेर जो छावत तारण मीर्छि ।  
 पाहनहू सैं कठिन गुमि मो द्विय मावत माहिं ॥३॥  
 तारन मैं मो दीम कै छावत प्रभु कित धार ।  
 कुस्मिन् देख तुम चरनहू जो मम पाप पहार ।

## कवि की रुक़ि

मो देखे को तारिषो सहज न दीम-दयाल !  
 माहन पाहन चरनहू सों हम कठिन कृपाल ॥४॥  
 परम मुक्तिहू सों कसव तुम पद-पदुम मुरारि ।  
 यहि जतावन हेत तुम तारी गौतम-मारि ॥५॥  
 पद्मो दीमदयाल यह अति अचरज की बात ।  
 तो पद सरस समुद्र कहि पाहनहू तरि जात ॥६॥  
 कहा पद्मानहुँ सैं कठिन मो द्वियरो रघुबीर ।  
 जो मम तारन मैं परी प्रभु पर इतनी मीर ॥७॥  
 प्रभु उदार पद परसि जहू पाहनहूँ तरि जाय ।  
 हम पैठम्य कहाहू क्यों तव्य न परत छत्राय ॥८॥  
 अति कठोर निज द्विय कियो पाहन सों हम हास ।  
 जामैं कबहूँ मम सिरहू पद-रज वैहि दयाल ॥९॥  
 हमहूँ कछु अछु सिख न जो सहजहि दीनो तार ।  
 लगिहि इत कछु बार प्रभु हम ती पाप-पहार ॥१०॥

पिर भी रायचरण जी सलुज जगद-गगन देखने चाते हैं जे नारिणों के मम  
 पैर देखते ही छत्राये हैं ।

१. कविता

कोऊ कह यहै रघुराज के कुँवर कोऊ  
कोऊ छाड़ी एक ठक बेसी रूप धर मैं ।  
कोऊ खिरकीम कोऊ हाट बाट धाई फिरै  
बावरी डे पूछै राय कीन सी डगर मैं ॥  
'हरीश्वर, झुमे मतबारी हग मारी कोऊ  
जकी सी थकी सी कोऊ खरी पकै धर मैं ।  
कहर खकी सी कोऊ अहर मकी सी माई  
अहर' पड़ी है आजु जनक सहर मैं ॥१२॥

खिर भीरम जी पुनवारी में फुल केन जाते हैं । उस समय पुनवारी की रचना कुँवों की बनावट केन के मोर्छे का नाचन और विधियों का चरुचन वह सब देखने ही के योग्य है ।

इसमें एक सखी जो कुँवों में गई तो वहीं राय रूप देख कर वाक्सी हो गई । जब वहाँ से झूट कर आई तो और सखियों पृच्छ सखी ।

—भारतेन्दु रामदासी द्वारा रचित पू० ७७० से ७७२ तक

भारतेन्दु जी के सहयोगियों ने भी रामदासी नाटकों की परम्परा का समुचित साहित्यिक उपयोग किया । इस दृष्टि से प्रेमचन का 'प्रवाण-रामात्मन' नाटक का स्थान विशिष्ट है । प्रवाण की प्रविष्ट प्रदर्शनी के अनुसार पर इसका अभिनेता भी प्रवाण के सांस्कृतिक इतिहास में अमर हो गया है । इस युग में रामदासी नाटकों की परम्परा को पुरस्कार करने वालों में 'आनंदी मेकल' और 'रामचरितावली' के रचयिता ईश्वरी प्रसाद, 'रामदासी रूप' के प्रणेता रामोदर शास्त्री, 'रामदासी नाटक' और 'बीठा बनावट' के लेखक श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का नाम भी स्मरणीय है । वं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ने अपने 'रामदासी नाटक' की कविता और दृश्यों में विभाजित न कर उसे दृश्यों में बीठा है । इस नाटक में वाक्पद्य की कथा का ग्यारह दृश्यों में विभाजित किया गया है और कथोपस्थापना की कथा इस दृश्यों में निहित है । अन्य कवियों की कथा भी इसी प्रकारके मिश्र मिश्र संस्था वाले

हस्तों में बँटी है। अनेक परवर्ती व्यक्तित्व लेखकों ने हस्तों के नामकरण में इसी पद्धति का अनुकरण किया है।

ज्वालाप्रसाद मिश्र का सबसे उल्लेखनीय काम यह है कि उन्होंने अपने 'रामलीला मण्डप' के उपोद्घात में परंपरा से आती हुई रामलीला की अभिनय-प्रविधि का विस्तृत विवरण दे दिया है। उनके पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती किसी अन्य लेखक ने इस विषय का संभवतः ऐसा सामोपजा निर्देश नहीं किया है। इस विवरण में अन्तर्गत रूप में हिंदी में रामलीला के अभिनय-संस्कार के सब तरह विद्यमान हैं। सबसे पहले इसमें उल्लेख अभिनेताओं के चुनाव का मानक निरूपित हुआ है, और बड़े विचार से यह बताया गया है कि रामलीला के अभिनेताओं का चुनाव करते समय सबसे उपायय के पात्रों का वह रूप लें, और शीत की अनुपपत्ता का पूरा पूरा ध्यान रखा जाय। इसके पश्चात् उसमें हस्त-व्यंजना-संबंधी आरंभ उपाययों की-निर्देश दिए गए हैं, जो मोक्षपदी नाट्यपरंपरा का सबसे शुद्ध रूप हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं। अतः स्वयं उन्होंने यह बताया है कि क्षीरसागर के स्थान में एक स्थित बल निरूप हो परंपरे के पीछे से आकाशवाणी हो। राम के साथ छोड़ते ही हमारे क समान कि हाथ बलें मारीच के पेट में जुनी भर कर उड़ा देना चाहिए। फिर वहाँ से बल कर मार्ग में एक कपड़े से लकी ली को बरत लुब्धक कर राम उद्धार करें। अंतर्गत मुनि का चरणों का हाँका बनाया जाय इसके पीछे एक मनुष्य बैठ कर नाटकीय और पीछे लक्ष्मी अभि देने से यह आरंभो छठ जाय।

अंतर्गत अंतर्गत का बना हुआ किसी मनुष्य के उठने पर मुद्र करे। अंतर्गत की किया होने पर उसके नीचे से निष्काश मुद्रा मुद्रादि पदों निष्पन्न से जाय जाय। ताड़ के छत्रिम साथ पेड़ बना बनें एक तरफ बाँध द जो राम के हाथ मारत ही सँचने से बुरा था पड़े। छत्रिम समुद्र स्थित कराया निष्पन्न कर इतना चौड़ा बनाया जाय कि हनुमान 'उसको एक छत्रिम में सँभ बाँध।' ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इसी प्रकार के तरल निर्देश स्थान-व्यंजना के विषय में भी दिए हैं। हाँ-बार उपोद्घात नीचे दिए जाते हैं—

‘क्षीरमय—इसमें निधीना निष्पन्न हो एक नीली धा कर हो।

चिन्ह—एक नीला स्थान छत्रिम हस्तों से मुद्र हो।

## मध्यकायमन धार्मिक राज्य-परम्परा

पंचवरी—माघ में सुनिबों के आश्रम, कृष्ण वृष एक पीढ़ी बिछी हुई।  
माघ के घर—माघ के बैठने को बारगाई राख को कुर्सी।

राख समा—बीच में कुर्सी इतर-उपर विपरीत हो।  
राखी का स्थान—बढ़ाई बिछी हुई, कुशा के आसन पर हुए।

संका—एक बड़ा सा स्थान कायम का निधिन मग्रा हुआ जिसमें बार द्वार  
हो ऊपर बैठता हो।  
पाताल लोक—जगत् में हो तो जगत् के नीतर लीला हो।

हरी प्रसंग में जाने बस कर मित्र जी न पानों के बेध-बिन्दास के संबंध में  
नी विलुप्त निर्देश दिए हैं। उसके भी कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

श्रुति—पिर पर जगद्गुरु बोले गले में दुर्लभ-माला जनक पहरे, हाथ में  
कर्मसु पीताम्बर छोड़े बोली-जगद्गुरु पहरे, माघ पर लिख, लंबी  
लंबी जिसमें काके सफेद बाळ।

राम—राजकुमारों का सा बेन विवाह तक सब भूयन निरुद्ध बाहि बारन  
लिपु, बहुमूल्य वस्त्र पहरे, वन जाने के समय जगद्गुरु पीताम्बर पहरे  
हाथ में बहुवर्ण।

निवास—हरे रंग का झण्डा माला जोधिया पगरी में चोटा लगा हाथ में  
पटु-बाण।

राक्षसियों—राजा लहैया कानी छोट का दुपटा।

मराठरी मुखेबना—राजकीय ब्रह्मभूषण और बने।

मन्त्री—जगद्गुरु पुनरा पगरी लता हुआ दुपटा माला कंठी पहरे हुए।

जगत्ता प्रगाढ़ मित्र न बननी रामकीय रामायण में गोस्वामी जी के  
रामचरितमानस को ही गुरुद्वय का प्रधान किया है। जैसा ऊपर बताया जा  
रहा है प्रत्येक काण्ड दशकों में बँटा है। प्रारंभ में गौरी है, जिसमें बाळकायक  
प्रारंभ के मंगलाचरणायक दशक और सोरठा संस्कृत हैं। पाद-विष्णुविद्या में उनका  
अव भी दिया गया है। प्रस्तावना में शिव-पार्वती विवाह का कुछ संघ रामायण से  
उद्धृत है। पद्यांश समाप्त होने पर शिव जी पार्वती से कहते हैं— वह दश

राजगद्दि से अब पाए देवता क्षीरसागर में भक्त्याम् के पक्ष गांठ हैं, हम भी बनें। इसक पश्चात् क्षीरसागर के तट पर लीला आरंभ हो जाती है।

इस परंपरा के अन्य उल्लेखनीय नाटक हैं तत्त्वानाम्ना वाराणसी के ब्रह्मचर्य भक्तानी का लिखा हुआ 'रामलीला नाटक (नाट्यशास्त्र)' नास्वामी नाट्यमण्डल का 'रामलीला नाटक रामायण' दाशरथीदास 'दिग्ग' का 'रामलीला साहित्य नाटक' स्वामी जयलालदास का 'बृहद्भारतदर्शन नाटक मेरठ' प्रसन्न का 'रामचरित नाटक अनात् रामलीला' रसिकविहारी जी की 'पुष्पावली लीला' काशी के बन्धुलाल की 'रामलीला कीसुली' बनपुर के ललित कवि का 'रामचरित दर्शन नाटक' लाल भाग। इन सब रचनाओं में प्रायः आधार ग्रंथ के रूप में रामचरितमानस का ही उपयोग किया गया है, किसी किसी में प्रचलित सामयिक प्रसिद्धियों का भी समावेश किया गया है। पोस्वामी नाट्यमण्डल के 'रामलीला नाटक रामायण' में पारसी नाटकों की शैली का भी जगहपूर्वक प्रयुक्त किया गया है। उन्होंने भूमिका में स्वयं लिखा है कि इसमें 'नाटकीय रूप पर हल तरह का चित्रचित्र करने सरस प्रकल्पना में पुरित है। रामलीला किसी किसी नयों में तो अभिनय (नाटक) रसिक आरंभ हो गई है, जिनमें साधारण रामलीलाओं की अपेक्षा विशेष आनंद तथा रामचरित का प्रभाव दृष्टकों के चित्र पर पूर्ववत् से पड़ता है। इसमें 'नाटकीय रूप' और 'अभिनय (नाटक) रसिक' का एक अर्थ पारसी शैली है। उसके उत्पत्ति काल में विशेष आनंद की यह ध्वनिया सर्वथा व्यक्त है कि केवल पारसी नाटकों के आधार और तत्त्व-मनुष्य के सामने रामलीला की आनंद-मूल्य सामर्थ्य की हील छवि से घेरने लगा था। पारसी नाटकों द्वारा उत्पन्न की गई यह विह्वल जन्म दिशाओं में भी लक्षित होती है। मेरठ प्रसन्न में भी जहाँ 'रामचरित नाटक' में नाटक-मत्त-सूचना का अंगभूत पक्षों की बहमूपा का जो विस्तृत विवरण दिया है उसमें भी नया प्रभाव दिखाई पड़ता है।

रामलीला-नाटकों की इस परंपरा का अनुशीलन करने के पश्चात् यह प्रश्न मन में स्वाभाविक रूप से उठता है कि इस परंपरा में रामलीला की शैली की परम रूप मानी जाने वाली निरुद्ध-लीलाओं का प्रचलन हुआ जगहा नहीं? अब तो यह भी सिद्ध हो गया है कि रामायण में भी रसिक-संप्रदाय चतुर्था ही पुराणा है किन्ना कि कृष्ण-भक्ति के अंतर्गत। रामायण के क्षेत्र में रसिक-साधना की

एक का हितकार भी कल्प नहीं करनी की अपेक्षा कम नहीं है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—“अति प्राचीन काल से ही भीराम की उपासना बड़ी आ रही थी किन्तु उसका मिलेय विषय आठवीं शताब्दी ईसवी के परवत् हुआ। सङ्कोचप्रसङ्ग से केवल श्रीकृष्णदास पहाड़ी पर्यन्त भीरामचरित जी की उपासना के विषय में जिस साक्ष्य की रचना हुई थी उसमें उक्त भावना की कुछ ही निमित्त स्थलों में दिखाई देती है।” इतना-त-बिकारे रहने पर भी यह समस्त वाक्य एक अग्रगणित गुण साधना का अंगीभूत है।” कुछ विद्वानों का कहना है कि स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी भी मयुर भाव के साधक थे। “सीताबली में नृगार के कई ऐसे पद हैं जो सिद्ध करते हैं कि गोस्वामी जी का वाद्य (साधक) रूप मयादासी वास भाव का था परन्तु आंतरिक गुण (सिद्ध) रूप लीला बिलासी के सभी भाव का था।” ऐसी स्थिति में राम की योग्यी भक्ति का साक्ष्य के प्रथम और द्वय दोनों ही रूपों पर प्रमाण पड़ना अनिवार्य था। हा मगलती प्रसन्न सिद्ध का कहना है कि “उक्त राममक्तों की एक अन्य उल्लेखनीय बात है राम की शृंगारी लीलाओं के प्रदर्शन का विषय। तुलसी के समकालीन नामदास के ‘मधकाल’ से ज्ञात होता है कि उस समय अथवा उसके कुछ पहले से ‘समाज में रामचरित का प्रदर्शन निम्न-निम्न रूपों में चल आ रहा था। मानदास ने नाटक के रूप में तथा सुगन्धवास और प्रयागदास ने उसके रूप में रामचरित मानस दिखाया था। स्वयं तुलसीदासजी ने ‘रामचरित मानस’ के आधार पर कहीं से सम्पूर्ण रामलीला वीर कैरामपुर (सीतापुर) में रामलिला लीला का प्रदर्शन कराया था। ऐसी विपरीत प्रसिद्ध है। इन लीलाओं के आयोजन में उन्हें उक्त राममक्तों से प्रेरणा मिली हो तो कोई आश्चर्य नहीं।” कम से कम सार्वभौम मास में होने वाली रामलिला लीला की परंपरा निश्चय ही उक्त संभव की वन है।

फिर रामभक्ति में शृंगारी लीलाओं के प्रदर्शन ने कहीं भी वह अबाधनीय रूप नहीं महसूस किया जो कृष्ण भक्ति की मयुर उपासनाप्रक निरुद्ध लीलाओं में देखा गया। इसका प्रमुख कारण गोस्वामी तुलसीदास जी के कनेर मयादासी स्मरणिक की परम सात्विक प्रेरणा ही है। इसके अतिरिक्त मयुर उपासना के आधारों

१—शुक्लेश्वर माधव कृत राम भक्ति साधना में मयुर उपासना पृ० ११०।  
 २—डॉ० भगवती प्रसादसिंह कृत ‘राम भक्ति में उक्त संभव’—पृ० ५५१।



मेरी राममयी यकिक की परम गोपनीय' वादित किया—गोपनीय गोपनीय गोपनीय  
 'चर्चा'। इन वाक्यों में इस साधना-सिद्धान्त और साहित्य का भाव में प्रचार  
 भी चर्चा वादित कर दिया। इसलिये इस उपासना का समाज पर अपेक्षाकृत कम  
 अधिकतर प्रभाव पड़ा।

## (४)

पहले सिद्धांत का बुझा है कि राममयी इसलिये ही मेरी अवस्था में रामलीला  
 की जो परंपरा बजाई थी वह कलक और उत्तर प्रदेश के अन्य जनस्थों में प्रचलित  
 हो गई है। यहाँ रामलीला अब आश्विन मास में ही होती है। पर रामस्वान्त  
 में वैशाख मास में उत्पन्न होने वाली रामलीला की परंपरा अब भी बल रही है। यहाँ  
 आश्विन मास में जब किशोरा दशमी के दिन बोंस और अन्यत्र के बने हुए राम  
 के पुतले को प्रस्तुत कर और कला कर केवल रामचंद्र-वच की परंपरा का प्रदर्शन किया  
 जाता है। कम से आरंभ कर आचार्य राम के जीवन की छव धीमाओं का अभिनय  
 यहाँ प्रायः रामलीला के अन्तर्गत पर वैशाख के छह पक्ष में ही होता है। प्रत्येक में जिस  
 प्रकार रामलीला की मंडलियों हैं, जो स्थान-स्थान पर बूम बूम कर भवनात्तु हस्त की  
 लीलाओं का अभिनय करती हैं, वही ही व्यावसायिक और अम्यावसायिक दोनों ही  
 प्रकार की रामलीला की मंडलियाँ रामस्वान्त में हैं जो बूम-बूम कर रामलीला का  
 अभिनयप्रकार प्रदर्शन करती हैं। कदाचित् इसी को सम्भवतः वैशाख मास में  
 सिद्धांत है—'रामस्वान्त में भी अपनी रामलीला की पारिवी हैं जो बसहरे पर ही  
 नहीं किंतु वर्ष में कभी भी अपने प्रदर्शन करती हैं।'१

रामलीला की व्यावसायिक एवं विद्यार्थी धार्मिक परंपरा का एक ही रूप  
 केवल की यहाँ दिखाई पड़ा। उत्तर प्रदेश के विभिन्न सांस्कृतिक केंद्रों में रामलीला  
 में जो-स्थानपठ निम्न या वैशिष्ट्य मिलता है, वह यहाँ देखने में नहीं आया।  
 पीम्पल, मौपल, कलकत्ता और पौडोला की रामलीला बहुत लोकप्रिय है। यहाँ  
 यह भी सुनने में आया कि लगभग पचास वर्ष पूर्व पांडोला-मिनाली मंदार बल्लभ ने  
 रामलीला के कल्याण में बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया था।

## मध्यकालीन धार्मिक माध्यम-परंपरा

रामन्याय में रामलीला का रंगमंच चारों ओर से घुसा हुआ रहता है। रंगमंच के धर्म के लिए एक बहुरंग रहता है, जिसके ऊपर एक चंद्रिका ताल दिया जाता है। रंगमंच के पास ही एक कुंड रहती है, जहाँ गंधारे बैठ दिए जाते हैं। सब स्वरूप आकर उस रंगमंच पर पहले से ही यथास्थान बैठ जाते हैं, और लीला के अनुक्रम से बाघ के साथ साथ संगीतात्मक संवाद करते रहते हैं, गद्य का प्रयोग प्रायः नहीं ही किया जाता है। मगवान् राम के जीवन की जन्म से मरणा पर अधिक तक की सब लीलाएँ होती हैं, सीता-बनवास की कठना से संबंधित उत्तर राम चरित का समावेश उसमें नहीं किया जाता। बीच बीच में अलंकार, गीतावतरण आदि की जो प्रासंगिक कथाएँ आती हैं, उनका भी संगोपांग अभिन्न किया जाता है।

अभिनेताओं के आहार्य में भी औचित्य का पूरा पूरा ध्यान रखा जाता है। नर्तियों और राक्षसों की बेधनूपा में पीतांबर रहता है, ऊपर गेरुआ रंगा अंगरक्षा सफेद हाड़ी सफेद सूँठ और ठिगक माला कनेक आदि रहते हैं। नर्तियों की बेधनूपा साधारण स्त्री की वैसी ही रहती है, विशेषता यह है कि राक्षसियों की बेधनूपा भी कुछ महिलाओं जैसी रखी जाती है, केवल ताड़का और धूर्पमका इच्छा अन्वाद्य होती है जो राक्षसियों के चेहरे लगायी है। समुद्र त्रास्य के रूप में प्रकट होता है, और अत्युक्त कामर्षत आदि क उनकी आदि के स्वरूप बदरे लगाने करते हैं। राम और उनके अनुग्रह पीतांबर पहनते हैं, मुकुट कुंडक किरिट जोधिया पहनते हैं जिसमें सफेद किनारी लगी रहती है, कर्ता भी लाल ही रहता है, उनका मुख भी कुंडक से लाल कर दिया जाता है।

इन्द्र-विधान के लिए बड़ी सुखम प्रविधि का अवलंबन किया जाता है। दो आदमी एक सफेद चारर को पकड़ कर खड़े हो जाते हैं और उससे गंध का धन प्रस्तुत हो जाता है। सेतु का दस्य भी इसी प्रकार दिया दिया जाता है। संघ रामलीला क अन्त में अलंकार बनाई जाती है। चारों किनारों पर ऊँचे लठे खड़े कर दिए जाते हैं, ऊपर लटते निछा कर उन पर राक्षस का दरबार लगाया जाता है—मगवान् बैठा। संध के चार तरफ चार द्वार रहते हैं, जिन पर चढ़े रहते हैं और ऊपर को फोड़ कर हनुमानजी द्वार-भंग की सूचना देते हैं।

रामलीला आरंभ होने के पूर्व नाटकों के नाची की तरह विभिन्न देवताओं की छुट्टि द्वारा संयोजन किया जाता है। सबसे पहले बायोडन की निर्दिष्ट समयों के लिए ध्यान-सत्राओं की पूजा होती है, और प्रत्येक दिन बाबादे के एक विचारे पर स्वभा की स्थापना की जाती है जो भारत के स्वतंत्रता के कार्य की स्थापना का सबसे बड़ा प्रतीक होता है।

राजस्थान में जिस रामायण के आधार पर रामलीला होती है, वह हाड़ीली भाषा में लिखी हुई है। वह रामायण भिन्न भाषाओं के आधार पर लिखी गई है—(१) बाल्मीकि रामायण (२) मध्यम रामायण (३) उत्तर रामायण, और (४) तुलसीदास रामायण। सम्पूर्ण इस वर्ष पूर्व जब केवल रामायण में इस विषय की बात करने के लिए गया था तब तक यह छपी नहीं थी। यह बोझ संत में है और संवादनामक है, और प्रायः इसी से पूरी रामलीला होती है। वह अर्थात् बाणनाटिक बर्तमानक प्रवचननामक नहीं है, बल्कि उसमें मंगलान् राम के जीवन की कथाओं का सम्मिश्रित संवादनामक प्रवेश है। उसका स्वरूप संवादों से परिपूर्ण एक संगीतनामक नाटक जैसा है। बोटा के बर्तमान श्री अमर सिंह राजस्थान के छोटे नाटकों के अच्छे जालदार हैं, उन्होंने से मुझे हाड़ीली भाषा की इस रामायण के विषय में जानकारी प्राप्त हुई थी। इसका कुछ अंश भी मैंने उससे सुने थे। उससे यह भी बात हुआ था कि कम से कम ८०-९० वर्ष से वह रामायण इसी रूप में बनी आ रही है और वास्तव में वह बहुत दिनों से बनी जाती हुई सम्मानना संवादों की परंपरा का निष्कर्ष या संकल्पना ही प्रतीत होती है। इस रामायण के मुख रूप प्रवेश का एक निश्चय अंश भी संक्षिप्त किया जाता है—

अशाक-बादिना

ताम

सीताजी — मुद्रिना किस्तन पट की छोर  
जिन्हों का मुझे पड़ा नहीं तोल,

हनुमानजी—मात हनुमंत राम को वृत  
मात मेमरी को भीने पत।

ॐ

सीता — कसी घड़ी को जनम मुम्हारो  
कसी घड़ी को दूत

आज घारी उत्पन्न वेव बताय  
तुशा हुँतो व पदा होयो पूरा छ समचार ॥ मुद्रिक

हनुमान — उन्ही घड़ी को जनम हमारो रंगा नवाई शिषमाय  
इष्टि ना पड़ी भंजनी प जार  
सदाशिव जी हुँ उत्पन्न म्हारी ये म्हारा  
समचार ॥ मस्त ॥

सीताजी — न देखो मन पुरी अयोध्या न सरजू की तीर  
राम की कद हुँ होयो र झार  
जल्दी बतार मन पवनसुत पूर्य बातम्हार ॥ मुद्रिक ॥

हनुमानजी — न रहुँ माजी पुरी अयोध्या न सरजू की तीर  
मन्यो हुँ अपमुख पर्यंत जार  
सेवा करूँ सुमीय कीस री ये म्हाय समचार ।

सीताजी — जनम जनम की बीतौं सुणता आयो म्हार बिसवास  
एक लक्ष्मण का सह समचार  
गोह मार म्हार पवनसुत पूर्य लेका मौहि ॥ मुद्रिक ॥

हनुमान — आप्यमुख प महाराज बिराजे अठार  
एकम वल झार  
मार छीनो छ राजा बाल  
बाल मार कर भंजा आप्यो  
सुमीय को मेन्यो मस्त ॥

( ७ )

## सम्यकाल की नाट्यधर्मी रुढ़ियाँ और व्रज भाषा के साहित्यिक नाटक

( १ )

पूर्ववर्ती अध्यासों में जो कुछ कहा जा चुका है उससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नाट्य-परंपरा सम्यकाल में भी अविच्छिन्न रूप से चलती रही है। हम देख चुके हैं कि संस्कृत-नाटक की जो समृद्ध-परंपरा विद्वत्तों के अध्ययन और श्रुति-विक्षत हाथों की वह काम को प्राप्त होकर भी विभिन्न प्रकार की नाटकीय प्रशक्तियों में उठ खड़ी हुई और जनता का पक-प्रदर्शन तथा स्फुरण करने लगी बरूती गई। हम पहले ही बता चुके हैं कि इस प्रकार ये हिन्दी के नाटक वस्तुतः वसुधा के अंतर्गत हैं, जिसमें प्रारंभ अथर्व के दैन्य-सूचक पुराण उर्वशी आदि संसार-सूक्तों में हुआ और जो सुगमोच्चार्य ऐसे रूपों को प्राप्त होती हुई संस्कृत-नाटक के विचारों और भास के बीच से अविच्छिन्न प्रवाहित हो रही है।

परंतु कुछ लोगों के मतानुसार भारतीय नाट्यधर्म की प्राचीन नाट्य-परंपरा एक बार-संज्ञात हो गई थी, और हिन्दी-नाटक की उत्पत्ति एक पक्ष धिरे से हुई। हम लोगों का यह भी मत है कि रामलीला रासलीला तथा पुरानी मीतिनाट्य की परंपरा ने हिन्दी-नाटक के वर्तमान और भविष्य में कोई योग नहीं दिया। ऐसे मत इस अमूल्य धारण पर अवलंबित हैं कि जो नाटक पाश्चात्य नाटकों की छिनी पर न लिखा जाय वह नाटक हो नहीं है। पहले के प्रदर्शनों में सिद्धांत जा चुका है कि भारतीय नाट्य-परंपरा में वैष्णव धर्म की श्रवण और शक्ति प्राप्त कर सम्यकाल में एक नया ही रूप प्राप्त किया। इस काल में भक्तिवाद और रसवाद की कविता विविध शक्तियों एवं परम्पराओं का आनुभाव हुआ जो बाद की दिनों में सामाजिक जीवन में बहामूल हो गई। चित्तद्वार का दशरथ जोषा ने १५ वीं शताब्दी में नाटक के सम्बोधन का विवरण प्रस्तुत करते हुए ठीक ही लिखा है कि

मध्यकाल की नाट्यधर्मी कविता और तब माया के साहित्यिक नाटक १५

उत्कृष्ट विद्वान् महाम्ना संस्कृत और लोक प्रचलित नाट्य-प्रकृतियों के मिश्रण से एक अभिन्न नाट्य-शैली का प्रयोग कर रहे थे और उन्होंने देशवासियों को केन्द्र बनाकर संस्कृत-मिश्रित हिन्दी के माध्यम से वैष्णव धर्म का परिचय कराया। इस युग में वैष्णव धर्म का सर्वत्र प्रचार हो रहा था। समस्त उत्तर और दक्षिण भारत वैष्णव-भक्तों के मन्दिर यौगों से गुंजरित हो रहा था। इन गेज पर्वों को या कर तथा रंगमाला में इन्हें अभिन्न बनाकर कविगण वैष्णव धर्म का प्रचार करते। वे संग म्हात्मा रामकृष्ण एवं प्रह्लाद आदि विविध अवतारों की कीर्त्याएँ नाटक के रूप में जनता के सम्मुख प्रदर्शित करते।" परंतु जो लोग जन नाटक के इस नवोत्थान का ज्ञान नहीं रखते उनकी दृष्टि में वह विद्यालय नाट्य-साहित्य जो नीलाओं और बरियों के रूप में हमारे अभिन्न और रंगमंच की सन्ध्यासीन सभी आत्मप्रकाशों की पूर्ति करता जाता आता है, नाटक नहीं रह जाता। मध्यकालीन हिन्दी नाटक के कल्पित समीक्षकों ने ऐसी हस्तक्षेप धारणा भी बना ली है कि किम ग्रंथ के नाम में 'नाटक' शब्द न हो, वह नाटक ही नहीं और किन्हीं 'नाटक' शब्द हो वह बलुव 'नाटक' न होने पर भी नाटक ही है। ऐसे ही विद्वानों ने 'नाटक सम्प्रसार' जैसे कुछ स्थान के ग्रंथ का किसी नाम में नाटक शब्द एक उपसर्ग माना है, एक उल्लेखनीय नाटक का 'नाटकीय-काव्य' माना है।

रासकों के प्रसंग में बताया गया है कि आदि काल में पुराण कालेक एतद्वर्ग्यो और नाट्य-प्रयोगों में प्रबंधालम्बना आ गयी थी। ठीक इसके विपरीत हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल में भक्तकाल्यो में व्यापक रूप से नाट्य प्रकृतियों के उत्पन्न होने का प्रमाण मिलते हैं। रामचरितमानस और राम-चरित आदि में नाट्य-विधान के जो अनेक उदाहरण पाए जाते हैं, वे इसके प्रमाण हैं। मधिकासीन साहित्य ने विषय रूप से बहुमुखी नाट्य प्रकृतियों का आगमना करने का मार्ग प्रशस्त किया था। वह इस युग की एक सर्वोत्तम महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है कि 'रामचरितमानस' जनता के लिए जितना महान् धर्मकाव्य है, उतना ही सफल दूरदर्शक भी। फिर भी यह बड़े दुख की बात है कि कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि संतों की मुख्य रचना और मध्यकालियों के 'भक्ति के आत्म-समर्पण वाले संवत्स' का कारण मध्यकाल में नाट्य-प्रति

को बन्धन मग्न।<sup>१</sup> इस कटु सत्य का स्वीकार करना ही पड़ेगा कि मध्यकाल में भारतीय नाटक की नाट्यधर्मी परंपरा का क्षतिग्रस्त होना के दो मुख्य कारण थे—एक तो राजप्रासारों और देवालयों में संलग्न हमारे रंगमंचों का सामूहिक भ्रंश और दूसरे मुसलमानी युग में मुसलमानी शासन में नाट्य-प्रवृत्ति इसलिए नहीं बच पाई कि उनके बर्तन के भीतर नाटक खेलना मना हो गया। उनके धर्मग्रन्थ में भी नाटकीय प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र जी का यह कथन बयानी है कि 'भारतीय नाट्य इस प्रकार छिन्न-भिन्न होकर साहित्य और रंगमंच में पड़ा हुआ था। उसमें नाटकों के लिखने की प्रवृत्ति बग़ान के लिए भेरना मिलती ही न थी। रंगमंच भी न वे दिन पर न बंके जाते।'<sup>२</sup>

इसीलिए मध्यकाल में साहित्य-रचना के क्षेत्र में एक विचित्र अव्यवृत्ति का दर्शन होते हैं। वह यह कि भारतीय परंपरा में निष्पात कवियों का धर्मग्रन्थ में नाटकीय विधान की अनेक विधेस्ताएँ मिलती हैं, पर 'नाटक' नाम से कितनी रचनाओं का प्रकथन हुआ है उनमें नाटकीयता का अभाव ही-अत्यंत पक्का ज्ञात है। उनमें से अधिकांश में नाटकीयता की अपेक्षा प्रबंधात्मकता ही अधिक है। इसके मुख्य कारण का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसका दूसरा कारण यह है कि जब ८०० ई. के लगभग हिंदी ने साहित्यिक रूप ग्रहण किया उस समय संस्कृत-नाटक की उदात्त परंपरा भी हासिलमूलक हो चुकी थी। इस काल के कई कृताधिकारों बाद तक संस्कृत-नाटकों की रचना तो बहुत बड़ी संख्या में होती रही पर उनका क्षेत्र संकुचित हो गया था और उनमें भी नाटकीयता की अपेक्षा प्रबंधात्मकता और काव्यात्मकता ही अधिक होने लगी थी। इसीलिए हिन्दी के कितने कवियों ने सीमा और बरिचों की सीमा के बाहर सीधे-सीधे साहित्यिक नाटक लिखने का उपक्रम किया उन्होंने उक्त शासकीय संस्कृत-नाटकों की परंपरा के ही कुछ गुण विरसत में पाए। इस काल की 'नाटक' नामधारी कृतियों के स्वरूप पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है।

### समयसार नाटक

ऊपर कहा जा चुका है कि इस काल में 'नाटक समयसार' जैसी कृतियों की रचना भी हुई जो हज़र रचन का ग्रंथ है और जिसमें 'नाटक' शब्द एक उप-

१. दे. डा० सोमनाथ गुप्त द्वारा 'हिन्दी-नाटक-साहित्य का इतिहास' पृ. २६।

२. आचार्य विश्वनाथ मिश्र द्वारा हिन्दी का सामयिक साहित्य पृ. १२

कमल नाम है। आचार्य विरभक्तचरणस्य मित्र ने लिखा है 'नाटक में संवाद सुगम होता है। उसका सारा बोधा संवाद में होता है। मध्यकाल में संवाद नाटक का स्वानुपम हो गया।' किन्तु 'नाटक समस्यसार' में यह संवाद बारी विवेचना भी नहीं मिलती। उसके नाटक नाम से अभिहित होने का कारण है 'इस इतर में अनधिकृत स मित्राचार्य रूप महाप्रधान की विस्तृत भाष्यभाषा में पुरुष के बड़े सारी भाषा का वर्णन। यह भी कैसा ?

या घट में अम रूप अनादि,  
विशाह महा अविवेक अनादी ।  
तामहि और स्वरूप न पीसत,  
पुनराव नृप करे अति मारी ।  
फेरत मेख विन्यासत कीतुक,  
सीजि सिधे बरनादि पसारै ।  
मोह सी मिल, छुटौ अङ्ग सी,  
चिनमूरति नाटक देखनहारै ।

कवि बरारसी राजा व कुलकुदाबाय के प्रबंधसार के आधार पर समस्यार में अनधिकृत महाप्रधान की विस्तृत भाष्यभाषा में पुरुष (rubber अर्थात् शक्ति) के उस नृत्य का वर्णन किया है जिसका एक मात्र देखने वाला (देखक) समस्यार है। इसमें केवल नट के नाटक का वर्णन है इसीलिए यह नाटक है—

ज्यों नट एक धरै बहु मेख  
कछा प्रगटि यह कीतुक देखे ।  
भापु लखी अपनी कटुति,  
धौ नट मिथ विलोकति मेखे ।  
ज्यों घट में नट चेतन राख,  
बिभाह दशा धरि रूप विसेखे ।  
कोछि छुटि लखी अपनी पद,  
हुए विचारि दया नहि लेखे ।



अपनी हम नियम-बस्तु के कारण ही समय-सार का कर्म में नाटक कह दिया अन्यथा इसमें मध्यमस्थ के नाटकों के संसार नाक उपकरण का भी समाप्त ही है। फिर भी नाटक के कुछ शोधकताओं ने संभवतः सारे नियम फेंक दिए हैं प्रबंधकाल्य की छोटी का नाटक मान लिया है।<sup>१</sup> 'समयसार नाटक' में न संवाद शोचना ही है और न प्रबंधकाल्यता।

### समासार नाटक

अहमदाबाद सिटी रजुम नामक के बिच हुए समासार नाटक में भी इसी प्रकार संवाद-योग्य और कथा-तरंग दोनों का अभाव है। फिर भी इसे नाटक नाम दिया गया है। कारण इस में 'राजाओं की समा में उपस्थित रहने वाले कपटी बेवकुल समाविष्ट, समाचर, सुम आसनी मुक़्ति कुक़्ति टय हुइ भास्निक भास्निक विविध प्रकार के मानव-चरित्रों का मिश्रण है। मरत में नाटक को उचितमात्रमम्बाला करणा कार्यसंभम्म कहा है और सारवात्म्य वा कहना है कि नामासीता प्रकृत्य सीले नाट्यप्रतिष्ठितिम् अर्थात् नाटक में अनेक प्रकार के बहुसंख्यक चरित्रों का मिश्रण करना उसमें एक प्रमुख विशेषता मानी जाती थी। समासार में भी अनेक प्रकार के चरित्रों का परिचय देखकर न दिया है, यद्यपि उस में कथा का कोई एक नाटकीय सूत्र नहीं। जिस प्रकार मध्यकाळ में कुछ क्षेत्रों की दृष्टि में संवाद नाटक का स्थानापन्न था उसी तरह रजुम नामक कैम कठिन क्षेत्रों की दृष्टि में संभवतः एक सुसंबद्ध कथानक-बिहीन मानवसात्विक लोकोक्ति का निरीक्षणार्थक विवरण भी किसी हृति को नाटक बना देने के लिए पर्याप्त था। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य काल में केवल संवाद-मञ्च रचनामें नाटक नहीं कहा जाई, बल्कि-विवरण में नाटकीयता होने के कारण 'सम्वसार' जैसी तुल्य वर्तनिक हृतिमें भी नाटक कही गई और अनेक मानव चरित्रों का कथानक-बिहीन विवरण भी 'समासार' जैसी हृतिमें भी नाटक कहा गया। तदर्थ यह कि यदि किसी हृति में नाटक का कोई एक तरंग भी वसित हो गया तो उसे नाटक कहा गया।

पिचित्र भादक—

गुरु गोविंद सिंह का 'विभिन्न गानक' भी ऐसी-ही एक रचना है जिसमें गानक का किसी तरह की छाना भी नहीं हुआ है, पर गानक-संगीतधर्म द्वारा यह गानक

समस्या और कहा गया है। डा० एचरथ मोहा जैसे विद्वान् भी उसे मादक समझ बैठे हैं, और 'विभिन्न मादक' तथा 'बंदी बरिज' को दो नामों वाली एक ही इति मानते हैं। उन्होंने लिखा है— समय सार क उपरन्त हमें गुरु गोविंद सिंह विरचित 'विभिन्न मादक' या 'बंदी बरिज' उपलब्ध होता है। कनएव उन्हें बीर रस का मादक सिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई।" इस संबंध में दो बातें स्मरणीय हैं। एक तो 'विभिन्न मादक' और 'बंदी बरिज' दो भिन्न भिन्न इतिवृत्तों हैं, और दूसरे विभिन्न मादक' किसी भी रस का मादक नहीं है। शिरोमणि गुल्लारा प्रबंधक कमेटी अमृतसर द्वारा प्रकाशित 'विभिन्न मादक' की प्रस्तावना में ममरसिंह बाबर' ने लिखा है, 'वास्तव में यह मादक प्रेम नहीं है। शिरोमणि नाम से प्रसिद्ध होता है, बरन् साहित्यिक दृष्टिकोण से इसे 'महाकाव्य' कहना चाहिए। तो भी इसे मादक का नाम दिया गया है, तो केवल इसलिए कि इसमें अपनी वास्तविकता का वर्णन करते हुए गुरु जी न कतिमय पारलौकिक घटनाओं का उल्लेख इस प्रकार से किया है जिससे अगम्य एवं आप्यात्मिक प्रतिपादित विषय लौकिक-बुद्धि-योग्य हो गया है। मानव बुद्धि तो लौकिक उपकरणों को केवल संगठित हुई है वह पारलौकिक विषय उसके सिध्द करना असम्भव होता किंतु गुरुजी ने इस प्रेम द्वारा हमें उस अगम्य के वह चित्र दिखाए हैं जिन्हें अपार्य घटनाओं का अभिमान ही कहा जा सकता है। वह अभिमान बहुमुत और विभिन्न हान से प्रेम का नाम दिया गया है 'विभिन्न मादक'।

वास्तव में इस रचना में—साधुसंत प्रबंधकमक सेही में गुरु गोविंद सिंहजी ने अपनी वास्तविकता लिखी है। इसमें प्रियेगी भुवना प्रयात रसावक मर्याद सबैया बापई, रोहरा आदि अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है। रचना मादकों की तरह अच्छे या दुरों में व्यवस्थित न होकर प्रबंध काव्यों की तरह बीरह काव्यों में विभाजित है। पहले काव्यात्म में अत्यंत जी की उत्पत्ति का बहान है दूसरे काव्यात्म में सुखबस तथा उत्तरे उत्तरे होने वाले 'सोदी और बेरी बंसों का वर्णन है। इतने विवरण से ही 'रचना की प्रबंधकमक सिद्ध हो जाती है। मध्यकाल में मादक की जानेवाली रचनाएँ संवादप्रधान होती थीं। यह गुण भी 'विभिन्न मादक' में नहीं है। यही कारण है कि एक परम काव्यात्म सत्ता की दृष्टि

अन्तरिम सत्ता के साथ वातावरण करते हुए दिखाया जाना' अन्तरिम सिद्ध है। इसी को भले ही कोई 'विश्विन् अमिन्' मान ले और इस वचार्थत विविध नष्टक करने लगे। पर इस कृति में जहाँ ऐसे संवाद मिलते भी हैं वहाँ भी उनमें गहराई की अपेक्षा प्रबलता अधिक है। उदाहरण के लिए गुरु गविर सिंह जी ने अन्तरिम पुरुष के साथ अपनी भाषा इस रूप में प्रस्तुत की है। —

“अन्तरिम पुरुष वाच इस कीट प्रति—

बीपार्थ

मैं अपना पुत्र तोहि निधाजा।

ऐय प्रभुर करिये को साजा।

जाहि तहा त धर्म चढा।

कृत्युधि करन ते छोड हटा।”

अन्तरिम पुरुष के इस आवेस का उत्तर गुरुजी संवादार्थक कैसी में न बेचर प्रबलताओं की वर्णनात्मक कैसी में देते हैं —

“चित्त न मनो हमरो आपन कहि

धुमी रही भुति प्रभु चरमन महि।

×

×

×

ठाढ़ मनो मैं जोर कर वचन कहा सिर नाथ।

ऐय चले तब जगत मैं जब तुम करो सहाय ॥

गुरु जी ॥ जानो सिद्धा है कि इनकी यह मार्चना सुन कर अन्तरिम पुरुष न उनको सदैव सहायता का वचन दिया तो उन्होंने कमिभुग में जन्म ग्रहण किया और इस प्रकार प्रसिद्ध की :—

“कहियो प्रभु सु मासि ही।

किन्तु न कम रासि ही।

किन्तु न मेरा बीज ही।

असेख बीज बीज ही।

अपर्युक्त उद्धरण 'विभिन्न-नाटक' के छठे अध्याय से दिये गये हैं। इस ग्रंथ का यह सबसे महत्वपूर्ण अध्याय है। इसमें मुकुती ने देश की धार्मिक समस्या का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, धार्मिक और कर्मकाण्ड की जटिलता से घाक्रान्त विभिन्न हिन्दू-धार्मिक संप्रदायों की भर्त्सना की है और इस्लाम की संकीर्णता पर भी कठघरी चोट की है—

प्रभु तब महावीरन उपराजा। अरब बैठ की कीनो राजा ॥२६॥  
 तिन भी एक पंच उपराजा। निग बिना कीने छत्र राजा ॥२७॥  
 सब से धपना नाम जपायो। सतिनाथ काहुँ न बुझायो ॥२८॥

इसी अध्याय में मुकुती ने अपने अनुयायियों को यह अर्धदिग्ध आदेश दिया है कि भबदार क कर्म में परमेस्वर मानकर उनकी पूजा कदापि न की जाय—

जो हमको परमेष्ठ उचरिहैं। ते सब नरकहुँ न सहै ॥  
 मोल्यो दास तबन को जानो। या में भेद न रंज पछानी ॥३२॥  
 मैं हूँ परमपुत्र को दासा। देखन भावो जपत तमासा ॥  
 जो प्रभु जगति कहा सो कहिहैं। मृत्युलोभ ते मोह न रहिहैं ॥३३॥

छठे के पश्चात् छेप साठ अध्यायों में मुकुती के जन्म और जीवन व्यापी संघर्ष की कथा है। इस जीवनवादा में नाटकीयता अवश्य है पर ग्रंथ की शैली पूर्वोक्त प्रभावशाली है। 'गुरु गोविन्दसिंह की शिखा का बाहु कर्म कर्य धर्म के शासन का उद्देश्य था, किन्तु धार्मिक कर्म से वह सर्व कर्तव्य को पूर्ण करने की प्रेरणा थी। धर्म के इस नवीन रूप में भ्रष्टा रजना, उसे अनुभव करने की भावना का मृजन करना तथा लय को प्राप्त करने का उद्देश्य प्रकट करना ये सब बातें थोड़े समय में ही सीधे और किस प्रकार दक्ष गुरु गोविन्द ने अपने छात्र में प्रकट कीं यह एक अनुपम चमत्कार और आश्चर्य है। इस चमत्कार के स्वर्ण की जिस ग्रंथ में वर्णित किया गया है, उसका नाम स्वयं गुरु गोविन्द ने 'विभिन्न-नाटक' रखा है।" इससे सिद्ध है, इस ग्रंथ में नाट्यत्व केवल विषय-वस्तु में ही सीसी में नहीं।

## गोविंद तुलासि माटक

माटक-विषयक प्रस्तुत बीच कार्य के बीच जब प्रस्तुत प्रबंध अपना प्रारम्भ हो चुका था और उसके बाद काफ़ी संशोधन भी हुआ था मुझे 'गोविंद तुलासि माटक' की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई। यह ग्रंथ जब मेरे द्वारा संपादित होकर प्रकाशित भी हो चुका है। इस ग्रंथ की भूमिका में मैंने इसके रचनाकार और रचनाकाल की संश्लेषणों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इस हस्तलिखित प्रति में लिखावट की कुछ ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं जिनसे इसके लेखक के पहचानाए जाने का अनुमान होता है। इस माटक की अब तक एक ही प्रति उपलब्ध हुई है, उसमें न तो रचनाकार या प्रतिनिधि का नाम दिया गया है और न यादि संवत् या शत में इसका रचनाकाल या प्रतिनिधिकाव ही सूचित किया गया है। इस हस्तलिखित प्रति में कुछ लिखत पन्ने हैं। प्रारम्भ के कारण पन्नों पर भी व्याख्या तथा रायबस्तभी संश्लेषण के अर्थों के समग्र ७० ७१ पद हैं। वेरह्वे पन्ने से 'गोविंद तुलासि माटक' प्रारम्भ होता है और पचहत्तरवें पन्ने तक चलता है। शत के तीन पन्नों में 'गोस्वामी तुलसीदास जी की जीतावली' के सोलह पद प्रकट हैं। यह तीन प्रकार की सामग्री मिश्र-मिश्र लिपियों की लिखी हुई प्रतीत होती है। अंतिम लिखत पन्ने पर 'जीतावली' के पदों के बाद 'मीराबा बस्तभी जबति भी राधा राधा' लिखा है और उसके बाद संभवतः हस्त-लिखित प्रति के स्वामी या उसके किसी कुटुम्बी ने पर का हिसाब-किताब लिखा है और उसका संवत् भाव एवं तिथि भी लिख दी है—

संवत् १७०० भावरम पौष शुक्ल १० माह माघव भी १) पद स्वया १)।

१) बीवा २० १) १) ७०० माघ १ तथा वक्रो १ जमने सेर।

संवत् की लिखावट ऐसी है जिससे उसे सं० १७०० तथा १७०० दोनों ही पढ़ा जा सकता है। इससे कम से कम इतना तो धिक् ही है कि यह हस्त-लिखित प्रति कम से कम काई ती बरें पुरानी है।

जित प्रकार पाण्डुलिपि में अन्त हिसाब किताब की तिथि के अतिरिक्त रचना या लिपि के काम का समय कोई संकेत नहीं है उसी प्रकार रचना के यादि अन्य संवत् या शत में लेखक ने अपने नाम का स्पष्ट निर्देश नहीं किया

मध्यकाल की नाट्यदर्मी कविता और नम्र भाषा के साहित्यिक नाटक १६३

है। साधारणतया प्रबंध के बादि प्रबन्ध अन्त में लेखकगण अपने संबंध में कुछ न कुछ लिखते रहे हैं पर यह लेखक अपने विषय में सर्वथा मौन हैं। कई बार प्रबंध का पाठ्यपथ करने के बाद मुझे केवल दो ही स्पष्ट ऐसे मिले जिनके साधारण पर कवि के विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है। य दोनों ही स्वतन्त्र नाटक के प्रारंभ में प्रस्तावना के अन्तर्गत सूत्रधार की उक्तियों के बीच में पाते हैं। सूत्रधार अपने सहयोगी नट को अपने एक दिव्य स्वप्न की सूचना देता है जिसमें सकरबी ने उसे बुम्बावन में समानत रसिकों की मुष्टि के लिए 'बोबिन्द हुसास नाटक' का अभिनय करने की भासा दी है—

‘लाते माघव मापुरी जरित मधुर रस प्याह ।  
बिरह छटपटों चटपटों लीनों बीठ जोबाई ॥  
यह अग्या मोको बई जमाकत मगबंत ।  
रिखि सिद्धि सबजगत गुद पूरनकरन समत ॥’

सूत्रधार की इस उक्त में ‘बीठ’ शब्द विचारणीय है। कवियों में स्नेह काप अपनी बात कहते हुए अपना अपने गुद का तथा अपने हृदय का नाम व्यक्त कर देने की परंपरा मिलती है। उस दृष्टि से ‘बीठ’ के यहाँ दो अर्थ समझ हैं—(१) प्राण (२) जीव नाम के कवि। पहले के अनुसार दोह का अर्थ होगा मधुर रस पिनाकर बिरह से बेठिकाने और व्याकुल बने हुए प्राणों को जिला लिया और दूसरे के अनुसार अर्थ होगा जीव नाम के कवि को जिला लिया। अब प्रश्न यह रह जाता है कि यदि ‘बीठ’ का अर्थ जीव नामक कवि है तो ये जीव कवि कौन हैं ?

दूसरा स्वप्न यह है जहाँ सूत्रधार संवत्सारक क्षण्य का पाठ करता है। इस क्षण्य में स्नेह की शक्ति से भगवान् क्षण्य और सोत्तामिपार समाप्त की एक साथ बंदना की गई है—

‘मुरित सकलगुण जरित मधुर रससिन्धु—गुपाकर  
बुम्बावन निज पास काम अनिराम हुपाकर ।  
गोपी गाइ गुबाल प्रीति बजहार बिहारी  
सरल तरनिजा तोर नीर लवि आनंदाकारी ।

स्विर समस्तन तनु विमल कमल कोविद सरस ।

बहुत सदा नाटक हिमे श्रीकृष्ण नाम पारतपरक ॥

सूत्र्य के अंतिम चरण का 'नाटक' शब्द भी दृष्टि प्रतीत हुआ है और दो अर्थ व्यंजित करता है। एक अर्थ है स्पर्धमणि के प्रभावशाली नायक श्रीकृष्ण का नाम मेरे हृदय में निवास करे। दूसरा अर्थ हो सकता है—'स्पर्धमणि के प्रभावशाली श्रीकृष्ण का नाम मुझ नायक नाम के कवि के हृदय में निवास करे। यदि दूसरा अर्थ भी रचनाकार का अभिप्रेत है, तो ये 'नायक' नाम के कवि कौन हैं ?

मिथुनायु विनोद' के दूसरे भाग में पृ० ११६ पर कमलसंज्ञा १६६ में जीव कवि का और पृ० १६० पर कमलसंज्ञा १७७ में 'नायक' नाम के कवि का उल्लेख है। इन दोनों के कविता काल के विषय में केवल इतना बताया गया है कि वे १७१४ के पूर्व के हैं और विवरण में कहा गया है कि 'इनका नाम सुदन की के 'सुदानचरित' में लिखा है।' जीव की कविता के विषय में मिथुनशुद्धों ने कुछ भी नहीं लिखा है, पर नायक के विषय में उन्होंने लिखा है कि वे निम्न व्यंशों के कवि हैं। 'जीव' की कोई रचना छाया उमके देखने में नहीं आई इसलिए उसके संबंध में वे मौन रहे। उल्लेख 'नायक' की किसी रचना या रचनाओं के आधार पर ही उन्होंने उल्लिखित मत व्यक्त किया होगा। पर वे रचनाएँ कौन-सी थीं इसका कोई संकेत मिथुनशुद्धों ने नहीं किया है। उन्होंने 'सूदन' के 'सुदानचरित' में दोनों कविओं के नामोल्लेख का हवाला दिया है। 'सुदानचरित' के जिस छंद में सूदन ने यह नामोल्लेख किया है वह इस प्रकार है—

'यन यमस्यान यालीयम नरहर नम

नाटक नवल नव निपट निहारे हैं।

नित्यानन नंदन नरोत्तम निहान नैदी

नाहर निवाम नंद नाम धनबारे हैं।

चंदबरवाई चंद जित्तामनि केतन है

चतुर चतुर चिरजीव चतुरारे हैं।





संगीत विद्यारथ बाह्याभाई विमलरामने 'नायक' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'यह व्यक्ति जिसका संगीत कला की प्रत्येक शाखा पर पूर्ण अधिकार हो जो अधिकारपूर्वक दूसरों को उसे सिखाता हो जिससाधन का पूरा-पूरा ज्ञानकार तथा उसके अनुसार रचना में समर्थ हो समस्त प्राचीन परम्परा तथा नवीन परम्पराओं में निष्णात हो चारकानियों से पूर्वतया परिचित हो भवे प्रकार से ज्ञान में सज्जता हो और उनका प्रसार भी कर सकता हो साथ ही मय का पक्का और स्वर का सच्चा हो अनेक ठाँवें जानता हो और उनके अनुसार बजा सकता हो इस प्रकार के संगीतशास्त्र के सिद्धान्त और सम्पाद के प्रकाश पंडित को नायक कहते हैं।' ऐसे महान् संगीतज्ञों की अनेक मौलिक कृतियाँ ग्रंथों के रूप में प्राप्त होती हैं जिसमें उनके नाम के साथ-साथ नायक अभिधान का भी प्रयोग हुआ है। संगीत के परमाचार्य स्वामी हरिदास रामसेन बीजूबाबरे आदि को छोड़ दें तो भी अनेक ऐसे नाम मिलते हैं जिसके साथ नायक विशेषण जुड़ा हुआ है। स्वामी हरिदास के पट्टशिष्य संगीत कलाचर रामदासजी और उनके दूसरे शिष्य मदन नायक ने अपने ग्रंथों में राम शर्मा अपने नाम के साथ 'नायक' जोड़ा है। दोनों का एक-एक बड़ाकरण मही दिया जा रहा है—

(१)

ग्रंथ-संस्कार करम

स्वामी—संगीत मूल की निमत अपन प्रवृत्त होत ।

शामीन—नायक रामदास मुयम हरे काल की हलचल छलछल ।

(२)

(क) मदन नायक निमति करत नायक है वे ठापी मानो मन इन्द्र बड़े बन्धु भटा करे ।

(ख) मदन नायक द्वाये धनत कहूँ ।

(३)

इसी प्रकार का छवि नायक का भी खंडित नामिका-विषयक एक बड़ा तरस ग्रंथ है—

१ बाह्याभाई विमलराम 'संगीत कलाचर', सं० १९३८ ई., दूसरी आवृत्ति पृष्ठ ३७ ।

## राग बिजय कामूरा

स्वायी—कान्हू किन संग जाने ।

ग्रामोण—बिगु गुन मान ससत खि नयक सापर मुक्ता मान ।

इस परम्परा पर ध्यान रखते हुए यह भी सजब प्रतीत होता है कि 'भोबिन्द हुसास' की प्रस्तावना में 'नायक' शब्द 'जीव' के नाम का ही एक संग हो, और इस कृति के लेखक का पूरा नाम 'नायक जीव' या 'जीव नायक' हो। 'जीव' पर विचार कर लेने के बाद हम पुनः इसका उद्घाटित करने का प्रयास करेंगे।

'जीव' कवि 'नायक' से भी बड़ी पहेली है। जीव किसी कवि का असली नाम भी हो सकता है और उसका उपनाम भी। जीवन मस्ताने जीवन, जीवन सिंह, जीवनाथ माट और जीवराज नाम के पाँच कवियों का सम्मेलन 'मिथबन्धु विनोद' में है, जिनका उपनाम 'जीव' हो सकता है। शरीर और शिखरन ने भी जीवन नाम के दो कवियों और जीवनाथ माट का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> 'मिथबन्धु विनोद' के उल्लिखित पाँचों कवियों का काल इतना परवर्ती है कि वे 'भोबिन्द हुसास नाटक' के कर्ता नहीं माने जा सकते हैं। जब मिथबन्धु स्वयं 'जीव' को इन पाँचों से निम्न मानते हैं, तो इस अनुमान पर अधिक बल देना उचित नहीं प्रतीत होता। शिखरन ने अपने इतिहास के ७७ वं क्रम में जिन जीवन कवि (जन्म १६६१ ई०) का उल्लेख किया है, काल की दृष्टि से उनके 'भोबिन्द हुसास' के रचयिता होने में कोई कठिनाई संभव है न हो पर वे 'जीव' उपनाम से रचना करते थे जबकि कोई ग्रन्थ भी लिखा या ऐसा कोई प्रभाव या उल्लेख कहीं नहीं मिलता। उनकी कुछ कृतक रचनाएँ ही 'हमाय' और 'उमरक़य्युम' में मिलती हैं। स्वयं मिथबन्धु भी उनको और 'जीव' को एक नहीं मानते हैं। अतएव 'भोबिन्द हुसास' के प्रणता यदि कोई 'जीव' नाम के ही कवि हैं तो वे हम सबसे निम्न होने चाहिए।

ऊपर सूचना के जिस संयोजनकी क्षण्य का उल्लेख हुआ है उसकी शक्ति 'रबिर समाधन तनु विमल कय जीव कीबिर सरख' पद्या के योग्य है,

१ मिथबन्धु विनोद, पृ० २६२, ७७४ २६२, ७७७ २६२।

२ मिथबन्धु ७७/अ, ४३०/अ, शरीर १६१/१६०८ २८२/१८०३।

इसमें सनातन के साथ-साथ 'रूप' नाम भी आया है। ये दोनों शब्द वहीं एक-  
 ओर भगवान् कृष्ण के चिन्मयविग्रहत्वं और क्षीयसत्त्वत्व विभक्त रूप का निर्देश  
 करते हैं वहीं दूसरी ओर ये सनातन योस्वामी के साथ रूप योस्वामी को भी  
 स्तेप से सखित कराते हुए प्रतीत होते हैं जिससे भगवान् कृष्ण के साथ-साथ  
 सनातन और रूप की बदना भी ध्वनित होती है। जीव योस्वामी के संस्कृत  
 शब्दों में इस प्रकार की उभयात्मक सिमट बदना मिलती है।<sup>१</sup> ऐसी स्थिति में  
 'बीस' शब्द जीव योस्वानों का बोधक हो सकता है। जीव योस्वामी की ध्यना  
 र्वतन्त्र—संप्रदाय के प्रवर्तक महान् योस्वामियों में है और उनमें भी ये शब्द-  
 उन माने जाते हैं।<sup>२</sup> ये सनातन और रूप के कनिष्ठ सहोदर भगुपम (बल्लभ) के  
 पुत्र थे और प्रतिभा पौष्टित्व कवित्व शक्ति साधना लपस्या धारि सभी  
 वृष्टियों से ये अपने पूज्य पितृश्यों के समकक्ष थे। इन्होंने अपने कवित्व और  
 उत्सवज्ञान दोनों से भारतीय बाह्यम को गौरवशाली बनाया है। इनका धारमिक  
 जीवन काशी में बीठा था और बाद को ये अपने पितृश्यों के साथ आकर वृन्दावन  
 में रहे थे। जिसने कम से कम पन्द्रह महान् पन्थ सिखाकर मीरांथ-नामी पर अपने  
 एकल्लव्य अधिकार का भव्यतम प्रमाण दिया हो उसने अपने दीर्घ प्रवास के  
 पश्चात् हिन्दी और उसकी विभाषाओं, विशेषतः अपने प्रियतम कृष्ण की लाइली  
 ब्रजभाषा पर अधिकार प्राप्त कर लिया हो, इसे आश्चर्यजनक या अनहोनी बतला  
 नहीं माना जाना चाहिए। तो क्या 'चोबिन्द हजारा' नाटक उन्हीं योस्वामिपद  
 जीव महानुभाव का निजा हुआ है?

इस अनुमान को बल देनेवाला एक और तथ्य सामने आता है।  
 'चोबिन्द हजारा नाटक' रूप योस्वामी के सुप्रसिद्ध नाटक 'विदग्ध मात्र' के  
 आधार पर लिखा गया है। उसका एक-एक विकरण विदग्धमात्र नाटक का  
 अनुगमन करता है। दोनों में सात-सात रंग हैं, और दोनों में रंगों का नाच-  
 करण भी प्रायः एक ही है जो नीचे के विवरण से स्पष्ट किया जा सकता है—

१ सनातनसमी मस्य व्यायाख्यामाम्नासनातन । श्रीवत्समीश्रुत सोऽप्री  
 श्रीरूपो बीवतएवति ।—जीवनरोचिनी ।

२ गौडसंप्रदायस्य प्रवर्तकैषु पदेषु योस्वामिपञ्चमस्यो जीवयोस्वामी ।  
 —इरम्भजीवमणि की भूमिका ।



विवाह मीमांसा।<sup>१</sup> ठीक इसी प्रकार की बात जीव गोस्वामीजी ने 'जगन्मयी लीला मयि' की लोकरंजनी टीका में और 'ब्रह्मसंहितापरिचय' की टीका में कही है जिसका भाष्य है कि समातन और रूप ही जीव की सत्प्रति हैं।<sup>२</sup> इस प्रकार के पारिस्थितिक साक्ष्य की दृष्टि से योगिन्द्र हुमास नाटक के जीव का जीव गोस्वामी होना अचर्चम नहीं। सूत्र के 'सुमान चरित' के 'जीव भी यदि जीव गोस्वामी ही हों तो वह भी किसी प्रकार अनुपपन्न नहीं माना जा सकता। पर इस बारका के विषय में सबसे बड़ा तर्क मही हो सकता है कि जीव गोस्वामी की कोई हिन्दी रचना नहीं मिलती और न हिन्दी के कवि या लेखक के रूप में उनका किसी ने कहीं उल्लेख किया है।

इस प्रश्न के स्पष्टीकरण के लिए उपर्युक्त मयमवाची छप्पद में 'समातन' के साथ-साथ 'रूप' नाम का प्रयोग विशेष रूप से विचारणीय है। रूप गोस्वामी की ने अपने कतिपय ग्रंथों के मयमवाचक में निम्न उद्धावली में समातन गोस्वामीजी के प्रति प्रशंसा व्यक्त करते हुए अपने नाम का भी उल्लेख किया है—

मामाकृष्टरसम् श्रीवेनोद्गीपमन्त्रागन्धम्  
निमज्जोत्तमवासीसमातनारामा प्रसुर्बन्धि।

जगन्मयीलमयि ॥१॥

यदि उपर्युक्त छप्पद में भी 'रूप' शब्द का प्रयोग इसी भाव से हुआ है तो स्वयं रूप गोस्वामी ही 'योगिन्द्र हुमास नाटक' के प्रणेता हो सकते हैं। संस्कृत में मधुर रस की ओ नाटकीय व्याख्या उन्होंने 'विवाहमायक नाटक' के माध्यम से प्रस्तुत की। उन्हीं के लिए 'योगिन्द्र हुमास नाटक' में उन्होंने जगन्माया का प्रयोग किया। ऐसा होना न किसी प्रकार अचर्चम है और न आश्चर्यजनक। जीव गोस्वामी के विषय में उसे भी मही यह कहा जा सके कि उनकी कोई हिन्दी रचना नहीं मिलती पर समातन और रूप ने हिन्दी में लिखा था, इनके प्रमाण मिलने लगे हैं। गामरी प्रचारिणी सभा की १९०६-८ की खोज रिपोर्ट में रूप-समातन के 'शृंगार-मुक्त' नामक हिन्दी ग्रंथ की सूचना प्रकाशित हुई थी। इसके प्रतिरिक्त श्री प्रवरचन्द्र नाहुटा ने स० २०१३ के स्याङ्गुन मास की

१ दे० पाद टिप्पणी पृ० १८।

२ दे० पाद टिप्पणी पृ० २३।

मध्यकाल की नाट्यपर्याय कविता और ब्रज भाषा के साहित्यिक माटक १७१

'ब्रजभारती' में 'ब्रजभाषा का एक महत्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ' सीपक लेख प्रकाशित कराया था, जिसमें 'रूप सनातन कृत ग्रन्थ नाम विदग्ध भाषा की विस्तृत वर्णना है। नाहुटाजी ने लिखा है कि इसकी प्रतियाँ काफी संख्या में प्राप्त हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ का अण्डा प्रचार रहा होगा। बीकानेर की प्रमुख संस्कृत लाइब्रेरी में ही उनको इसकी सात-आठ प्रतियाँ मिली हैं जिनमें 'रामा मिमन' 'श्री भाषा रामा विमल' और 'रामा भाषा सीला विमल' नाम पाया जाता है। उनको मिली हुई इस ग्रन्थ की प्रतियों में सबसे प्राचीन सं० १७५४ की लिखी हुई है। नाहुटाजी को पहले जो प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं उनमें लेखक का नाम नहीं था पर बाद को मिली हुई प्रतियों में उन्हें लेखक का नाम भी मिल गया है। नाहुटाजी ने बताया है कि लेखक के नाम वाली प्रति में चार पंक्तियाँ हैं। उन्होंने ग्रन्थ का आरम्भ अपने लेख में उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

आरम्भ

"ग्रन्थ श्री पूर्णमासी जी की कथा निरूपते । ग्रन्थ नाम विदग्ध भाषा ।  
रूप सनातन कृत ।

नाहुटाजी ने यह भी लिखा है कि 'अभी प्राप्त प्रतियों से इस ग्रन्थ के नये नाम 'पूर्णमासी जी की कथा' और 'विदग्ध भाषा' ये दो और ज्ञात हुए हैं।" मुझे भी अपनी खोजों में बीकानेरी के विद्याविभाग में नाहुटाजी के उल्लिखित ग्रन्थ की दो प्रतियाँ देखने को मिलीं। संभवतः इसकी दो प्रतियाँ वहीं और हैं पर वे अभी तक मेरे देखने में नहीं आ सकी हैं। इसकी पहली प्रति जो वहाँ बस्ता सं० ८७/१ में देखने में आई प्रमुख है और उसका आरम्भ इस प्रकार किया गया है—

"विदग्ध-भाषा रूप सनातन कृत

आरम्भ

"श्री गणेशाय नमः ॥ ग्रन्थ नाम विदग्ध भाषा रूप सनातन कृत । श्री बृन्दावन निरख विहार जानि कै उजनि नगरी को बास धाड़ि करि संदीपन ।  
रिपीद्वर की माता ताको नाम पूर्णमासी कहाये ।  
इन सब प्रतियों में रूप नाम सनातन के पहले आया है इससे किसी प्रकार

की भांति नहीं होनी चाहिए। कारण यद्यपि समातन रूप से वां शर्ष ज्येष्ठ के फिर भी ज्येष्ठ संवत्साय में रूप बोस्वामी समातन गीस्वामी के पूर्व प्रसिद्ध हुए थे, इसलिये वैष्णव समाज में वे अपने शत्रु से ज्येष्ठ माने जाते थे। इसीलिये वैष्णव साहित्य में उनका नाम प्रायः समातन के पहले प्रयुक्त हुआ है।

इस विवरण से यह सिद्ध होता है कि नाहुटा जी ने जिस महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थ ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ देखी और पाई हैं वह वही है जो काँकरोली के विद्याविभाग में मेरे देखने में आया है। इस ग्रन्थ का मुख्य नाम 'विदग्ध माधव' 'विदग्ध माधो' या 'आधो विदग्ध' ही है। इसी के अन्य नाम 'पुर्वमासी जो की कथा' 'पुर्वमासी जो की बातों' 'राधाविजय' 'मी माधो राधा बिलास' और 'राधा माधोलीला बिलास' भी मिलते हैं जो इसकी कथावस्तु के सूचक हैं। इस ग्रन्थ की वा प्रतियाँ मिली हैं उनमें से कुछ अपूर्ण हैं और कुछ में लच्छक का नाम नहीं है। जिन प्रतियों में लच्छक का नाम है वहाँ वह निरपवाद रूप से 'रूप समातन का ही है। इससे रूप और समातन का हिन्दी लेखक होना प्रमाणित होता है। उन्होंने हिन्दी में लिखा था इसके ग्रन्थ प्रमाण भी हैं। कलनात्मक व्यासदेव ने १८४३ ई० के आसपास 'रायसायरोजूब राग कल्पद्रुम' नामक ग्रन्थ संपादित किया था जिसमें लगभग २०० छन्दमय कवियों की रचनाओं का संग्रह है। हिन्दी करमाटी मराठी ठेसपु पुजरासी बंगाली उड़िया बँदरेली मरवाी वेपुमन पुररासी पादि अनेक भाषाओं की रचनाएँ इसमें संकलित हैं और जिन कवियों के संपादक परिचित हैं उनका विवरण भी उसने अपनी भूमिका में दिया है। प्रियदर्शन ने इसे देखा था उन्होंने इसे दुर्लभ ग्रन्थ कहा है। उन्होंने लिखा है— 'जिन कविता की रचनाएँ इस विद्यालयाय ग्रन्थ में संकलित हैं उन सबका नाम एकत्र करना स्वयं बड़े परिश्रम का काम है। मैंने इस भूमिका से हिन्दी कवियों और हिन्दी ग्रन्थों का नाम से लिखा है। कवियों को तो मैं पहचानने में असमर्थ रहा और कई ग्रन्थ जो इस सूची में हैं, मेरे इस ग्रन्थ में सम्मिल नहीं कर सका' हैं।<sup>१</sup> इसी संकलित में प्रियदर्शन ने उन ग्रन्थ के आधार पर दो सूचियाँ दी हैं—

( अ ) हिन्दुस्तानी लेखक और ( न ) हिन्दुस्तानी ग्रन्थ ।

(घ) मूवी में उन्होंने १२२ हिन्दी रोषकों के नाम दिए हैं जिनमें एक की सगहर्षे मन्तर पर रूप सनातन का नाम है।<sup>१</sup> इस ग्रन्थ के केवल दो सगह ही मुझे देखने की मिले हैं, दूसरे सगह के प्रारम्भ में 'रागसागर की सूचना' के अन्तम ५० २ पर रूप सनातन गुप्तार्थ का नाम है।

रूप सनातन के हिन्दी कवि होने का एक अन्य प्रमाण भी मुझे उनके द्वारा रचित एक पद के रूप में मिला है जो मुझे बड़ौदा विश्वविद्यालय के सगीत महाविद्यालय के सगीताचार्य श्री भरत व्यास जी से प्राप्त हुआ है। उन्होंने सारे भारत में घूम-घूमकर एक हजार से भी अधिक पुराने छुपनों का संग्रह किया है। उनका कहना है कि उन्होंने रूप सनातन के सिखे हुए पाँच छुपद दबे हैं। सभी में से एक यहाँ दिया जा रहा है—

भूपद—सिंधु राग

स्वायी—बनरे सनातन पुत सवरे भिटप बर

मुमन मुगबिमय सवीर सवन की।

अंतरा—बातक बबोर बकबाक बाक सिद्ध पुकार

कमि बिबिन बाबक सुबयन बपन की।

संचारी—पुलिन कालिंदी की सुरेय देस मुबति पुष्प

सम्य राबिका नु त्थाम रात नाद टेरि मुपति

बादित बर राग रति नहन की।

आसीत—ऐसी न देखि न छवि, कहत सनातन रूप

बीब नायक घोषा चारद रदन की।

यदि यह भूपद प्रामाणिक है तो इस भूपद में रूप सनातन जीव श्रीरत्नमाला का एक साध प्रयोग 'गोविंद कुशाव' नाटक की प्रस्तावना में इन्हीं नामों के समान समान प्रयोग को एक सूत्र में मरोटकर उसकी शुल्की खोजना हुआ प्रतीत होता है। संभवतः प्रस्तावना में भी 'नायक' अथवा बीब गोस्वामी समान दोनों गोस्वामियों के सुप्रसिद्ध एक एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सगीत की माहता में भी रचित सम्प्रदाय का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कारण, मित्रा—प्रियतम के नित्य बिहार के घमोकि दिव्यान्त को उनके सम्मुख मान करके समिग्रचित प्रदान करना रचित सम्प्रदाय के बल की एक मुख्य बर्ता रही होती। सगीत के क्षेत्र में सनातन रूप और बीब का क्या रिक्त है इसका मुझे टीक-टीक ज्ञान नहीं। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि काव्य नाटक,



साहित्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र की ही तरह उन्होंने अपनी प्रतिभा के प्रमाण से संवीरकता को भी संभवतः व्यक्त धनव्य किया होगा। उक्त ध्रुव उसका प्रमाण है। बड़े से बड़े संवीरकों की रचनाओं के साथ इस ध्रुव की तुलना करने पर एक बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि इसकी भाषा-शैली की विचरता और विचित्रता उक्त काल के अन्य ध्रुवों में साधारणतया नहीं मिलती। इस प्रकार की कुछ अधिक रचनाएँ मिल जाने पर उनका यह वैशिष्ट्य स्वतंत्र अध्ययन की विपुल सामग्री प्रस्तुत करेगा।

ऊपर जो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं, उनसे कम योस्वामी और जीव गोस्वामी का हिन्दी का भी कवि होना सिद्ध हो जाता है। अतएव उन्होंने जबका जन्म से किसी एक नै ही यदि 'योबिन्द हुतास' नाटक की रचना की हो, तो यह सर्वथा स्वाभाविक माना जाना चाहिए। कम से कम इसे संशय मानने का कोई कारण अब नहीं रह गया है। विचारणीय है कि 'विद्यम भावक' जबका 'पूर्वमासी की कथा या बार्ता' नाम के जिस मस-सम्ब की कथा ऊपर की गई उसकी कथा वस्तु भी ठीक वही है जो संस्कृत के 'विद्यम भावक नाटक' और हिन्दी के 'योबिन्द हुतास नाटक' की है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि 'मयूर रस' के 'विद्वान्त का सार' जबका 'सिद्धान्त की पत्रि' माने जाने वाले विद्यम भावक के कथातत्व को जनमाया में भी अनेक रूपों में लोककल्याण के निमित्त सुलभ बनाने का कार्य स्वयं इन महान् योस्वामियों ने ही संपन्न किया था। 'यदि 'योबिन्द हुतास नाटक' स्वयं कम योस्वामी की रचना है तो यह हिन्दी की पूर्ण मौलिक कृति सिद्ध होती है और हिन्दी के महान् लेखकों की सूची में एक बड़े पीरबसासी नाम की वृद्धि होती है। यदि इसके रचयिता जीव गोस्वामी की हैं, तो इसे अधिक से अधिक कथान्तर भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसकी रचना 'विद्यम भावक' के आधार पर की गई है। प्रायः अनुचित नाटकों में अनुवादकों ने मूल लेखक के प्रति किसी न किसी रूप में आभार प्रकट करते हुए अपना नाम भी दिया है। 'योबिन्द हुतास नाटक' में यह बात नहीं मिलती, इससे इसके मौलिक धर्म होने की संभावना बढ़ जाती है। एतद्वाच यह है कि अब तक उपलब्ध साधनों के आधार पर कम योस्वामी जबका जीव गोस्वामी ही नाटक के प्रणेता कहे जा सकते हैं। श्रीमदरबन्द नाट्य जी ने बहुत पहले इन महान् योस्वामियों के संबंध में इस संभावना को सामने रखा था कि गुल्शन में निवास करने के कारण धनव्य ही उन्होंने जन-भाषा में रचनाएँ की होंगी।<sup>17</sup> संभव है, नाटक की धन्य प्रति या प्रतियाँ मिल

मध्यकाल की नाट्यदर्मी कड़ियाँ घोर ब्रजभाषा के साहित्यिक नाटक १७५

जाने पर इस समस्या का कुछ अधिक निश्चित समाधान प्राप्त किया जा सके।

यह क्या या बार्ता के रूप में हिन्दी 'विद्यम मास' की जा प्रतियाँ मुझे कीकटोमी में प्राप्त हुई हैं उनका विवरण दिया जा चुका है। विचारणीय यह है कि कीकटोमी का विद्याविभाग बस्सम-सम्प्रदाय का एक भारत-प्रसिद्ध सम्पादन है। नाहुदाजी ने भी अपने उल्लिखित निबन्ध में लिखा है कि इस ग्रन्थ का प्रकार बस्सम-सम्प्रदाय में रहा होगा। मेरा विचार है अत्यन्त सम्प्रदाय की मन्त्रोपासना का प्रभाव बिना अनेक साहित्यिक कृतियों के माध्यम से अन्य मन्त्रि-सम्प्रदायों पर पड़ रहा था उसमें 'विद्यम मास' नाटक प्रमुख है।

इस नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि इसके द्वारा हिन्दी नाटक साहित्य की रचना-परंपरा की प्राचीनता और ध्वस्तता की पुष्टि होती है। नवीन शोधों से हिन्दी नाट्य-परम्परा उत्तरोत्तर प्राचीन प्रमाणित होती जा रही है। एक पहिहीमाजी के आलोच्य रचना के कर्ता होने की संभावना से उस समय भी हिन्दी के राष्ट्रव्यापी प्रसार और प्रभाव का प्रमाण मिलता है। इसके अन्य अनेक प्रमाण भी मिल रहे हैं। पत्रहवीं शती के मध्य में आसाम के महाकवि राजदेव ने हिन्दी में ही अपना 'कालिय हनन' नाटक लिखा था और उड़ीसा के महाराज कपिलेश्वर देव ने 'परमुराम विजय' नामक संस्कृत व्यासोप की रचना की थी जिसमें हिन्दी का भी एक भीत सम्मिश्रित है।

हिन्दी नाटक रचना की परंपरा की प्राचीनता के नये-नये प्रमाण मिलते जाते हैं, पर अभी तक 'योगिद हुमास' जैसा सर्वाङ्गपूर्ण और साध ही साध इतना पुराना कोई दूसरा हिन्दी नाटक उपलब्ध नहीं हो पाया है। हिन्दी नाटक का उद्भव पत्रहवीं और सोलहवीं शती में लोकधर्मी नाट्य-परम्परा के तन्मयान का सहारा पाकर राजसीला और लौटकी जैसे धर्मनिरपेक्षों के उत्सव में सीला नाटक आदि के रूप में हुआ था। उन्नी धर्मादि में 'योगिद हुमास' जैसे नाटक का सिद्धा जाना जो नाट्यपात्र की दृष्टि से सर्वाङ्गमय है एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। इसके अतिरिक्त इस नाटक की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि यह भारतीय-अत्यन्त आकाशों के रसालास और नाट्यपात्र दोनों के सिद्धांतों का समन्वित रूप हिन्दी में प्रस्तुत करता है। उक्त अत्यन्त आकाशों ने यह प्रयत्न तो किया था कि उनके सिद्धांतों के समुद्भूत नाटक लिखे और धर्मनिरपेक्ष विधे बीच और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए मार्गदर्शन के निमित्त रूपगोस्वामीजी ने

१ दे० डॉ० दशरथ शोभ—हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास,  
पृ० १११।

‘नाटकचन्द्रिका’ नामक नाट्यशास्त्र का ग्रन्थ भी लिखा था। संस्कृत में ‘नाटकचन्द्रिका’ में निरूपित सिद्धांतों का अनुसरण करने वाले ‘विदग्ध भाष्य’, ‘सवित्र भाष्य’, ‘शामकेति कीमुदी’, ‘वैद्यकान्तोद्यम’ जैसे कई नाटक हैं। गोविन्द हुजास हिन्दी में नाट्यशास्त्र की उसी परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है।

### शानन्द रघुनन्दन नाटक

‘शानन्द रघुनन्दन नाटक’ को प्रायः सभी विद्वानों ने संस्कृत धर्म की हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। ‘गोविन्द हुजास नाटक’ की उपस्थिति और प्रकाशन से उसके सम्बन्ध का यह दावा अब सिद्ध हो जाता है। फिर भी ‘शानन्द रघुनन्दन नाटक’ का महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। विद्वह्वर डा० हयराज घोष ने ठीक ही लिखा है— ‘विद्वनाय जी ने वैदिककाल से चली आती हुई नाटिक परम्परा को राममन्त्रि नाट्य में जोड़कर शीर्षकामीन इतिहास का विवर्धन करा दिया है। वस्तुतः इस नाटक में रामलीला की परम्परा को साहित्यिक रूप प्रदान करने का बड़ा विराट् उद्योग किया गया है। यद्यपि यह साठ अंकों का नाटक है और इसमें पात्रों की संख्या भी बहुत अधिक है फिर भी इसमें रामलीला की परम्परा में समसामयिक रंगमंच का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। यदि हम यह ध्यान में रखें कि रामलीला नाटक पूरे पञ्च मर आराधनात्मिक रूप में चलते हैं तो ‘शानन्द रघुनन्दन नाटक’ के साठ अंक और बहुसंख्यक पात्र अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होंगे। परम्परा में विनिश्चय करके देखने पर इस नाटक के सात ध्यान नहीं किया जा सकेगा। महाराज विद्वनायसिंह रसविय कवि और नाटककार हैं। घोष जी का यह कथन यथार्थ है कि उनके इस नाटक में ‘नाटकत्व काव्यत्व से बाजी ले गया है।’ याने बसकर भारतेन्दु जी ने ही महाराज विद्वनायसिंह के मार्ग का अनुसरण किया और सीमानाटकों एवं लोकनाट्य परम्पराओं को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करने का सफल उपक्रम किया।

### मनुष्य

‘शानन्द रघुनन्दन’ के बाद दूसरा सर्वोच्चनीय नाटक भारतेन्दु जी के पिता विद्वह्वरजी का लिखा हुआ ‘मनुष्य’ नाटक है। यह नाटक पूरा मान्य नहीं हुआ है। उसका प्रथम अंक ‘कविचरणसुधा’ में छपा था। उसका ही अंश उपलब्ध है। यह नाटक ‘शानन्द रघुनन्दन’ की प्रविधि का अनुसरण करता है।

भारतेन्दु - युग



## ८ नाटककार भारतेन्दु

(१)

पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक के अंत पूर्व पूर्व-भारतेन्दु काठ तक हिन्दी में साहित्यिक दृष्टि के साहित्यिक नाटक का स्वतंत्र विकास न हो सका था। नाटक और अभिनय की पारमपरिक और साहित्यिक परंपरा जिस रूप में थी, उसका सम्यक् विवेचन किया जा चुका है। बल्लभ हिन्दी में संस्कृत के अनुवाद या अनुकरण की प्रवृत्ति से अनेक साहित्यिक नाटक का अनुवाद भारतेन्दु की कला के प्रयास में ही हुआ। हिन्दी में अभिनय और रंगमंच की माध्यम-परंपरा का अनुवाद भारतेन्दु के काल की प्रवृत्ति का रहा था। 'भारतेन्दु' ने नाटक लिखने की नई परंपरा को जन्म दिया उन्होंने नाटक के रूप की परिपाटी आरंभ की और सर्व अभिनय करके लोगों के सामने एक आदर्श भी स्थापित किया। अनेक इस माध्यम-परंपरा के प्रवर्तन की दृष्टि से ही भारतेन्दु का सर्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना है।

भारतेन्दु को नाटक-रचना की प्रेरणा अपने समय और समाज ॥ मिली। अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो जाने तथा अंगरेजी शिक्षा के प्रचार के परिणाम स्वरूप पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान से जो संर्घ हुआ था, उसका चेष्ट में एक प्रतीक प्रतीक न जन्म दिया। यह जन्म भारतीय साहित्य में कमजोर धर्म और विज्ञान का बीज भी बोने लगी। अरब महमारी निक्योरिया का घोषणापत्र, जिसने भारतीय इंसानों में अनेक सुखापानों का सूजन किया था वैसे सिद्ध हो चुका था। साधन की क्षोभ-नीति प्रकाश में आने लगी थी। अनेक महमारी टैक्स तथा बेकारी का रूप में अज्ञान को उसके अवलोकन स्वरूप का परिवर्तन सिद्धन करा था। अंगरेजों का शासन-मंडल तथा आर्थिक नीति और भारत के अर्थस्रोत का प्रतिष्ठ संघर्ष है। उन्नीसवीं शताब्दी में अंगरेजों के राज्य का फैलने के साथ भारतवर्ष में अनेकता का पैदा अवस्था गया। जब कभी अनेक पक्षों के साथों आदमी कल के पास बन गए। वय, भय और पक्षों का तो कुछ ठिथना ही नहीं। सन् १८५८ ई

में कंपनी के अत्याचार पूर्ण सार्वजनिक रूप से प्रकट हुए। विन्स्टन चर्चिल ने भारत को इंग्लैंड के राज्य के अधीन घोषित करते हुए अनेक ग़लत आपराधों से परिपूर्ण बोधनात्मक प्रचारित किया। मुहम्मद अली जinnah को बोधनात्मक के बाढ़ से ही देश में अंधाधुंध का तौता सम गया। सन् १९१६ ई. में मीरी और अकाल दलों का सावधान प्रयत्न हुआ जिसमें १ से २ लाख तक मनुष्यों में प्राण बँबाए।<sup>१</sup> इसके दो ही वर्ष बाद १८-१९ ई. में फिर अकालक अकाल पड़ा। सन् १८७७ ई. में इंग्लैंड के सुधारक के मतभेद में आने के उपरान्त में हिन्दी में एक बड़ा सरी दरबार हुआ जिसमें भारत के राजा-महाराजों ने विन्स्टन चर्चिल को सामाजी स्वीकार किया। तब ही तब दक्षिण भारत गए अकाल से पीड़ित हुआ जिसके परिणाम तब तक तक की पुस्तक, और बड़े कुंजी की नींव मरे। सन् १८९४ ई. से १८९९ ई. तक गुजरात मध्यप्रदेश पंजाब और बिहार सब अकालक इंग्लैंड से पीड़ित रहे, और १९०० ई. में गुजरात अकालक-अकालक हुआ। निम्न मनुष्यों के प्राण देने में इस समय मुजबूरी और मजबूरी दोनों में होइ-सी गयी थी। फल से देश का विभिन्न भागों में जो बन्दोबस्त हो रहे थे उनमें संगत इतना बड़ा दिया गया था कि वह बंदोबस्त के फल हुआ रह ही नहीं जाता था। वह बन्दोबस्त इंग्लैंड को स्वामी बना देने के शासनमान्य थे। 'देक्स पर देक्स अकाल पर अकाल और मरी पर नहीं देखा जाती है। निम्न नये नये अकालों से बेचा जाता है और निम्न नई स्पीचों से मोन छिड़का जाता है। 'साखुबानिधि' में प्रकाशित एक पत्र के इस अंगमें परिस्थिति का मर्म मरु है। इस परिस्थिति में अंग्रेजी साम्राज्यवाद का अकालक रूप बोधनात्मक के पूर्व में छिपना नहीं जा सकता था। मूल्य राज्य का उपनाम प्रवेश केयर, बसा को जीत कर और अकालान्तिमान का अकालिक संघ के सिंगु सिंगु करके अंग्रेजों ने अपनी साम्राज्यनिष्ठा का वस्तुतः स्वरूप और भी स्पष्ट कर दिया था। अंग्रेजों के साम्राज्यवाद के सिंगु में अकाल हुआ वह समुद्र बहा ही भारतेन्दु के साहित्य की मूल प्रेरणा है।

बोधनामी गुलामीशास की तरह भारतेन्दु ने भी अंधाधुंध-साधना और साहित्य-साधना को एकत्र कर दिया था। 'भीखी यन्त्रिणी धृति भक्ति छोड़, सुरसरि सम सब कई हित होय' साहित्य-साधना का बड़ी उदात्त भावना भारतेन्दु

## गायकधर भारतेन्दु

ने भी बनाया था। ज्ञान साहित्य द्वारा जन-जागरण के लिए वह एक विद्यालय मान्यमान बनना चाहते थे। परन्तु ज्ञान साहित्य द्वारा जिस समाज को उन्हें प्रबुद्ध करना था, वह दो प्रकार का था। एक ओर सर्वस्य अधिष्ठित जनता थी जिसको अज्ञान-जन ही नहीं था। ऐसे लोगों के लिए मात्रक, उन्म्यास और काव्य आदि की रचना व्यर्थ ही थी। इन लोगों के कल्याण को दृष्टि में रख कर ही भारतेन्दु जी ने मार्च १८७९ ई० की 'कवि-वचन-मुद्रा' में लिखा था—

'भारतवर्ष की उन्नति के जो जनक उपाय महत्त्वपूर्ण मानकर सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय भी होना की आवश्यकता है। इस विषय के बह बड़े लेख और काव्य प्रकाश होत हैं, किन्तु वे जन-साधारण के दृष्टि से प्रचार नहीं होते। इसक हेतु मैंने यह सोचा है कि भारतीय संगीत की छोटी छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश यौव-यौव में साधारण लोगों में प्रचार की जायें। यह सब लोग जानत हैं कि जो बाल साधारण लोगों में फैलनी उसी का प्रचार सर्वाधिक होगा और यह भी विदित है कि जिनका प्रामाणिक सीध फैलता है और जिनका काव्य को संगीत द्वारा सुन्दर बना कर प्रसार होता है, उसका साधारण शिक्षा से नहीं होता। साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अद्भुत प्रभाव का इस प्रकार है जो संगीत फैलाना बाध या बहुत कुछ संस्कार बदल जान की आशा है। इसी हेतु मैंने इच्छा है कि मैं ऐसे ऐसे गीतों का संग्रह करूं और उनका छोटी छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूं। इस विषय में मैं, जिनको कुछ भी रचनाशक्ति है उनसे सहमता चाहता हूँ कि वे लोग भी इस विषय पर गीत या छंद बनाकर स्वतंत्र प्रचार करें या मेरे पास भेज दें मैं उनका प्रकाश करूँगा और सब लोग अपनी मीठगी में ध्यानवस्तु को यह पुस्तकें दें।

आज लोग यह कहते हैं, वह निम्न हैं कि जो गुरु इन गीतों को गाकर उसी का वे साथ गया सुनेंगे। ऐसे गीत बहुत छोट छोटे छंदों में और साधारण भाषा में बनें बरब गायेंगे मानाओं और जियों की भाषा में विज्ञेय हों। कर्मरूप दुर्गम केमल बरबा भद्रा केनी होनी, पौसी, बंवे, नवनी जाने क यति, निरहा बनेनी गजत हस्यादि प्रामाणिकों में हल्का प्रचार हो और सब देश की भाषाओं में इसी अनुसार हो अथात् पंजाब में पंजाबी मुँहकलक में मुँहकलक, बिहार में बिहारी येम बघों में त्रिष भाषा का प्रचार हो उसी भाषा में ये गीत बनें।" जन-उद्दिष्ट के लिए जनतीय भाषाओं में जिन प्रकार के लोकगीत बरबा जन-साहित्य की रचना का



आन्दोलन चल रहा है। उसकी कैसी प्रचुरता बोलना भारत-मुजी ने बनाई। हिन्दी में जब यह जन-साहित्य की माँग हो रही थी तब इस और इंग्लैंड में प्रतिष्ठितवादी साहित्य का दौराया था।<sup>१</sup>

भारतेन्दु-अर्थीन समाज को सुतरा वर्ग यह था जो संस्था में अल्प होते भी चिन्तित था। प्राचीन कालसे भारत में उच्च शिक्षा की जो प्रथाएँ चली थी वह निश्चित कर दी गई थी। अंग्रेजी शासन के सुधारों ने अल्प साम्र के हित के लिये ही इस प्राचीन शिक्षा-विधि को बढ़ा कर उसके स्थान अंग्रेजी की शिक्षा के प्रचार और प्रसार का व्यापक उद्योग किया था। माध्य से ऊपर कर उच्चशिक्षा तक सबका माध्यम अंग्रेजी भाषा ही मानकर पूर्ण लियकर उद्देश्य हिन्दू सभ्यता और संस्कृति का सम्पूर्ण और उसके स्थान पर में पदस्थान सभ्यता और संस्कृति की प्रतिष्ठा करना था। अतएव इस समय चिन्तित समाज अंग्रेजी शिक्षा की परंपरा में पड़ने के कारण धीरे धीरे साहित्य सभ्यता और संस्कृति में विमुक्त होता जा रहा था। इस चिन्तित की आवश्यकताओं को तत्कालीन हिन्दी साहित्य पूरा नहीं कर पा रहा था, इस दर्जों के बीच एक गहरी खाई बन गई थी। इस खाई को पार कर इस वर्ग हिन्दी हिन्दू और हिन्दुस्थान की जातिधर्म परम्पराओं में स्थित का बलमान की विरुद्ध समस्याओं और बस के स्वेच्छों का उन्हें परिचय और अनु करना और मनुष्य के नव-निर्माण के लिये उन्हें उत्साह करना भारत-मुक्ति साहित्य के सामने आतीव जीवन की इन आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्या। भारत-मुक्ति ने न अपनी शक्तियों के बीच अनुभव किया कि वेदास में नाटक। रंगमंच सफलतापूर्वक यह बात समझाने का ठोस है। अतएव उन्होंने बड़े उत्साह से हिन्दी में नाटक-यन्त्रण का भीगका किया। भारत-मुक्ति ने सदैव 'नाटक' नामक निबंध में समाज-संस्कार और वेद-व्यवस्था को नाटक-रचन मुख्य उद्देश्यों में मिलाया है। या भरतनाटक-नाट्यमूर्ति—विद-व्यवस्था की सार्वभौम बनाया—के अनुकूल ही है। समाज-संस्कार और वेद-व्यवस्था का यह संवेदक एक नाटक द्वारा जिस सरलता से पहुँचाया जा सकता है उतना अन्य। साहित्यिक माध्यम द्वारा नहीं और नाटक चिन्तित ही नहीं अक्षिप्त बच की

## नाटककार मारतेंडु

प्रभावित कर सकता है, इत्यन्वय की इस प्रभावशालिता का अनुभव भी मारतेंडु जी ने किया। संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ नाटककार कालिदास की तरह मारतेंडु जी भी वह अच्छी तरह से समझते थे कि नाटक ही एक ऐसा साधन है जो निमित्त छवि रखने वाले व्यक्तियों का समालोचन से मनोरंजन कर सकता है—'मात्र निबद्धवर्णनम् बहुभावेऽसमाप्यनम्'।

देश और समाज के हित के अधिनिरूपित हिन्दी साहित्य के जन्म-निर्माण की भी समस्या थी। हिन्दी साहित्य इस समय रीतिरस की दृष्टियों में जकड़ा होने के कारण एकान्ती और निर्जीव था। उसमें और सब कुछ होत हुआ भी नई शैली के साहित्यिक नाटक नहीं थे और गद्य फोर्ट विस्मय का केन्द्र में फल कर तथा राजा अमरनाथ सिंह और शिव प्रसाद त्रिपाठी-हैद की लेखनी का अवलम्ब पाकर भी अभी तक अर्ध-निवृत्त और अस्थिर रहता था। नाटक-रचना द्वारा मारतेंडु ने अपनी प्यारी हिंदी के इस सब कमजोरी की एक साथ पूर्ति की। मात्र-साहित्य की नवीन परंपरा का प्रवर्तन का साथ ही साथ कथ-साहित्य की परंपरा का भी अनुसरण से अभाव प्रभाव वह बना और हिंदी नई नाक में बली। मूल के प्राक् यो ही बड़े पश्चात् हिंदी साहित्य पुन राष्ट्रीय चेतना का जीवन-स्वप्न से पुनर्जित और जाग्रत हो उठा। हिंदी के स्थान पर उन्हें जो राष्ट्रमन्यता के रूप में प्रतिष्ठित करने का जो पर्येय बन रहा था, मारतेंडु और उनके सहयोगियों के नाटकों के प्रसार से वह भी निपट हो गया और भारत की प्रकृत राष्ट्रमन्यता हिन्दी की विश्विनी प्रतिमा का प्ररूप पुन जनजीवन का अंग बन कर बन में समर्थ हुआ। इस प्रकार हम कहते हैं कि मारतेंडु की साहित्य-साधना का मूल में राष्ट्र का सर्वोद्योग की कामना निहित थी। अनेक उनके नाटकों से ही भाषा साहित्य समाज और राष्ट्र सब का बहुमुखी हित साधित हुआ।

(२)

मारतेंडु का नाट्यदर्श और उनके नीतिक तथा अनूदित नाटक

मारतेंडु एक नवीन नाट्यदर्श की प्रतिष्ठा भी करना चाहते थे जिसमें प्राचीन और नवीन अथवा पूर्वी और पश्चिमी नाट्यधर्म का समन्वय हो। उन्होंने अपने नाटक नामक निबन्ध में लिखा है—'प्राचीन काल के अग्निवादि का सर्वत्र

में तात्कालिक कवि श्रेणियों की और वर्तक-महात्मी की जिस प्रशंसा की थी वे लोग परमेश्वर ही नाटकवादि हस्तक्षेप रचना करके सामाजिक क्षेत्रों का चित्र-विमोचन कर पाए हैं। किंतु वर्तमान समय में इस काम के कवि तथा सामाजिक क्षेत्रों की इति उस काम की अपेक्षा अनन्यथा में विचलित हैं, इससे संघर्ष प्राचीन काल का अवलोकन करके नाटकवादि हस्तक्षेप सिखना बुद्धिसंगत नहीं माना जाता। जिस समय में जिस तरहका काम प्रवृत्त करें और केन्द्रीय रीति नीति का प्रभाव जिस रूप से फैलता रहे उस समय में उक्त हस्तक्षेप के अन्तर्धान की क्षमता और सामाजिक रीति-प्रवृत्ति इन दोनों बिन्दुओं की समीचीन समायोजन करके नाटकवादि हस्तक्षेप प्रयत्न करना योग्य है। नाटकवादि हस्तक्षेप प्रयत्न करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करे वह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो एक रीति का प्रवृत्ति आधुनिक सामाजिक लोगों की मनोवृत्ति होगी वह एक अन्तर्गत प्रवृत्ति होगी। नाटकवादि-हस्तक्षेप विरासत को केवल एक और पाठ्य के प्रति विरोध रूप से प्रति रचना करिए। (भारतन्तु नाटकवादी पृ. मा० पृ० ४२१ से अकरमहास की पृ. एक-दूस की०) इस अन्तराल में एक से पहले पान इस पान पर जाता है कि भारतन्तु नवीनता के विषये नवीन का आग्रह नहीं कर रहे हैं। उनकी रीति अपने समय के समाज और उपाधी बहली हुई विस्तृत इति पर भी। साथ ही वे अपने नाटकों में प्राचीन समस्त रीति को परित्याग करने के पक्ष में नहीं हैं। वह काम और, पाठ्य के प्रति विरोध रूप से प्रति रखते हुए एक मध्यम मार्ग की खोज में हैं। भारतीय साहित्य में पहले-पहले भारतन्तु के द्वारा ही भारतीय और यूरोपीय नाटकवादीयों के सम्मेलन का यह सफल उदाहरण हुआ था। इस समय का बंगला नाटक अपनी प्राचीन नाटक-परंपरा से संबंधित हो गया था और उसमें अमरीजी का अभावपूर्ण रूप कम रहा था।

इस नवीन नाटकवादी रचना के लिए भारतन्तु ने जिस कीर्तन का प्रयोग किया वह उक्त नाटकों के विषय में और रूप पर रीति हस्तक्षेप से प्रभावित बना है। उनके नाटक भारतीय और यौनिक दोनों प्रकार के हैं, जिन की सूची यह है —

## नाटककार मारतें

## अनुवाद

## विशेष

- मेरु  
मातिका सं० १९२५  
१ विद्यासुन्दर  
संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि और  
की 'वीर-रूपसिद्ध' के मातिका  
पर वेङ्गला में महापुत्र मतींद्र  
मोहन ठाकुर ने 'विद्यासुन्दर'  
नाटक की रचना की। यह  
उसी का अनुवाद है।

- १ रत्नावली मातिका सं० १९२५  
मूल ग्रंथ संस्कृत में है जिसका  
रचयिता संस्कृत के सुप्रसिद्ध  
महाकवि सम्राट् इष्य हैं। इस  
की प्रस्तावना तथा विवेचन  
नाम का अनुवाद मिश्रा है।  
मूल का रचना काल इसकी  
जातनी जाती है।

- १ पार्श्व विज्ञान नाटक (एककी) सं० १९२५  
इसका मूल हस्त 'प्रबोध-संग्रह-  
दय' नामक प्रसिद्ध नाटक के  
पार्श्व-विज्ञान नामक सूचीय  
अंक का वह अनुवाद है।  
मूल का रचना काल विज्ञान  
की ११ वीं शती है।

- ४ धर्मद्वय विज्ञान व्यायोग सं० १९२०  
मूल हस्त संस्कृत में है, जिस  
के रचयिता कांचन पंडित हैं।  
मूल का रचना-काल १९ वीं  
शती का पूर्वार्ध अथवा इससे  
पहले हो सकता है।

५ सुभाराक्षस

नाटक

सं १९३१ ३२ यह विद्यालय इला संस्कृत के  
संसार प्रसिद्ध नाटक 'सुभाराक्षस' का अनुबाद है।  
मूल का रचना-काल ईसवी  
छठी शताब्दी का लगभग है।

६ कर्नूर मेकरी

छात्र

सं १९३६

मूल नाटिका प्राकृत में है  
जिसके रचयिता महाकवि  
वेद क कवि राजशेखर हैं।  
इसका रचना-काल विष्णु की  
१० वीं शताब्दी है।

७ दुर्लभरत्न

नाटक

सं १९३७

यह अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ नाटक  
का रचित-विख्यात शेक्स-  
पियर के मर्केट गार्ड बेन्डिस  
का अनुबाद है।

८ प्रवास

नाटक

मौखिक

९ वैदिकी हिंसा

प्रहसन

सं १९३५

हिंसा न मनाति

सं १९३३

अप्राप्य

१० सत्य हरिश्चंद्र

नाटक

सं १९३३

११ प्रेमज्योतिषी

नाटिका

सं १९३१

१२ विस्तार विपरीतवर्तम् भाष्य

सं १९३३

अपूर्ण

१३ धौलनाथजी

नाटिका

सं १९३३

१४ भारत दुर्दशा

नाटक

सं १९३३

का कालपरिचय

१५ भारत जननी

मौखिक

सं १९३४

१६ मंतिदेवी

गीतिरूपक

सं १९३४

१७ अंधेर मगरी

प्रहसन

सं १९३५

१८ रावप्रिया

गीतिरूपक

सं १९४१

इसके अंतिम तीन हस्त का  
रावप्रिया का लेख है।

# माटकदार भारतेन्दु

महाप्रसिद्ध स्वर्गीय आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में भारतेन्दु के नाटकों की जो सूची दी है उसमें 'सत्य हरिश्चन्द्र' को अनुवाद प्रथम माना गया है और 'दुग्धमर्बुद' तथा 'भारत जननी' का उसमें उल्लेख ही नहीं है। शुक्लजी ने लिखा है— 'सत्य हरिश्चन्द्र' मौलिक समझा जाता है, पर हमने एक पुराना ईगला नाटक देखा है जिसका यह अनुवाद क्या जा सकता है।<sup>१</sup> किन्तु शुक्ल जी ने उस ईगला-नाटक के संबंध में कुछ नहीं लिखा है न तो उसका नाम दिया है और न उसके लेखक का। ऐसी स्थिति में शुक्ल जी के व्यक्तित्व की पुरस्ता स्वीकार करते हुए भी जब तक वह ईगला नाटक प्रकाश में नहीं आता, हम सहसा इसके सब प्रतिपाद अनुरोधित मान करने के पक्ष में नहीं। कारण 'सत्य हरिश्चन्द्र' के कुछ दृश्य और दृश्यांश तो सर्वथा भारतेन्दु जी की मौलिक हस्ति हैं। उनको किसी अन्य लेखक का अनुवाद क्या छात्रानुवाद भी नहीं माना जा सकता। दूसरी बात यह भी है कि भारतेन्दु न अपने सब अनुवाद प्रबंधों में मूल हस्ति का विवरण दिया है, इसी एक नाटक में उसे छिपा रखने की प्रवृत्ति। उसमें क्यों आ जाती? नि संदेह उन्होंने 'सत्य हरिश्चन्द्र' के उल्लेख में आज सेमीटार इत संस्कृत 'बेह बीछिक' का उल्लेख किया है जिससे उन्हें प्रेरणा मिली। इस संबंध में ब्रजब्रह्मस जी का कबन महत्त्वपूर्ण है— 'संस्कृत साहित्य में आर्य सेमीटार का 'बेह बीछिक' और रामचंद्र इत 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' नाम के दो हफ्त मिलते हैं जो राजा हरिश्चंद्र की आख्यायिका केर निर्मित हुए हैं। बर्यापि भारतेन्दु जी का 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक इन दोनों में से किसीका पूरा अनुवाद नहीं है, पर प्रथम का कुछ भाग इस में अनुरोधित करके लिखा गया है इन सभी नाटकों का अन्धकार एक प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान है और उसमें कुछ हेर फेर का सभी नाटकों की रचना हुई है।<sup>२</sup> यह संभव है कि जिस ईगला नाटक को शुक्ल जी ने देखा था उसके लेखक को भी सेमीटार इत 'बेह बीछिक' से प्रेरणा मिली हो। इसीलिए उसमें और भारतेन्दु इत 'सत्य हरिश्चंद्र' में शुक्ल जी को साम्य दिखाई पड़ा। तत्पश्चात् यह कि उस अज्ञात ईगला नाटक को महत्त्व इससे पहले इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि भारतेन्दु जी ने 'बेह बीछिक' का तो उल्लेख किया है, पर किसी ईगला नाटक का नहीं। 'भारत जननी' के संबंध में शुक्ल जी

१—दे० रा० च० शु० इत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पृ० ५५

२—दे० ब्रजब्रह्मस द्वारा सम्पादित 'भारतेन्दु नाटकशाली' मुद्रिका पृ० १८

लिखते हैं—“कहते हैं कि ‘भारत-जननी’ उनके एक मित्र का दिया हुआ वंश साया में विकसित ‘भारतमाता’ का अनुवाद था जिसे उन्होंने मुबारते मुबारत साप फिर से लिख बाँटा।” इसीलिए छद्म जी ने उसे भारतेंदुजी के मौखिक अववा अनुरित मिस्त्री जी प्रधर के नाटकों में स्थान नहीं दिया। ‘भारत जननी’ के विषय में भी बजरामरास जी के विचार उद्धृत करने का धोम में संभव नहीं कर पाता। उन्होंने लिखा है—“यह सफ बैंगम साया की ‘भारतमाता’ के आधार पर लिखा गया है। यह सन् १८७७ ई० के सितम्बर मास की ‘हरिश्चन्द्र पत्रिका’ की संख्या में प्रकाशित हुआ था। सन् १८७८ ई० के ‘वर्तमान मुद्रा’ में यह विज्ञापन निकलना था जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि यह भारतेंदु जी के किसी मित्र की कृति है पर उन्होंने इसे संशोधित कर प्रकाशित किया था। इनके किसी मित्र ने इन्हीं की देखा-बेखा बैंगम की ‘भारतमाता’ का किसी प्रकार द्वितीय अनुवाद कर बाँटा होगा और मित्र की इच्छा पूरी करने के लिए भारतेंदु जी ने इसमें पर्याप्त दृष्ट तथा संशोधन कर इसे प्रकाशित कर दिया होगा। यदि इनके मित्र साहित्यिक दृष्ट तो जनक नाम व्यक्त न रह जाता और यदि ‘भारत जननी’ उन मित्र की संपूर्ण कृति होती तब भी जनक नाम न लिखा रहता। वास्तव में साहित्यिक क्षेत्र में आन का जनक यह प्रथम प्रयास था और जब उन्होंने इसमें आन को इतना असफल देखा तब अन्य नाम तक देना अनुचित समझा। भारतेंदु जी ने दूसरी ओर अपनी सदा वधारता के कारण यह बात लिखा न रही। स्वतः मित्र के अनुरोध के कारण ही जनक नाम नहीं दिया गया नहीं तो क्या वे अन्य मित्र का नाम तक न जानते रहे होंगे। तत्पर्य यह कि नाममात्र को छुपरे की बात हुए भी ‘भारत-जननी’ भारतेंदु की है।”<sup>१</sup> जब सब छद्म जी भी यह मानते हैं कि भारतेंदु जी ने ‘भारत-जननी’ को मुबारते मुबारते सभी फिर से लिख बाँटा तो मुझे भी यह प्रामाण्य देने में कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती कि ‘भारत-जननी’ भारतेंदु की ही है। इसीलिए मैंने भी उसे एक मौखिक प्रेष माना है। ‘वृत्तम बन्धु’ के संबंध में छद्म जी मौन हैं। क्योंकि इसके भी भारतेंदु द्वारा अनुरित दाय में छद्म जी का संबंध है। संदिग्ध का कारण यह दिखती है, जो इसके प्रथम दृष्ट के साथ सभी की जब यह अग्रह छु सं १९१७ की ‘हरिश्चन्द्र पत्रिका’ और ‘मोहन

१ दे० पृ० ६७ इत्यं हि० सा ६ पृ० ५७।

, २ द म र० वा इत्यं वा० या भूमिका पृ १४-१५।

# नाटककार भारतेंदु

देशिका' में प्रकाशित हुआ था। निम्नो इस प्रकार की— निजंभु बा० बाबेयर प्रसाद की ए की सहायता से और बैंगला पुस्तक 'सुरस्ता' की छाया से हरिचन्द्र न सिखा । इस कारण यह भी हो सकता है कि यह अनुवाद अपूर्ण रह गया था जिस जगह पर पर० रामसंकर व्यास तथा बाबू रामचन्द्रदास ने पूरा किया। इन कारणों से इस रचना को शुक्ल जी के अतिरिक्त अन्य लोग भी भारतेंदु की असंक्षिप्त रचना नहीं मानते होंगे जिसका प्रतिवाद करते हुए बा० प्रवरदास जी न सिखा है— 'यह कबन कि यह अनुवाद भारतेंदु जी का न हो कर बा० बाबेयर प्रसाद का है। प्रम माय है, क्योंकि उक्त सज्जन ने जो परसों के अच्छे ज्ञाता थे इसका अनुवाद 'बनिस क सीदागर' नाम से किया था। वह अनुवाद काफी परिधि में छाया था। भारतेंदु जी ने जब इसका करने नाटक निबंध में उल्लेख किया है ।' १ 'सेक्सपियर न इस नाटक में मैत्री के जिस उदात्त आदर्श की अवतारणा की है वह भारतेंदु जी की मित्र-वस्तुता से पूर्णतया मेल खाता है। इसीलिए भारतेंदु इस नाटक के प्रति अनुरक्त हुए होंगे।

अनुवाद के लिए नाटक-लेखकों के चुनाव में भी भारतेंदु जी न गवील नाट्या-दर्श की स्वाभ्यास का शक्य रखा है। जिन संस्कृत नाटकों का उन्होंने अनुवाद किया है, वे संस्कृत नाट्य-साहित्य के इतिहास के विभिन्न युगों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। संस्कृत के सर्वप्रसिद्ध नाटक कश्मिरास की सङ्कृतता का अनुवाद हो ही चुका था। 'रत्नावली' की मूिका में भारतेंदु जी न लिखा है— 'सङ्कृतता के सिवाय और सब नाटकों में 'रत्नावली नाटिका' बहुत अच्छी और पक्कावाले को आनंद देनेवाली है, इस हेतु मैं नैन पक्षे इसी नाटिका का चर्कुमा किया है और जो ईबरेष्का अनुक्रम है और आप गुणवाहकों की अनुग्रह रहि है ता पीर पीरे कुछ नाटकों का तर्कुमा कर प्रकाशित हो जायगा ।' निःसंशय रत्नावली का स्वातंत्र्य संस्कृत-साहित्य में बहुत उचा माना गया है, वह संस्कृत में अरबी कोटि की प्रथम कृतिमें में है। 'रत्नावली' और 'सुप्रसन्न' संस्कृत नाटक के अनुवादक की रचनाएँ हैं। 'सुप्रसन्न' का रचनाकाल अनुमानतः इमा की छठी सती है। उसके रचयिता निराग्रदास दधनशास्त्र न्याय ज्योतिष, राजनीति मिश्रण कीरित्य अर्थात् तथा सुक्रीति के प्रधान संकेत थे। उनका यह अनापारण पाणिन्य उनकी



रचना में सफ़लता से प्रतिफलित हुआ है। 'सुश्रावस' की प्रसिद्धि विदेशों में बाहुनग के ही समान है। निरुपमनाथ का 'सुश्रावस' संस्कृत नाटकों में अपनी महत्ता तथा गौरव में अद्वितीय है। इसका विषय राजनीति या कृत्रीति है। यह इतनी पेचीली है जितनी मानवबुद्धि कल्पना कर सकती है।<sup>१</sup> इसकी शैली रत्नाकर<sup>२</sup> और 'बाहुनग' की तरह बोधक और सुकुमार नहीं अपितु बोध ठग और पीछे से रह है। 'कर्पूर मेकरी' भी अनेक दृष्टियों से विशिष्ट इति है। यह अपने को बाल्मीकि मरुमणि और मनुमठ का अवतार मानने वाले राजकेशव की इति है।<sup>३</sup> इनका समस्त नयम् का अन्त तथा रसम् धृती का पूर्वाह्न माना जाता है, जो संस्कृत नाटक के सम्मुख और हास का संक्षिप्त बह्म का सकता है। 'कर्पूर मेकरी' एक छटक है। प्राकृत नाट्य में किसी पर नाटिका ही जिसमें प्रवेशक और निष्क्रमक न हो छटक कहलाती है। छटकों में 'कर्पूर मेकरी' सर्वोपेक्ष है। 'चर्नक विजय' काव्यनायक का अनावेग है जिसकी रचना १०वीं-११ वीं सदी में हुई थी जो संस्कृत नाटक का हास-व्यंग्य है। अनावेग की-पात्र रहित एककोई रूपक होता है, जिसमें एक ही प्लॉट की कथा में कुछ का विवर्तन रहता है। 'चर्नक विजय' की कथा महाभारत के विराट पर्व से ली गई है और इसमें चरण का सारथी बनावर अतुल द्वारा राजा विराट की गायों का कीरों के पंख से सुडाने का वर्णन है। छिक बड़ी कथानक केन्द्र कुछ पूर्व प्रकाशन के में संस्कृत में 'पार्श्व पराक्रम' नामक एक सुन्दर आवागेय सिखा था जो बहुत लोकप्रिय हुआ था। 'पार्श्व-विजय' का नाम सिध हल 'प्रबोध-चरित' के तीसरे अंक का अनुवाद है। अनुवाद इतना सुन्दर हुआ है कि वह अपने में पूर्व एक स्वतंत्र एककोई नाटक प्रतीत होता है। हल सिध का 'प्रबोध-चरित' संस्कृत में प्रतीक नाटकों की परम्परा का प्रवर्तक है। बीहकाल में भी वह प्रतीक नाटकों की परम्परा विद्यमान थी किंतु वह आलोचन में दूर गई थी जिसको हल सिध से पुनर्जीवित किया। प्रतीक नाटकों में पात्र अमूर्त पदार्थों के प्रतीक होते हैं उन में छाति बदला भद्रा अधिक आदि सामयिक इतिमों और भावनाओं का नाटकीय पात्र बना दिया जाता है। हल सिध का वह नाटक प्राचीन हिंदी कवियों में भी

१ कलकत्ता संस्कृत-ग्रन्थालय 'से' सा ६-४ १५।

२. बभ्रूव बम्भीक भव; बबि पुरा तत प्रवेश मुनि भगुनेष्ट्याम्  
स्वित पुमनो भवभूति रेशवा स वतते यमप्रति राजकेशवः ॥



जो एकदम की पाप रंगमंच पर कभी बहस नहीं करते हैं, तो केवल निम्न राजनी-  
तिज्ञों के हाथ की कठपुतली बन कर। इन अनुचित नाटकों से जीवन के विविध  
स्वरूपों के प्रति भारतेंदु के अनुराग और व्यापक रुचि का पता चलता है। दम्भित  
प्रेमाश्रयणों से लगाकर राजनीतिप्रधान ऐतिहासिक और धार्मिक सभी प्रकार के  
नाटकों पर उनका समान अनुराग रहा है। उनके सर्वप्रथम रस शृंगार और वीर हैं।  
इन नाटकों में कल्पित धीरोक्ता धीरवृत्ति और धीरवृत्त सभी प्रकार के  
पात्र हैं परन्तु भारतेंदु की का प्रभावशाली धीरोक्ता और धीरवृत्ति पर ही विशेष  
अनुराग व्यक्त होता है। इनके की पाप प्रभाव सभी स्तरों पर फैले हैं। एक बात  
और ध्यान में रखनी चाहिए कि अनुवाद के लिए चुने गए इन नाटकों में कोई विषय  
नया नहीं है सब अविषय (मीथिक महापुरुष बालक बन्धुगुरु आदि) और  
विषयविषय (अनुप) ही हैं। अनुचित नाटकों में कथित भारतेंदु की इन प्रवृत्तियों  
का प्रतिफल हम उनके मौखिक नाटकों में देखेंगे।

इन नाटकों के अनुवाद में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है।  
पद्यांशों का अनुवाद काही बोली में किया गया है जिसके रूप की बचा आगे हमारी।  
पद्यांश का अनुवाद भारतेंदुजी ने ब्रजभाषा में किया है, जो उस समय तक कविता  
की सर्वमान्य भाषा थी। उनके अनुवाद के लिए अर्थात् प्रीति कवि-प्रतिभा  
अवशिष्ट है। सीमाश्रय से भारतेंदु का उल्लेखों की कविता-शक्ति प्राप्त थी। फल  
स्वरूप उनके द्वारा किए गए पद्यांशों के अनुवाद में मौखिक रचनाओं का सा आनंद  
आता है। संस्कृत रचनाओं के इतने सफल अनुवाद हिंदी में उदात्त रसमयसिद्ध  
और कविरत्न सत्यनाथनाथजी के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सका। पद्यांशों के  
अनुवाद में भी भारतेंदु जी सफल हैं। गद्य बाह्य तत्त्व निरूपण प्रधान हो और बाह्य  
वस्तु-वर्णनप्रधान उनके अनुवाद में भारतेंदु की कल्पना में कहीं भी कदा का दर्शन  
नहीं होता। अन्य बहुत से केंद्रों ने भी संस्कृत नाटकों के अनुवाद किए हैं।  
उनका गद्य अकेले ही भारतेंदु के गद्य से कुछ प्रीति हो पर पद्यानुवाद नीरस  
और पीछे हैं। हममें कोई संदेह नहीं कि भारतेंदु ने निरास राजस्थान और  
हृद की कोठि की कवि-प्रतिभा की तभी उनके सब अनुवादों में मूल की ही सरसता है।

सम्प्रसार के 'मंच आफ़ मेमिस' में मंच के अति उदात्त भाषा की अन्व  
भाषा की गई है, इसलिए भारतेंदु जी ने कुम्हारगुरु नाम से उनका हिंदी

## नाट्यकार मारतेंदु

अनुवाद किया। इसका दूसरा नाम उन्होंने 'बंगपुर का महाजन' भी रखा। इस अनुवाद की मुख्य विशेषता यह है कि इस में मारतेंदुन सेन्सपियर के नाटक के बचानक और वातावरण के भारतीयकरण की चेष्टा की है। इस में बेनिस् तो बंगपुर हो ही गया है नाटक के पात्रों के नामों का भारतीयकरण बड़ी सफलता से हुआ है। प्येनिस् को अनन्त बैसानिस् को बसन्त सादनाक को शीजान पोर्षिया को पुरभी जस्त्रिस् को यस्त्रेस् आदि कर दिया गया है। नामकरण-संस्कार द्वारा वातावरण को भारतीय बनान में अवश्य सहायता मिली है पर उस नाटक में निहित बाप के धार्मिक और सामाजिक जीवन की समस्याओं का ठीक भारतीय रूप उपस्थित नहीं किया जा सका है। मूल नाटक के ईसाई और यहूदियों के पारस्परिक द्वेष को अनुवाद में भावों और चिन्तनों के धार्मिक द्वेष और घृणा का रूप दिया गया है। यहूरी महाजन मारबाइ का बनिस् बना दिया गया है। पर यह रूपान्तर सब दृष्टियों से सज्ज है। हमारे देश में जैन धर्म की उदार भावधर्म का ही एक सुन्दर निरूपण माना है। भावों और चिन्तों में यहां सौदा और सौजन्य का ही नाम सदा रहा है। उनका बीच यूरोप के ईसाई और यहूदियों के पारस्परिक द्वेष और घृणा को पश्चिमी सभ्यता साहित्य और इतिहास के कर्मक हैं का आरोप बनी सारी ऐतिहासिक असंघर्ष है। पता नहीं किम ज्ञानवाणी के क्षेत्र में मारतेंदु ने यह भयानक भूल की। सेन्सपियर आदि वाप के साहित्यकारों ने यहूदियों का प्रति भयान साहित्य में जिन घृणा का प्रचार किया है, उसी का परिणाम वहाँ के इतिहास में समय समय पर ईसाइयों द्वारा यहूदियों पर किये गए अमानुषिक अत्याचारों के रूप में प्रकट हुआ है। मार्ब और जैनधर्म के बीच मेघ और घृणा के भाव को प्रभव बना समन्वयमूलक भारतीय साहित्य के लिए एक परिणामी दृष्टि है। यहूरी सायसाक बैसास नाम धारण करने से ही मारबाइ का महाजन नहीं बन सका। सायसाक अथवा शीसास में जिन लोक और धर्म-विरोधी अमानुषिक दृष्टियों की विधि की गई है वे मारबाइ के धर्मवीर बनिस् के धर्म और व्यवहार का अंग बनी नहीं रहें। मारबाइ बनिस् के बीच कोई सायसाक यदि हुआ हो तो इतिहास और साहित्य उस से परिचित नहीं पर उनमें मामासाइ अवश्य हुए हैं जिनका बाप इतिहास की निम्ति है। इसका धार्मिक सेन्सपियर के नाटक के अन्तर्गत यूरोप के समाज की जिन वैचारिक रूढ़ियों और अन्य रीति-नीतियों का वर्णन किया गया है, अनुवाद में भी उनका उसी रूप में

रख दिया गया है। इससे नाटक का बालावरण भारतीय नहीं बन गया है, और उस विधा में बिना यथा प्रयत्न अपूर्य ही रह गया है। इस अनुवाद की भाषा भी खड़ी खड़ी कुछ चिह्नित और अपरिमार्जित है। इन दोनों का कारण संभव है यह हो कि पूरा अनुवाद भारतेंदु जी में नहीं किया है।

इन दोनों के होत हुए भी अनुवाद की कुछ विशेषताएँ ज़रूरतनीय हैं। मूल नाटक के नाम 'मॉड आफ़ बैमिस्' से स्पष्ट है कि संसदपतिर सामन्तों के बर्तन को प्रमुखाता देता कहता है। पर भारतेंदु ने अनुवाद का दुर्लभ वाक्य 'माम्म' नाम इंग्लैण्ड के बर्तन को प्रधान बर्तन का उल्लेख उद्योग किया है। पुस्तक के आमुक्त-स्वरूप जो वो पद्य उन्हांव उद्धृत किये हैं, उनमें एन्टानिमा अथवा अनन्त के बर्तन के प्रति उन्नत अमरुण प्रकाश होता है —

धुर्धमा शुचिनो शूरा दानारहपाति दुर्धमा।  
मित्रार्थे त्यक्तसर्वस्वोः बन्धुस्त्वस्त्वुर्लभः।  
छुदा मिले तो मिले आशाना नहीं मिछता  
किन्नी का कोई नहीं दोस्त सब कहाते हैं।

भारतेंदु खरें जिस इन्-दुर्लभ मैमिस्के आदर्श के मूर्ति रूप में उसी की सम्या उन्होंने अनन्त के बर्तन में बली की। तात्पर्य यह कि खड़ी मूल नाटककार का हृदय दलनायक सामन्तों की ओर है वहां भारतेंदु वीरराज मायक के सब गुणों से चिह्नित नाम अनन्त का ही प्रमुख बना देते हैं। इस प्रकार वे खड़ी साहित्य और उसके मानों और आदर्शों को आत्मसाध करनेका ऐसा मार्ग निश्चित हुए दिखाई पड़ते हैं जो उसके मजबूती का सुर कर र और भारतीय साहित्यकारों के सर्वथा अनुकूल हो। आचार्य श्रीमन्मूर्ति शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि 'साहित्य के एक नवीन युग की आदि में प्रकाश के रूप में खड़े हा कर उन्होंने यह भी प्रदर्शित किया कि नए नए का बाहरी भाषों को इस प्रकार मिश्रण चाहिए कि वे मानें ही साहित्य के निकटतम अंग से कम। प्राचीन और नवीन का खड़ी सुंदर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विजय माधुर्य है। प्राचीन और नवीन के उस संधिजस में किसी भीमक कला का संचार अपेक्षित था वैसी ही छीतल कला के साथ भारतेंदु का खरब हुमा इसमें संकट नहीं।'"

नाटकप्रकार भारतेंदु

## मौलिक नाटक

कथावस्तु—उसका स्वरूप और भाषा

महर्षि भारत न नाटक की कथावस्तु के विषय और स्वरूप का विवेचन करते हुए लिखा है—

नानाभावोपसम्पद्यमानावस्थान्तरात्मकम् ।

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतस्मयादृतम् ॥<sup>१</sup>

न तद्विवर्तनं न तच्छिष्यं न सा विद्या न सा कला ।

न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यच्च हृदयते ॥<sup>२</sup>

जबान नाटक माना प्रकार के यानों और अनेक अवस्थाओं के विवरण से सम्पन्न लोककृत का अनुकरण है। कोई भी ऐसा कल सिख विद्या क्या योग अथवा कर्म नहीं है जो इस नाट्य में प्रशिक्षित न हो सक। तीनों स्वरूपों के सब प्रकार के मतों का अनुशीलन इसमें रहता है। अनेकव्यवस्थाएँ सर्वसम्पन्न नाट्य मानानुकीर्तनम्— मरत के इस कथन का तात्पर्य यह है कि नाटक का होम अनेक विधाओं व्यापक और नानाव्यवस्थित है, क्योंकि उसका विषय सीमित नहीं। विविधव्यवस्था प्रकृति के प्रभाव से जो अनेक प्रकार के लोकचरित्र और अनेक रस-मग्न संसृद्धत होते हैं, उन सबका प्रदर्शन नाटक में हो सकता है। वस्तुतः नाटक और उसका सम्पन्न इस दृष्टि के महानाटक और उसके अन्तर्गत और असीम संसारकपी महारंगमंच की पूर्ण प्रतिरूपी है। इसलिये संस्कृत नाट्यशास्त्र में इसके और उपर्युक्त के अनेक नेत्रों में कथावस्तु का चरित्र और राज जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से होता रहा है। भारतेंदु भारतीय नाटक की परंपरा उसके असीम स्वल्प और मर्म से पूरा परिचित थे। पादशास्त्र नाटकों का ज्ञान प्राप्त करने से उनकी दृष्टि व्यापक और असीम सुस्पष्ट हो गया था। उनमें अनेकपरम्परा जीवन का अनुशीलन और असीमव्यवस्था की सहाय दृष्टि भी यह उनके अनुवाद प्रयोगों की चला करते हुए लिखा या सुझा

१ दे० भा० मा० भा० १११९।

२ दे० भा० मा० १११४।

३ वही :—अनुपयादुसबमम लोकपरिनिर्माणार्थं हयत ।—आदिशाम ।

है। उन्हीं उसी ढंग और व्यापक सहजानुभूति का विकसित रूप हमें उनके मौखिक नाटकों में मिलता है।

### पुराण और इतिहास

अप्यात्म और प्रेम इतिहास और पुराण यम और राजनीति समाज और शासन की बहुमुखी दुरवस्था से सगा कर देती राज्यों की कुम्बवदना तक सबका विषय भरतेहु जी ने अपने नाटकों में किया है। 'सख इन्द्रचन्द्र' और 'सती प्रताप' पौराणिक नाटक हैं जिनमें अयोध्या के सखचरौ महाराजा इन्द्रचन्द्र और पतिव्रता-छिरोमणि देवी सावित्री के प्रकृत आत्म्यालों को नाटकीय रूप दिया गया है। सख और पतिव्रत दोनों ही भारत की ऐतिह्य और सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत सिद्धान्त हैं। सखपरम्परा के लिए यह केश सख प्रसिद्ध रहा है। पौराणिक काल को छोड़ दिया जाय तो भी ऐतिहासिक काल में अनेक विदेशी शक्तियों ने भारतीयों की स्वतन्त्रता की प्रशंसा की है। अपने समय में भारतीय जीवन में सती सख के अवयव का हाथ रख कर ही भरतेहु जी ने 'सख इन्द्रचन्द्र' नाटक की रचना की। यह सिखाते हैं—'इस भारतवर्ष में उत्तम और इन्हीं हम लोगों के पूर्व पुराण महाराज इन्द्रचन्द्र भी थे। यह समझकर इस नाटक के पानेवाक कुछ भी भयना करिन मुबारगे तो कवि का परिधम सुफल होय।' ('सख इन्द्रचन्द्र' नाटक का 'वक्कम') इसी प्रकार पतिव्रत का महत्व प्रतिपादन करने के लिए 'सती प्रताप' नाटक लिखा गया है। वास्तव में बचाभ्रम-व्यवस्था का विनाश महान सतीत्व की नींव पर ही टिका है। वही भारतीय संस्कृति की आधार-सिमा है।<sup>१</sup> भारतीय संस्कृति मुखमि अटकमणों की बचरता और बर्मेन्माद का सफल प्रतिरोध कर सकी थी जब पारमजय संस्कृति की ओर से गया संघट समुग्रित का। यह संघट दिन प्रतिदिन प्रयत्न होता जाता था। यह सिखा या बुझा है कि ईगरेजी शिक्षा का प्रभाव से माय अपने यम, साक्षिय और संस्कृति से विमुक्त होत आ रहे थे और इस परिस्थिति से पूरा आन उठाने का उद्योग ईसाई मिशनरी कर रहे थे। ये मिशनरी हिंदू यम की तीन आत्मभना करक ईगरेजी के नव शिक्षितों को ईसाई यम में रीतित करनेका प्रयत्न करत थे और दूसरी

१—सतीत्व मूल सत्। छुकि सन्धः। मृगला शाखा।

पुराणमुद्रयम्। ईश्वर्य पदम्।—कौमीमाता।

## भारतवर्ष भारतेंदु

जोत पुष्प इत्युच्य करक हीन-पुत्रियों को मान धर्म में लाते थे। ब्राह्मणसमाज और अन्यसमाज इस संकट के निवारण के लिए प्रयत्नशील थे। भारतेंदुजी ने अपने साहित्य के द्वारा बड़ी काम किया। उन्होंने कहा कि समाज में जब सांस्कृतिक आदर्शों की पुनःप्रतिष्ठा और वैदिक पुनरुत्थान की आवश्यकता पड़ती है। अतः उन्होंने प्रसार से ही यह महाम्पायि—संस्थापना—कर की जा सकती है। अतः उन्होंने हरिश्चन्द्र और सावित्री के आदर्शों का अनुकरण किया। 'हरिश्चन्द्र' नाटक में दिखाया गया है कि 'सम्पन्न' पर चलने वाले कितना बड़ा उग्रते हैं।<sup>१</sup> हरिश्चन्द्र की रचना में भारतेंदु जन धर्म और सम्पन्नता तथा संस्कृति से पराश्रुत होनेवाली जनता के लिए एक आदर्श निमाण कर रहे और सावित्री की शक्ति में भारतीय गौरी के मैफमय जागरण के उन्मुख वातावरण तैयार कर रहे थे।

भारतीय गौरी का यह आदर्श एकदमी नहीं था पाठित की शक्ति का विद्यमान आत्म-व्यक्ति पत्र पर कर्मण्य जीवन के अनेक क्षेत्रों और स्थानों में होता था। सज्जातीय भारतीय गृहस्थिनी समय पाने पर करमा काली और दुष्टमिनी दुष्ट का रूप भी धारण करती थी और सेवा दान तथा किया दोनों ही क्षेत्रों में उन्नत सहाय्य निधन हुआ था बड़ी प्रशंसित करने के लिए 'नीलकण्ठी' नामक नाटक लिखा गया है। इस नाटक में पंचाल के एक हिंदू राजा स्वदेव पर मुसलमानों के आक्रमण की कथा है, जिसका आधार ऐतिहासिक कहा गया है। अश्वत्थ शरीर नामक एक मुसलमान अमीर पंचाल-नरेश स्वदेव पर बुराई करता है। पराजित होने पर राजा में साते समस्त घोड़े से उनका शिविर पर छाया मार कर उन्हें बन्दी बनाता है। बन्दी राजा यवनों से लड़ते हुए मार जाते हैं। राजकुमार सोमदेव और राजपूत सैनिक सम्मुख युद्ध में अश्वत्थ शरीर को इस विनाशघात का दंड देने का प्रस्ताव करते हैं। पर राजा नीलकण्ठी उसे अस्वीकार करती है और स्वयं गविवध का रूप धारण कर अमीर के शिविर में जाती है और अपने हाथों उस क्षमाशूर यवन का वध करती है। अपने पति-वधक से इस प्रकार प्रतिशोध ले कर राजा सती होने का उपक्रम करती है। किसी इतिहास-संघ से भारतेंदु जी ने इस नाटक का कथानक लिया था इसका कुछ पता नहीं चलता। संदर्भ में उन्होंने 'हिंदी अंगरेजी काव्य की कुछ पंथिया उद्धृत' की हैं लोगों का अनुमान है

<sup>१</sup>—द 'सम्पन्न हरिश्चन्द्र' नाटक का सम्पन्न।



कल्पित इस शब्द के कथानक का आधार बड़ी अंगरेजी काव्य है। पर वह अंगरेजी काव्य भी इन पैरियों के अनिरीत अधिक नहीं मिलता और न बड़ी शाय है कि उसका केवल बीग वा अत्यंत उर्ध्व मूक बात का भी कुछ अनुमान नहीं हो पाता। मुसमसालों के आक्रमण-क्रम में स्थान स्थान पर भारतीय सीमा का जो असाधारण विस्फोट हुआ था उसकी कथा का अपने अंतर्गत में छिपाये न मात्रम किन्तु हल्दीपाटियों और घमापोतियों हमारे देश के असंख्य गाँवों अरण्यवनों और उपत्यकाओं में अज्ञानावरुध में प्रसृत हैं। वे सब कथानक हीनकाय तक भारतीय जीवन के निर्दोषता रहने के कारण इतिहास में स्थान नहीं पा सके केवल कमलुतियों कथा लोकगीतों में अक्सर उनमें से कुछ कथानकों की स्मृति जीवित है। समग्र है यह कथानक भारतभू की कथा अंग्रेजी की उन पैरियों के कवि को किसी कमलुति से प्राप्त हुआ था जिसने उन्होंने अस्मितात्मक रूप दिया। कुछ भी हो सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बड़ी सचक प्रेरणा से भारतभू की न इस ऐतिहासिक गतिविध की रचना की है। सातक अंग्रेजों की क्लियों की सम्पत्तावरुध इस कर उन्होंने अपने देश की सीधी-सादी क्लियों की हीनकायता का स्मरण और अनुभव किया। फिर उन्होंने भारतीय नारी के पूर्ण गौरव का स्मरण करत हुए किया—'जाय अन्याय को विनाश है कि हमारे महा सत्ता स्वीकृत होती अवस्था में भी। इस विनाश के प्रम का रूढ़ करने ही क इस यह प्रम विरहित होकर आप लोगों के कोमल कर-कर्मों में समर्पित होता है।' वस्तुतः हमारे साहित्य में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का जो आन्धोमुख प्रसार के मतकों में वरम कल्पों को प्राप्त हुआ उसका अंगणस भारतभू की इन पौराणिक क्लियों द्वारा हुआ था।

### धर्म और समाज

भारतभू की जो अपने देश के विगत ऐश्वर्य पर विजिता गरी का उसकी वर्तमान अधागति पर उगनी ही वेदना और आसक्ति थी। वही समाज और राजनीति दोनों क्षेत्रों में राष्ट्र का पतन वरम सीमा को पहुँचा हुआ था। धर्म और समाज की जो अराजक अवस्था मुसलमानों के आने के पूर्व भी जिसका कारण देश निर्बल और मुसलमानों से पराजित हुआ था उसके निवारण का कुछ प्रयत्न मछि-आन्दोलन द्वारा हुआ था। पर अस्तान्तर में मछि-आन्दोलन की वह शक्ति भी खीन हो गई थी और उसका स्वरूप चारोंह से बाधक हो गया था। मछि के

## नाटककार मारतेंदु

केन्द्र जो जातीय-जीवन में कृषि-संसार के लिए निर्मित हुए थे अब बुराबार और  
जमाबार के बड़े बन गए थे। कश्मियों और कुरीशियों से प्रस्तुत बुद्धक समाज में इस परि-  
स्थिति के प्रतिष्ठार की भावना की संभावना ही कैसे होती वह दिन दिन और  
गहरे पठन के पक्ष में गिरता जा रहा था। ईंग्लैंड की राजनीति ने इन समस्याओं  
को और बढ़ावा दिया था और राष्ट्र-धर्म में मर्याद वरिष्ठता मुख्यमरी  
महम्मदी टैक्स, आर्थिक शोषण आदि अनेक मनीष व्याभियाँ प्रयुक्त राजरोस लग  
गए थे। नीतर और बाहर सब जगह से बन्नी अनेक समस्याओं से छटपटाते हुए  
मृतप्राय देश की दुर्दशा देखकर मारतेंदु का हृदय खूबी बेरना से भर गया था।  
इन पक्षों ही सिद्ध होते हैं कि देश की यह दुरवस्था ही मारतेंदु के राष्ट्रिय की  
प्रेरक शक्ति है। देश के आत्मसम्मान को जगाने के लिए ही उन्होंने उसके  
प्राचीन गौरव का ध्वज और उज्ज्वालों का जगदीर्ण किया। पर वह आशा बुरासा  
थी इसका अनुभव जी मारतेंदु जी को हुआ होगा। कारण, राष्ट्र के असीमृत प्राणों  
में वे गौरव-गान मान चेतना का संसार करने को पर्याप्त नहीं थे। वरन् उन्हें  
खूबी निराशा का अनुभव हुआ और उस निराशापूर्ण बेरना की अभिव्यक्ति 'मारत  
दुर्दशा' और 'मारतजननी' नाटकों में हुई।

'मारतदुर्दशा' छः छोटे छोटे अंकोंवाला एक अत्यन्त प्रभावशाली पुस्तकान्त  
नाटक है। इसके पहले अंक में एक योगी आता है, जो एक अत्यन्त मार्मिक गीत  
मारत के प्राचीन उत्कर्ष और वर्तमान अव-पतन का वर्णन करता हुआ  
रहा है —

रोजहु सय मिलि के, भावहु मारत माई।  
हा हा ! मारत दुर्दशा न देखी जाई ॥

दूसरे अंक में जीर्ण-जीर्ण बलों में शिवाय की गुंति बना हुआ मारत स्वयं आता है,  
और अपने अतीत की स्मृति में मौसु बहाता है। इसी बीच नेत्रण्य से 'मारतदुर्दश'  
का वर्णन सुन कर वह गुच्छित होकर गिर पड़ता है। इस स्थिति में निर्मजता और  
आशा कायर उसे अन्तर्मुख देती हैं। तीसरे अंक में 'मारतदुर्दश' के सिद्धि का  
दब है। 'मारतदुर्दश' कीम है, यह समझने में किसी को किसी प्रकार का प्रम  
नहीं हो सकता। उसका केव आधा हिस्तानी और आधा मुसलमानी है, और  
उससे हम-बल से मारत पर आक्रमण किया है। यह कहता है —

उपजा ईदवर कोप से, ओ माया भारत बीच ।  
छर सार सब हिंदू कैं में, तो उत्तम नहीं बीच ॥

इस प्रकार भारत के सर्वनाश का इद संकल्प करके वह अरबी विनाशकारी वाक्य का परिवर्तन देता है —

छाऊं भी छाऊं महींगी छाऊं, और बुछाऊं रोग ।  
पानी उछाऊ कर बरसाऊं छाऊं जग में सोग ॥  
फूट बैर भी कलह बुछाऊं, ब्याऊं सुस्ती जोर ।  
घर घर में भाऊस फैलाऊं, छाऊं बुक धनघोर ॥  
मरी बुछाऊं बेस उछाऊ, महींगा करके अन्न ।  
सब के ब्यर ठिकस लगाऊं, धन है मुसकये धन ॥  
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे एक रासस मानो जी ।

वास्तव में 'भारतवर्ष' की यह विनाशकारी वाक्यता कैपरेजों की सशक्त मीति और उसके कुपरिणामों की ही व्यावस्थित है। यह बात 'भारतवर्ष' के इस कवन से और भी स्पष्ट हो जाती है— "ह हा हा ! कुछ पड़े-सिन्हे मिला कर दस सुघरा चाहते हैं । ह हा हा हा ! एक बने से मात्र फोड़ेंगे । ऐसे माणों का दमन करदे को मैं त्रिके के हाकिमों को न हकूम दूंगा कि इनको बिलकामासी में पकड़ो और ऐस लोगों को हर तरह से काटिब करके जिनका जो बड़ा मरा मिला हो उसको उतना बड़ा मेकस और बिताव हो । है ! हमारी पाकिस्ती के सिद्ध बरोग करत ॥ मृग ! यह मोझा कर्मान्वित करक के लिए वह सत्तामास प्रीमशर को बुझाता है । सत्तामास प्रीमशर' प्रीमशर में भारत के सर्वनाश के लिए कब-कब के समय से जब तक किए हुए बगन कायों का गर्ब के साथ प्रीमशर करता है और कहता है कि वह मसिध में घराब के द्वारा बेस की बय प्रतिष्ठा को भी मटियामेट कर देगा —

पिसाबिगे हम लूच शराब । करीने सब का आम सराब ।

भारत के सर्वनाश का वाक्य जिस उच्छाद से चल रहा है, इसकी सूचना वह 'भारतवर्ष' को देता है । वह बताता है कि उसे इस कार्य में सबसे अधिक

## मातृकधर भारतेंदु

उदात्तता धर्म से मिली। धर्म के नाम पर मत-मतान्तरों की वृद्धि जाति-प्रथा नाम-वृद्धि, बहुविधा, विषय-विषय-विषय, समुद्र-यान-विषय जाति ने जाति की नीबनी-सक्ति को नष्ट कर दिया है। हिन्दू अनेक देवी-देवताओं और मृतप्रेतों की पूजा करते हैं, और सुभाषित तथा चौके-बूढ़ों को ही धर्म मानते हैं। वेदान्त के नाम पर वे निष्क्रिय स्नेहपूर्ण और अहिंसानी हो गए हैं, तथा संतोष की आड़ में आत्मही तथा उद्यमहीन बन बैठे हैं। अंगरेजी शासन के सम्पर्क से हममें अत्यन्त अदम्य और सिफारिश का व्यवसाय पैदा हो गया है, जिससे धर्म की सेवा ऐसी होगी कि ज्यों में जी न बची समुद्र के पार ही सरण मिली। हमारे पुत्र और पंड के बमोले से इस प्रकार भारत की सम्पत्ति शक्ति का दुगु सक्का धुलियात करके उसने अपने अतिवृद्धि अनादृष्टि काही की है कि हमें पता इत्यादि सिगारियों की सहायता से भारत की इति-सक्ति को नी छिन्न-भिन्न कर दिया है, नील ने नील बन कर संकटग्रस्त किया है। ऐश्वर्य अपना संपन्न शक्ति से पुनः उसके उत्थान की संभावना ही न रहे, इसलिये उसने फूट, बाह, कोम भय उपेक्षा कार्यप्रता, पक्षपात इत शोक, अधुमार्जन, निरक्षरता जाति एक इज्जत वृद्धि-प्रती को मेजरकर भारत की भाषा धर्म व्यवहार, बाल-बाल-बाल सब को काई की तरह फाड़ दिया है। अपने प्रचलन सेनापति से भारत के सर्वनाथ का यह समाचार पाकर भारत-दुर्दैव सुख और संतोष की लौ लगे है—“अब उसके बड़ी सरण न मिलेगी। धर्म बल और विषय दोनों का। अब इसके बल कुरंग।

चौथे मंत्र में एक अंग्रेजी ईश से सखे हुए हमारे में भारत-दुर्दैव बैठ हुआ दिखाई पड़ता है। उसी समय रोग गाता हुआ प्रवेश करता है :—

मृत्यु कर्मक मिटावत मैं ही मो सम और न जान ।  
परम पिता हम ही वैधान के अचारन के मान ॥

इस प्रकार आत्मप्रपंचा के बहाने जीवों और हकीमों का उपहास करता हुआ वह अपने प्रपंच का परिचय देता है। वह बताता है कि ‘नगर, साय मृत प्रेत जमा उद्यम देवी-देवता सब उसी के नामान्तर हैं, और उसी की बड़ी-मृत मोसा दरमनिये समाने पंडित सिद्ध जाति लोगों को उनके और अपनी नीबिध बजाते हैं। म्युनिशिपैलिटी के रोग-निवारण के अफसरे प्रयत्नों की हैं ही सहायता हुआ

बढ़ जाता है— 'ह ह ! कुंगी की कमेरी सफ़ाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क बीड़ी होती उतने ही हम भी 'जब बस सुरसा बदन बढ़ावा तासु बुधुन कपि रूप दिखावा' ।' भारतवर्ष की भाषा से भारत का भारत के लिए यह निस्सोटक हैवा 'बेन्गु अराफेन्सी आदि अंगरेजों के साथ आई हुई गई आदिमियों को आक्रमण करने की भाषा बता है जिनका हिन्दुओं ने कभी नाम भी नहीं सुना । उसके सफ़ाई का पूर्व निश्वास है क्योंकि यह जानता है कि पन्वतरि विवादास सुभुत-नामक-वरक का युग तो बीत ही गया है और उद्भरि बैबों के हाथों में बैठ-बिख भी सर गई है । दूसरी ओर मुख्य जनता डाक्टरों के बताए हुए टीका आदि रोग-निवारण के उपायों की उपेक्षा करती है । रोग के बड़े जाने पर आत्मस्य जाता है, उसे भी भारतवर्ष अपनी जोगिनी से मारतवर्ष को अपने बच में करने की भाषा बता है । तत्पश्चात् मरिच जाती है, जो अपने उद्भय और प्रमाण का बगैल कुछ मदिरासेवी शिष्टियों की दार्शनिक और साहित्यिक धारणाओं में और कुछ अधिशित भिन्नकों की प्रमाण-कैली में करती है । मदिरा के उद्भयों में बड़ा एक ओर पिबकनै पर कठोर धारण है, तो दूसरी ओर अंगरेजी शासन की मातृ-वृत्त सम्बन्धी नीति की बोझ भी बोझ ही गई है :—

सरकारहि मजूर जो मेरो होत उपाय ।  
तो सब सीं बढ़ि मय पै बेती कर बैठाव ।  
हम ही को या राज की परम निस्तानी जान ।  
कीर्ति खंम सी जग गाढ़ी, जब कीं धिर ससि मान ।  
राजमहल के बिह महि, मिलिहि जग हत कोय ।  
तबहु कीतल दुक बहु मिलिहि कीरति होय ।

वस्तुतः भारतवर्ष अंगरेजी सरकार की दृष्टी नीति का अन्तर्गत करने का कोई भी अवसर नहीं प्रकट है । उनकी पैनी दृष्टि से अंगरेजों की कपट-नीति का कोई भी प्रकट छिप नहीं का भले ही वे भारत के शिष्टों से बचने के लिए कभी कभी महारानी विक्टोरिया के नाम की दुहाई भी दे दें । मदिरा तथा तम के पूर्व के सब बकाओं के कथन में यह निष्कर्ष पाई जाती है । मदिरा को हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुओं से समान की भाषा मिलती है । उसके बड़े जाने पर अन्तर्गत जाता है,

त्रिसुख अन्ध सृष्टि-संहार-कारक समोशुण स हुआ है। अंधकार भक्षण का ही दूसरा नाम है। भारतपूर्वक उस भारत की अवशिष्ट विवेक-बुद्धि का भी गूँथ करन की आज्ञा देता है। समक बक जान पा बैठाभिषेक का गान और गीत के साथ बीसा भव समाप्त होता है। पाँचवें अंक में एक पुस्तकालय का वर्णन है, जिसमें सात सभ्यों की समिति में 'भारतपूर्वक' का आक्रमण करने के उपायों पर विचार-विमर्श हो रहा है। समिति में समाधि के अतिरिक्त एक बंगाली एक महाराष्ट्र, दो बड़ी एक बड़ी तथा एक संगठक हैं। समिति उस समय के सिधित भारत की प्रति निवि है, जिसके विचारों में प्रत्येक प्रान्त के अंतर्गामी सिधितों की अन्तर्गामी राजनीतिक योजना का उपहास किया गया है।

यह भी समा के सुधार के सम्बन्ध में सब के मत निवि निवि हैं। दोनों बड़ी सज्जन विवाद में गुल्ल बर भाग नहीं लेते हैं, क्योंकि उन्हें हाकिमों की व्यस्यता का डर है। महाराष्ट्र सज्जन सार्वजनिक समारोहों की स्थापना करने की मितें छांटने तथा स्वदेशी के व्यवहार का आन्दोलन चलाने की सलाह देते हैं। सम्पादक जी की राय है एहकेशन की एक छात्र कमेटी की फीज, मरचाटों के शक और मीनों के गोले मार मार कर 'भारतपूर्वक' के आक्रमण को विफल किया जाय। व सम्पादक महोदय उस बग के प्रतिनिधि हैं, जो आगे चलकर विधानसभाी सुधारक दल में परिणत हो गया। कवि जी की राय है— 'अमुक किनारे जगात छोड़ी कर ही जगै कुछ मोय बूझी पवन जगात के पीछे लड़ रहें' जब फीज इस पार उतरने लग जगात के बाहर हाथ निवृत्त कर रेंगती चलकर कर बड़े "सुए इधर न आइयो इधर जगाने हैं।" वे कवि जी उस समय की हनन प्रतिधर्षण काव्य-प्रत्यय के प्रतिनिधि हैं। समिति के सब से सक्रिय सदस्य बम्परी महानुभाव हैं। उनका उबर मस्तिष्क से बहोदार की नई नई योजनाएँ प्रसृत होती हैं। व सबसे पहले अलखारों में छोटेसुल मधान की सलाह देते हैं। यदि उससे काम न बन तो 'भारत-उदर' अन्धक बेवला मातृक में बसाए गए भाव का अवलम्बन करने को कहते हैं, जिसमें मितल किछ स्वेच मरर पाव बन और पियरिनाम अस्मय से अँधेराओं की ओर में बून और पानी हासन का अमोघ उपाय बताया गया है। अन्ध विज समय में सब सक्षम इस प्रकार तर्क-वितर्क कर रहे हात हैं, जहाँ समय पुष्पि क बेस न जिसकायछटी आ उगीरित होती है, और कहीं

है कि 'इंग्लिश पात्रिशी नामक ऐक्ट की हाकिमकेन्द्र नामक दफ्तर में सब के सब कमी किए गए। इस प्रकार पीनबी अंक समाप्त होता है। छठे अंक में एक दम क मध्य भाग में 'भारत' एक दृष्टि के पीछे अन्ततः पड़ा दिखाई पड़ता है। 'भारत मन्त्र' आता है और अनेक प्रयोग-नामों और उत्साहपूर्ण उद्बोधनों से उसे जगमगा कर जाता है। पर जब भारत किसी प्रकार अपनी मोह-निद्रा का परिचय नहीं करता तो वह निराश होकर आत्मसमर्पण कर लेता है।

जिस प्रकार धौलज मिश्र ने 'प्रयोग कन्वेंशन' नाटक द्वारा आध्यात्मिक प्रतीक नाटकों की परम्परा बनाई उसी प्रकार 'भारतदुर्घटा' नाटक से राजनीतिक प्रतीक नाटकों की परम्परा बनी। इस दृष्टि से इस नाटक का महत्त्व बहुत अधिक है। विप्लव और उद्देश की दृष्टि से 'भारतदुर्घटा' और 'भारतजगमगी' नाटकों का आकार एक है, और दोनों में ही प्रतीक सिद्धि को महत्त्व दिया गया है।

'भारतजगमगी' नाटक की प्रस्तावना में स्पष्टाचार कहता है कि भारतभूमि और भारत-संस्थान को दुर्घटा का श्युम्भन करना ही इस नाटक की इच्छितता है। वह एक संगीत प्रधान एकांकी रूप—औपेय—है। एक दूरे ब्रह्मस्य के सहज में सन्निवेशा भारत जगमगी निहित हो बैठी है, भारत संस्थान हफर उफर हो रहा है। 'भारतसरस्वती' 'भारतदुग्ध' और 'भारतसर्पनी' कमल आती हैं और 'भारतजगमगी' का कथान का प्रकाश करती हैं। पर जब उनकी निद्रा बढ़ी दूरती तो निराश हो कर झोंकू बहाती हुई बहती जाती हैं। तीनों के लगे जान पर 'भारतजगमगी' की मोहनिद्रा भंग होती है और वह अपनी तीनों शक्तियों के बिना हो जान पर विचार करती है। फिर वह चारों ओर निद्रितावस्था में पड़ी हुई अपनी संस्थान का जगाती है। किन्तु उनकी निद्रा इतनी गहरी है कि वे माता की पुकार पर जगमगी नहीं होत। जब कभी कुछ चेतना कीटती भी है तो वे भोक्ता मीटत हैं। मुद्रमरी से पीड़ित भारत की दुर्घटा की प्रेरणा इस दृष्ट में है। 'भारतजगमगी' जाने पुनो को महाराणी विक्टोरिया से पुकार मचाने और आत्मनिवेदन करने को कहती है वे कुछ कर भी नहीं पाते कि अभिनेत्र एक भौमरज को 'भारतदुर्घटा' में उद्दिष्टित इंग्लिश पात्रिशी नामक ऐक्ट की हाकिमकेन्द्र नामक दफ्तर का प्रतीक है, जाकर उनकी मर्त्यता करता है। उसी समय एक दूम्हा भौमरज को उस कुर लहरवाती को भिक्षा देता है और भारतमाता तथा भारतसंस्थान को महाराणी

विक्टोरिया की दयालुता का विश्वास दिलाता है और मैंगरेज जाति की प्रशंसा करता है जिसमें जैडस्टन फोसेट मानियर लिम्बिन्स इत्यादि महात्मा हैं 'जो हमारी भारतसंतानों के शोक-निवारण के हेतु तम-मन सब अर्पित कर चुके हैं, और रात दिन उसी का प्रयत्न किया करते हैं। किन्तु भारतेंदु की काव्यय यहाँ भी स्पष्ट है क्योंकि उसके इस कवन में मैंगरेजों की महत्ता और उदारता के विह्वलन की भावना ही अधिक है, भारत का वास्तविक हित-साधन करने की कामना कुछ नहीं। कारण अंत में वह भारतीयों को अपनी वर्तमान दशा से संतुष्ट हो मगाना पर निर्भर रहने की सलाह देता है—'हाँ इसमें कोई क्या कर सकता है। सब उस सुनिश्चरक परदेवर के अधीन है, उसी का पुछरो बही समस्त जगत् और सब चीज दुनियाँ का रसक है। उसके चले जाने पर पैस जाता है और भारत-संतान को भारतीय दुर्गुण छोड़ कर पैस के साथ संगममय भविष्य की प्रतीक्षा करने को करता है। अंत में भारत माता अपने पुत्रों से पैस उल्लाह और एम्ब जादि सद्वृत्तों को बरन करने का अनुरोध करती हैं। इस नाटक का हाँका भारतेंदु का जन्म नहीं है, इसलिए इसमें अभिव्यक्ति सब भाषों के लिए है उत्तरदायी नहीं हो सकते। फिर भी विक्टोरिया और मैंगरेजों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा को उन्होंने कोरा व्यंग्य बना दिया है। मैंगरेजों की राजनीति से प्रेरित बहुतभूत बहुत भारतेंदु इम्प्रेज की सासन-व्यवस्था के स्वरूप और महारानी विक्टोरिया की वास्तविक शक्ति और शक्ति से परिचित न हो ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। यह समझ देने के बाद उनके द्वारा विक्टोरिया और उनके सासन की प्रशंसा का व्यंग्य समझा जाता है—'उनके गुण अनंत हैं। उनके समान सबरिण, सान्नी, पतिव्रता और धर्मपरायणा स्त्री-कुल में उत्पन्न होना जति दुर्लभ है। वह राजभद्र से भी अधिक प्रजापालन में सदैव तत्पर रहती हैं।' मूल दैवता नाटक में भारतेंदु के व्यंग्य की यह भी छिपी नहीं। व्यंग्य की सजीवता होते हुए भी 'भारतनुकषा' की ही भाँति इस नाटक का वातावरण भी कदम है। इन दोनों नाटकों में मुख्य अंगर इनके विषय में है। 'भारतनुकषा' नाटक का विषय यथावधानी है, और 'भारतजननी' का उद्दिष्ट्य आदर्शवादी है।

- भारतेंदु अनुभव करते थे कि एक निरक्षर दश में कोरी साहित्य-रचना आत्म-रोदन मात्र है। इसलिए यह सम्मान नहीं था कि इन नाटकों में वच की



दुःखदबा की कल्प अमिष्यकि भाष से उनका हृदय हसका होता उन्हें संतोष मिलता । अन्त्य के ग्रहसन-रचना में प्रहस्य हुए । वैसा होना सामाजिक भी था । कारण देश के सर्वप्रथम पतन को बच कर उनके मुख और निराशा की जो चेतना हो रही थी उसकी कुछ पीडा से भाव पान का कुछ न कुछ भाग उन्हें लाभता ही था । हास-परिहास के अतिरिक्त इस पीडा के बहसाने का और उपाय हो ही न था सकता था ।<sup>१</sup> बाबरन ने लिखा है कि यदि मैं किसी मरणवन्ता वस्तु पर हँसता हूँ तो केवल इसीलिए कि मैं नहीं मरूँ ।<sup>२</sup> राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—बर्ग समाज राजनीति—में विपत्ति का सामना था । भारतेन्दु इस विपत्ति का अनुभव कर रहे थे वे देख रहे थे कि धर्म में पालक शासन में सत्य और समाज में हृदिवाद और अज्ञान व्याप्त है । सामाजिक जीवन के इस असमंजस और वैयर्थ के बीच से उत्पन्न कैला की परिस्थिति परिहास और व्यंग्य में होना सामाजिक था । भारतेन्दु यह भी जानते थे कि उस परिस्थिति में परिहास और व्यंग्य सामाजिक अनुशासन के भी अच्छे साधन बनाए जा सकते हैं क्योंकि समाज की बहुतों पर उनके द्वारा सफलतापूर्वक आघात किया जा सकता है । अत्यन्त मायुष्य प्रकाशान्, और प्रखर व्यक्तित्व-सम्पन्न होने के कारण उनकी हास-संज्ञा भी अत्यन्त निरक्षित थी । जैसे ही उनके प्रत्येक मस्तिष्क में हास परिहास और व्यंग्य की सजीवता है पर वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति 'अभर भवती' और विपत्ति विपत्तीयम् में उनकी प्रचालता है । 'वैदिकी हिंसा' और 'अभर भवती' ग्रहण हैं, तथा विपत्ति विपत्तीयम् भाग है ।

'वैदिकी हिंसा' ग्रहण में धर्म के नाम पर होने वाले मांसाहार-दुग्धहार-अन्नाहार आदि का तुल्यकर उद्घास किया गया है । उसके नापी में ही भगवान् के लिए होनेवाली वृत्तव पशु-हिंसा पर व्यंग्य है :—

1 Laughter was created by nature as an antidote to sympathy —Macdougall.

हास और हस कैला के रक्षण-पिधान (safety-valve) है :—बम्बो

2. If I laugh at any mortal thing, it is that I may not weep —Byron.

यहु बकरा पलि हित कटे जाके दिना प्रमान ।  
सो हरि की माया करै मज जग को कल्याण ।

इस व्यंग्य के रंग को गहरा करता हुआ सूत्रधार कहना है—‘महा ॥’ भाव की संख्या की कैसी सामा है। सब विद्या ऐसी सात हा रही है यानो किमी न बन्दिम किमा है और पशुरक स पृथ्वी सात हा रही है। पहले अंक में समरक महाराज सुभराज की सया का दृग्म है किमें महाराज मंत्री कार पुगदित सभी मण मण मैसुन आदि की प्रसंसा कर रह है। पुगदित उनके समर्पन में सास्यों के स्फुटित प्रमाण देता है। जसी समय एक विषया-विषाह के प्रकारक बलापी महामुग्ग आत है। पुगदित भी सुभराज क पृष्ठ पर विषया-विषाह की व्यवस्था ठेठा है, क्योंकि न सभी कारेण दुष्कति और व्यामिवापराती मुक्ति आदि मजक भुतिवों और साक्षात्कारों इनक फल में है। इसलिय इनक हेतु तो कोई निमि-निषेध है ही नहीं जो कोई करे चाह जितन विषाह करें यह तो कसत एक बकन मज है। सभा समाप्त होन पर वृत्त अंक में सब पुरापर में एकत्र होत हैं जहाँ एक लख बकरी की बलि हो जान बाली है। इस अंक में विद्वक भी है जो हिसारामज पुगदित तथा अन्य माझाओं की हँसी उठता है। इस सभा में एक किन्तुनी एक बज्ज और एक सेव आत है, किन्की सबलीन मित्रर हँसी उड़ात है। फलतः सन्ना गिरी कास जो रजामन्त्रममन्त्रय पदवी मृता कमी वैष्णवा का के प्रतिनिधि है, का सबबोध आगम करत है। तीसरे अंक में मरिह पीर उन्नत पुगदित राजा मंत्री आदि आते हैं। सब मरिह की प्रसासा में मजबूत आत है, किन्की पुगदित सब स आग है। ये सब मन्त्राके मांस-मज्जन तथा मज-पान क समर्पण में पुन साक्ष-ब्रह्मों का मज्जना कर्ष करत है और सब धार्मिक आदम्बर सादृश मज-मांस-सेवन का निन्दित बतात है। चौथे अंक में समराज क दरबार में मजक के सब प्रधान पान एकत्र दिवार् पडते हैं। समने से सेव और वैष्णव को कैलास तथा कैकुट का कास मित्रता है और राजा मंत्री पुगदित और गिरीकास को मजक का रंज दिया जाता है। इस अंक का सबसे सजीव रकत यह है, जहाँ मंत्री किन्तुन को अपनी सब अधिकृत संपत्ति केकर मज-मांस से बचना कहता है। अन्त में धूस राजनसता अन्त में समराज के प्रबंध देह से बचन के लिये धूस वम की ही बात मोखता है। अन्त में मज-मांस स यह प्रहसन समाप्त होता है।

कहा जाता है कि अफिर कगरी प्रहसन मिहान शान्तक किती राजा अदरा बहु जमीनार के आचरण को सज्ज करक किया गया था। पर इसमें जिन प्रदर्शनों का प्रहसन किया गया है, वे विवेकहीन समाज और शासन की व्यापक वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालन है। आरंभ में उद्घुष्ट शोक<sup>१</sup> और समर्पण के राजाओं में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह नाटक किसान की प्रेरणा मारतम्बु को किती व्यक्ति-निष्ठता से चाह मिले हो पर सिखते समय उसका साधारणीकरण हो गया था। इस नाटक में मंगलाचरण आदि कुछ भी नहीं है। केवल समर्पण में नाटक का उद्देश्य बताया हुए कम से कम किता है कि वस्तुस्थितियों को स्वार्थ छोड़ सबे गुणग्राही बनना चाहिये —

जे स्वारधरत धूर्त होस से काक चरित रत।  
ते औरत इति वचि प्रमुहि नित होहि समुमत।  
अदपि शोक की रीति यही पै अंत धम अय।  
जी माहीं यह शोक तदपि छलियन अति अम अय।

×                      ×                      ×

तासो अय खी करी, करी नरो, पै अब आगिय।  
गो, भृति, भारत बेस समुचिति मैं नित आगिय।

प्रहसन के पहले अंक में एक महंत की जाने विषय गोबर्धनदास और नाट्यबनदास का साज सात है। वह अपने बालों छिन्नों को लोम छोड़ कर बायबिक मित्रा करने के लिए मकर में जान की आज्ञा देते हैं। दूसरे अंक में अम्बेरकारी के बाजार का दृश्य है, जहाँ प्रत्येक वस्तु टके पर बिक रही है। गोबर्धनदास इस बाजार में मित्रासे प्राप्त चीजों से बहुत ही भिन्न हो कर गुदगी के पास जाता है। तीसरे अंक में गुदगी अफिर कगरी का हास बखबर प्राप्त-प्राप्त ही वही से जाने जाने का

१ ऐतरेयब्रह्मसूत्र चम्पक बने राजा कदिरहम  
हिंसा ईसमपुर काकिलकुले काकपुलीमम रति।  
मातृहिन सरकम समुत्ता कनूचार्थसयो-  
दया यम निवारणा गुणिमये वधान्त तस्मै नम ॥

## मादकद्वार मारतेंदु

निदर कर रहे हैं। पर गांधीजी का तो भी निश्चय है कि अन्त में मुक्त-योग की मुक्ति प्रदान करने वाले उस मरने का छोड़ना नहीं चाहता। अतएव गुप्त के उपवास को न मानकर वहीं रह जाता है।

चौथे अंक में राजा बीरबल के दरबार का दृश्य है जिसमें न्याय का प्रगट होता जा रहा है। कलक बलिया की दरबार गिरने से एक व्यक्ति की बचती रह गई है, इसलिये बेचार बोनवास का मुमुर्दह किया जाता है। चौथे अंक में बोनवास के पौसी नहीं लगती क्योंकि इसकी गदल पनती है। एक मां-तावे मातमी की समाधि होती है, और गांधीजी पकड़े जाते हैं क्योंकि वे उनके मां-तावे का एक एक कर सब छुड़वा गए हैं। जब वे पकड़े जाते हैं उस समय वे प्रमत्त मन अभिनय और बीरबल राजा के शासन न्याय और नीति के गुण गाते हुए बन्धन पर जा रहे थे। उनके हम गायन में इस प्रहसन के अर्थ का स्पष्ट स्पष्ट हो जाता है—

धर्म अधम एक दरसाई। राजा करे सो न्याय सदाई।  
अंधाधुंध मध्यो नय देना। मानहुँ राजा रहत बिदेसा।  
गो ब्रिज धुति आवर नहीं होइ। मानहुँ नृपति बिचमी कोई।  
प्रगट सत्य अंतर छल चारी। सोई राजममा परमात्री।

इन गीत से स्पष्ट है कि मारतेंदु के लिए सारा भारत ही अंगरेजों के बीरबल राज्य में अन्धेरागरी बना हुआ था। अन्त में अंगरेजों के समय से ही वे न्याय की जो हवा करते आ रहे थे, बीरबल राजा के दरबार का न्यायमित्र उसी पर गुना गुना बोल रहे हैं। यह जान कर कि इस प्रहसन की प्रतीक-व्यंजना का राजनीतिक स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है। छठे अंक में गांधीजी को पौसी जेल की तैयारी होती है। गांधीजी अन्त में गुप्त का स्मरण करता है। वे जाते हैं और कहते हैं कि अगर जान का यही मुद्दा है, केवल एक ही फांसी पर बढ़ेंगे। यह गुप्त कर अन्धेरागरी के सब मूल पौसी पर बढ़ कर सारा न्याय पौसी की होइ करते हैं। पौसी धन में राजा सब को बन्धन पर बना है, और न्याय पौसी पर बढ़ कर सीधे न्याय को प्रस्थान करता है। इस कथानक में मिलती-जुलती अनेक कथानक लोक में प्रचलित हैं, उन सबका सार लेकर मारतेंदु जी न यह अनोख दृश्य रचा है। यह

बड़ा आटा है कि 'अग्नि नगरी' ग्रहसन बिहार प्रान्तक किछी राजा अथवा बड़ अमीर के आचरण को नकल करके लिखा गया था। पर इसमें जिन प्रतीकों का ग्रहण किया गया है, वे विवेकीय समाज और शासन की व्यापक कस्तुरिचित्र पर प्रच्छन्न झलक है। आरंभ में उद्धृत श्लोक<sup>१</sup> और समर्पण के श्लोकों में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह नाटक लिखने की प्रेरणा भारतवर्ष की किछी व्यक्ति-निरूपण से आई मिली हो। पर लिखत समय उसका साधनबीजन हा गया था। इस नाटक में मर्यादाचर्य आदि कुछ भी नहीं है केवल समर्पण में नाटक का उद्देश्य बताया हुए कमि ने लिखा है कि इसकाशिकों का स्वार्थ छात्र एवं गुणमाही बनना चाहिये —

ये स्वार्थधरत धूर्त हंस से अथक चरित रत।  
ते औरत हति बंधि प्रभुहिं नित होहिं समुपगत।  
अपि लोक की रीति यही पै भूत धर्म जय।  
औ नाहीं यह लोक तपि छलियन अति अम मय।

×                      ×                      ×

तारों अथ छी करी, करी सो, पै मय जागिय।  
गो, भुति, भारत बस समुपति में नित छागिय।

ग्रहसन के पहले अंक में एक माहंत जी अपने शिष्य गोबिंदनरस और गणेशनरस के साथ आते हैं। वह अपने दोनों शिष्यों को मोम छोड़ कर सात्विक भिक्षा करने के लिए नगर में जाने की आज्ञा देत हैं। दूसरे अंक में 'अग्निनगरी' के शाहर का दृश्य है जहाँ प्रत्येक वस्तु उनके सेर निक रही है। गोबिंदनरस इस बाजार में भिलासे प्रात बाड़े से पैसें से बहुत सी मिठाई खरिद कर मुदगी के पास गया है। तीसरे अंक में मुदगी अंगेर नगरी का हाल बरबर प्रातःकाल ही वहाँ से जाने का

- १ ऐश्वर्यनरस नामक वन रसा करिहूम  
हैसा ईश्वरमूर कोहितकुले काकेपुलीका रति ।  
मानहोन राखन समुपका कर्पूरकपोतयो  
एरा यम निवारणा गुणिगण बेराय तमी कम ॥

निश्चय करते हैं। पर गोवर्धनदास बोड़ी भी मिथा से अमन्त मुख-भोग की सुनिभा प्रदान करने वाले उस भयर को छाड़ना नहीं चाहता। अतएव गुरु के उपदेश को न मानकर वहीं रह जाता है।

बीजे अंक में राजा चापदचन्द्र के दरबार का दृश्य है जिसमें न्याय का नाटक केसा जा रहा है। कस्तूर बनिमा की बीवार गिरने से एक ध्वष्टि की बहरी भर गई है। इसलिये केदार कोतवाल को मृत्युदंड दिया जाता है। चौथे अंक में कोतवाल के प्यौसी नहीं खाली क्योंकि इसकी गर्जन फटी है। एक मोटे-ठाके अल्मी की तबाख होती है और गोवर्धनदास भी फट्टे जाते हैं क्योंकि वे ठके हुए मात्र एक एक कर लूट-खुट हो गए हैं। जब वे फट्टे जाते हैं उस समय वे प्रसन्न मन अचिरनगी और बीरद राजा के शासन न्याय और नीति के गुण पाते हुए बन्मार्ग पर जा रहे थे। उनका इस यासन में इस प्रहसन के व्यंग्य का व्यंग्य स्पष्ट हो जाता है—

धर्म अथम एक दरसाई। राजा करे सो न्याय सदाई।  
अंधाधुंध मक्यो सब देसा। मानहुँ राजा रहत बिदेसा।  
गो द्विज भुति आवर नहीं होइ। मानहु सुपति विधर्मी कोरै।  
प्राप्त सम्य मंतर छल नारी। मोई राजसभा बलमारी।

इस गीत से स्पष्ट है कि मारतेंदु के लिए सारा भारत ही अंगरेजों के बीरद राज्य में अचिरनगी बना हुआ था। अन्त मुसलमान के समय से ही वे न्याय की जो हक करते जा रहे थे बीरद राज के दरबार का न्यायमालिन्य उसी पर लुटा हुआ व्यंग्य है। यह मन देने पर इस प्रहसन की प्रतीक-व्यंग्यता का राजनीतिक स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है। छठे अंक में गोवर्धनदास को फाँसी देने की तैयारी होती है। गोवर्धनदास अपने गुरु का स्मरण करता है। वे जात हैं और कहते हैं कि सर्व जान का बही मुहूर्त है, अतएव वे ही फाँसी पर चढ़ेंगे। यह मुन कर अन्धे नयरी क सब मृत फाँसी पर चढ़ कर मृत्यु मार्ग पहुँचने की होश करते हैं। परंतु अंत में राजा सब को धमकाकर चुप कर देता है और सर्व फाँसी पर चढ़ कर हीरे स्वर्ग को प्रस्थान करता है। इस कथानक से मिलती-जुलती अनेक कथाएँ लोक में प्रचलित हैं उन सबका सार केन्द्र मारतेंदु जी का वह मजोरेबक इफ्त रहा है। यह

प्रश्न एक ही दिन में लिखा गया था और 'विधान विक्टर' नामक किसी नाटक मंडली में इसका अभिनय भी किया था।

'विप्लव विप्लवधर्म' एक भाष्य है जिसमें भोजपायन रसमय पर आकर भाष्य भाषित करने में यशोदा-मण्डा मल्हारराव गायकवाड़ के गद्दी से उतारे जाने के सम्पूर्ण प्रसंग का वर्णन करता है। वह कहता है भाष्यकवाड़ राजवंश की प्रतिष्ठा की संश्लिष्ट ऐतिहासिक कथा कहते हुए कह बतलाता है कि किस प्रकार प्रारंभ से ही अंगरेजों की नीति देशी राज्यों के नीतरी-बाहरी सब मामलों में हस्तक्षेप करने की रही है, निरपत कहता है कि समस्त राज्य पर उनकी दृष्टि सदैव रही है। दूसरी ओर वह मल्हारराव गायकवाड़ के वास्तविक पतन का विवरण बता हुआ करता है मुना है वह महाराज छहर के अमीरों के घर जात से ता उनका घर के मारे औरतें कुएं में उतारी जाती थीं। उसने एक दूसरे अनुभव की सबका की मन्गीबाई के साथ समारोह के साथ विवाह भी किया था। 'महा राजा इनसे कहते थे कि वे राज्य से कहें!

बन्धु भारतमूर्ति तुम ऐसे ही पुन प्रसन्न करने थे। हाव! मुहम्मद साह और शाहिदमजी साह ता सुसज्जन हाके छूटे पर मल्हारराव का कलक है। तुमों से छिने छुटगा। निरवा-निवाह सब करता बाइत है पर इसने सीमावर्ती निवाह निरवता। ऐसे क्षत्रिय व्यक्ति के राज्य में सुप्रबन्ध की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतएव अंगरेज सरकार ने उसे गद्दी से उतार दिया। सरकार ने ठीक ही किया क्योंकि नियम का उपकार नियम ही है। इस छोटे से रूप में सभी राज्यों के सुप्रबन्ध नहीं के नरेणों के वास्तविक पतन और सभी राज्यों के संबंध की अंगरेजों की नीति की आलोचना की गई है। वह कह है कि अंगरेज देशी राज्यों की दशा सुधारना नहीं चाहत बल्कि अश्वत्थ रूप से अनरु पक्षों की मल्हारराव केर सम निरागत ही है।

### अध्यात्म और प्रेम

भारतीयों की काव्यिक इतिहास में 'अनार्य' का स्थान विशिष्ट है। इस कथामय का अर्थ सदैव शास्त्रात्मिक है। इसके समर्थ में भारतीयों की में स्वर्ग निष्ठा है कि 'इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है। इस प्रेम का नहीं या संसार में प्रयत्न है। हा एक आशा है कि तुम या अक्षय समा करना होगा। वह वह विज्ञान की रक्षा पर और प्रिय है। या प्रिय कहें ही स कमा जो

मन्दकभार भारतेन्दु

अभिधारी नहीं हैं उनकी समझ ही में न आवेगा।

य लम्बे लम्बे

मनमय। यह बातबस्त यह छिटाई कि तुम्हारा सिद्धान्त यह बाधना—

हरि-उपासना, भक्ति चैराग, रसिकता घाम।

सोचें जग जन मानि या चन्द्रावलिहि प्रमाण ॥”

राम के प्रसंग में उसक जिन गहने आध्यात्मिक और साधनिक रहस्य का विशेषन किया या कुछ है बस्तुन यही इस ‘चन्द्रावली’ नाटिका का भी आधार है। इसमें भी काइ सन्देह नहीं कि इस नाटिका क निमाण में राम की प्रेरणा प्रधान रही होगी। राम के अन्तर्गत जिन छद्मवर्णितों का वर्णन हुआ है, चन्द्रावली उन्हीं कोटि की ‘नाटिका’ है। इस नाटिका की प्रस्तावना में कवि ने सुनचार और पारिवर्तिक की बातचीत में अगन संबंध में प्रकटित दो शिरोही मतों का उल्लेख किया है। एक ओर जहाँ कवि के प्रबंधकों की और भक्तों की बड़ी भारी संख्या थी वहीं कुछ ज्ञानत्र बंध सिन्दक भी थे। प्रस्तावना क बाद नाटिका में एक छंद निष्क्रमक है, जिसमें छन्दरब और नारद के वातावरण में ब्रह्म की तथा ब्रह्मापिओं की अधिकपण प्रकृता के व्याज से भक्ति का स्वरूप और उसकी महिमा बताई गई है। इसके बाद ‘वेदाचार्य’ नामक पहले अंक में भी चन्द्रावली और विद्विगुत्र गम्भिरता का रूप है, जहाँ चन्द्रावली और सतिना वार्तालाप करती हुई दिखाई पड़ती है। इस वातावरण में चन्द्रावली का भीरुपण प्रम—जिस प्रवण्य यह सकट है—प्रकट हो जाता है। इस अंक की मुख्य श्रेयता यही है कि इसमें महाभारत की सब मानसिक दशाओं का अत्यन्त मनोहर स्वरूप हुआ है। वनर अंक में कदली वन में बपावस्तु की जन-विभिन्न संख्या का उल्लेख है। चन्द्रावली बियागिनी बनी हुई आती है और पृथ्वीत पाकर विरहोन्माद में पड़ती है। चन्द्रावली बियागिनी बनी हुई आती है। उनकी यह दशा बख्तर बना संजा और वनवती उनकी वेदना-निवारण का प्रयत्न करती है। पर उनके गमसमेत चन्द्रावली की वेदना पढ़ने क स्थान पर बड़ी ही है। उनका आत्मभाव सर्वथा छो गया है, और वे बेगन-बचनन का मेर मूल कर वन वृक्ष पवन प्रमर, ईग सारस कोकिल पवीष्टा आदि से अत्यन्त कारण सन्तो में कृष्ण के उन्नेय में वहावना करने की शायंश करती हैं। चन्द्रावली उन्हें प्रमर मृग प्रतीत होता है। अन्त में उनकी मियोग-व्यथा सीमा पार कर जाती है, और मृत्यु की घमना बनी



हुई वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं। इस प्रकार 'मियाप्पेय्य' नामक अंक समाप्त होता है। आगे इसी के अंशवतार में संध्यावली सीढ़ती आती हुई बिखार पड़ती है, स्वयंवर म्हास्वें ने इसके पीछे कुछ गाये मधुर का बीजा दी हैं। इस भाग-बीज में उसकी बांझी से एक पप गिर पड़ता है जिसे पीठे आती हुई चम्पकप्रता पा जाती है। यह पत्र चंद्रावली का शिक्षा हुआ है जिसे उन्होंने संध्यावली के हाथ प्रियतम रूप्य के पास भिजवाया था। तीसरा 'बर्षा-विशोग-विज्ञप्ति' नामक अंक है जिसके अन्तर्गत एक सरावर के तट पर अछन का रास दिखाना क्या है। वन क प्रियतम का अमरज है, साक्षात् मेघ-संछित है और उपवन में बरसों ओर इसे पड़े हैं जिनमें कुछ सखियाँ झर रही हैं और कुछ इधर-उधर बिचरन करती हुई स्नेहस्नान कर रही हैं। इन सखियों के बीच चन्द्रावली भी है। सखियों के बाधा साप में प्रत्येक के हृदन पर वर्षा की उतपीक गम्भिरता का प्रभाव अभिव्यंजित हुआ है और इस सबके बीच मिहिनी चंद्रावली के इराद की निश्चिता रूप बरस का के सामने आ जाती है। चंद्रावली को व्यथित हु-सी देख कर सब सखियाँ उनकी सहृदयता करने का उपानस सोचती हैं। चंद्रावली का हृत्पत्र से मिलन तभी संभव है जब स्वामिनी राधा की अनुमति हृत्पत्र का प्राप्त हो। अतएव माधवी प्रियाजी की अनुमति प्राप्त करने का उत्तराश्रमिक जाने ऊपर जाती हैं, और काममेवरी प्रियतम रूप्य को चंद्रावली के पास मान का मार समझाती है और विद्याप्रिनी चंद्रावली क परबस्वें स उनकी भगाई करवाने का मार करने ऊपर जाती है। वह बाजना सज्ज भी होती है।

'परम पद' नामक चतुर्थ अंक में चंद्रावलीजी की बैठक का दृश्य दिखाई पड़ता है। सामने एक जायिन अलस बसाती हुई प्रेम के गीत गा रही है। उन्ही समक्ष सज्जिता जाती हैं, जो यमुना की सीमा का वर्णन करती हैं। इसी बीच चंद्रावलीजी भी आ जाती हैं। दोनों में वाग्वाक्य होगा है जिसे ओगल जिसे छिपे सुनती है। अंत में वह पुनः अलस अलस बसती हुई सामन आ जाती है, और दोनों उसे आदर करके बैठाती हैं। तीनों के परस्पर आत्मप में जिसका चित्र हृत्पत्र प्रेम है, चंद्रावलीजी की निरह-स्वभावा बहू जाती है। उन्ही समय जायिन-बैस-बसती हृत्पत्र करन जबकी रूप में प्रकट इतर चंद्रावली को यत्ने से लग्न केत है। उन्ही समय विद्याप्रता कपारि बती हुई वह संदस मुग्राती है कि 'स्वामिनी ने आज्ञा दी है के प्यारे को कही है चंद्रावली की कुंज में मुखेन बपारी।

## माटकदार मारतेंतु

रास की ही शैली में मारतेंतु न 'दाम्पतीला' और 'रानी छपलीला' 'देवी छपलीला' और 'तन्मय लीला' नामक चार अन्य अलग-अलग सरस रचनायें भी प्रस्तुत की हैं। 'तन्मय लीला' रास के प्रसंग में वर्णित यौरातीला की खेडि की है, और वर्षा छपलीला और 'रानी छपलीला' एक ही शैली की हैं। 'दाम्पतीला' फरवरी १५, १८८४ ई० को प्रकाशित हुई थी जिसमें अरब की गोपियों से कृष्ण के दाम मांगने की कथा है और जो मारतेंतु की लेखनी की शक्ति से बड़ी मनोरंजन बन गई है। कृष्ण राधा को मार्ग में रोकते हैं, राधा उससे मार्ग छोड़ देने का अनुरोध करती है। पर कृष्ण मार्ग में छोड़ कर उसमें दाम देने का हठ करते हैं। दोनों पक्षों में काफी दूर तक हास-विमोह और रस-येसल बातचीत चलता है। किंतु कृष्ण जब किसी प्रकार अपना दाम देने का हठ नहीं छोड़ते तो राधा चरम आत्म-समर्पण की भावना से मातित हो कर बैठती है —

छोकलराज कुरुधर्म हू नम मन धन बुधि प्राप्त ।  
सब तो तुमको दे चुकी, अब मांगत करको दान ॥  
बहुत मई पिय लाविले अब क्यों हूँ सहि नहीं जाइ ।  
जानि वासिकर आपनी गहि लीजे भुजा उठाइ ॥

भक्ति-साधना के परिपाक की इस अवस्था में भगवान् भक्त से कम अलग रह सका है। अतएव अब वे राधा को अस्मान में मिलन नहीं करते—

परम दीनता सों मरे सुनि प्यारी के देन ।  
पुनर्कित भंग गवगुन भयो हो उमरि चले दोहनैन ।  
भाइ धूमि मुक भुजन सों भरिलीनी बैठ लगाइ ।  
हरीचंद पावन भयो यह अनुपम लीला गाइ ॥

रानी छपलीला की कथा अधिक विचित्र और रहस्यमयी है —

कौं कह्यह जिमि छप सुहाये । श्री प्यारी के मन अति भाये  
तिमि प्यारी हू जीअ यिचाव्यौ । पियहि त्यों यह चित निरपार्यौ ।

मय मेम रानी को मनोहर सयम मिलिसग कीजिय ।  
अति चतुर मोहन तिनहुको चलि भाहु घोखा दीजिय ।

इस बाजना के अनुसार राधा की आज्ञा पाकर उनकी सखियों कृष्ण के पास जलर  
उनको यह राधाजी सुनाती हैं—

जमुवंस की राबी नई इक कुमुदयम में है रही ।  
जागीर में तिम कंन नुप नी कुसुद वनकी महि सही ।  
तिन हमको आज्ञा कई करि के देखी बीठ ।  
कैन हयाम ऊधम करे मेरे वन में बीठ ॥

x

x

x

उम तोरि वन के पूछ फल स्व घाम गठवम को कई ।  
तेहि पकरि हाजिर करौ यह हम सचन को माझा कई ।

यह सुन कर कृष्ण बड़े बहुत और विचर हो उन सखियों के साथ जाकर रासी के  
दरबार में मुकरा किया । राधा को उस समय उनकी बीकता यह हवा कई पर उनकी  
महज सम्पत्ता का स्मरण कर कोव भी कम गया । फिर भी वे जलर उध को सिंग  
न पाई पूछ बैठी—

‘तुम कहत हम थी राधिक लजि और तिय देखे नहीं,  
तो आज सुनि क्यों मास रासी को यहीं आये फहो ।’

यह कह कर राधिक रोप से मुँह फेर कर बैठ जाती है । अंत में अलुमब-निम  
हाथ माल-मेय होता है और इसाया इसम सम्पत्त मुय और रग के बाल बंदनकी  
कुंजों में अनक प्रहार की बीजानें करत है ।

### तीर्थ

तीर्थों के विना के बिना हिन्दू-समाज का चित्र अपूर्ण ही रह जाता है । कारण  
तीर्थों के-पुत्रादियों ब्राह्मणों यज्ञधीयों तथा उनके सम्पर्क में रहनेवाली जनता का  
चरित्र उस समाज में सर्वथा निमग्न है । मोरामी तुलसीदास जी ने दोहावली में  
लिखा है कि बस्तिनय न पाप की समा द्वारा धर्मराज्य को जीत कर इन तीर्थों में  
भजन मोर्ने स्थापित किए हैं ।<sup>१</sup> तीर्थों में भी बापी, जिसे विरधी विधि माला

१—मुर एवनमि तीरथ पुरिम निरट कुवालि कुसाव ।

मनई मयलो मारि बमि राजन सहित समाज ॥ १ ॥

## नाट्यकार भारतेन्दु

पुरीन की नामिका, सबसे न्यायी है। क्रैसोसम के बाहर मित्र के मित्र पर बसी हुई इस कासी के जग स न्यारे समाज का चित्रण भारतेन्दुजी ने अपनी 'त्रिमशालिनी' नाटिका में किया है।

'बंशवर्ती' की प्रस्तावना की तरह भारतेन्दुजी ने इस नाटिका की प्रस्तावना में भी अपने संबन्ध में सूत्रधारों बहुत कुछ कहकर दिया है, जिससे उनके हार्दिक धोम की व्यञ्जना होती है। इतना ही नहीं प्रस्तावना के बाद प्रथम गर्मांक में गणगम्भीर में शत्रुदिया और मित्र आदि के वार्तालाप में भी रामचन्द्र के व्याज से कवि का ही प्रसंग आता है। आगे चल कर इसी गर्मांक में कवि रामचन्द्र के रूप में स्वयं रंगमंच पर आता है। इनके अतिरिक्त इस अंक के अन्य पात्र छद्म बासमुकुन्द चन्द्रदास बनितादास आदि हैं, जो परस्पर वृत्तपर ऐसी बात करते हैं, जिससे कासी के जीवन के क्लेश क्लेश - पक्षों का उद्घाटन होता है। बाबू रामचन्द्र उस समय के नगर के निरधर मानवों की मूर्खियों और उनकी कबहूतियों का मनोरंजक वर्णन करते हैं। चन्द्रदास और बनितादास के संघर्ष में मैत्रियों में होने वाले व्यवहार पर प्रकाश पड़ता है। छद्म और बासमुकुन्द कासी के निराश्रयन सुप्रसन्न रास - वर्ग के प्रतिनिधि हैं। यह सब बातचीत उस समय रहती है, जब योकिन्दरायजी की मंगला सुनती है और सब दान को जाते हैं। बाकी 'मन्दिरादस' नामक प्रथम गर्मांक समाप्त हो जाता है। दूसरे ऐसी-यैसी नामक गर्मांक में मैत्री नामक स्थान में एक पेड़ के नीचे बाबूजी के पाठ कासी के नामाधिक जीवन का दूसरे प्रतिनिधि पेश करता हुआ नन्ददास, मंथेरिया (मसबरा) और गुंडा हर्षिष्ठ बैठे हैं। इनका वार्तालाप ठठ बनारसी बोली में चलता है, जिसमें यह प्रकट हो जाता है कि किस प्रकार ये संगठित रूप से बाहर के शत्रुओं को अपने मोचन — खसोटते और तंग करते हैं। इसी गर्मांक में एक परबसी दीर्घवाजी देवी हमरी कासी जाता हुआ आता है। उसका गीत में कासी के जीवन की अराजकता और मलिनता का यथार्थ वर्णन है। —

भाभी कासी माट-मंथेरिया ग्राह्यन भौ संन्यासी ।  
भाभी कासी रंजी मुही रांड खलंगी खासी ।  
खोग निकम्मे मगी गंजद सुखे येविसवामी ।  
महा आबसी छूटे गुरहे ये-फिचरे यदमामी ।

हिन्दी नाट्य-साहित्य और रंगमंच की रीतिरिवाज

अमीर सब झूठे औ निवृत्त करें बात पिसवासी ।  
 सिपारसी डरपुक्कन सिद्धू बोले बात अकाली ।  
 मैली गली भरी कलवारन सबी चमारिन पासी ।  
 भीषे नलसे बबू उयले मनो भरक चौरासी ।  
 घात जाओ तो गंगापुत्तर मोर्य है गलफासी ।  
 करै घादिया बस्तर-मोचन वे वे के जव झौंसी ।  
 मंदिर बीच मंझेरिया मोर्य करै घरम की गौंसी ।  
 चौदा सेत दछाली मोर्य देकर छासा छासी ।

इस परबरी को गुंजा हरिछिंद सब तंग करता है । बड़ी कठिनाई से बेचारा परबरी मुषाकर के आ जाने पर सब बहाना बीकरी से मुदकन पाता है ।

सौम्य प्रतिष्ठति बरगसी नामक गर्मांक है जिसमें मुपलब्धता स्तम्भ का इत्य है । प्रेक्षणमें पर मिठाईवाले डिब्बीनवाले कुम्भी बरगसी और दलाल आदि इतर उतर चलते-फिरते दिखाए पड़ते हैं । वही पूर्ण परिचित मुषाकर से एक बिबली पंडित से मेट होती है । मुषाकर उस पंडित को काली का माहात्म्य वहाँ के बहनीस स्थानों के नाम तथा उस समूह का नगर का विभिन्न वर्गों के विविध व्यक्तियों और संस्थाओं तथा वहाँ के निवासन का परिचय देता है । मुषाकर पंडित पंडों का सब वर्ग का प्रतिनिधि है, जो सीधों में जान पर हो-बार स्टेसन पूर्व ही मिल जाय है, और सीधों-विद्ये की महिमा और ब्रह्म-फल का बड़ा ही आश्चर्य वर्णन कर ब्रह्मों का मूल में सीधों-दर्शन की भक्ता कामसा और उत्पन्न उत्पन्न कर देता है, और इस प्रकार सहज ही उन्हें अपने ज्ञान में देता छेदे है । सीधे गर्मांक में काली का माहात्म्य वर्णन का — विषयत दक्षिणी ब्रह्मणों का — प्लि है । बुभुक्षित सीधिन की बैठक में स्वयं सीधिन महाराज गण पंडित राम मय गोपालशास्त्री बबू मय और माधव शास्त्री आदि बैठे हुए मौन बूटी छान रहे हैं । उनको संसार में भोजन और विविध भोगों की चका और आश्वास क अनिच्छ और किसी बल की विन्ता बचवा सारदायित्व नहीं । उन लोगों के बंधे हुए दमाल हैं जो उन्हें बंध बंधे भोगों में निर्ममन और दक्षिणा दियवा करत

## नाट्यकार मारतेंदु

हैं। इन क्रांतियों के अनेक एक हैं जिनके अलग अलग दलपति हैं। य सब धन के लिए भुति और शास्त्र के अर्थों को ताड़-मरोह कर मनमानी व्यवस्था भी देत हैं। इनका बाताबाप हिन्दी और मराठी दोनों में होता है। बाताबाप में गोपालदासी और गण्य पंडित बाबू रामचन्द्र की रक्षिकता की प्रशंसा करत हैं। इस तरह यह किस्साबिस द्वैजविकर्तनो नामक अन्तिम अंक समाप्त होता है।

जैसे किस्साब समाप्त का किण्व इस रूप में किया गया है, निर्माण की दृष्टि से भी वैसी ही किस्साबता इसमें पाई जाती है। सब से पहली बात तो यह कि इसका नामकरण ही रास्वम्भ है। इसका जिन चार अंकों का सार अगर दिया गया है, उनमें न तो प्रेम की बधा है, न किसी जोगिनी की कथा और न किसी प्रेमजोगिनी नामक नायिका या श्रीराम का ही समावेश मघवा उल्लेख। फिर इसका यह नाम क्यों रखा गया ?

ऐसी अवस्थामें यह कल्पना की जा सकती है कि यह नाटक अश्लील है। संभव है पूरे नाटक की योजना में इन चार अंकों से आगे किसी प्रेमजोगिनी के लिए मारतेंदुजी ने स्थान रखा हो। परंतु इस कल्पना का कोई आधार नहीं मिलता। कारण किसी भी नाटकीय दृष्टि में लगातार चार अंकों तक नायक अथवा नायिका का उल्लेख ही न होना सर्वथा असंगत और असंभव है। फिर प्रेमजोगिनी का ना नायिका कहा गया है जिसमें कुछ चार ही अंक हाते हैं जो इसमें हैं ही। इस दृष्टि से लक्ष्य-प्रयोग के अनुसार नायिका को अश्लील भी नहीं माना जा सकता। अन्य दृष्टियों से भी इस नाटक के अश्लील रह जान के कुछ प्रबल कारण नहीं दिखाई पड़ते हैं। यह नाटक से १९३० में मारतेंदु के रचना-काल के ठीक मध्य में लिखा गया था। उन्होंने से १९२५ में अश्लील अन्तिम नाटक सती प्रताप का अनुवाद किया था और से १९४१ में अपना अन्तिम नाटक लिखना आरंभ किया था जो उसी वर्ष उनकी मृत्यु हो जान के कारण अश्लील रह गया। किन्तु प्रेमजोगिनी के अश्लील रह जान के कारणों में ऐसी कोई पारिवर्तिक विषयता भी नहीं थी। निर्यातदूर और सतीप्रताप के बीच उनकी फाई ऐसी मौलिक दृष्टि नहीं आती जो अश्लील रह गई हो। मारतेंदु यदि इसे अश्लील

अधूरी समझत तो उसे पूर्ण करने का अवकाश उनके पास था। जब हम इसका कथानक पर दृष्टि डालते हैं तो इसमें कोई ऐसा सुसम्बद्ध कथानक नहीं मिलता, जिसका कथिक विचार एक मंच के बाहर दूसरे में होता चला रहा हो। नाटक के चार वर्गों में काशी के जीवन के विभिन्न पक्षों का नाटकीय संदर्शों के रूप में चित्रण है, कथानक के सम्बद्ध विचारों की दृष्टि से उनका एक दूसरे से कोई संबंध नहीं। वे सब वर्गों के अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र एकाकी नाटक बने जा सकते हैं। अतएव इसे अपने मानते ही बने जना भारतेंदु के नाट्यसौष्ठव से अप्रतिष्ठा प्रकट करता है।

वस्तुतः उन्होंने इस नाटक में एक अभिन्न प्रयोग ही किया है<sup>१</sup>। जिस काम से पहले वह नाटक किया गया और प्रकाशित हुआ था उससे भी इसके अद्वैत होने की भारभा का खंडन हो जाता है। पहले इसका प्रथम और द्वितीय वर्गों हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (खंड १ संख्या ११ और खंड २ संख्या १ ७ स. १८४५ ई.) में काशी के सम्पादित अर्थात् काशी के दो मठे बुरे फोटोग्राफ नाम से प्रकाशित हुए थे। तदनंतर भारतेंदुजी ने इसमें दो दरारें—प्रथम और अन्तर्गत वर्गों—और बना दिए। जिस रूप में वह पहले 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में प्रकाशित हुआ था, उसमें भी वह पूर्ण था। काशी के सामाजिक जीवन के एक दूसरे के पूरक वर्णन और कृष्ण दोनों पक्षों का—'दो मठे बुरे फोटोग्राफ'—बराबर चित्रण उनमें था जिसे अद्वैत नहीं कहा जा सकता था। दो वर्गों अपना दरार और बना देने से काशी के समाज का कुछ अन्य स्तर प्रकाश में आ गए। इसी प्रकार यदि भारतेंदु उसमें कुछ दरारें और बना दें तो निम्न की दृष्टि से अन्य उसमें अधिक व्यापकता का जाती पर कथानक की दृष्टि से उसकी पूर्णता—अद्वैतता पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता उसका स्वरूप अक्षुण्ण रहता। उसमें एक कथानक का कथकल विचार न पाकर उसे अद्वैत समझत रहने से भारतेंदु के इस अभिन्न प्रयोग का सम्बद्ध मूल्यनिर्णय नहीं हो सका है। वर्तमान युग में सेठ गोविन्दराय ने अपने 'विचार' नाटक में बड़ी शीघ्रता अपनाया है। बरती और आकाश परस्पर मानव के मध्य के संबंध में वातावरण

१ अर्थात् 'प्रेमयोगिनी' प्रस्तावना में परिपार्श्विक की उद्धृत कथा।

## नाटककार भारतेन्दु

करत है और एक दूसरे को मानव - विहास के मानवता के विश्वास तथा हास संबंधी एक दूसरे से अवयव्य किन्तु करने में पूर्ण दृढ़ दिखाते हैं। सेठजी न केवल इस प्रयोग को नाटकीय-संवाद कहा है। भारतेन्दुजी की 'प्रेमज्योतिनी' में नाटकीय संवादों के इस बीजम का पूर्ण रूप मिलता है। संभव है, सेठजी को अपनी रचना का आदर्श किसी विदेशी नाटककार से प्राप्त हुआ हो पर प्रेमज्योतिनी का किञ्चाक्षय्य सर्वथा भारतेन्दुजी का अपना है। इसके स्वल्प के संबंध में प्रेमज्योतिनी की प्रस्तावना में भारतेन्दु जी ने पारिपार्श्विक द्वारा खर्च कइयाया है—

वह उनके (भारतेन्दु) और इस जोर काज के बहा ही अनुसूच है। उसके जेसन से जेमेयों को बतमान समय का ठीक अनुसूच दिखाई पड़ेगा और वह नाटक भी नई-पुछनी दोनों रीति मिल क बना है।”

पारिपार्श्विक के इस कथन में यह बात तो सही ही बोधगम्य है कि वह नाटक इस काज के बहा ही अनुसूच है।” परंतु यह उनके (हरिचन्द्र) भी अनुसूच है यह बात प्मान करने योग्य है। प्राक् विचार लोग इस नाटिका को उनकी अत्यन्तवातमक कृति मानते हैं।<sup>१</sup> इस नाटक में बाबू रामचन्द्र रूप में खर्च भारतेन्दु जी विद्यमान हैं, जिनकी अत्यन्तवात प्रसन्न अवस्था प्रसन्न रूप में सभी जगहों में ज्वलित हो रही है। पहले जग में बाबू रामचन्द्र के चरित्र का एक प्रभावशाली बिज मिलता है। वे परम एतिका मत्तवृत्त हैं, जिस प्राक्-काज योग-स्नान करने जाते हैं। उनके पिता भी बजि वे और वे स्वयं भी काव्य-रचना करते हैं वे बहुयुत और बहुज भी हैं। वे संगीत क भी बड़े प्रेमी हैं, समक्य सारा समय संगीत और काव्य जादि कसमों के अनुशीलन में बीनता है और जनक लोग जयराजि तक उनके सत्संग में मुख से काज-भाषन करते हैं। परंतु वे काजिधारी और मुखारक बिचारी के प्रतिमासात्री प्पदि हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे जसत परिवार और समाज के लादी और संकीर्ण लोगों की मित्रा के पात्र हैं। उनके एक छोटे भाई भी हैं, जिनको

१— व. बाबू ब्रजचन्द्रम द्वारा संपादित भारतेन्दु नाटककारनी प्रथम भाग की मूखिका पृ० ५६-५७; एपाहृत्पदमजी की उसी के अनर्गल पृष्ठ १६५ पर पाद लिखनी।



नटक के एक पात्र मसखी 'बिच के बड़े छोटे पड़ते हैं।' या रामचन्द्र आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी बचाने गए हैं और उनकी आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का सुर्त पर बड़ा आतंक है। नाटिका के 'पेन्नी-पेन्नी' नामक द्वितीय दृश्य में गुना झूरीसिंह और बुकानदार के बार्तालाप में यह प्रकट है —

झूरीसिंह — जब से आए गए मैजिस्ट्रेट तब से ब्राउन आई।

जान बिजावत छिपत छिपी है राजमठ —

बुकानदार — ई ली सब दी भाई।

झूरीसिंह — ई ई ऐसा तब गुन बरसन के केने कहाई।

गोबिंद पासक मकड़ीको से एकी जबर बाधाई।

जान बजावत छिपत छिपी है कुस यह सब कहासी।

बन्धन भी झूरीसिंह कहता है कि साहब मैजिस्ट्रेट हैं नाहीं तो निदा करना निश्चय इत।" तीसरे अंक में बुकानदार उनकी निर्द्वंद्व शासकीयता की प्रशंसा करता है — आप मेरे मित्र रामचन्द्र ही को देखिए।

उसन बात्ताबिस्वा ही में ब्याबसि मुहा प्यार कर ली है।" बसुबे धर्मिक में मानवशास्त्री, गोलाम और गप्प पंडित के बार्तालाप से बानू रामचन्द्र के अमान की मस्ती बान्हावन सङ्कलता रसिकता और निम्न-व्यक्तता पर विशेष प्रकाश पड़ता है। एतिका के ये सर्वस्व हैं ये इतन प्रसिद्ध हैं कि यह किसीके विरिध नहीं ऐसा स्वप्न ही निकलेगा। अनेक जगों का ये भावा के ममान पालन करत हैं। घण्टक कजरी "लेक लावनी दुमरी कटीकल बोर्न-डोली उसक गहों ये छन मित्र कुल है।"

बानू रामचन्द्र के हृ में जिस चरित्र का प्रवेश नहीं किया गया है, उसका स्पष्ट है कि इस नाटिका में किसी के विविध सामाजिक मित्र एक व्यक्ति के जीवन से संलग्न हैं वह सबके मारतेंदु ही हैं। इसी बातका स्वपार प्रस्तावना में विस्तृत स्पष्ट कर देता है, और अपने मन में उस मर कर कहता है कि हा समस्त शिरोमणि। कुछ बिता नहीं, संग ला बला है कि किना भी दुःख हो उसे मुक्त ही मानना। लोग के परिचय का समय

नाम और कीर्ति एक का परित्याग कर दिया है और जगत् से विरहीत गति बनकर तुने प्रेम की उन्मत्तता खाई की है। क्या हुआ जो निर्द्वैत ईश्वर तुसे प्रपन्न भाकर अपने ओह में रखकर भायर नहीं देता और खस काग तेरी निज एक नई निहा करते हैं और तू संसारी बैभव से सुखित नहीं है।

मित्र तुम ता दूसरों का लपकार और अपना लपकार दोनों भूल जाते हो तुम्हें इनकी निहा क्या ?" यही तो प्रेम की उन्मत्तता खाई करनेवाली और ओह की निहा-सुखि की निहा न करनेवाली प्रेमवाहिनी का स्वरूप है। अनेक लोकधर्मों में प्रेमवाहिनी के ऐसे ही स्वरूप का निरूपण मिलता है और मीरा—जैसी प्रेमवाहिनी ने इस आदर्श को ही अपने जीवन में परित्याग किया है। संभवतः इसीलिए मरतेन्दु ने इस नाटिका के नायी-पाठ में अपने को ही 'प्रेमवाहिनी' कहा है —

‘जित तुन नम किया जानि जिय कठिन जगत्-जंवाळ ।

जयतु खाया सो प्रिय कपि प्रेमवाहिनी बाळ ॥’

नाटिका के सम्मन्वय का यही रहस्य प्रतीत होता है।

### भाषा

मरतेन्दु के जीवन - काल में हिंदी-उर्दू का सगुना काफी पुराना और ऊँच हो गया था। हिंदी-उर्दू के इस समय की ऊँच बहुत गहरी थी वह नाट्य में राष्ट्रीयता और साम्प्रदायिकता बहिष्कार और देशप्रेम आदर्श - जन्म और साम्राज्यवाद तथा सेप्रेमिज्म जगता और ललक विवेकी छासखों का समता था। परंपरा से बनी जाती हुई बात की भाषा हिंदी का विरोध और उर्दू का समर्थन करने में अंगरेज और मुसलमान दोनों ही एक मन थे। हिंदी और उर्दू का सारा अन्व बड़ी भाषाओं को राष्ट्र की आदर्श-केना का प्रतीक समझ कर ही मैकले ने अपनी कुरबात योजना द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में बहिष्करण कर दिया था। शिक्षा के क्षेत्र में अंगरेजी की प्रतिष्ठा करके अंगरेज सरकार ने दसमरों और बदमरों की भाषा फारसी रख दी, जो मुसलमानों के समय से बनी आ रही थी। मुसलमानों के काम में न्याय नाम जानबूझी जगता की संख्या कैदियों पर मिलने लायक ही नहीं थी इसीलिए फारसी से काम चल जाता हुआ। पर इन परिस्थिति

काक में अब जिसे जिसे में भरतर्षे कुछ गई तो फरसी के करम जनता को प्रतिदिन मनुषिवाओं और कठिनत्यों का अधिकधिक मनुभव हान गया। अतः निश्चय होकर सरकार ने सन् १८९३ (सन् १८३९ ई.) में इस्तह्दामाने निश्चय कि अस्तवर्ती सब काम देश की प्रचलित भाषाओं में हुआ करें।

इस इस्तह्दामाने में स्पष्ट कहा गया है कि बोली हिंदी ही ही असल भाषा की स्थान पर फरसी भी हो सकते हैं। और की बात है कि यह उचित व्यवस्था बनाने न पाई। मुसलमानों की ओर से इस बात का भार उठाने हुआ कि इस्तरों में हिंदी न रहने पाए, उन्हें बचाई जाय। उनका एक बराबर बनता रहा यही तक कि एक बड़े बाद ही अर्थात् सन् १८९४ (सन् १८३७ ई.) में उन्हें हमारे प्रांत के सब इस्तरों की भाषा का ही गई।” १ अगले बरस भी

सरकार की ओरसे जब जगह जगह महरसे सुनने की बात पड़ी और सरकार यह विचारने लगी कि हिंदी का जगह सब विद्याधियों के लिए आवश्यक रखा जाय सब प्रभावशाली मुसलमानों की ओर से गहरा विरोध बहा किया गया।” २ इस विरोध का परिणाम यह हुआ कि सरकार ने सन् १९०५ (सन् १८४९) में यह सूचना प्रचारित की :—

ऐसी भाषा का जानना सब विद्याधियों के लिए आवश्यक ठहरना जो मुक्त की सरकारी और इस्तरों बनाने नहीं है। हमारी राज में ठीक नहीं है। इसके सिवाय मुसलमान विद्यार्थी जिसकी संख्या देखी बड़े में बड़ी है इसे अपनी नजर से नहीं देखेंगे।”

इससे यह स्पष्ट है कि हिंदी-उर्दू के इस लड़ाई में अंगरेज सरकार राजनीतिक कारणों से मुसलमानों के साथ थी। सरकार जानती थी कि हिंदी जनता की भाषा है उस प्रस्तावन बर्न का जहाँ जगत्प्राप्तिक प्रवृत्तियों को उभराना और उन्हें चुनी हूट देना है। इसीलिए वह उर्दू का समर्थन करके प्रतिस्पर्धित्वियों का संगठन का मुद्दा करती जाती थी। सर सिविल जैसे मुसलमानों के सुप्रिया इस्लामी मत्वाय का स्थान पर उर्दू की ओर में देश भर में आया धार्मिक साम्राज्य

१ आबाम रामचन्द्र शुक्ल हैं सा का इ प्रवृत्ति सरक्षण पृ. ४११-४२ ।

२ आबाम रामचन्द्र शुक्ल हैं सा का इ प्र स पृ. ४३३ ।

## मातृसंस्कार मारतेंदु

कैलाशा बाहते थे और ये इसी के द्वारा मणिष में अपनी राजनीतिक सत्ता पुनः प्राप्त करने का स्वप्न देख रहे थे। कमालतर में पाकिस्तान के रूप में उनका यह स्वप्न सत्य हो गया। तत्पर्य यह कि उर्दू एक ओर तो बँगरेजों के हाथ में देश को बिराजत तक परतंत्र बनाये रखनेवासा पाशा बी, तो दूसरी ओर प्रतिस्त्रियावासियों और सम्प्रदायवासियों के दुर्ग की दुर्गम बहारौबारी थी। बहुत से बँगरेज और बोरोप्रियन 'मन्वदधी पिते के कबाल से उर्दू का पक्ष ग्रहण किए हुए थे। पार्सा व ठाही नामक फरासीसी विद्वान् के कलम से यह बात स्पष्ट हो जाती है —

हिंदी में हिंदू धर्म का आभास है — यह हिंदू-धर्म जिसके मूल में बुलपरस्ती और उस के आनुवंशिक विधान हैं। इसके विपरीत उर्दू में इसलामी संस्कृति और आचार-व्यवहार का संभव है। इसलाम भी 'सानी' मत है और एकेस्वरभाव उसका मूल सिद्धान्त है। इसविषय इसलामी सहवीर में ईसाई या मसीही सहवीर की विशेषताएँ पाई जाती हैं। मैं समझता हूँ कि सुसम्माल लोग कुरान को तो आसमानी भिन्न मानते ही हैं, ईसाई की भिन्न को भी बरवीकर नहीं करते, पर हिंदू लोग मूर्तिपूजक होने के कारण ईसाई की भिन्न नहीं मानते।”

इस प्रक्रम में मारतेंदु ने हिंदी के अम्बुत्थान के अम्बोत्थान का नेतृत्व किया। उन्होंने इसे इतना बहुमुखी बना दिया कि वह उस व्यापक भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन के लिए क्षेत्र निर्माण कर सक्षम, जो आगे बसकर बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी आदि महात्मा नेताओं के द्वारा प्रवर्तित हुआ। तत्पर्य यह कि मारतेंदु जी ने राष्ट्रीय दृष्टि से हिंदी का समर्थन किया था और उही दृष्टि से उर्दू का भी भोर निरोध। उनकी इस भावा-बोध ने उनकी मार्ग-ज्ञान को भी प्रभावित किया। हिंदी के अम्बोत्थान को प्रवर्ति प्रदान करने के लिए उन्होंने छोटे छोटे नाटकीय संवाद और हस्त लिखे, जिनमें मारतेंदु के ये नाटकीय संवाद उस परंपरा के अंतर्गत आते हैं। जो 'मोहे सोने की छपरी' आदि कृतियों के रूप में रचितगत में अस्तित्व रही। मारतेंदुजी के एक नाटकीय संवाद का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रसंग को स्पष्ट कर देगा।

१. यही पृ. ४३५.

२.—दे० मारतेंदु जी की विहसि यदि बचन सुना मई १८७९ ई० मारतेंदुजी का प्रसिद्ध मार्ग 'निज भाषा उन्नति आई, सब उन्नति की मूल।

बह संवाद सम् १८७२ ई में हरिद्वार में मशीन की १५ अक्टूबर की संख्या में दो मित्रों का वार्ताव्यप (कुलपासक और निदेशक) दो मित्रों का समागत) 'बीरेक से प्रकाशित हुआ था। आरंभ में भी वहाँ बह की निर्देश पर दिया है कि वह १० मिनट में समाप्त है।

इस संवाद में कुलपासक आकर विषय से कहता है कि 'बह अतिर नप्पी गया था। वहाँ के मित्रों के अनेक परिवारों (और अनेक मातामहों भी) एक परदत्त अन्धता के पीछे पड़े हैं और उसे देख से निश्चयता चाहते हैं। इसे किसी के द्वारा न मारा है। प्रतापी साधुवर्ग के रक्तस्राव में इसका वन्ध हुआ है और रूप-गुण में अपनी रूपवती माता से भी बढ़कर है।'

विषय—जन्म कोई इतनी कमाली हो तो क्यों देखे वहाँ।

कुलपासक—उसके नाम में वे सबे ही बीरे हैं।—वीर—सब ठीक से दो देवी बाँकी लुटी है। सब है विषय में इस संसार में रूप दो ही का दिया है। हाथ में कूबरी को कर्मिण में तुम्हारी प्यारी निर्माणी को बह अपठ की बात है।

× × ×

विषय—बह ईश्वर का कोप अन्धता मतिप्रम है नहीं वे सब ऐसी अन्धकस्या को अपनी आँखों से बिकल करने का करापि हठ न करते। हम किछ की कई हमन हट से बचा और बन्नों से तुला भी हैं कि अपनी दम्ब अन्धकार हाथ को पाँव बल को हाथ बल को नाक का वन्ध, बाल को नाक मात को कमी बहुत ही नाक, बहुत स बाल कमी सिर नहीं कमी पैर नहीं, वहाँ तक कई हमने ऐसी तुन्दर सब अंग से सम्पूर्ण सुगरी गयी ली नहीं तुनी। यहाँ तक ली तुमने में आया है कि जब यह ओंति ओंति के बने बरसली हैं उसके पर के अंग भी उसे नहीं पहचान सकते। देखिए उसके दो एक सम्प हम आप को तुमने जगत् 'तुम्हारे' मित्राय शरीरक सुवातिक केने मपुर माक्स होत हैं। यह सम्प तुम हमारा मन हाथ में नहीं रहा और यही सुनी कि—

'सब तजि हरि मजि। किसी मकतय में चलि।'

में पहले ही संकेत कर चुका है कि उर्दू के समर्थन और प्रचार का आन्दोलन एक राजनीतिक पर्यवस था इस संबंध में भारतेंदु इस तथ्य को अत्यंत सरल और सरस शब्दों में जनता तक पहुँचाने का उपक्रम कर रहे थे। इस प्रसंग के उनके व्यंग्य का प्रतिबल अत्यंत सार्थक, सुटीका और ठीक समय पर बैठने वाला है। अंग्रेजों के शासन में देश को अंधिर जगती - बना वाला है। दिल्लीवादी अर्थात् उर्दू अपनी स्मरणी माता 'फारसी से नी अधिक देश के लिए बातक सिद्ध हो रही है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से वह एक सर्वोत्तम सृष्टि है, वह जनता की अथवा किसी जनसमूह की भाषा भी नहीं है और जनक प्रकार की दुरमिर्स्थियों को बरितार्य करने के लिए निश्चित निहित लक्ष्यों के लोग उसका दुरुपयोग कर रहे हैं, वह बात उसे अनेक परिभाषा (अनेक माता-पितावादी भी) कह कर स्पष्ट कर ही गई है। उर्दू की स्थिति अवैज्ञानिक और मौखी तथा उसकी उच्चारण-प्रणति अमरातीय है, वह बात भी जन-साधारण के लिए अत्यंत सुबोध शैली में कह ही गई है।

उर्दू के पक्ष में आन्दोलन करनेवाले पत्र और पत्रकार जैसे ही हिंदी का कुछ कित होते देखते थे अथवा किसी को उसका समर्थन करते पाते थे तो तुरंत पुकार मचाते थे कि उर्दू की हत्या हो गई उसके साथ जोर बन्द्याम हुआ। ऐसी घटनाएँ उन दिनों बहुत होती रहती थीं। ऐसी ही एक घटना का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन उर्दू का स्वागत नाम के एक बहुत छोटे प्रकरण में उन्होंने किया है। वे कहते हैं —

अमीन इस्तिस्लूट गख्त और बग़लस अखबार के देखने से हात हुआ कि बीबी उर्दू मारी गई और परम अहिंसात्मक होकर भी राजा शिबप्रसाद न यह दिया की — हाय हाय ! क्या अंधिर हुआ माना बीबी उर्दू अपने पति के साथ सती हो गईं। यद्यपि हम कहते हैं कि अमी साहे तीन हाथ की ऊँटनी सी बीबी बर्नू पाणुर करती जीली हैं, पर हमको उर्दू अन्धकारों की बात का पूरा विश्वास है जो हो बहरहाल हम उर्दू का गम बाजिब है" तो सी हम स्वापे का प्रकरण बहो सुनाते हैं। हमार पाठक लोगों को समझायावे तो इसने

हिन्दी भाषा-साहित्य और रंगमंच की गीमांसा

की सीगन्ध है क्योंकि हावा — तमासा यही भीनी उर्दू रंग रंग की पट्टी  
बनी जवान कटौ मरी है ।

इस प्रकरण में रूस रूस कर मरा गया हावा और रंगमंच सबकुछ — संवेद्य है ।  
इस प्रकरण के अंत में उन्होंने अरबी फारसी पत्तो पंजाबी भाषि उर्दू की  
गिमांसाओं को शोक में छाती पीटते और रुदन करते हुए दिखाया है । उनके  
रदन में उर्दू भाषा और साहित्य की सारी वस्तुओं को इन दो पंक्तियों में बनी  
बनीसे कह दिया गया है :—

पात फटोसी हाय हाय । यह कस्तुरानी हाय हाय ।  
वरन जुबानी हाय हाय । शोक बयानी हाय हाय ।  
फिर मर्दि आनी हाय हाय ।



## भारतेंदु के नाटकों का क्रियाफल्य

नाटक रस काय है अभिनेयता और रंगमंचीय उपबोधिता की दृष्टि से भी उसकी रचना होती है। जिस दृष्टिवादी बहुसंख्यक जनता नाटक देखती है इसलिए उस सब प्रकार के दृष्टियों के मनोरंजन का उत्तरदायित्व भी सफलता पूर्वक वहन करना होता है। चापत्य यह कि नाटककार को प्रतिपक्ष अभिनेताओं की योग्यता रंगमंच की आवश्यकता तथा दर्शकों की रुचि को दृष्टि में रख कर बनना होता है। जिस भाषाओं का अपना विशिष्ट रंगमंच है उनके देखकों का इस कार्य में विफल करिनाही नहीं होती परन्तु हिन्दी वैसी भाषा में जिसका जब तक कोई अपना रंगमंच ही नहीं नाटक-रचना वस्तुतः देखकों की चर्चारी है जिस पर भारतेंदु जी सब प्रकार से खरे उतरते हैं। फलतः यह दिखाना जा चुका है कि भारतेंदु जी न बड़े विशाल क्षेत्र से अपने नाटकों के लिए सामग्री का चयन किया है। इस सामग्री का प्रयोग उन्होंने नाटकीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सफलतापूर्वक किया। यह महत्त्व की बात है। वे यह कभी नहीं भूलते कि अभिनीत होने में ही उनकी रचनाओं की सार्थकता है और अपने नाटक द्वारा उन्हें एक निश्चित समय तक दृष्टक-मन्यता की मनोरंजन करना है। उनके नाटकों की प्रस्तावना से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'भ्रमबोधिनी' की प्रस्तावना में परिपात्रवर्क सामग्री से कहा है —

परन्तु मित्र बातों से तो कम बखेया न, देखो ये हिन्दी-भाषा में नाटक देखन की दृष्टा से आय हैं। इन्हें कोई खेद दिखामो।”

इस कथन में 'हिन्दी भाषा में नाटक' शब्द पर जो गौरव है उससे प्रष्ट होता है कि उन्हें हिन्दी-भाषा में नाटक बनाने वालों को सब प्रकार सन्तुष्ट रचना



अनीष्ट था। सर्वहार्दिकता की प्रत्यागता में जो उनकी दृष्टि दर्शकों पर पड़ी हुई प्रतीत होती है। सूत्रधार कहता है—

अहा! भाव की सम्पत्ति भी बन्न है कि इतने गुणक और रसिक कोमल एकत्र हैं, और सबकी इच्छा है कि हिन्दी-भाषा का कोई नवीन नाटक बने।”

इस कथन का सारांश हिन्दी भाषा के नवीन नाटकों में दर्शकों की बढ़ती हुई रुचि का पता देता है। इस कथन से यह भी प्रतीत होता है कि मारटेंहु जी ने जन-साधारण से लगाकर विशेषज्ञों गुणक और रसिक काय तक को दृष्टि में रख कर अपने नाटक लिखे हैं। इससे सिद्ध है कि वे नाटक-प्रचलन प्रारम्भ करने के पहले अपने कार्य की शुद्धता को अभीर्गोषि समस्त युके से। उनकी इच्छा थी कि सब प्रकार के दर्शकों का साधुभाव ही नाटक की सफलता का मानक माना जा सकता है।

परन्तु दर्शकों का मनोरञ्जन-भाव मारटेंहु जी को अभीष्ट नहीं था। उन्होंने अपने 'नाटक' नामक निबन्ध में लिखा है :—

आमजन की सम्यक्ता के अनुसार नाटक रचना में रोदन-कल बातचीत निरूपणा बहुत आवश्यक है। नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई वराम शिक्षा अवश्य पावें।” अरस्तू<sup>१</sup> जानबुद्धेन<sup>२</sup> पेर क्लरनी<sup>३</sup>, पोन्डावी<sup>४</sup> बेन जानसन<sup>५</sup> कर्नूर<sup>६</sup> लैसिप<sup>७</sup> आदि कोरापीस

# 1 Aristotle's Poetics 'Purgation theory'

२. मानसिक अतन्त्र द्वारा चरित्र-संशोधन की सर्वोत्तम ही वस्तु (नाटक का) मुख्य ध्येय है। ऐम एसे भाषा कैम्ब्रिज पोषणी।

## 3 Discourse de l' 'utilite' of des parties du poeme dramatique (1660)

## 4 Memoires (1787)- Comedy will correct laughter

## 5 Timber, or Discoveries (1641)

## 6. A Discourse upon comedy (1701)

## 7 Hamburgische Dramaturgie, No 12 ,

भारत की नाटक को ऐसी ही सीढ़ियाँ रखना मानते हैं। यूरोप में मोझियर और याजियर जैसे अनेक नाटककार और भिन्न भी होते रहे हैं, जो कोरे मनोरंजन को नाटक का सम्यक् मानते रहे। पर, हमारे देश में वेद-सम्बन्धन को सार्वजनिक व्यवसाय सार्वजनिक बनाने का जो उपाय आदर्श महर्षि भरत ने नाटकों के लिए निश्चित किया सम्पन्न सब नाटककार उसी सिद्धि का प्रयोग करते रहे। प्रचार-मेव से मारतेंदु की भी अपने नाटकों द्वारा इसी आदर्श का प्रतिपादन करने की ओर उन्मुख थे। प्रसिद्ध भारतीय विद्याविद् डा० फ़तेह सिंह ने लिखा है—

अनेक रसात्मक तथ्यों को रस-निष्पत्ति के लिए उपयुक्त विधानों के रूप में एकत्र करके नाटक न केवल मन्य कर्मों में प्रयुक्त हो सकता था अपितु धर्म-उत्साहनाम का एक प्रबल साधन भी हो सकता था और सम्भवतः बहुत काम तक वह इस व्यवस्था में रहा ही।<sup>१</sup> मारतेंदु की नाट्य-समस्या का जो निदोषण पहले प्रस्तुत किया था कुछ है, उससे यह स्पष्ट है कि वे भारतीय कला को अपने नाटकों द्वारा युग-धर्म की शिक्षा देना चाहते थे। यह धन मारतेंदु की जिस कुशलता के साथ सम्पादित कर रहे थे इसकी ठीक ठीक समझने के लिए हमें अपने को उस दर्शक मण्डली के बीच बैठा हुआ धर्मित करना चाहिए, जिसके लिए वे नाटक-रचना कर रहे थे।

इसके अतिरिक्त वह रम्यत्व भी हमारी धारणा में पूर्ण रूप से जग जाना चाहिए, जिससे ध्यान में रख कर उनके नाटक लिखे गए थे। उनकी दृष्टि अपने समय के रम्यत्व की सब परम्पराओं पर पहुँची थी। जैसा पहले से स्पष्ट होता आ रहा है, मारतेंदु की जो अपने समय में बार प्रचार का रम्यत्व मिला एक समशील्य का वृद्धा रासलीला का तीसरा नीटोची का और चौथा पारसी कर्मियों का। उस समय की नाटक-प्रेमी जनता इन्हीं चारों प्रकार के रम्यत्वों से मनोरंजन उपभोग करती थी। धार्मिक प्रवृत्ति के लोग रासलीला और रास लीला के प्रेमी थे लीला कर्मियों में रुचि रखने वाले लोग निरुद्धा अधिष्ठित और प्रामीष नीटोची के अनुयायी थे। पारसी कर्मियों का उदय मीथेजी शिक्षा और संस्कृति के प्रचार के साथ साथ कर्मों में हुआ था अतः वही की अधिकांश

जनता भारतीय रंगमंच द्वारा सम्पन्न थी। एक ऐसा रंग या जो इन चारों में से किसी से भी संलग्न नहीं था। उसे सीमा और गीटों के रंगमंच से उत्तम नहीं था और भारतीय रंगमंच का वातावरण तो उसे असमर्थ अपूर्ण और असंस्कृतिक प्रतीत होता था। जहाँ भारत में भी भारतीय रंगमंच से इन्हीं चारों से कुछ है<sup>१</sup> अतएव वे जानते थे कि उन्हें अपने माध्यमों द्वारा इन सभी वर्गों के हृदयों को सम्पर्क करना और उनको रसिकों को परिष्कृत करना है, तथा उनके मन में रस के अतीत अलस और अनात्म की अवस्था स्थिति अंकित करनी है। सम्भवतः संसार के कम ही नाटककारों को इतनी प्रतिकूल परिस्थिति में इतना कठिन काम करना पड़ा है। अतः इस परिस्थिति में भारत में वे जो कुछ किया उसका महत्व ऐतिहासिक है।

एक बार वे (भारत में) किसी भारतीय कम्पनी का सङ्गठन नाटक देखने गए थे, जो कलिकाता की अमर इति के आधार पर लिखी गई थी। हास्टर बीनो भी विप्लव हस्त में उपस्थित थे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि कविता सङ्गठन का एक हाथ कमर के नीचे और दूसरा फिर पर रके हुए नीच पदों की पैदाइशों की तरह लालची हुई गायी है। कभी कमर बत खाने तक वे हास्टरों को कोसते हुए विप्लव से बाहर निकल आए।<sup>२</sup>

भारत में वे प्रत्येक प्रकार के रंगमंच पर लेटी जाने वाली कठोरता तथा अर्थों का परिमार्जित रूप प्रस्तुत करके हृदयों की एक सामान्य परिष्कृत रसिक मिलाव करने का प्रयत्न किया। काशी में जो रामलीला धीमाद महाराज काशीराज भक्त-सिरोमणि की कृपा से<sup>३</sup> होती थी उसके लिए उन्होंने असमर्थ सरस पात्र प्रस्तुत किया।<sup>४</sup> रामलीला को भी नाट्यकला के दृष्ट तत्त्वों से विमुक्ति का उन्होंने अमूल्य नाटिक के रूप में उपस्थित किया। गीटों का सम्बन्ध रूप भी बीकानेरी नाटिक में दिखाई पड़ा जिसे भारत में जी मे गीटि-बपक कहा है। भारतीय रंगमंच पर साहित्यिक और सांस्कृतिक शक्तियों का

१ हे हा० भी कृप्य लक्ष्य हूँ 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विचार' पृ १७

२ भारत में प्रस्तावनी रूप से पृ ७०

३ वहीं पृ ७८०

प्रवेश मयवा अधिष्ठान संभव नहीं था परन्तु उस पर खेले जाने वाले नाटक  
का परिष्कृत रूप स्वतः ही उनके पास इतिवन्त्र<sup>१</sup>। यदि कनेक मौलिक  
कथा अनूदित नाटकों में मिल गया। इस नाटकों के लेखन की परिपाटी भी  
उन्होंने स्वयं बनाई और इस प्रकार एक ऐसे रंगमञ्च को जन्म दिया जो उनके  
द्वारा आयोजित खेल-आनन्दोत्सवों के लिए बहुत उपयोगी था। यह रंगमञ्च पंरही  
रंगमञ्च की तरह न था समुद्र केन्द्रित और आडम्बरपूर्ण था और न उसका समान  
इसके स्वाभाविकत्व में किसी प्रकार की अनुमिदा थी। यह रंगमञ्च गीतों की  
तरह किसी भी सार्वजनिक स्थान—मेला—देरी स्थित न था यन्त्रि आदि—में  
जमाया जा सकता था। इसका काम कम से कम वहीं से ही बह  
सकता था, अधिक हों तो अधिक अच्छा।<sup>२</sup> उपलब्ध पत्तों पर का हृदय  
अंकित होत-से उनके अधिष्ठित रूप हृदय-विधान समर्पण और साधकता  
की दृष्टि पर महज मुख्य उपकरणों के सन्निवेश द्वारा मस्तुत किया जाना था।  
इसके प्रकाशक के विधान में क्या स्थितिस्वास्थ्य होता था। अन्तिम  
मने पुराण ही होते थे श्री-नामों के अभिप्राय भी उन्हीं के द्वारा रचना होना  
था। इस प्रकार एक ओर मार्तेंदु लक्ष्मीन विभिन्न रंगमञ्चीय प्रणियों का एक  
नवीन रंगमञ्च में एकीकरण कर रहे थे तथा दूसरी ओर इस नवनिर्मित रंगमञ्च में  
सरलता और सुकरता का विकास करके क' परम्परागत 'मार्तेंदु नाटक की  
सार्वजनिकता और सार्वजनिकता के अन्वय की पूर्ति के लिए भी प्रयत्नशील  
थे।<sup>३</sup> वेद की बात है मार्तेंदु के रंगमञ्च का मूल्यांकन करने में हमारे बहुत से

१ द काशी क 'देविक' ग्रन्थ में १८ अर्थात् १९२० की प्रकाशित  
बाबू गोपाल राम चामरी के नाम संकपी एक लेख का अर्थ—

वर्गान्त ११ पृष्ठों की बात है अब काशी के मार्तेंदु बाबू इतिवन्त्र  
का बहिषा में सत्यइतिवन्त्र नाटक स्वयं इतिवन्त्र बनकर केला था जिसमें  
हिन्दी का पुणेष्ट—हु दिनी-वाला के केन्द्र—बाबू राधाश्याम दास सतीश  
हिन्दी-मेक और इतिवन्त्र ह्यकन जैसे कवियों ने पार किया था। उस समय पत्नी  
और सौम्य का अभाव नहीं था। ऐतिहासिक जो कुछ लेख उस समय बना था—  
वर्गान्त के करद ताल का काव्य मार्तेंदु ने। पर लिखावा था उसकी मरिमा  
पूर्णमिद सतिवों तक ने नहीं थी। उस समय की कलमदर पाइय की मम न  
१०

विद्वानों ने इस पक्ष को पूर्णतया मुखा दिया है और ऐसी बातें कही हैं जो मुख्यतः सहजमुक्ति और वस-प्रेम की परीक्षाएँ न होकर उनके अतिनिर्देश और पूर्वाग्रह आदि को प्रकट करती हैं। वस्तुतः आधुनिक समाजशास्त्रीय प्रवृत्तियों से सम्पर्क रखने वाले सभी विद्वान् इस बात को स्वीकार करेंगे कि जमनालाल के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व की दृष्टिसे ये इस प्रकार के रंगमंच ही के लिए एक समुज्ज्वल और समुचित भविष्य निर्मित हो सकता है। वर्तमान इस के सामाजिक रंगमंच के अनुकरण पर प्रभावित इंग्लिश पीपुल्स थियेटर आदि की लक्ष्यमिता इस बात का प्रबल प्रमाण है।

भारतेंदु को एक अत्यंत कुशल नाटककार की प्रति अभिनेताओं का भी बड़ा आनंद था। अनेक नाटक नामक निर्बंध में उन्होंने लक्ष्मणजी मजक व्यावहारिक निर्देश दिए हैं। भारतेंदु जी को ऐसे लक्ष्मणजी अभिनेताओं की अभिनेताओं से बराबर सम्पर्क निश्चायक रूप साक्ष्य की माफ़ग भारतेंदु जी से आपस किया था कि रामजी सेव्या का अन्तर्गत में विस्तृत रूप धीमे सुना रहा है तीन बरस अन्तर्गत इस पर एक इतिवृत्त बने हुए भारतेंदु ने स्वयं ओवरटेक किया था और एक-दो-तीनों में कदाकाल मारे गढ़ि-गढ़ि मच यह भी। पार्श्वों का सुदृढ उच्चारण हमने, तभी समय हिन्दी का नाटक स्वर पर सुना था। वहीं हिन्दी के बड़े-बड़े केन्द्रक रहते हैं, वहीं जी हिन्दी के नाटक हमने देखे हैं लेकिन उनके नामों का उच्चारण और वर्ण-विज्ञान बख़ूब बड़ी कदना पड़ता था कि अच्छे अच्छे नाटक मिले रहने पर भी हिन्दी का प्रसार नाटकों के स्वर पर होना को अभी बहुत दिन बाकी हैं।<sup>१</sup>

१—दे० डा० सोमनाथ गुप्त का हिन्दी नाटक-साहित्य का इतिहास पृ० १४०

डा० चौ कुलनाथ का आधुनिक हिन्दी-साहित्य का निष्पत्ति पृ० २१ और २९

डा० अमी लाल वाजपेयी का आधुनिक हिन्दी-साहित्य पृ० २४४

१—डा० प्रवरलाल हारा प्रभावित भारतेंदु नाटकधरती द्वितीय भाग पृ० ४९१।

१. 'नाटककार मारतें' ।

नया जोर रहती थी जो उनके द्वारा प्रचारित युगधर्म की प्रभावशाली अभि-  
मन्यमान व्याख्या प्रस्तुत कर सके। ऐसे अभिनेता थे व्यक्ति ही हो सकते थे  
जिनकी लक्षणात्मक जनता की रुचि और हित का समान ध्यान हो। ऐसे लोग  
नामने आये इसलिये मारतें ने स्वयं अभिनय किया। उन्हीं की प्रेरणा से  
वं प्रभाव मारतयज मित्र और वे बाबूजी महाराज जैसे जन-जीवन में ऐसे हुए  
विशिष्ट प्रतिभाशाली केवल रंगमंच पर उतारे। जगते भी उनके द्वारा स्थापित  
इस आदर्श का पाठ्य पुष्परसोक महामना वं मदनमोहन मालवीय और  
राजर्षि पुण्योत्तम दास टंडन जैसे व्यक्तियों ने अभिनेता के रूप में रंगमंच पर  
अद्वितीय होकर किया। ऐसा प्रतीत होता है कि मारतें जी के नाटक की सारी  
कर्मिता और सार्वजनिकता के आदर्श को परिचित कर सकने वाले लोकहित  
की मादना से मन्त्रित अभिनेताओं की संख्या का अधिक होना संभव नहीं  
था। अतएव उन्हें साधारण व्यक्तियों से भी काम चलाना पड़ता था। अल्प उम्र  
समय प्रत्येक नाटकीय आयोजन में सब कुछ मारतें के आदर्श से अनुप्राणित  
कर न कर अभिनेता रहता होना। ऐसे व्यक्ति के सहयोग के बिना मारतें  
क सम्भावनात्मक रंगमंच क अन्वेषण होने की कल्पना नहीं की जा सकती।  
वस्तुतः मारतें ने अपने नाटकों में माग देने वाले सब प्रकार के अभिनेताओं  
के स्थान में अपन को रखकर उनके लिए ऐसे संवाद लिखने का प्रयत्न किया  
है जिनसे उनमें से प्रत्येक क लिए निश्चित पात्र का चरित्र की सम्यक् अभिव्यक्ति  
हो सके है। इतिवन्त सर्वेक कल्याण, कल्याण, सौम्या सावित्री सत्यवान  
आदि के कथापकवन उन्होंने अपने और प्रतापनारायण मित्र जैसे अभिनेताओं  
को हृदि में रखकर लिखे हैं तो वीरबल, बपरगाई, बरिसिंह और गणपति  
जैसे पात्रों क संवाद उन्होंने अन्य अभिनेताओं क लिए लिखे हैं। उनके रंगमंच  
पर किसी का अभिनय भी पुष्प ही करते थे। मारतें जी जानते थे कि इस  
काम में स्वाभाविकता लागू करनी पड़ेगी। उन्होंने लिखा है नाटक क जो  
सब अंश जीवन्त कटु प्रदर्शन होते हैं उनमें माद हाव देना, प्रवृत्ति, जीवन

१-१-१ बाबूजी महाराज द्वारा स्थापित दिव्य नाट्यमन्दिर द्वारा  
अभिनीत कल्याण नाटक में महामना मालवीय जी ने अभिनय  
किया था।

संगत अर्थव्यवस्था प्रकार के—अर्थव्यवस्था का उन्नत स्तर को अन्वेषण नहीं करना पड़ता किन्तु पुरुषों को भी वेद धारण के समय अन्वेषण द्वारा वह माल दिखाया पड़ता है<sup>१</sup>। इस दृष्टि से ही उन्होंने औ—पानों के लिए ठिके गए संवादों में अनेकानेक अधिक कोमलता सुकुमारता और सरसता का समावेश किया है। इस दृष्टि के मनोवैज्ञानिक मर्म को जो विद्वान् नहीं समझ सकते, उनका जिने मारतेंदु का वह प्रबल रोचकता की सीमा लक्ष्यता हुआ प्रतीत होता है<sup>२</sup>।

इस विवेचन में जिने मारतेंदु के नाटकीय कौशल के गुणगुण—ज्ञान का ब्रह्म-निक आधार प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। वे अपने नाटकों के अभिनेताओं के लिए संवाद परिकल्पित करके विविध पात्रों के चरित्रों की मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं, वह में स्थिर चुका हैं। उनके ये चरित्र जिस कथावस्तु की दृष्ट-भूमि में आधार प्राप्त करते हैं, उसके विधान की उनकी कथा अनेक दृष्टियों से आकृष्टनीय है। उन्होंने पुराण इतिहास जनधुति सामयिक प्रसंग और स्वयं अपने जीवन से सुझाये कथाओं को चुनकर काम्य-मूर्तिमा तथा उच्च काम्यता द्वारा उन्हें सरस—सजीव किम उपनिषदों के रूप में चरित्रित कर दिया है। उनका बाल्य-विधान की पहली लक्ष्यप्रयत्न विशेषता यह है कि वे कथा-वस्तु के अन्तर्गत नामा इस-संज्ञक सुख-दुःखमयी ऐसी अवस्थाओं की निरन्तर सृष्टि करते चसत हैं, जिसे छोटी-बड़ी विविध अस्पष्टावृत्त परिस्थितियों आविर्भूत होती हैं। उनका अन्वेष नाटक से इसका उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'नीलद्वी' में ता सुख-दुःखमयी अवस्थाओं और अस्पष्टावृत्त परिस्थितियों की भरमार है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' के अतिरिक्त उनके अन्य सभी नीलद्वी नाटक छोटे-छोटे हैं। पर इन छोटे-छोटे नाटकों में भी उन्होंने जिनकी अस्पष्टावृत्त और विस्मयोत्साहक परिस्थितियों की विविध परिकल्पना की है उसमें कम ही नाटककार इनमें कहीं उर्ध्व विपणन पर प्रसारीत कर पाए हैं। 'नीलद्वी' उनका एक बहुत छोटा नाटक है जिसमें कुल इन छोटे-छोटे दस हैं। इस छोटे से नाटक का अन्वेष एक एक नई आधुनिक परिधि

१—बा० अमरलोचन सम्पादित 'मारतेंदु नाटकवर्णनी' दि० आ प्रवेशिका पृ० ४४५।

२—दे० डा० रामविद्याल साया कुन मारतेंदुसुग पृ० ६१।

लेखा जाता है। प्रायः इसी आधार के अनेक पक्षाधी भी आधुनिक हिन्दी साहित्य में मिलते हैं। इसका अन्धा निश्चय विपन्न विपरीतप्रमाणों नामक माध्य में मिलता है जिसमें नियमानुसार आकाशमार्गित का व्यवहार हुआ है। यह अपेक्षाकृत एक कठिन प्रयास है, कारण इसमें एक ही अभिनेता भौतिक और सत्त्विक अभिनय के जोता से अपने स्वयं-कथनों द्वारा व्यक्तिपरिस्थितियों की कल्पना जगाता है। मारतेहु के इस एक अंक के छोटे से भाग में बड़ी विस्मयोत्पन्नता और विचित्रता है।

प्रारम्भ में महात्माय किसी को कहते सुनता है कि परगरी पैनी सुरी ताहि न माया कय राखन हू को सिर गयो परगरी क संय। भंडाबाब बहीरा के महाराज मन्हारराज का मुसाहब है, हम कथन में उसको असल महाराज पर आक्षेप का आभास मिलता है। अतएव वह दुरन्त बड़े यत्न से उत्तर देता है—

राखन मे बस सिर दिए, जनक मंदिनी काज।  
जो मेरो हक सिर गयो, तौ यामें बह लाज ॥

और फिर दुरन्त ही महाराज मन्हारराज के पदमार्ग का मंगलकोष करने बालों का कुनौली देता हुआ कोष से कहता है 'यह मेरा बालों पर भी हमन तुम्हें और कृष्णाबाई दोनों को न छुड़या तो मेरा नाम भंडाबाब नहीं। परन्तु तत्काल वह असर किसी को कहते सुनता है, 'इसी उपद्रव से न यह र्णित हुई'। यह सुनते ही मालों, उसकी चिरी-चिरी, मूलने लगती है। उस ही उसे मार्ग्य होता है कि यह बात महाराज मन्हारराज के संबंध में बड़ी गई है, बिसे ही वह भीनी बिल्की बनकर बड़ी विस्मयता से पूछता है, 'ए भाई क्या हम ता कहे जाणो। अब उसे ज्ञात होता है कि महाराज गरी से उत्तर दिए हाय हाय। महाराज या तो यह बड़ा संताप प्रकट करता है हाय महा अनय! हुआ। महाराज नहीं गए, हिन्दुस्तान गया।' किन्तु फिर ही उस ज्ञान होता है कि '(जिसके बल से वह कहता था) वह मन्हारराज अब भीरने का नहीं बिसे ही वह संताप को भाव में लौट कर उसकी नि करने लगता है। और नहीं तो क्या है मन्हारराज



अस्वाभाव के उपरान्त हमारी बुद्धि मूक कथावस्तु पर जाती है। मर्त्य प्रमाण को अत्यन्त तिर्यक्, मिश्रित विविध एवं अस्पष्ट बना कर मारतीय जन दर्शक को हृदयमग्न करना चाहते हैं, इसीविध में आधिकारिक कथा का साधक है कम प्रासंगिक कथा का बोध करत है। इसके परिणामस्वरूप जनक पात्रों के चरित्र में अन्तर्गत छद्म नहीं होती और दृष्टि की दृष्टि का सत्य स्वयम्भूत रूप में जनको सुविधा हो जाती है। निष्कर्ष कुछ मात्रा-कारों ने प्रासंगिक कथा का अधिकारिक प्रयोग आधिकारिक कथा की विपुल प्रमाणवादी बनान के लिए ही किया है। परन्तु आज के अत्यन्त व्यापृत सामाजिक जीवन की अनेक परिस्थिति से उत्पन्न समस्याओं के कारण इस विचार के उन्मूलन का अन्वेषण नहीं रह गया है। मारतम्बु इस अन्वेषण को पृथक् पृथक् के। इसलिये उनके कथावस्तु के विन्यास में पात्रों में पलायन और प्रकटी नामक अथवाप्रतिष्ठों का प्रयोग बहुत सीमित रखा गया है। ठीक ही पात्रों में सत्य हृदयचर 'नीलवती' और चन्द्रावती में इनके प्रयोग हैं। हृदयचर में वाक्यान्त और 'आपाधिक' आदि के चरित्र में इन के विवाहनाम पलायन नामक अथवाप्रतिष्ठ के उदाहरण हैं। कारण चरित्र की कथा अथवाप्रतिष्ठ अधिक व्यापी है और प्रमाण नामक के चरित्र को सिद्ध करने के लिए ही उदाहरण—पलायननामक चरित्र की—जारी चलाई होती हैं। भैरव चन्द्रावती और चन्द्र की कथा में प्रत्यक्ष रूप से कारण प्रकटी नाम की चरित्र प्रमाण नामक के चरित्र का सिद्ध करने के लिए ही उदाहरण ही उदाहरण की गई है। चन्द्रावती में पलायन नहीं है पर चन्द्रावती की और संस्था के प्रयोग में प्रकटी का अत्यन्त कथात्मक प्रयोग किया गया है। नीलवती में भी चन्द्रावती के ही प्रमाण पलायन का प्रयोग नहीं है। प्रमाण का प्रयोग प्रकटी के अन्तर्गत है। प्रमाण की चरित्र नामिका की चरित्र-प्राप्ति की साधक होती है। पीछराम चरित्र और अठियायी का प्रयोग भी प्रकटी ही है परन्तु इसकी वाक्यान्त विवेकी अथवाप्रतिष्ठों का प्रयोग—चरित्र और भोगवादी जीवन—परम्परा की एक ही प्रमाण करके वैयर्थ्य द्वारा मारतीय और अमारतीय संस्कृतियों का अगर एक करने के लिए हुई है।

भार्यु की ब्रह्म विष्णु और काम नायक सर्वप्रकृतियों के प्रयोग में भी विशेष कोशल प्रदर्शित करते हैं। उनके नाटकों के आरम्भ में ब्रह्म के व्यास के साथ साम-रस्य में जो उत्पुष्टा आती है वह निरन्तर बढ़ती जाती है और याद रसानुभूति में परिणति प्राप्त करती हुई एक अमलार की सृष्टि कर जाती है। इन सभी प्रकृतियों के साथ साथ विभिन्न अवस्थाओं और स्थितियों का भी यथास्थान मुखर होना जाता है, जिससे बसु-विन्यास का कलात्मक तथा नाटक का दृश्य नाट्यमय उत्तरोत्तर उत्थेय प्राप्त करता रहता है। उदाहरणस्वरूप 'नीलदेवी' नाटक के दूसरे दृश्य में ब्रह्म का ब्रह्म किया गया है जिसके साथ ही आरम्भ-ब्रह्म और मुख-संघि का उद्भव होता है। तीसरे दृश्य के अन्त में नीलदेवी और सुन्दर के उत्तर प्रत्युत्तर में आरम्भ-ब्रह्म और मुखसंघि का एक साथ अवतान हो जाता है जिससे पूर्व हमें पता और प्रतिपत्ति दोनों के स्वरूप से जो परिचय हो चुका है उसके आधार पर हम आगे दृश्य में प्रयत्न विष्णु तथा प्रतिमुख संघि के मुखपात का सहज ही ग्रहण कर लेते हैं। प्रतिपत्ति नायक-पक्ष के नाम में जो मुखरपूर्व बाबाई कही करता है और जिसका निरिच्छा आभास भी दृश्य में मिलता है वही पाँचवें दृश्य में अरिछा होकर महाराज सुन्दर के ब्रह्म के रूप में नाम-पक्ष को सकटापन्न करती हुई हमारे सामने आती है। इससे उत्पन्न निरालाङ्गनक वातावरण में एकमात्र महाराज देने वाला नायक-पक्ष का वह ब्रह्म और उरसाह तथा प्रतिपत्ति का नैतिक दीर्घत्व और धातक है जिसका परिचय हमें उभयपक्षों के पात्रों द्वारा अन्त-अन्त मिलता जाता है। चौथे दृश्य में वीरवान सभी हिन्दू सचार्थों के हाथों अपने अपवित्राये जाने की घटना का विवरण देता है, नायक ही साथ अपने वीर के धार्मिक को हम प्रकार प्रकट करता है —

अर ब्रह्म है कुरपान है ईसा है नवी है।

अर ही मेरा अन्ताह है अर राम हमारा ॥

प्रतिपत्ति की इस दृष्टि दुर्बलता के विपरीत नायक पक्ष की सबलता का प्रमाण देवीमिह को इस गर्वोक्ति में मिलता है—'धारी का लड़का है धर की धार धावे तो धीर प्राण छोड़कर लड़े — इतिहास का जो बन्धी बना लेवे पर भी धीर

१ अरामह — गुना है जोम लड़ने आये।

अधुनघटीक का बाकी जीवन के लिए विधित होना आगामी प्राप्ताका के लिए व्यवसाय प्रदान करता है। साथसे और आठवें दृश्यों में हम सब प्रथमप्रधान उपायों को जनरोमर विकास करने वाली परिसंधि तथा प्राप्ताका व्यवस्था के दर्शन करते हैं जिसका (उपायो का) परिणय हमें मुक्त और प्रतिमुख संघर्षों में धनेक कारमिल भका है। इस प्रथम में पायस का प्रभाव विशेषतया उत्प्रेरणीय है जिससे न केवल हमें वक्त विचिर की आधा निराधा विधित बटमाओं की सुचना मिलती है अपितु उस आतावरण का भी पता चलता है जिसके आचार पर करा सब घराब पीकर मस्त होंगे। 'आरों घोर बैठकर कम ही व्यवहार है' इस कथन द्वारा प्राप्ताका परिपक्वता को प्राप्त होकर नियतापि और पर्य संघर्ष को समझ बनाती है। नवें दृश्य में नीलदेवी के इन कथन में — 'मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इनसे एक ही बेर सम्मुख युद्ध न करके कीचल से लड़ाई करना प्रशस्ती बात है — मुख्य पक्ष की प्राप्ति का उपाय सबिक इदमिल हा जाता है। इसलिये विमर्श नाम की छवि सिद्ध हो जाती है। राजकुमार सोमदेव की ओर से इस प्रस्ताव के विरोध में जो आपत्ति की जाती है उसे नीलदेवी उससे काम में चुपके से अपनी सब योजना समझाकर दूर कर देती है। इसका प्रभाव के दूर होते ही पक्ष की प्राप्ति निश्चित हो जाती है अतएव नियतापि समाप्त होकर आगे की इसमें दृश्य में प्रज्ञानम निबहूण और कार्य के लिए द्वार खोल देती है। इसमें दृश्य में कथा के लघुतम लुको का समाहार होकर अधुन घटीक का सब क रूप में हमें कार्य नामक समप्रकृति विजयिनी भारत आशापी के सापत्य के रूप में उस चल को प्रत्यक्ष कराती है जिसका लक्ष्य प्रस्तावनप्रथक प्रथम दृश्य में अष्टाध्या के इन मीठ में दिया जा चुका है —

जनि जनि भारत को दुखानी ।

बीर कम्पक और प्रलपिनी बीर बंधू जग जाती ।

सती तिरोजनि परम सुरम्बर भूमि बल धीरज तानी ।

इनके जल की तिर्हू शीक में समल जुआ कहरानी ॥

कथावस्तु के विकास में जिस आरम्भिक पद्धति का व्यवसायन आरंभ में हमने आठवें में किया है उसका सुखरतम स्वरूप हमें उनके संघर्षों और संघर्षों के प्रयोग में मिलता है। नीलदेवी के इनके और तीसरे दृश्यों में मुख

अधि की स्थापना में उसके विभिन्न धर्मों का बराबर ही प्रयोग किया गया है जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

- संघर्ष** स्थान निर्देश
- उपलब्ध** धारीक—(एक मुसाहब से) अब्दुस्समद जब होशियारी से रहना। यहाँ से राजपूत बड़े काफिर हैं। इन कम बस्तों से मुसा बचाये।
- परिकर** उल्लिखित कवन के उपरान्त कानी धारीक और मुसाहब का कपोपकवन।
- परिष्ठाप** धारीक—कभी उस बेईमान क सापने जड़कर फतह नहीं मिलनी है। मैंने तो धब बी में ठान ली है कि लीका पाकर एक धब उसको छोटे हुए निरस्तार कर लाना।
- विशेष** धारीक—इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार। ईमा की कसम बुराने वाली है हमारा। काफिर है म परजाब का सरदार खबरदार। धरमर है मजूका है जहन्नुम है बला है। बिजली है गरब इतकी है तलवार खबरदार।
- मुक्ति** धारीक—इस बुराने ईमा को है बोले से फँसाना।  
सकना न मुकाबिल कनी जिन हार खबरदार।
- समाधान** बहना राजपूत—तो महाराज जब तक प्राण हैं तब तक मरूँगे।  
हूसरा राजपूत—महाराज जब पराजय तो परमेश्वर के हाथ हैं, परन्तु हम जाना बर्म तो प्राण रहे तक निवा हूँगे ही।
- सूत्रोक्त**—हाँ हाँ इसमें क्या संदेह है। मेरा कहने, ना मजबूत है कि जब लाग सावधान रहे।
- तीसरा राजपूत**—महाराज सब सावधान है। ममपुत्र में तो हमको जोतने वाला पृथ्वी पर है ही नहीं।

संघर्ष

रत्नाम निर्देश

प्रति

सूर्यदेव— 'बीते बी तो तिम भूमि का उद्धार धीर नहीं  
तो स्वयं । हमारे तो योगों हाथ लड़ू हैं और मय  
तो बीते तो भी हमारे साथ है मरे तो भी ।

कारण

मीनदेवी—गर सुना है कि ये कुछ धर्म से बहुत लड़ते हैं ।

उद्देश

बीया राजपूत—महाशय 'हम लोगों को एकाएकी धर्म  
से भी बीतना कुछ शक मात का मस्सा नहीं है ।

मीनदेवी—तो भी इन कुलों से सदा शास्त्रान ही रहना  
चाहिए । धर्म तो सब तरह बरतें ही मैं इसमें  
विशेष क्या कहूँ । स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं  
रहता ।

मेर

सूर्यदेव—सावधान सब लोग रहो सब जाति सगड़ी ।  
जागत ही सब रहें रत हूँ सोमहि नहीं ॥  
कसे रहें कति रात दिवस सब बीर हमारे ।  
धर्म पीड़ सी हाथि चारधामें तिम मारे ॥  
सीढ़ा सुलभन बड़े रहें पीड़ा बभूकन ।  
रहे सुली ही ध्यान प्रति नहि उत्तरे धन ॥  
देखि लेहिसे कसे नामर सवन बहादुर ।  
आमहि तो बड़ि सबभूक नामर बूढ सब बुर ॥  
देहें रत को स्वाव पुरतहि तिनिहि चलाई ।  
को भी इन धन हूँ लभमुप हूँ करहि सराई

इन संघर्षों के साथ ही इस प्रसंग में प्रयुक्तमति भोज की चाहत धारि  
संघर्षों का भी प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार धर्म संघर्षों के धर्मों तथा विभिन्न  
संघर्षों का प्रयोग भी इस नाटक में दिखाया जा सकता है । निर्बल संघि के  
धर्मों के मुकाब प्रयोग से किसी नाटक का उपसंहार हो सकता है । इसका उदाहरण  
मीनदेवी में प्रयुक्त पूर्वभाव और उपसंहार से जमी जाति मिल जाता है । धारणीय  
नियमों के पालन में धारणीय की के धार्मिक धर्म का चितना ध्यान रता है, वह

बात भी इस नाटक के उपसंहार से प्रमाणित हो जाती है जिसमें संस्कृत नाटकों के परम्परामृत काव्य-संहार तथा प्रचलित नामक संघर्षों का समावेश बहुत संक्षेप में एक महीन ढंग से किया गया है। नीलदेवी के—धर्म में सुखपूर्वक सती हूँगी—कथन में प्रथम को और विजयी क्षत्रियों के 'जय-जयकार' में द्वितीय को उत्सव-निष्पन्न कर निष्क्रान्त किया है।

यही पर जिन शास्त्रीय विषयों का निरूपण नीलदेवी से किया गया है वे भारतेंद्र के नाटकों में प्रायः सर्वत्र विद्यमान हैं। नीलदेवी में संघर्ष भावना की प्रधानता और दुष्प्रभावता यदि पाठ्यात्म्य नाटकों के गुणों की प्रमुखता है, तथापि भारतेंद्र ने उसकी रचना का आधार शास्त्रीय ही रखा है, यह तभी प्रकार प्रमाणित किया जा चुका है। भारतेंद्र के अन्य नाटकों में भी ऐसी ही मूल धर्मा मुखारी शास्त्रानुसृतता विद्यमान है। भारतेंद्र की कला के इस गुण को न समझने के कारण ही बहुत से आलोचकों ने उनके परस्पर में भ्रमों की हैं। भारतेंद्र ने संघर्षों और संघर्षान्तों के प्रयोग द्वारा जिन उद्देश्यों की निधि विशेष रूप से ध्यान में रखी है, वे हैं—१ राव भर्तात् अनेक प्रकार के भावों का संचार, २ आदर्श प्रयोग भर्तात् जगत्कार विज्ञान ३ बुद्ध्यात्म्य का अनुपम भर्तात् कथा का ऐसा विस्तार जिससे दर्शकों की सभी अकुण्ठित रहे और ४ योग्य-गोप्य एवं प्रकाश्य प्रकाशन भर्तात् मुख्य एवं दृश्य कथानक का सम्यक् अनुपात। वस्तुतः हृदयों की प्राप्ति के लिए ही क्षत्रियों के इन विविध भ्रमों और संघर्षान्तों की परिकल्पना की गई है। पाठ्यात्म्य नाट्याचार्य प्रायः आदर्श प्रयोग को ही नाटक का आधारभूत ठस मानते हैं। हमारे नाट्याचार्य में निरिच्छ संघर्षों के प्रयोग से यह अधिक चाकला से निष्पन्न होता है। आदर्शप्रयोग की अन्य शास्त्रीय विधियों के समुदाय भारतीय

( स्थल—देखी स्थल कभी हां उसे पूरा करने के लिए ।

१. *The Theory of Drama by A. Nicoll* पृष्ठ २१ २२ निरूपित  
*To the purely external features of dramatic art indicated above*  
*therefore, we may add this other, the constant utilization of the*  
*unexpected leading towards emotional or mental shock indeed*  
*the very basis of plays upon this quality in plot idea.*

नाट्यशास्त्र में पताकास्वागत की भी योजना है जिसका उपयोग भारतेन्दु ने अपने नाटकों में यथास्थान बड़ी कुशलता से किया है। 'नीलदेवी नाटक' में पापल की प्रमाद भुलित और आभागाभागीयता से होने के कारण पताकास्वागत का भव्यत मुन्बर उदाहरण उपस्थित करता है। 'अग्रावली' और 'अथ हरिश्चन्द्र' भाषि नाटकों से भी पताकास्वागतों के प्रयोग के अनेक सुन्दर उदाहरण दिये जा सकते हैं।

### चरित्र-चित्रण

नाटकीय पात्रों के चरित्र चित्रण हाथ ही वस्तु का प्रस्ताव सझा किया जाता है। कथावस्तु किसी न किसी धर्म को सामने रखकर चलती है और वे पात्र इसी धर्म की व्याख्या और विवक्षित करते हुए भागे बढ़ते हैं। अतः पात्रों के चरित्र-चित्रण की कसौटी है कि न अपने इस निश्चित लक्ष्य की पूर्ति में योग देते रहे। इस दृष्टि से देखने पर भारतेन्दु के पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत ही सफल प्रतीत होता है। चरित्र-चित्रण के अध्ययन की सुविधा के लिए भारतेन्दु के नाटकीय पात्रों का बनीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

१ धार्मिकोन्मुख पात्र—वे पात्र जो हमारे सामने एक धार्मिक जीवन की आँकी उपस्थित करते हैं।

२ समाजोन्मुख पात्र—वे जो सामान्य नागरिक जीवन के प्रतिनिधि होकर हमारे सामने आते हैं।

३ रहस्योन्मुख पात्र—वे पात्र जो साम्प्रदायिक धार्मिक प्राकृतिक तथा समाजशास्त्रीय तथ्यों के मानवीकरण हैं।

धार्मिकोन्मुख पात्रों के अन्तर्गत हरिश्चन्द्र वीर्या ताविनी लूकेश भील देवी और रामचन्द्र की योजना भी जा सकती है। हरिश्चन्द्र के चरित्र में भारतीय नाट्यशास्त्र बिहित नायक के गुणों का एकत्र समावेश है। उनके चरित्र में सब प्रकार की उच्च भुक्तियों का अवलीक्षण पाया जाता है। वे महासत्त्व समाधान धर्मि गंभीर, सिद्ध और दृढ़वत् हैं। उनके से विविध बीरोगत नायक साहित्य अथवा इतिहास में कम ही पाये जाते हैं। भारतेन्दु ने उनके चरित्र

### मायकदार मार्लेडु

चित्रण में पर्याप्त सफ़सला पाई है। कारण हरिश्चन्द्र का चरित्र भीरोदात्त मायक के उल्लिखित गुणों की निर्भीक अर्थात् प्रतिमा मात्र नहीं है। उसमें अपार मानवीय संवेदना है जो यथास्थल पत्नी विद्या और पुत्र डाकू प्रादि अवसरों पर अत्यन्त व्यक्त होकर भी उसे अपने आचार्य से विचलित नहीं कर पाती। मूर्खदेव हमारे सामने एक आचार्य भीरोदात्त नायक के रूप में आता है। परन्तु उसका भीरोदात्तत्व मादृश्यात्म की परम्परागत परिधि को बिस्तार देता हुआ अपनी यति प्रियों से उसे एक नई सावकता से मज्जित कर देता है। उसके चरित्र में 'रजपूरी' साकार हो उठी है—जो अवसरानुसृतता तथा भारम-वतिदानप्रियता की ओरिष्ठ स मज्जित है। हरिश्चन्द्र का धर्म और सत्य की परमावधि की कठार साधना के पथ पर अवलम्बित रूप से दैवी सहायता का पायेय भी प्राप्त है। और अंत में अवस्थासात्कार के साथ उन्हें बन्धुर्ग का तान भी हो जाता है। परन्तु इसके विपरीत मूर्खदेव जानता है कि धर्म और सत्य के दुपम मार्ग पर चलते हुए उसे मृत्यु-मुन्दरी के आन्विमन के लिए ही प्रतिष्ठान उद्यत रहना है। मूर्खदेव के साथी राजपूतों के चरित्र में भी उसके समान ही भीरोदात्तत्व है। 'प्रेमजोयिनी' के रामचन्द्र के चरित्र में लेखक ने अपने के चारुचर में मिलता है। परन्तु रामचन्द्र के भीर सन्निध में ऐसी विषयता है जो उसे संस्मृत-नाटक के भीर सन्निध नायकों से पूरक करती है।

रानी-पार्श्वों में भारतीय नाट्यत्व के आचार्य की दृष्टि से शीघ्रा सावित्री और नीलदेवी दोनों में लगभग समान गुण हैं। परन्तु पति पर मकट पड़ने पर उसके निराकरण के लिए दोनों तीनों भिन्न मार्गों का अवलम्बन करती हैं। शीघ्रा साम्राज्ञी होते हुए भी दासवर्ति अंगीकार करती है। सावित्री यमराज को पराजित करती है और नीलदेवी युक्ति से अपने हाथों अपने पतिपादक का वध करती है। प्रथम दो भारतीय मादृश्यात्मप्रतिष्ठ नायिका के रूप आचार्य के सन्धि से अनुसृत हैं परन्तु नीलदेवी के चरित्र में ऐसा पापवध है जो मार्लेडु की व्यक्तिवैचित्र्य चित्रण की प्रकृति को प्रकाश में लाता है। नील



देवी के चरित्र में मध्यकालीन राजपूत सती के चरित्र का अवतंत निरर्सेन प्राप्त होता है जो पद्मिनी और आंसी की महाराणी लक्ष्मीबाई बादि की भार बिताता है। नीलदेवी की निर्भीकता और साहस भारतीय स्त्रियों के आदर्श बनें इस दृष्टि बिशेष से यह चरित्र चिह्नित हुआ है।

आदर्शोग्मुख पात्रों के जीवन-निरूपण में व्यक्ति-वैविध्य-विचित्र की जो प्रवृत्ति दिखाई पड़ी उसका विकास उनके द्वापार्शोग्मुख पात्रों के चरित्र विचित्र में हुआ है और उसके द्वारा भारतीय ने अपने बुन और साहित्य का पविष्ठ सम्बन्ध पत्नी प्रकार व्यक्त किया है। इन पात्रों के चरित्र विचित्र द्वारा भारतीय ने यह दिखा दिया है कि वे अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के प्रति कितने सचेत थे। ये पात्र ही वास्तव में हमें उनकी काव्य प्रेरणा के सम तक पहुँचाते हैं। इन पात्रों में तीनों के पंडे पुजारी, मुन्हे मंडरिये दुकानदार, लत्कासीन पबकार, सम्पारक कवि विभिन्न प्राणों के गई रोसनी के बजानी जमा लार्न करने वाले समाज-सुधारक, मंडाचार्य पीरदारन पत्नी और अपरगट्टु काँ जैसे राजदरबारों के मुसाहब राजा बेबान्ती पुर्धहित बादि हैं। ये बाब बुरल विकसित रूप में हमारे सामने नहीं आते कुछ ही क्षणों के लिए रंगमंच पर आकर अपनी अमक बिताकर चले जाते हैं परन्तु ये समाज के जिस स्तर से लिए गए हैं उसकी दशा को उन बाड़े से लक्षों में हमारी उगात्मक अनुभूति का विषय बनाकर उपस्थित कर देते हैं। इन पात्रों की बातों में हमें भारतीय के बुन के विशाल जन-तनुशाय के विभिन्न वर्गों के कर्त-हाथ राज-विराज और समस्या-संघर्ष आकर्षक अभिव्यक्ति प्राप्त करते दिखाई देते हैं। इन पात्रों के चरित्र उन चित्रों की कीटि में आते हैं जिनमें कलाकार साहित्यों के निर्माण में कम से कम देवाओं और रागों का प्रयोग करके भी उनकी पृष्ठभूमि को अधिकाधिक प्रकाश में ला देता है। भारतीय में लक्षण नाटककार का यह युग है कि पर्व पर उनकी चंदुनी कनी भूटी नहीं पड़ती।' यह प्रत्येक बाब को प्रत्येक पात्र को बाणी देने में समर्थ है। अपने द्वापार्शोग्मुख पात्रों की बाणी में भारतीय के नाटकों का वर्तक (और हम भी) अपने समय और समाज की कल्प और चरित वास्तविकताओं से परि

कम प्राप्त करता है, और फिर उसकी वृद्धि अधिकतर आधुनिक पात्रों की ओर जाती है तो उसके हृदय से उद्गम ही वह ज्वलि निकलती है —

कोटि कोटि जपि पुण्य तम कोटि कोटि भवि सु ।  
कोटि कोटि पुण्य मयूर कवि मिले जहाँ की धूर ॥  
सोई भारत की आज यह माई कुरपशा बाप ।  
कहा करै किछु आवै नहि सुखत कुछ उपाय ॥\*

भारतेंदु के आधुनिक और आधुनिक पात्र उसकी भारतीय संस्कृति की रक्षा की आवश्यकता और सीमा का पता देते हैं। उसकी इस कला की गहराई का विचार उनके आधुनिक पात्रों के जीवन के अनुप्राण से होता है। जिस आधुनिक और आधुनिक उद्वाह तक पहुँचकर भारतवर्ष में हृदयस्थ और सामाजिक जैसे बरिषों को सहज-सुखन दिया उसी के विभिन्न पात्रों का समन्वित विभिन्न पात्रों के रूप में भारतेंदु ने अपने कुछ पात्रों में दिया है। इनमें अत्यधिक उल्लेखनीय बन्धुकी है, जो सान्त्व एक परम साधक आधुनिक रूप है और जिसकी दृष्टिमान का विस्तृत विचार उल्लेख के प्रसंग में दिया जा चुका है। इसमें बन्धुकी का जीवनप्रचल है, जिसकी प्रत्येक गति को भारतेंदु ने सक्ति-मार्ग के किसी न किसी मनोवैज्ञानिक अथवा दार्शनिक तथ्य से सुसम्बद्ध कर दिया है। उनके संक में बन्धुकी को हम अथवा से अपनी विचार-धारा विचारों में प्रयत्नशील पाते हैं किन्तु एक बार केवल ही उसका यह प्रचल असफल होता है, जैसे ही उसकी विवशता और आधुनिकता कोशुओं में एक एककर बढ़ने लगती है—

इसी बरनी दशा जाने वाली विधि सोचती है किसी सोचती है। वह कहती है मैं विवशता चाहती हूँ कि ज्ञान मुझ में पा उस निष्ठुर को एवम् मुझसे नहीं इसी से सब जान जाते हैं। उनका यह प्रेम सर्वथा अज्ञ-अज्ञ-अज्ञ है इसका प्रमाण उसका यह कथन है कि 'हो मुझी में सब आसती में अपना ईश्वर देवता और अपना ही पाला पाती थी तब भगवान् से हाथ जोड़ कर मनानी थी कि सम्मान में उस निष्ठुरी को बाँहें, पर वह मुझे न चाहे।' दूसरे संक

\* दे० 'भारत दुर्बिण' पात्रक ।

य वस्त्रावली का निज एक योगिनी के रूप में हुआ है उसका प्रेम आच्छादित के सब प्रसंगों का परिष्कार कर सर्वोच्च छोड़कर गहन तत्त्वज्ञानता में डूब कर आत्म विसृष्टि में परिणत हो गया है यहाँ तक कि उसका जड़-केतन का विवेक भी नहीं हो गया है<sup>१</sup> और वह अपने को ही कृष्ण समझने लगी है<sup>२</sup>। उसमें पहले किसी आत्मविसृष्टि नहीं है किन्तु उसके कपासभ्रमों में स्थित रहना एवं तीक्ष्णता और उद्योगों में अधिक आत्मीयता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों उसके प्रेमोन्माद की सीमा धीरे-धीरे व्युत्पत्ति की गहराई में बढ़ रही है 'प्यारे तुम्हारा रोप कुछ नहीं है। वह सब मेरे करम का रोप है मान में तो तुम्हारी निज की अप्रतिष्ठा है। प्यारे क्षमा करो मेरे अपराधों की ओर न दखो अपनी ओर दखो (रोती है)। प्रसन्नरूप उसकी केना भी अब क्षान्तिपूर्वपेक्षा नहीं अधिक मर्मस्पर्श बन गई है यहाँ तक कि अब वह प्राण व होने तक को उत्तर है। इस प्रसंग में इसी दृष्टि से मारतेंदु ने वस्त्रावली का स्वराज-कथन में गीत और पात्र आदि का विस्तृत प्रयोग नहीं किया है। यह बसा देवदत्त माधवी अति राधा-कृष्ण की अन्तर्गति की सखियाँ राधा का प्रसन्न कर उसे कृष्ण से मिलाने का निश्चय कर लेती हैं। अन्तिम अंक में उस की दृष्टा बादबयकाल रूप से परिवर्तित दिखाई गई है, अब आत्मविसृष्टि और उन्माद का स्वान कर्षणनिष्ठा ने के लिया है और उसमें असाधारण संवस आ गया है। अब तो वह प्रिय-सृष्टि को हृदय में छिराए बनासक्त भाव से नर के कामकाज भी करती दिखाई देती है। अवश्य बीच-बीच में उमका मन इन वस्त्रों को छिन्न-भिन्न करने के लिए स्वाकुल हो उठता है इसी अवस्था में कृष्ण एक जोलिन के बैच में जाकर उसके प्रेम की परीक्षा लेते हैं और वह जानकर कि नित्यविरह इसका प्रेम पक्का है उसे बहान बत और अनाते हैं।

१— अहो कदंब अहो अंब—निज कहा बहुत तमासा ।  
तुम बन्धो कर्तुं मनमोहन सुन्दर नंदमासा ॥

(वस्त्रावली)

२— 'दूधन सखी के एक उत्तर बतावलि जहाँ सी एक रूप आज इसामा  
भई 'शाम दे —वस्त्रावली ।

## नाट्यकार भारतेन्दु

ऊपर वर्णित चन्द्रावली का चरित्र एक जादूसी भक्त-चरित्र है जिसका  
 वर्णन नारद मुनि सूत्र में— कस्येवमेवम्<sup>१</sup> ॥ यथा प्रज्जोपिकामाम्<sup>२</sup> ॥ कहकर  
 किया गया है। इस मुनि का भावार्थ यह प्रेम है जो विरह से विकसित  
 और पुनः होकर भक्त के भक्त की तीव्रता को बढ़ाता है। चन्द्रावली की प्रथम  
 विरह-इच्छा साँवक की पहली अवस्था है, जब वह निर्य-वासना से रहित  
 होकर अपनी साधना को 'अभ्यासमग्ननात्' अर्थात् आठों प्रहर बर्बाद प्रिय  
 मृति रूप में उतारते हुए दूसरों से छिपाता चाहता है। उसकी दूसरी  
 विरहवस्था साँवक की वह स्थिति है जिसमें वह गुण-रहित कामना-वर्जित  
 प्रतिपन्न ब्रह्मान, अविच्छिन्न, सत्सत्तर अनुमत्तर, अनिर्वर्णीय प्रेम-स्वरूप का  
 प्रत्यक्ष पा जाता है<sup>३</sup> और फिर उसको बही छीकता है बही मुनाई पड़ता है  
 बही उसकी बातचीत का विषय होता है, और उसे उसी की भिन्ता में डूबे  
 रहना पड़ता है।<sup>४</sup> चन्द्रावली की तीसरी विरह-इच्छा भक्त की वह अवस्था  
 है, जिसमें वह अपना सर्वज्ञ भगवान को वर्णित करने अपने काम कोच  
 अमिमान आदि का विषय भी उन्हीं को बनाता है<sup>५</sup> और निर्यदास का  
 निर्य कामना-भावना वाला प्रेम रखता है।<sup>६</sup> चन्द्रावली की चौथी प्रेमावस्था  
 भक्त की वह सिद्धावस्था है जिसके आ भक्त पर लोक-व्यवहार होय नहीं रह जाता  
 प्रत्युत परमप्राय तथा उस व्यवहार का भाव ही करणीय रह जाता है— न

१—ना० म० सू० १ ।

२—ना० म० सू० २१ ।

३—ना० म० सू० ३६ ।

४—ना० म० सू० ५१ ५४

५—तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव भजोति तदेव भाषयति तदेव विन्दयति ।  
 ना० म० सू० ५५ ।६—तद्विनाशिकाचारः सर्व कामकोपमिमानादिकं तन्निर्जय करणीयम्—  
 ना० म० सू० ६४ ।  
 ७—निर्य भगवत्प्रेम निर्यदास निर्यकामता भगवन्मनसं वा प्रेमीय कार्यं  
 प्रेमीयकार्यं—वही ६ ।

बढ़ सकते हैं। उनके कथोपकथनों में प्रथम प्रकरण बचन भाषा की ओर के शैलियों के साथ-साथ ही अन्यत्र संवादों में वृत्तियों की योजना भी सुन्दर रूप में मिलती है। इसके फलस्वरूप उनके नाटकों में दृश्य और सुख कथाओं तथा आधिकारिक और प्राथमिक कथाओं के पारस्परिक सम्बन्ध में व्यवस्था और असंतुष्टता उत्पन्न नहीं होने पाता। उनके कथोपकथनों में इतनी व्यंग्यता तथा सापेक्षता है कि पूर्वापर प्रकरण का सम्बन्ध स्वतः बड़ी सामयिक रीति से चर्चाटित होता रहता है। इस काम के लिए उन्हें अनेक पुराने कथा समकालीन नाटकों की नीति न तो अधिक अर्थोपेक्षों की योजना करनी पड़ती है और न आधुनिक नाटकों की नीति रंग-संकेतों की मरमात्र करने की अपेक्षा पड़ती है। इसके अतिरिक्त इन कथोपकथनों में न तो प्रस्तुत प्रयोग के किसी अर्थ का अनावश्यक विस्तार मिलता है और न अनेक कीर्तन (रस की अनुपचारक वस्तु का वर्णन) कायक होय का उसमें समावेश होने पाता है। कथानक उनके नाटकों में कल्पे-कल्पे अत्यन्त और अत्यन्त-कथन भी मिलते हैं परन्तु उनमें अधिकांश का निवाह अत्यन्त-कथन रीति से किया गया है। भाषाविवेकयता तथा अधिक अभिव्यक्ति-सापेक्षता इन कल्पे भाषकों का ऐसा गुण है जो उनके बड़ी भी नीरस नहीं होने देता। मेरा तो यह विचार है कि भारतीय के लम्बे लम्बे भाषकों में अनेकानेक अधिक दृश्यता और रस-विवेक का समावेश है। भारतीयों ने बहुत से कि भाषा नाटक सुनते नहीं, देखते हैं। इसलिए उन्होंने इन कल्पे भाषकों की प्रत्येक पंक्ति में ऐसी भाषाविवेकयता मारी है जिसकी अभिव्यक्ति अधिक और अधिक अभिव्यक्ति में अत्यन्त विपुल अभिव्यक्ति की अपेक्षा पड़ती है। उदाहरण के लिए राम हरिन्द का समाप्त भाषा इतिहास का कथा भाषा जिसमें अत्यन्त रीति की योजना, अनुपचारक अनेक रसों का एक समावेश है, अनुपचारक स्वाधीनता और संवारीभावना इतिहास तथा विविध अर्थों के कथों की अत्यन्त अभिव्यक्ति द्वारा असाधारण रूप में मनोहारी होने के लिए किया गया है। इसी प्रकार 'चन्द्रावली' नाटिका में चन्द्रावली का अत्यन्त लम्बे-लम्बे स्वतन्त्रता स्वाधीनता-रति-रति और संवारीभावना का अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त विपुल सुबुद्ध विपुल विपुलता और रति-रति तथा सुधारण सुधारण और न कथों एवं विविध रति-रति के माध्यम से विपुल मनोहारी हो

कन हैं इसकी कल्पना कहन ही की जा सकती है । भारतेंदु के नाट्यों में अनेक सन्ने भाषनों में विभिन्न उत्कृष्टतम शैलीयों के पावन का प्रसार और भारत-दुर्दशा के भारत-भाग्य का दीर्घ शोकोच्छ्वास है जो निराला अभिन्न-प्रेम से कहीं भी जी उकसान वाला नहीं है ।

भारतेंदु के नाटकीय कथोपकथनों की भाषा भी उनके पात्रों की स्थिति कृति और अनुकृति सब का समानरूप से अनुसरण करती है । भारतीय नाट्य शास्त्र में प्रारम्भ में ही पात्रानुसृत भाषा के प्रयोग का नियम बन्ध दिया था जिसका पक्षन संस्कृत-भाषा-परम्परा में बराबर होता रहा । भट्ट ने प्रत्येक कल्पना में भाषा के प्रयोग में शोक को ही प्रभावभूत भाषा है इसलिये उनके द्वारा नियमित नियमों में प्रगति के ऐसे अवरिहित तत्त्वों का समावेश है जो विरहित तक सब कथों के नाट्यकारों का अनुशासन कर सकते हैं । अतएव लोक-संग्रही भारतेंदु ने लोकप्रामाण्यवादी भारत द्वारा प्रकटित नाटकीय भाषा परम्परा को अपने नाट्यों में ऐसा व्यापक रूप दिया जिससे उसका स्वाधीन महान् प्रकाश में आ गया । भारतेंदु ने अपने प्रेम कोमिनी नाटक में विभिन्न पात्रों द्वारा मनुष्य अनेक प्रकार की बोलियों की कठि से पात्रों के व्यक्तित्व को चर्चित कर दिया है तथा पूरे नाटक की वृष्टमूर्ति को बटु नचावी के ध्येय रवों से रंग दिया है । 'लोकवादी' नाटक में हिन्दू और मुसलमान पात्रों की भाषा में समुचित निश्चिता रखकर उन्होंने दोनों के सामान्य संस्कृति और प्रकृति के अन्तर को स्पष्ट किया है । 'चन्द्रावती' नाटक की सरल ब्रजभाषा ब्रज के वातावरण का निमाण करने में सफल हुई है, और 'भारत-दुर्दशा' के पात्रों की भाषा की विविधता दुर्दशाग्रस्त देश के व्यापक अभिन्न का उपयुक्त प्रतीक बन गई है । इसी प्रकार उनके नाट्यों की भाषा में सर्वत्र रसाशुभ्रता स्पष्ट है जो प्रेम, प्रीति, अमादर कोष छुड़ता महता आदि की अभिव्यक्ति के अवसर पर तरंगद्वय रूप में प्रकट कर लेती है ।

१—लोकवादी और निष्ठ भाषा लोकप्रामाण्य ।



चन्द्रावली—पियारे सौ मिमन मोहि काज है ।

परी—मैं हूँ हीन बोल तो ।

चन्द्रावली—हमारे प्राणप्यारे हो य—

वया—रू है हीन ।

- चन्द्रावली—प्रीतम भित्तो मेरो नाम है ।

संक्षेप—(आन्धव से) दूख सखी के एहै उत्तर बतलति  
जकी सी एक रूप आज दूयमा मई दयाम है ।

आगे बढकर हिन्दी में इसी बनासरी छन्द से महाकवि मिथुना के मुख-छन्द और  
बखन्द छन्द का विकास हुआ जिनमें माटखों के कबोपकथन का माध्यम बनने की  
अवस्थिति जमता है । मारतेंदु बनासरी छन्द के उल्लिखित प्रयोग में इस  
रिधा में पद-प्रदशन करते हुए दिखाई देते हैं ।

यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि यद्यपि मारतेंदु के माटखों में कविता  
का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग है, पर वह किन्त्य नहीं है । कारण यह सर्वे  
तत्त्वहीन दृष्टियों की दृष्टि की अनुकूलता से प्रेरित है और प्रायः कहीं भी  
माटखीय भाव-वक्ता की सीमा का अधिकतम नहीं करता । तत्पक्ष यह कि  
उनका साम्य प्रयोग नाट्यविधान के आश्रित रहता है उससे स्वतन्त्र नहीं  
होता । उनका साम्य ही उनके माटखों का मात्र और अनुमति के उच्च घरातन  
पर प्रतिष्ठित करता है । भारत दुदशा नाटक से बलि कविताएँ विद्वत् रूप से  
योगी भारत और भारत-माय आदि के गायन निधम रिये जौय तो  
उपमें मरी मैदनी के अतिरिक्त कुछ नहीं रह आया और उपमिता के अन्त  
प्रेरणा स्रोत होने का उदाहरण सुख गुण लब्ध हो आया । इसी प्रकार वीर  
रस एवं कथक रस की प्रागेन्मादिनी तथा हृदयवर्धनी कविताओं के बिना  
भीरुदेवी नाटिका हत्या विनाशपाल और रक्तपात की एक अति भाषात्मक  
कथा मान रह आणी । इसी प्रकार यह समझना कठिन नहीं कि अन्य माटखों में भी  
साम्य-प्रयोग उनका प्रायः-तन्त्र बनकर ओतप्रोत है । कुछ लोग मारतेंदु की  
कविताओं में सामयिकता के उपादानों की प्रसुखता के कारण अस्वाभाविक तो देख



पाठ हैं पर न इसी से मिलीजुली उस स्वामी एवं साम्यत भाव-समृद्धि तथा रस-संपत्ति को नहीं बना पाठ जो उन्हें सार्वकालिक कवियों के पद पर प्रतिष्ठित रखन के लिए पड़ाया है। वस्तुतः संसार के प्रत्येक बड़े नाटककार में अस्वावी और स्वामी तथा सामयिक और सामक दोनों विभिन्न अनुपातों में जुड़े-मिले रहते हैं और इसी में उनकी सफलता का रहस्य निहित रहता है। मराठु विचार है सामयिकता मारतेंदु की छवि का आधारमूल उपस्थान है कर्मजोती का कारण नहीं।

### रस

समस्त नाटकीय विधिविधान जिस एक ऊँच की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होता है वह है रस। मारतेंदु रससिद्ध कलाकार से इसलिए उन्नत प्रत्येक नाटक इसका को मारती रसानुमति में निमग्नित करने की उम्मा राखता है। मारतेंदु ने अनेक प्रकार के रूपों और उपरूपों का प्रयोग किया है जिसका विचार पहले आ चुका है। इन सब नाट्यरूपों में उन्होंने विभिन्न रसों का समावेश सम्मिलन के साथ किया है। साथ इन्द्रिय और जीमदरी दोनों का मनी रस और है इनमें से पहला धर्मधर (अथवा धर्मधर या दोनों) और दूसरा सुदधीर का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन दोनों ही नाट्यों में बचकर अनेक प्रकार के रसों का ऐसा बोम है जो बचक की कुवृत्ति हृदि को निरंतर आधरित रहता है। साथ इन्द्रिय में विद्यामित्र रीतरस के मूल रूप हैं बचपि इन्द्रिय जैसे परम विभीत परमोत्तम प्रकृति के नाम के प्रति सनका कोष रीर रसानाथ ही माना जाना चाहिए। इसी नाटक में समझान वाले दरब में भीमल शान्म भवानक द्वारा अद्भुत कथन तथा भीर का पुन पुन आविभाव-तिरोभाव अत्यन्त आकर्षक नाटकीय वैविध्य का प्रयोजन करता है।

भीमदरी में भीर के साथ रीर हास्य और कथन का मनोरम बोम है। इन दोनों नाट्यों में मारती और सातवी हतियों की प्रयोजनता है विचरण बचमसर इन हतियों के विभिन्न अर्थों का उपयोग भी नहीं कुशलता से किया गया है। इसका अनेक उदाहरण इन नाट्यों के प्रस्तुत किए जा सकते हैं। केदारजी नाटिका में नाट्यविमलनुका वैशिष्ट्य हति और भूषणर रस का मूल उपकरण देखा जा

मन्त्रा है। इन नाटिका में भास्य के भी योग्यपद<sup>१</sup> स्थित—‘पादय’<sup>२</sup> ‘आसीन’<sup>३</sup>—  
‘पादय’ ‘सत्तमात्मक’<sup>४</sup>, ‘उच्छ्रययुक्त’<sup>५</sup> और ‘श्रिष्ट’<sup>६</sup> आदि अंगों का रस-सुष्टि के  
लिए मनोरम बना लिया गया है। इन अत्यंत संक्षिप्त निबंधों सही इस नाटिका के  
कलापस के वैभव का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। इस नाटिका में गीत  
हास्य भग्न का अर्थ होकर बर्षा सुन्दरता से प्रयुक्त हुआ है। अन्धे नगरी  
‘बिदिधी हिसा हिसा न भवति’ और ‘मारग दुर्गन्धा’ आदि में हास्य रस अंगी होकर  
आया है। इनमें ‘अन्धे नगरी’ सुन्दर और ‘बिदिधी हिसा हिसा न भवति’ संक्षेप  
प्रधान है। मारग दुर्गन्धा भाटक में भी हास्य रस की ही प्रमुखता है  
मारत-अननी में कदवा प्रधान है।

विभिन्न रसों की निष्पत्ति के लिए भार्गवेंद्र ने अनेक विभावों की ऐसी  
उपयुक्त योजना की है जो साधारणीकरण को (सबके लिए) सुकर बना देती है।  
इसके उद्देश्य की सिद्धि के लिए वे केवल शास्त्रीय परम्परा पर ही निर्भर नहीं  
रहें अपितु उन्होंने ब्रह्म को मोक्ष-महिम्ना और मोक्ष-दृष्टि के अन्वय में यह  
अर्थप्रकटा और सहज प्रसारणीकृता प्रदान की है। पहले लिखा जा चुका है कि  
वे यह अर्थमौलिक जानते थे कि उनके समय में जनता की दृष्टि विमलकाय की  
अवेष्टा अनर्वाप्त में विमलकाय है। अतः वे अपने बीज और मृगार रसों के  
असम्भवों—सदा हरिचन्द्र और चन्द्रावली आदि नायकनायिकाओं—को चन्द्र

१—बीजे अंक में सारंगी पर ‘अप्रम’ के गीत।

२—पहले दूसरे अंक में चन्द्रावली द्वारा विभिन्न रस-वेस्त सर्वशो का पाठ।

३—पहले अंक में ‘सखी ये क्या बहुत बुरे और ‘देना यह छवि नाहिन  
भूजे’ आदि गीत।

४—दूसरे अंक में ‘आम्हो यरे मूँदम के सरलाज’ और ‘आम्हो यरे मोदम  
पारे मूँद’।

५—दूसरे अंक में बजा और चन्द्रावली तथा बीजे अंक में कलिका और आश्रित  
की उच्छ्रय-युक्ति।

६—बीजे अंक में आश्रित का केव धारण किए हुए हास्य का कोमल मृदु  
मधुर नाट्य।

आभिजात्य आदि नाट्यशास्त्र में परिगणित गुणों से सर्वसूक्त करके ही संतुष्ट नहीं रहे हैं। उतने ही से तो उमक नाटक उस महान् कुण्वरी के सविस्तर-वाङ्मय न बन पात अथवा व्याख्यान उनकी चौक-चौक में अभित है। अतएव उन्होंने अपने नाटकों में ऐसी प्रतीकात्मकता का सन्निवेश किया जिससे वे (पाम) किसी न किसी एकात्मिक इह विद्वत् समझा प्रगति अथवा वर्ग के प्रतिनिधि हो गए हैं। अमरावती की प्रतीकात्मकता की चर्चा पहले हो चुकी है। बाहर से सबसे अधिक पौराणिक दिखाई पड़ने वाले 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक की प्रतीकात्मकता उसकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट-सामान्य है। सत्य हरिश्चन्द्र का वातावरण निम्न कारकों से बनता की संस्कृति और चरित्र के उच्च अवस्थान की अवस्था का सूचक है जिसमें सत्य और ईमानदार जादगी को पद-पद पर संकट ही सहने पड़ते हैं और जो भारतेंदु के काल से अन्तक ज्यों की त्यों बली आ रही है। इस दृष्टिकोण से देखने से हरिश्चन्द्र एक परम्परागत पौराणिक महापुरुष अथवा वीरोत्तम नामक मान नहीं रहे बात चम् उन भिन्न-भुवै व्यक्तियों के प्रतिनिधि बन जात हैं, जो अनेक अवस्था अस्पष्टताओं होते हुए भी सत्य और धर्म का पक्ष लेकर सत्य और अन्तर्गत के विरुद्ध लड़ते हुए अन्तर्गत स ममानक विधियों सहकर अपने का मिट जाने दते हैं। ऐसे लोगों के जीवन-काय में संसार उनकी ओर सहाय्यमूर्ति की दृष्टि तक नहीं डालता। मुझे पूरा विश्वास है कि इस नाटक में ममान का रंगमंच पर अन्तर्गत ऐसे ही व्यक्तियों के मन में धर्म की जब का विचारण जगाए रखने के लिए विशेष रूप से चरमा गया है, पिछले मान का लिए नहीं। सर्व भारतेंदु इस नाटक की प्रस्तावना में करने और सत्य हरिश्चन्द्र के चरित्र का आनुपूर्वी बताकर इसी ओर संकेत करते हैं— "हो प्यारे हरिश्चन्द्र का समाद मे कुछ भी कुछ रूप न समझा।"

कहेंगे सर्व ही भग और मरि मरि पाते प्यारे हरिश्चन्द्र की कदामी रहि जावेगी।"

भारतेंदु के नाटकों में आधुनिक व्यक्तियों का उपयोग भी कुछ न कुछ नई दृष्टि से किया हुआ है। इसकी ओर ऊपर संकेत भी किया जा चुका है। मे मर ता नहीं कहता कि भारतेंदु न जितने आधुनिक व्यक्तित्व रंगमंच पर

## गायकान्धर मारतेंदु

छतारे हैं, व सब के सब औपजासक हैं। मारतेंदु को इतनी बुर जाने की अनिवार्य आवश्यकता भी नहीं थी। कारण उस समय के अधिकांश दशक आधि-  
 दैविक चमत्कारों में निग्रा रहने वाले थे। पर उस समय के दशक पर ही नहीं  
 आग आने वाले युग के दशक पर भी मारतेंदु की छवि थी। इसलिए उन्होंने  
 भवन गाठनों के प्रमुख आध्यात्मिक व्यक्तिव औपजासकता अथवा मनोवैज्ञानिक  
 साबकना से अलग मेहित किए हैं। उदाहरण के लिए नीलबंदी के  
 सतर्क रूप में बंदी-और मूर्च्छित महाराज सुबब के सामने 'अब तबहु बीरवर  
 भारत की सब आशा की अत्यंत वदय ताल ठेकने वाला बबता उनके दु स्वप्न  
 अथवा स्वामोह का मानवीकरण मात्र हैं। वास्तव में यह बबता उनकी पराजय  
 अन्य निराशा का प्रतिरूप है, और उसका गायन उनके मन में उठनेवाले प्रश्नों  
 संकटों और आसंख्यों की सुखर अभिव्यक्ति। इसका सबसे बड़ा प्रभाव यह है  
 कि इस बबता को केवल दशक कहते हैं राजा स्वयं नहीं बब पाता। कारण उसकी  
 मूर्च्छाबन्धा तक ही वह नहीं टकरता है और सुबब के चैतन्यनाम करते ही  
 निराश्रित हो जाता है। क्या मारतेंदु का यह संकट स्पष्ट नहीं है ?

## भारतेंदु-युग के अन्य नाटककार

भारतेंदु के संका में पहले जो कुछ लिखा जा चुका है, उसमें यह सिद्ध है कि वे एक निर्दिष्ट योजना के अनुसार राष्ट्र के सांस्कृतिक पुनरुत्थान आर्थिक स्वनिर्माण<sup>१</sup> और राजनीतिक स्वातंत्र्य की उत्तम कामना से अनुमानित होकर साहित्य-रचना विस्तृत नाटक के प्रयोग में प्रवृत्त हुए थे। उन्होंने हिंदी और हिंदुस्थान के जमाने का यह अंध कुंध या जिसे सुनकर बच्चों सेबमियों उनके द्वारा अनापठ काय के संपादन में लग गई थी। इन कैदियों से ही कल्पित की वे विनयारिणी पड़े-पड़े प्रकाश हुई थी जो आगे बसकर हमारे स्वतन्त्रा संग्राम की ज्वालाओं में परिवर्तन हुई और जो आज भी विस्तार बंधन विस्तृत नहीं हुई है। भारतेंदु काय में उठी हुई सागर ही ऐसी कोई कैदमी हो जितने कोई न कोई नाटक न रहा हो। 'ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेंदु-काय में जिनने नाटक हिंदी में प्रस्तुत किए गए, उतने उतने ही सीमित समय में फिर कभी न लिखे गए।' उस समय के पत्र-पत्रिकाओं की अलगबीन करने तथा तत्संबंधी विभिन्न चर्चाओं के अनुसार ही ऐसा अनुमान होता है कि इस समय काय से काय पचास नाटक-कैदमी या काय हुए होंगे और उन लोगों द्वारा कुछ मित्राचार दा भी से काय ही नाटक रहे गए होंगे।

१—यह विवेक यदि जान तक जिय होत न बैचल ।

जइ समान है रहत नहिछ हन रहि न सखत काय ।

जीवन विवेक की मरु के ता निन कसु नहि करि सखत ।

आमो आमो अब सौंदरे सब कोउ दर तुमरो लखन ॥ प्रयापिनी

( भा १४ भाग छुट १५४ )

इस प्रसुर नाटक-रचना के मूल में भारतेंदु की बलवती प्रेरणा की इसका अन्तः प्रमाण मिलता है। उस समय के प्रायः सब छोटे-बड़े हिंदी-लेखक भारतेंदु के व्यक्तिगत रूप से स्तुतिभाजन थे। वे पत्र लिखकर पत्र-परिचय लिखकर तथा मानसबलता होने पर आर्थिक सहायता कर भी ऐलनों को प्रोत्साहन दत्त थे। जो अच्छे नाटक लिखते थे उनके संबंध में बलवत् लिखकर व केबलों को प्रोत्साहन दत्त थे। इस प्रकार का एक बलवत् जो उन्होंने भी राधाकृष्णदास लिखित 'महाराजी पद्मावती' का चित्तीर कमलिनी नाटक के लिए लिखा था, यहाँ उद्धृत किया जाता है —

मित्रवर बाबू राधाकृष्णदास का बनाया पद्मावती नाटक हमने देखा इससे बिलकुल ही प्रसन्न हुआ। इसकी रचना-प्रभावी लेखनशैली और कार्यबलमी में स्फिर की उत्तेजक है। इस ग्रंथ से भारतवर्ष की कीर्ति प्रकाशित होती। हिंदी भाषा के संसार का यह भी एक अमूल्य रत्न होना। उत्कृष्ट विचारीका विमल लेख की यह भी एक मनु बल-पराका है। ऐसे ही ग्रंथों का प्रचार अन्तः भारतवर्ष में अपेक्षित है। कल्पित की हमारी सुमते भाषों में कर्मबलना अब बरम सीमा को पहुँच गया है। अन्तः जनों को इस बात की मात्र निम्नानी चाहिए कि उनका पूर्व पुरख कैसे उदार कैसे नीर कैसे धीर वृद्ध बलवत्तावी थे और उनकी वीरपत्नी पातिव्रत धर्म और बल-मर्वादा की रक्षा क हेतु अपने अमूल्य जीवन को कैसा गुण सा त्याग देती थीं।

धीनिकासदास क 'रणवीर प्रेममोहिनी' नाटक के लिए सूचना और मदी आदि का संवाद भारतेंदु से स्वयं लिखा था। उनके पत्र कवि बचन सुधा न उसकी प्रशंसा में लिखा था कि 'एक मोटा ही पत्र हो तो उसे बेबकर इस नाटक को खरीदो।'।

एक अतिरिक्त भारतेंदु स्वयं नाटकों के अभिनय में भाग लेकर और नाट्याभिनय आदि के विभिन्न आयोजनों में उपस्थित रहकर भी इस कार्य की इत्ति में बला देत रहता थे। इस तरह का एक उत्प्रेरणीय समाचार इतिवृत्त बंदिषा के पृष्ठ ११ संख्या ३ में दिसंबर १८८४ ई० में छापा हुआ मिलता है —

इस काम बलिया में दहरी का मेला वहीं भूमिगत से हुआ। मेले के बोरे दिन पूर्व ही से एक नाट्य-समाज निरत हुआ था जिसने मेले में कई उत्तम नाटकों का अभिनय किया। भी भारतेन्दु जी नाट्य-समाज के प्रवक्ताओं में क आग्रह और अनुग्रह से यहाँ विराजमान थे। उक्त बाबू साहब इस प्रसिद्ध नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'नीलकण्ठी' की सुभारई से झूठे गए। संभूले इसका मंत्राभी मोहित हो गई और उन नाटकों के कवि बाबू हरिश्चन्द्र की की जो संयोग से नाट्यसम्मेल में उस समय विराजमान थे बार बार सल्लाह करते लगी। बाबू साहब का नाम सुनकर इस ठिके के मैजिस्ट्रेट आदिक अनेक साक्षिगण और मेम जेम्स मी पिसेक्टर में उपस्थित थे सत्य हरिश्चन्द्र और नीलकण्ठी का अभिनय देकर वहीं प्रसन्नता प्रकट की। बरब रानार्डस साहब मैजिस्ट्रेट ने कहा कि इनके नाटक कविसिरोमणि लेखकपिर से भी उत्तम हैं।

यह सूचना उक्त पत्र में बलिया में बाबू हरिश्चन्द्र का शुभायमन और स्वादमान कीर्तिक से लगी है। इसके अतिरिक्त ८ मई सन् १८९८ के 'केम्पमेड' में इस भाषण का भी समाचार प्रकाशित मिलता है कि वे क्षीतता प्रसाद त्रिपाठी द्वारा जालकी मंगल नाटक का जो भूमिगत से अभिनय हुआ था उसमें भारतेन्दु जी ने पाठ किया था।<sup>१</sup>

अन्ते साहित्यिक स्वस्थित्य की इन बहुसुखी प्रेरणा के परिणामस्वरूप वे एक ऐसे कला बन गए थे जहाँ से नवनिर्माण के उत्साह की लहरें निरंतर चारों ओर फैल रही थीं। प्रकाशक नाटक सिधे आते और अभिनीत होते थे। जिस समय नाट्यकला की उपेक्षा इस सीमा तक पहुँच गई थी कि यहाँ के श्रेष्ठ नाटक किम चिन्ता का नाम है, इतना भी नहीं जानत हो उस समय बहुत से छात्रों को नाटक-प्रवचन की यह वेगवती लहर घटती पर स्वयं नाट्यकला के अभिभावक की प्रतीति कराती हुई प्रतीत हुई। किछोरीलाल गोस्वामी ने नाट्य संगम नामक एक सिंगर संभवतः यही बात अधित कराई है। उनके इस शब्द में नाट्यकला के अभिभावक की वही मनोहरक कथा लिखी गई है —

एक बार राणी अनुओं के वेष में यह आती है। उनके विरोग में ईद लगेत निद्रम लहेते हैं। यर्जन वे अनुओं से राणी के उद्धार की प्रतिज्ञा करत हैं

परंतु उनका विभाग—अन्त तब किसी प्रकार छील नहीं होता। इसी अवस्था में उनकी भेद भावमुक्ति से होती है। मरत ईश को समझाते हैं और उनके मानसिक कष्ट के निवारण के लिए कुछ न कुछ करने की प्रतिज्ञा करते हैं। तत्पश्चात् एक दिन ईश मरतजब में अपने शिष्यों को संगीत की महिमा बताते हुए भारत का नाम लीलाकार मुख हो जाते हैं। वे प्रतिज्ञा की द्वारा भारत को उनकी प्रतिज्ञा का स्वरूप बताते हैं तथा उनसे सीधे से सीधे अपने मानसिक तान का ज्ञान करने के लिए उपयुक्त उपकार की व्यवस्था जान का अनुरोध करते हैं। मरत अब सरस्वती की आराधना करते हैं, उनकी प्रार्थना से प्रीति होकर सरस्वती आर्त्तिभूत होती है, और उन्हें नादय-विद्या प्रदान करती है। सरस्वती स्रग्-रूप में उन्हें नादय-विद्या का स्वरूप तथा महत्त्व समझाकर स्पर्श और स्पर्श के विविध भेदों का ज्ञान करती है, और भारत का नाटक लेखने की आज्ञा देती है। सरस्वती के लगे जाने के बाद भारत समस्त द्वारा ईश के पास भेजे भेजे हैं कि नादय-विद्या द्वारा उनके कष्ट को दूर करने की योजना बन गई है वे चिन्ता न करें। विरह—संतप्त ईश समस्त द्वारा यह संविधा पाकर कुछ आश्चर्य होते हैं। तत्पश्चात् भारत की योजना के अनुसार बृहस्पति इन्द्र को सुचर्मा नाम में नाटक कथन के लिए आमंत्रित करते हैं। नाटक का भाव से एक देवर्माजी अमुर-प्रहारा की प्रतिज्ञा करती है। फिर नाटक होता है जिसमें अमुरों द्वारा सभी के वध और इन्द्र का विरह दिखता जाता है जिसे इन्द्र बार बार सब समझता है। अंत में नाटक में भारत द्वारा सभी का उद्धार दिखता जाता है। नाटक के अंत में सभी और इन्द्र का पुनर्मिलन होता है। अंत में सब लोग मिलकर नाटक के महत्त्व का ज्ञान करते हैं—

“अहा अपूरय नाटक सुख की राखी,  
सब सुखदायक, परिचायक, मोह-विनासी।  
ऐसी सुख-सरिता बहे नाटक मांझि सुमान।  
ऐसी सुखद न यस्तु है तीनि लोक में भाव।”

यह ध्यान देने की बात है कि केवल अपनी इस कृति को रचकर जाता है नाटक या और कुछ नहीं। यह एक शब्द इसकी साहित्यिक विद्या का सूचक होने के साथ साथ इस नाटक की प्रतीकवाचकता की ओर संकेत करता



हुआ उसका मर्म को प्रकाशित करता है। इसमें सरस्वती को नाट्यरूपिणी बलि करी मित सुखद प्रमाता कह कर संवाधन किया गया है—जो देखक के आश्रम को स्वयं करने में सहायक होगा है। बलुया इस गद्यक का इन्द्र स्वर्णप्रतापी सभी से विमुक्त भारत है जिसका कष्ट दूर करने के लिए दत्त की प्राणस्वस्था मरतहपिणी साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रतिभा भारती की प्रेरणा से नाटक के प्रचलन और जमिनद्वय का अन्वेषण होती है। नाटक के आभिजात से उसका ब्रह्म के बहान समस्त विभिन्न दृष्ट-साधिका संगठित होने का एक आधार प्राप्त करती है। एकज होन पर उनके मन में अमुर-जात का संकल्प जगता है और नाटक के अमिनय में वे भारत के रूप में राष्ट्र की प्रमुख राजनीतिक चेतना को स्वतंत्रता सभी धर्मों के उद्धार का मार्ग-निर्देश करत हुए पात हैं। संभवतः विद्यापिनाथ ने भारतेंदु द्वारा प्रचारित नाटक-प्रवर्तन से देश का आग्रह होता हुआ बलकर ही यह श्रृंखला लिखा था।

जिस व्यक्ति की प्रेरणा से इतना विराट् आशात्मन उठ खड़ा हुआ हो उसका व्यापक और गंभीर प्रभाव उसका समय के साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक था। इस प्रभाव के अन्तर्गत को साहित्यिकारों ने अनेक रूपों में स्वीकार किया। उन लोगों ने सम्मिलित रूप से भारतेंदु के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशन के लिए संस्कृत अथवा ईस्वी शब्द का प्रयोग छोड़कर हिन्दिराष्ट्रान्त का प्रचलन किया। श्री रामाचरण शास्त्री<sup>१</sup> ने तो भारतेंदु के संबंध में यही तक लिखा कि उनके निज मंत्र हमका वैद-वाक्यवत् प्रमाण और मान्य के उनको मालों ईश्वर का एकरस अन्तार मानन थे। हमारे सब कर्मों में वह आदर्य थे उनकी एक एक बात हमारे निज उदाहरण की।”

इन लोगों ने भारतेंदु द्वारा किए गए काम को तन-मन से पूरा करने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप इस काम के साहित्य निरूपणः गद्यकों में भारतेंदु के साहित्यिक व्यक्तित्व का बहुदिन विस्तार उपलब्ध होता है। भारतेंदु का साहित्यिक व्यक्तित्व भर्तृहरि की सांस्कृतिक और नैतिक महिमा के साथ और वर्तमान की कटुता कात्मनिष्ठाओं का अनुशीलन करके से निर्मित हुआ था जिसमें

भाषा की निष्ठा और नकार के समर्क आपस दानों का भाज था और जिसके समुह के समस्त समीर किन्तु उद्येधित अंत स्तस में अनेक भावधारामें एक साथ भाहर मिल गई थी। भारतेंदु के साहित्यिक व्यक्तित्व में समन्वय प्राप्त करने वाली इन विविध भावधारामें का भारतेंदुदर्शन नाटक-साहित्य में प्रतिफलित हुआ जा सकता है।

कुछ विद्वानों ने भारतेंदु-काल के नाटकों का वर्गीकरण पौराणिक धारा प्रथम धारा राष्ट्रीय भाग समस्तवाप्रधान धारा ऐतिहासिक धारा भाषा के रूप में किया है।<sup>१</sup> यह वर्गीकरण कथावस्तु के आधार पर किया गया है। नाटकों में कथावस्तु के महत्त्व का स्वीकार करते हुए भी हमें यह खतरा पड़ता है कि यह वर्गीकरण इतना बहिस्तरी है कि इससे लब्धार्थ नाटकों की आन्तरिक प्रतियोगी प्रकृति में भाव के स्थान पर और अधिक संघर्ष में जाती जाती है। वस्तुतः हम समझ का नाटककार छोटे मनोवैयक्तिक के लिए काम नहीं पिस रहा है उसका मन तो अपने नाटकों में विविध सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान में व्यापृत है। इसलिए कथावस्तु उसके लिए उसकी बहुमुखी चेतना और प्रगति की अभिव्यक्ति का निमित्त मात्र है। तालम यह है कि इन नाटकों की कथावस्तु के विन्यास और संरचना आदि में ऐसी आधुनिकता है जिसके स्वीकार के लिए हमें इनकी अंतर्निहित प्रतियोगी और निष्ठापूर्ण दृष्टियों का अध्ययन करना पड़ेगा।

य प्रतियोगी अन्त मूल रूप में वे ही हैं जिसका हमने भारतेंदु के नाटकों में कहा है। भारतेंदु के विविध नाटकों में उनकी सांस्कृतिक ऐतिहासिक आध्यात्मिक धार्मिक आर्थिक राजनीतिक सामाजिक, एवं प्रेम-मीन्द-मूलक चेतना तथा हास-तंत्रा अलग अलग अभिव्यक्त हुई हैं। उनकी चेतना के इन विभिन्न पक्षों का विवेचित रूप हमें उनके युग के नाटकों में उपलब्ध होता है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतेंदु की चेतना के बहुमुखी प्रेरणा-स्रोत से प्रासून्य होने वाली विभिन्न नाट्य-भाषाओं का प्रमुख प्रतियोगी अथवा दृष्टिकोणों के उपरान्त के बीच स्थापित रही। इन दोनों उपरान्तों का निष्ठा भी भारतेंदु के

ही इस दुआ का यह ध्यान देने की बात है। भारतम्बु का इसल आदर्शवादी का उनकी ऐसी कल्पानुसारी होत हुए भी भारत के लोक-प्रामाण्यवाद के सिद्धांत का इकता से पासन करने वाली भी और उनकी कल्पानुसारी का स्वरूप मूलतः एक प्रभावशाली वस्तुनुसारी था। महत्त्व और लक्ष्य दोनों का साहित्यिक मूल्य उन्हें सम्मिलित था। इसीलिए स्वर्ग की मानवपूर्ण कल्पना उन्हें दुष्ट-दुष्ट जगत् से दूर न लीक सकी अपितु उसका प्रति उनके अधिकाधिक मूल्य का कारण बनी। इसी मानसिक उपपत्तियों के पुष्प योग से उन का प्रकृतियों और संकल्पों का उद्देश्य दुआ जिन्हें हम आज यथार्थानुसृत आदर्शवाद और आदर्शानुसृत यथार्थवाद कह सकते हैं। भारतम्बु के युग में तो ये दोनों एक ही एकाग्र अथवा समन्वित अनुसृष्टि के स्विष्टविश्वानुसारी थे। पक्ष बन रहे बलु भाग सम्मिलित वालों का पार्थक्य बढ़ता रहा। अंततः यथार्थानुसृत आदर्शवाद का स्वयं उक्त प्रभाव के माटक-साहित्य में उपपन्न हुआ और आदर्शानुसृत यथार्थ का पूर्ण विकास प्रगल्भ के उपपत्तियों में।

भारतम्बु-युग के केवल एकलक्षण जनता की वस्तुनिष्ठता से वस्तुनिष्ठ रसिकता रखते थे इसलिये उनकी कला का मूल लक्ष्य जन-संस्कार का पुराण और इतिहास नहीं। परंतु वे स्वयं कह भी जानते थे कि जनता पुराण और इतिहास में भी किसी समक कहों की जनता के ही जीवन और आदर्श की यथार्थ गाथा विवक्षित हुई थी इसलिये इनके प्रति उनका हृदय में अत्यंत भ्रष्ट और मति थी। वे यह भी समझते थे कि पुराण और इतिहास की सहायता से वे अपनी बात अधिक प्रभावशाली में कह सकेंगे। अतः उनकी रचनाओं में हम आदर्श और यथार्थ का एक दूसरे के एक के रूप में पाते हैं। स्वयं भारतम्बु के साथ हमारे जैन विमुक्त आदर्शवादी माटक में सामाजिक ईश्वर-अर्थ केरना की छाया बतमान है और प्रेमयोगिनी ऐसी बार यथार्थवादी रचना में रामचंद्र की आदर्श निष्ठा की पुष्प उजाति गग ली है। यही बात हम भारतम्बु के समकालीन अन्य माटकधारों में भी पाते हैं। अतएव किसी में आदर्श-परावर्तना अधिक है और किसी में यथार्थ की मात्रा अधिक।

## सांस्कृतिक—नैतिक

भारतेंदु ने अपनी सांस्कृतिक-नैतिक कृतियों को सत्य हरिश्चन्द्र और मत्स्यदत्ता जैसे पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में अभिव्यक्त किया था। भारतेंदु युग के अन्य लेखकों ने भी इसी मार्ग का अनुसरण किया। जिस समय जन-जीवन सब ओर से विपन्न हो उस समय संविदनशील कवि-कलाकार का इहय अपने विमूर्तिमाल अर्थों के उन्मूलने बिना जीवन का उपक्रम करे तो यह स्वाभाविक ही है। कारण प्रसुप्त एवं सुदृढ़ जन-जीवन में जलना-संसार का यह एक अमोघ साधन है। अन्य चारों ओर की सांस्कृतिक और नैतिक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए पौराणिक नाटकों का उपयोग सबसे अधिक उपयोगी और स्वाभाविक है।

यदि हम इस काल में लिखे गए पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों पर दृष्टि डालें तो ऊपर कही हुई बात की पुष्टि हो जाती है। इस काल के लेखकों ने नाटकीकरण के लिए जिन पौराणिक न्यायानों का चुनाव किया, उनमें प्रह्लाद<sup>१</sup> मोरचन्द्र<sup>२</sup> कर्ण<sup>३</sup> युधिष्ठिर<sup>४</sup> हरिश्चन्द्र<sup>५</sup> अर्जुन<sup>६</sup> विषया-वैद्यराज<sup>७</sup> सावित्री<sup>८</sup> वसवती<sup>९</sup> शिव-पार्वती<sup>१०</sup> और कृष्ण-सत्यभामा<sup>११</sup> आदि के चरित्र हैं। शिव

१—प्रह्लाद नाटक (तीन) के० श्री निवासदास (१८८८) ब्रजनाथदास (१८७४) और माहानलाल विष्णुलाल पंड्या।

२—मोरचन्द्र नाटक के० सावित्राम।

३—कर्ण एवं (१८७९) के० विष्णु गोविन्द शर्मा।

४—युधिष्ठिर (१८८५) के० मेमलाल।

५—हरिश्चन्द्र (१८८९) के० सुनीलाल।

६—अर्जुन-मह-मरण।

७—विषयावैद्यराज (१९०१) श्री श्री० यश० मिश्रा।

८—सावित्री (१९००) नामा बरारत रचित सावित्री (१८९८) के० यशपाल।

९—वासुदेव भद्र कृत 'वसवती स्वयंवर' (१८८५)

१०—११—हरिनाथिका नाटक और कल्पवृक्ष नाटक के० राधा बहादुर मल्ल।

पार्वती कृष्ण प्रहार, मोरपञ्च ध्रुव कर्म अङ्गुल इतिवृत्त सावित्री जाति के चरित्रों की सङ्ग्रह विरचना ही यह है कि न पाश्चात्य तथा भीरु बड़े से बड़े कष्ट की कमीटी पर कस कातर उन सामूहिक और नैतिक परंपराओं एवं इच्छाओं का निमाज करता है जो हमारा सिय चिर-नरबीज और स्मरणीय हैं। अतएव मातृहृद-पुण्य का मातृहृद इन उपवासकों का पुनरावृत्त करने परदेव विमेष की पूर्ति की दृष्टि में रक्षक करता है। इसका अतिरिक्त इसका अंगण पात्रों के सीरिस्त्रियन और बन्धु-विन्धान की विविध परिस्थितियों की योजना में यह अन्तर्द्विष्टता की सावधान अधिग्रहित मानवीय दृष्टिकोण का समावेश करता है। इस कार्य में प्रायः वह पीगमिक औदार्य का बहिष्कार कर देता है और अन्तर्द्विष्टता की भी कक्षा दे जो ऐतिहासिक अवस्था के बोध से इतिहास और कवी बड़ी सम्भावनाओं की हैं। परंतु इन बातों की उन्ने चिन्ता नहीं उन्ने चिन्ता तो कदाचित् अन्तर्द्विष्टता की है जिसे वह अन्तर्द्विष्टता की सामूहिक और नैतिक चिन्ता को प्रबुद्ध कर और उसमें समाज के सम्भावनीय सांस्कृतिक और नैतिक अवस्था का प्रतिबिम्बित रूप का चित्रण करके निरूपण करता है। प्रत्येक मातृहृद अपने इस प्रकार के चित्रण का किसी न किसी रूप में स्पष्ट कर देता है।

उदाहरणस्वरूप सप्त सङ्ग्रहमातृहृद सप्त अरुणी पीगमिक इतिहासिका नाटिका में निरूपित है कि यह मातृहृद निरालाहिनी पुन्यपुत्रों की आकांक्षता का दृष्टि में स्तब्ध चिन्ता प्रकाश दे जिसका सिद्ध पारिवर्तन धर्म और दुरवस्था का संयुक्त मनोहर रूप अधिक इच्छापूर्णा और उपयुक्त होगा। इस मातृहृद में अर्द्ध एक बार पारिवर्तन धर्म की सिद्धांत का मान्यता है ता दूरगी अन्तर्द्विष्टता की सही क अवस्था में इच्छा का विपरिणत बेमेल विचार के विरुद्ध गये हा सचम की सक्ति और मातृहृद बहाव का भी आकांक्षता है। बड़ी से बड़ी पीगमिक कथा के निष्कर्ष में भी ये अन्तर्द्विष्टता अन्तर्द्विष्टता और दुरवस्था का नहीं भूत पात। सप्तसङ्ग्रहमातृहृद सप्त का अन्तर्द्विष्टता पारिवर्तन मातृहृद में हृदय और मातृहृद के दाम्पत्य जीवन की कथा का विमर्श करता हुआ भी देश के पुनरागम और दोष से अन्तर्द्विष्टता का स्पष्ट नहीं भूतता। प्रस्तावना में सप्तसङ्ग्रहमातृहृद के सप्त में स्पष्ट चित्रता है— पर हा आज हमारा यह मातृहृद कभी अन्तर्द्विष्टता कभी सामूहिक पक्ष का धर्म का अन्तर्द्विष्टता न हो गया होगा ता इस सही पुनरागम

की न जाने कसी मनोहर सामा होती । इस लोगों के निकट-दैन्य कभी कुठार के मय से कितने सुन्दर बाटिका में अपनी ललसहाती हुई हरियाली नहीं दिखा सकत ।' इसी प्रकार प्रख्यात नाटक १ में जहाँ एक कोर प्रहार के करिब में सुम्पामड़ी की दृष्टा जाति उस सांस्कृतिक और नैतिक गुणों का निदधन है वहाँ हिरण्यकशिपु की शान्त नीति की परालोचना द्वारा ब्रिटिश शासक की कभी राजाओं और तासुकरों से संबंध रखने वाली वृत्तवृत्ति का खलनाशक प्रभाव दिखाया है । इस निम्न की हिरण्यकशिपु और उसके अमात्य की बर्ता कभी मनोरंजक है ।

**हिरण्यकशिपु**—अहा हा जिस में बड़ा प्रसन्न होना है । उनके सामान्य भूमिामिधर और वह एक दीर्घसम्य युक्त उपाधि अमर्यार जिनके नामान्तर टाइटिल केसर मेनाव और चन्दाए हैं उन्हें के बर प्रतियोगित करना है ।

**अमात्य**—ईश्वर ने वह बड़ा कीर्तन किया है कि इसने राजमहल का कुछ भी अर्थ भय नहीं होता परन्तु सर्वसाधारणों के दखन में गुणग्राहकता और आदर-सम्मान ही दृष्टि पड़ता है । बाह बाह क्यों न हो हाथ पैर बचाना और मूली का टरकना ।

**हिरण्यक**—ब्राह्मणों का दखन में का कुछ उस युद्ध में राजकोष का अर्थ भय हुआ । उनके शिष्य धन मन्वसोक की प्रजा में दोहन कर लिया । और उन्हीं समय में सब स्थानों में मन्वसोक की प्रजा का निरज करने का विधान प्रचलित करने में किसी बुद्धिमानी का काम किया । यहाँ और किसी की वह सामान्य नहीं है कि राजकाशपात्र बिना एक राग भी का तरवार अपनी रक्षा के निमित्त गये । बरपि किसी किसी मनुष्य का अज्ञ रखने का कथिबार किया भी जाता है परन्तु उसमें भी राजमहल में अर्थभय होता ही है ।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण उनका नामों से दिन जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐम्बरगल जनता को यह बता बना चाहत थे कि पुराणों के अनुसार फिर बिकड़ी छातियों के रूप में ज़रती पर आए हैं और उनकी के कारण हम देश की देश-संस्कृति विपन्न है। इस संस्कृति के उदात्त नैतिक आदर्शों की रक्षा के लिए प्रकाश और ध्रुव आदि के समान रूप का आभारी हमारा ही एकमात्र उपाय है। इन नाटकों के रचयिता से यह भी प्रतीत होता है कि गांधीजी के अवतरण के बहुत पहले से ही इन लेखकों के मन में देश की सुरक्षा के विचार के लिए किसी न किसी प्रकार के व्यापार की कल्पना प्रबुद्ध हो रही थी।

ठीक पीछे के नाटकों के ही समान आचरण की संस्कृति के निर्यात की प्रेरणा मरन के उद्देश्य से ऐतिहासिक नाटकों का प्रयोग हुआ है। इन ऐतिहासिक नाटकों में राधाकृष्ण दास हुए पद्मावती और महाराजा प्रताप काभीनाम ज्ञानी हुए तीन परम मनोहर ऐतिहासिक रूपक आचरण गान्धारी हुए अमरसिंह राठीर सैकड़ औरअनेक हुए कलकत्ताके राजा मेगाप्रसाद गुप्त हुए और अवसल श्रीनिवासदास हुए संवर्धिता-जयवंत और विष्णुगाम दुर्गास हुए भी हुए आदि विसेर उल्लेखनीय हैं। यद्यप्युक्त इन नाटकों में भी राष्ट्र के उदात्त नैतिक आदर्शों का सामन करत है। राधाकृष्णदास हुए महाराजी पद्मावती नाटक में एक मल्ला और उसका पुत्रों के कथासंवादन में हिंदुओं के राष्ट्रीय-चरित्र की मनाहर छौकी दिखाई गई है। —

१. चाम्पक—मी आज क्यों इतनी खुशदास मच रही है। क्यों मंगल जयन हम तमवार आदि छत्रों का सामन रहे हैं। क्यों सांग एक नाच हरिण और दुहित हो रहे हैं ?

स्त्री—बैठा मुमस्मानों में महाराजा को छत्र से बचव दिया है इसी में योग दुखिन हात हैं और तुरंत ही अपने देश के लिए रुड़ाई

भारतेंदु-मुग के अन्य नाटककार

करनी होगी और उसमें प्राण देने होंगे इससे भोग प्रसन्न है और संजिख्त हो रहे हैं।

२. पात्रक—क्यों मैं उस किसे कहते हैं? क्या उस कोई मारी शक है? जबका कोई बड़ा पहचान है? हम लोगों ने तो आज तक इसका नाम ही नहीं सुना है।

स्त्री—क्या हम लोगों ने इसका नाम कभी न सुना होगा राक्षस नामक क्या कभी एक का नाम सुन होंगे। इसकी शिक्षा तो सुसम्मानों में ही होती है जोका देनको छल कहते हैं।

राष्ट्रीय आदिभ्य के इन संस्कृतिक और भैरव आद्यों का गुणमान इसी प्रकार अन्य ऐतिहासिक नाटकों में भी मिलता है। देश के राज्यकीन जब-पटन के कारण ये आदस स्वयं हाथ का रहे के इसलिये नाटककारों को इसका अनुचित आभार हो गया था। राधाचरण गोस्वामी हत अमरसिंह राठौर नाटक में बतानिकमन इसी बात को इस प्रकार उपस्थित करत हैं—

दिनरात अकाल दुकाल बिदे। विकल्प छुपा मित मार करे।  
घन धर्म पतिव्रत वीर कला। छिन ही छिन में चली भागत रे।

एक बार राष्ट्र के गौरव का रोमांचधरी गोप और इसी भोग देश की निज मार करने वाली विकराल छुपा की घत-घत इतिहासिक अनुभूति। इससे इन नाटकों में उस आदसवाद का जन्म हुआ जिसका बर्णन की भूमि कभी नहीं छोड़ी। यही कारण है कि इन नाटकों में परंपरागत नाट्यिक न्याय के उस नियम की पूर्ण अवज्ञा की गई है जिसका अनुसार राम के समान आचरण करने वालों की जब और गहन के समान आचरण करने वालों की पराजय दिखाई जाती है। 'जीतदबी' 'अमरसिंह राठौर' 'सिधु' 'राक्षस' आदि नाटकों में घन के दुष्टित तक में दो हुए राम के समान आचरण करने वाले ही पराजय के भागी हाथ पियाए गए हैं, जहाँ स दस युग की दु खान्धनी का अनुभव होगा है।



इस प्रसंग में यह बता देना आवश्यक है कि इन नाटकों में सांस्कृतिक और वैश्विक चेतना का विविध स्वरूप हमें नहीं प्राप्त होता, दोनों का मिश्र स्वरूप ही हमें प्राप्त होता है, जो अनेक सामयिक प्रश्नों की प्रतिक्रिया के साथ साथ अभिव्यक्त होता है।

सांस्कृतिक चेतना के साथ साथ ही सबसे महत्वपूर्ण सामयिक प्रश्न मान्य का था। मारतन्तु जानते थे कि किसी राष्ट्र की भाषा उसकी संस्कृति का प्रतीक होती है और इस दृष्टि से उन्होंने हिंदी का महत्व ठीक ठीक समझा। हिंदी के संबंध में उनके पक्ष की प्रमुख विवेचना यह है कि उन्होंने इसके प्रश्न को राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओं से दूरी नहीं रखना और न इस विश्व में किसी प्रकार का समझौता करने की राय दी। कारण यह जानते थे कि हिंदी हिंदू और मुसलमान सब की भाषा है और अंदरों द्वारा समर्थित वर्ग से समझौता कर देने का अर्थ दुहरी परतमता को स्वीकार करके उसे निरस्तानी बना देना है। मारतन्तु के समान ही उनके समय के अन्य केंद्रों की दृष्टि की इस प्रश्न पर सुस्पष्ट रही और उन्होंने अथोरेण्ड प्रहसनों तथा नाटकों में इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओं को प्रदर्शित किया। ऐसी नाटकीय दृष्टियों में सरलतम सुयोग्यता का अंतोहार विद्यमान करेखनीय है। इस नाटक में हिंदी को भारतीयता तथा राष्ट्रियता का पुण्य-प्रतीक मान कर केन्द्र ने प्रतीक स्तरी में उसके उन्मूलन के विविध प्रयत्नों तथा उसके साथ साथ ही कई अनेक समस्याओंका उत्प्रेषण किया है—

यह नाटक बार अंशों में विभाजित है, जिसमें से प्रत्येक में अनेक गीतक हैं। बंगाली संस्कृत का लिखा हुआ होने के कारण इसका माध्यम बंगालीयन बहुत है। प्रस्तावना में हम गरीब का नाटक की मूल समस्याओं को इस प्रकार व्यक्तित्व करत हुए सुनत हैं— क्या आपका स्मरण नहीं है कि आज का समय अत्यन्त ही दुरि की वजह से मानवमर्त्य कर भारतीयता का अपमान किया है और कर रहे हैं।”

नाटक के प्रथम दृश्य में बंगाली भारत माना हमें एक अंधेरी कोठरी में पसी दिगाई देती है। उनका आग-वाग अनेक आवकन मूर्तिगत पड़े हैं। भारतमाता करण करत करती हुई उनमें बहती है—

मारतेंदु-पुत्र के अन्य नाटककार

सुन भायं सुन बाछा विनय है मोरी,  
भाय गया दिन खोल रे तरवार तोरी ।  
यह फारसी अति दूरदर्शी भारत है मोय,  
उठ पुत्र कर मुझका उदार असेवकीर्ति तबहोय ।

यह बंदन सुन कर जब एक आर्य जानता है तो भारतमाता उसे बताती है कि उन्हें उनके पोष-पुत्र सता रहे हैं, उनको विषयवादी करने वाली यह फारसी मेरी शत्रु है। विदेशी शत्रु और विदेशी संस्कृति के मोह में भारत के ही पोष पुत्र सुसम्मान ठसे सता रहे हैं, यह बात यहाँ स्पष्ट रूप से इस तरह कही गई है कि उसमें साम्प्रदायिकता की गंध भी नहीं आने पाती।

‘फारसी’ के कथन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। मेरा दुस्मन कहा जानता है, और कोई नहीं शिवाय हिंदी के। पर यह बात बरा क्या करने की है कि जो हिंदी बहनात भारत की शरण की मदद न पाती तो उसकी यह ताक न थी कि मेरे साथ पिछाड व समझाने को मुत्सद् हो जाती।” विदेशी शासन जिस संस्कृति को वेष्ट पर आग कर अपनी जड़ें मजबूत करना चाहता है ‘फारसी’ उसी का प्रतीक है। इसीलिए हिंदी ही उसकी पुनर्जात शत्रु है जिसके रूप में भारत अपनी संस्कृति को सुरक्षित बनाए है।

जब आर्य वीरों के सम्मिश्रित आक्रमण से पराजित होकर ‘फारसी’ बन्दिनी होती है, तो हिंदी से द्वेष करने के लिये पचाताप करती है, और उससे प्रेम करने को हुन-संछय होती है। पर भारत को भारत करके पुनर्जात की इच्छा रखनाके सुसम्मान फारसी को ऐसा करने से रोकते हैं। फारसी-आक्रम के इन पूर्वशोध सजीव विनय लेखक न किया है। वे कहते हैं—“मकीन है, कोई दिन भारत को अपनी पाकर इसे हिस्सी क नये खते के तले दाब कर—हा हा इस तरह पीछ हारूँगा।” इनकी मनोवृत्ति की टीका करते हुये एक पात्र मधुसूदन कहता है—“हम का हँदव हब करना ऐसा ही करत है जैसा कि फार को पानी करना”। दुमाय से हमारे वसन्तमियों को यह अनुभव देण के विभाजन के बाद हुआ।

इस गठक के तीसरे अंक में हिंदी जोगिन का जैव चारित्र्य पर फरसी से अपनी आत्माभूमि प्रकृतियों के परिचय का अनुरोध करती है। तत्परवार गिरिजा पर जर्म समाचारण भाषि के साथ मरहटा और सिख भाषि विनिव प्रांतों के रोम ऐक्य समाराधन में तत्काल रीकाह गए हैं। ऐक्य सभी प्रसन्न हो कर पयसती है तथा भारतमाता की ओर से निरुपती हैं। संभवतः इस दृश्य के द्वारा केवल हिंदी के अंतर्गतीय एवं तात्कालिक महत्त्व का निर्देश करना चाहता है। अंतिम दृश्य—परिचित—में हिंदी-फरसी और हिंदू-मुसलमानों के मेल का भी दृश्य दिखाया गया है।

इस गठक की भाषा बहुत ही प्रतीक विधान की उचित है। विदु भारतेंदुकाव्य केवल भाषा की समस्या पर निष्ठ रह विचार रखत थे वह गठक इसका सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त इन केवलों के मन में एक समीक्षित राह की कैली उदात्त कल्पना जय रही की वह गठक इसका भी उगम निरूपण है।

### आध्यात्मिक-धार्मिक

कांठस्थिक-नैतिक चेतना के समान ही आध्यात्मिक-धार्मिक चेतना का भी संनिष्ठ रूप हमें भारतन्तु-काव्य के गठकों के एक वर्ग-विशेष में प्राप्त होता है। आध्यात्मिक-धार्मिक चेतना की गठकीय अभिव्यक्ति का सूत्रांत की भारतन्तु जी ने ही वैराग्य भाषि रूपों और रामलीला के लिए पात्र स्थिर कर दिया था। तरनेर इनका उन्मेष एक बेगमरी धारा के रूप में हुआ। इस धारा के अंतर्गत राम और कृष्ण के चरित्र से संबंध रखते बाते में सभी गठक आ जात हैं, जिनकी रचना इन काव्य में बहुत बड़ी सीढ़ी में हुई। वे गठक हमारी राम गठक-परंपरा के निश्चित साहित्यिक रूप हैं, जो मध्यकाव्य में लीला के नाम से अभिहित रूप से चलती रही। पहले ही कहा जा चुका है कि भारतन्तु ने लीला की इन परंपरा के दो रूपों—रामलीला और रासलीला—का महत्त्व समझ कर उनको अपेक्षित गठकीय स्तरों से विमूर्ति किया और इन प्रकार उन्हें विमूर्ति और उपेक्षा द्वारा वह तथा भद्र होने से बचाया। इनके धर्मधार्मिक अन्य गठकधारों में भी इन काव्य का आग बहावा।

योंसे यह बताया जा चुका है कि रामलीला और रासलीला दोनों का अपना स्वतंत्र दस्तान तथा नाटकीय विधान है। भारतेंदु-कालीन लेखकों ने उनके दर्शन एवं विधान की उपेक्षा नहीं की अपितु उनके उन्मूलन की ही दिशा में साहित्यिक उपेक्षा की। कुछ लेखक तो इन लीलाओं के मूल रूप को सुरक्षित रखने के पक्ष में रहे और उनमें अधिक हेर फेर करना ठीक नहीं समझा। परंतु बहुतों ने ऐसे लेखक भी हुए जिन्होंने उनका सभी साहित्यिक मापकों की ओर खींचा और कभी पारसी रंगमंच के षोडे में मिलाया।

रासलीला-संघर्षी बहुसंख्यक नाटकों में का'य बहादुर माक कुल महार स बमदेव प्रसाद मित्र कुल प्रसाद मित्र और नंद सिंहा ब्रह्मचारी गोरक्षि रक्षित मानवरीय और मातुरी हृष्यदास कुल सुगुप्त मामिनी लीला' विद्यावर विद्यादी की वद्वह वर्षादि नाटिका राधाधरान गोम्बानी कुल भीदमा विमलनन सदास कुल हृष्य सुधमा मानाभासिह उपाध्याय कुल रविमणी परिणय और सुनारायण मिह की 'स्वमातुपम नाटिका' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। अण्बन की सुविधा के सिद्ध वे नाटक तीन वर्गों में विभक्त किए जा सकते हैं—

- (१) प्रथम के नाटक जिनमें रासलीला का मूल रूप प्रायः ज्यों का त्यों सुरक्षित है, उसमें बहुत थोड़ा हेरफेर किया गया है।
- (२) द्वितीय के नाटक जिनमें रासलीला का साहित्यिक आधार और स्वस्व तो पुराना ही है, पर उनका विकास बहुत कुछ साहित्यिक मापकों के समान हो गया है।
- (३) तीसरे वर्ग के नाटकों का का आधुनिक साहित्यिकता से इतना सम्पर्क हो गया कि उनमें रासलीला का मूल रूप विभूत हो गया है।

पहले वर्ग के नाटकों में तोर रुचि रचिन 'मानवरीय और मातुरी, हृष्यदास कुल सुगुप्त मामिनी लीला और भीदमादत्त द्विक कुल सुगुप्त सिंहा आदि हैं। इनका का ठीक प्राचीन रासलीलाओं जैसा है और वे भारतेंदु की तन्मयनीला रासी हृष्य लीला और रासलीला के सर्वथा निरुद्ध है। वे लीलायें अपरिष्कृत पञ्चम्यक हैं, और रासधारियों की पौरुष में ही का एक वर्ग को

जाते हैं, अमिनीत होने योग्य हैं। चाचा हित कुन्दासन दास आदि द्वारा मिथी  
 कई पुरानी लताओं में क्या का प्रयोग विरक्त नहीं किया गया है, रासधारी  
 योग आर्यी और से प्रसंगमुक्त उसका भाग कर लेते हैं। पर, इन लताओं में  
 रोने बहुत गय का नी समारंभ है प्राचीन लताओं में और इनमें अधिक से अधिक  
 लता ही मेद दिखाई पड़ता है। इसका उदाहरण गोपबि कुल धानधारी से  
 देवा आ सकता है जिसमें प्रधान रूपसे पद्यात्मक कबोरकबनों के बीच बीच  
 लताका क्या क नी हो एक छति उपलब्ध हो जाते हैं। अत्यंत सुंद होकर रास  
 लता से बढ़ती है —

होठ नय आखिन की मेरी ओट ।  
 नित झुठी सौगंध खात हो बहुत भगे जिय ओट ।  
 झटो मिलजु अबहुँ मो आगे ठाढ़ो रखत उपाय ।  
 बहुत मई बस सूधी गमन जाहु चले मन भाय ।  
 दूरि करहु सखि अबहि यही ते प्यारी कहत रिसाय ।  
 यह भतिनिलज खरो ही रहिहँ सूये घर नहिँ आय ।

राधा की भाषा को व्यावहारिक रूप बन क लिय जैसे ही उनकी सखियों कुल  
 के दोनों हाथ पकड़ कर उनको कुल से बाहर बाँध कर बाह देते का उपक्रम करती  
 हैं जैसे ही उनकी ठिड़ी-ठिड़ी मूक जाती है और कनिता हवा हो जाती है, कुछ  
 करने के लिये विवश क्या ही पड़े पड़ता है —

“ श्री कुल ( काल जी )—सखियों माठप करु कहन बैठगी !  
 प्रिया जी—बन लेरी बहुत सुनि सुकी, सखियों पाय मेरे  
 भागे त दूरि करो ।”

रासधारी की बरसा ब्रज के सिद्ध गंतों और मक्तों द्वारा प्रवर्तित और  
 प्रेरित हुई इसलिये आध्यात्मिक रहस्यानुसूता उसका प्रमुख गुण है।  
 उसकी यह विपन्नता भवनप्रवा भारतीनु ने अनुभव रखी। परंतु ध्यान रख कर  
 इस परंपरा के मादरों में हम आध्यात्मिक रहस्यानुसूता का स्थान पड़ा ये  
 के किया।



प्राचीन एकात्मिकताओं के समाप्त इन्होंने मिसरास की यह शोषी नहीं दिखाई गयी है जिसमें कल्पयमेक रसविदग्ध पात्रिणी जगत् पुनः और यामय से भी राधा और कृष्ण को प्रसन्न करके उनसे रास मैत्रिक में पधारने की प्रार्थना करती है। इस मन्दक की पक्षी शोषी में हमें कृष्ण स्वयं खरद की राधा में रास की अभिप्राया भरत हुए दिखाई पते हैं। हमारी शोषी में वे अपनी विश्वमहिम्नी मुरली के डबडहारी मर टैण्डर गाणियों का आवाहन करते हुए सामन आते हैं और जब मेकली गाणियों सुमयवाक्यि कटपुनसियों की तरह सिन्धी बकी जाती हैं तो मंड राति म मधारा मम कजन के सिक्क उमदी लीन अर्पणा करते हुए वे उनके रातिमन का उपवेश दय हैं। परंतु गाणियों के परम समनन और जगत् प्रसन्नता के साथ वे बरिपूर्ण उगार पुन कर जन्ही संगीत हो जाता है। अठपक लीमरी साक्षी म कृष्ण गाणियों के साथ गम करते हुए दग्न केत हैं। रास के बीच में लोरीमो का मर हा जाता है और वे राधा के साथ अंतर्धान हो जाते हैं। हमारे मंड की पक्षी शोषी में विरह-वैतपता गाणियों इधर उधर कृष्ण के अवेदन में विरह दिखाई गई हैं। हमारी शोषी में राधा को नी गन के बसीभूत दिखाका गया है फजन से भी कृष्ण द्वारा परिलक्ष्य होती है। लीपरी शोषी में विमोह कीकिता राधा तथा गाणियों की मेट लिताई जाती है और बीबी शोषी में वे एक कृष्ण के विरह में अवेक प्रधर के मित्य-प्रसात करती हुए मम्पुग जाती हैं। इस अवसर पर लेण्ड न जनक प्रधर की एकरात्रिणिमो का ब्रह्ममय मुष्टिपूर्ण समावेश म्बिा है। पर वे गम गीन कैण्ड के अन्त है पुरानी एकात्मिकताओं में प्रमुक्त सउ मंदराग और मस्त-कणियों के नहीं। एक उदाहरण ब्रह्मपत रोष —

काऊ कहीं, लफ्यो नी गोपाल ।

म्याकुन पिगति यहुँरिसी उनविन से मय मज की पाल ।

एक एनी महीं चन म्याम बिजु है मय मति येहास ।

हमा बगो अप आप मिसा मुम है जगुमति के सान्त । ,

हमारे मंड की प्रथम शोषी में हम यमिगात्रिमाल गाणियों का अवेक आवाहन पूर्वक शोषण के मर्त प्रार्थनापराधक गान हैं उनकी इस दशा से बसीभूत

होकर वे प्रसन्न होते हैं। अपनी सौकी में सब का पारम्परिक भाविकाप प्रमाण किया गया है जिसमें प्रेमसाधन का निरूपण है। बीसों अंक में हमें फिर रास का दृश्य दिखाई पड़ता है। रास के अन्त में सब कोपियाँ निकल कर धीराबा और धीरूषण का विवाह रचानी हैं जिसमें पारिवर्त्य मत्कार की सब विधियों का यथावत् पावन होना है। अन्त में सब मिलकर समुद्र में नौकाविहार करते हैं, यही अन्तिम सीरी है।

इस संक्षिप्त परिचयात्मक विवेचन से यह स्पष्ट है कि लेखक का रामलीला के मूलरूप का सब नाटकीय तत्वों से परिचित करने की आकांक्षा है और इस कार्य को वह सफलता से सम्पादित करता है। कथावस्तु में नाटकीय आवश्यकता की दृष्टि से परिवर्तन एवं परिवर्धन करते हुए भी वह उसके तात्कालिक आचार को ज्यों का त्यों रखने देता है एक निष्ठावान कारिग की भाँति इस कथा पर उसकी धृष्टा है। तात्पर्य यह कि इन नाटक का विषय तो पुराना है पर तरीका नवी और नाटकीय हो गई है। विषय-प्रतिपादन में धार्मिक अड्डाबन्ध भुक्तिक का बोध तो है पर आध्यात्मिक स्वभाव सीम हो गई है। यह बात हम इस वर्ष के मध्य नाटकों में भी पाते हैं। यदि बुराने कदमावरण की तुलना इस काष्ठ के अक्षरेय प्रसार विषय के प्रसार मिलन 'नाटक से की बात तो हमारे निष्कर्ष की और भी पुष्टि हो जायेगी। दोनों ही नाटकों में धीरेकाकीन विधोय के बार प्रमाण-लेख में भूयस्वरूप के अक्षर पर धीरूषण और धीराबा तथा अन्य कदवातियों के मिलन की कथा है। दोनों का कथानक एक है पर तरीके में बहुत अन्तर हो गया है। कदमावरण रामलीला के अन्तिम और रसमंच का अनुवर्ती है तो प्रसार मिलन भारतेन्दु-युग के नव-विकास रसमंच की परम्परा से आगत और प्रभावित। तात्पर्य यह कि एक अपने मूल रूप में सीला है तो दूसरा विकसामुख नाटक। फिर भी प्रसार मिलन' में रास का वातावरण नहीं छूटा वह रास और दृश्य के व्यक्तित्व की अतीतिकता में वर्तमान है।

नीसर धर्म के नाटक रामलीला के अन्तिम और रसमंच की परम्परा के एक-आध उपादान आधुनिकानुसार ग्रहण करने एवं भी उसके तात्त्विक



आधार का छोड़ चुके हैं। इस वर्ग के नाटकों में राजाचरण मोस्वायी का 'वीदामा' विशेष उल्लेखनीय है। इस नाटक के प्रारम्भ में गांधी हैं और फिर प्रस्तावना। प्रस्तावना में मूत्रधार चतुरदिक छाने हुए दुष्काल का उल्लेख करता है। दुष्कालग्रस्त बिम्बा से मटी ली तो नाटक लेखने की भी इच्छा नहीं होती। यह कहती है, छप्पर पर फूल नहीं डेबड़ी पर माच। तमूँ आज नाटक मुखा है, मुझे तीन दिन एकाग्रधी करते बीत गये।' जनता की भयंकर भूख की अनुमति रास के आध्यात्मिक रहस्यवाद का किस प्रकार यथार्थमूल आधारवाद में परिणत कर रही है, यह इस नाटक की प्रस्तावना में देखा जा सकता है।

प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी इस देश में अपने आधार की संस्कृति का मट्ट नहीं होने दिया है यह इस नाटक का प्रमुख निर्देश है। नाटक के प्रथम दृश्य में इन वीदामा और उनकी पत्नी सखसहा की अनग्न भक्ति तथा बार दण्डिता का मार्मिक चित्र एक साथ देखते हैं। वीदामा भवमान के भजन और ध्यान में इतने उत्कीर्ण हैं कि बानी के बार बार माद दिलाने पर भी बीलोष्ठ के किए नहीं मात यद्यपि घर में काम के लिए एक दाता भी नहीं। वीदामा का सिद्धांत है "आजनाच्छादने बिम्बा मुखा कर्त्तन्ति बीजमा"। सर्वसहा पति की उस बार से विरक्त है उस स्वयं भोज नाक्षेपण के लिए कुछ उद्योग करना चाहती है। पर पनि की अनुमति नहीं मिलती इसलिये वह भी भवमान के नामी का एक लसा जप करने बैठ जाती है। भजन-पूजन और जपाहि में ही संख्या ही वाली है पर घर में भोजन की कुछ व्यवस्था नहीं। पत्नी स्वयं भोजन साधनी बुढ़ाने के लिए पुनः कुछ प्रयत्न करना चाहती है, पर वीदामा निवारण करत हैं। कारण एक ता रात्रि ने भोजन निषिद्ध है बुढ़ाने सायंवात जप के अभ्येय से सेनों में विभाव करन घांस पीर-धनुओं के पुनी हंस की सम्भावना है। इसी परिस्थिति में पड़ोनी का एक बालक आकर उन्हें भवमान का प्रसाद अर्पित करना है।

दुसरे दृश्य में वीदामा अपने टूटे-फूटे घरमें एक जीर्ण-शीर्ण छप्पर के नीचे सर्वसहा से साथ बैठे दिनाये गये हैं मूलकाधार बर्बा हो रही है। यहाँ देव बार वीदामा प्रसन्न हैं कर्त्तव्य विष और विद्या की देवता उन्हें बार बार

मान्नाम-द-पदार-मुन्बर पीताम्बरधारी धीरुष की स्मृति स्मृति हा रही है। परन्तु उस वर्षा से रेखा का एकमात्र माघन छप्पर तो उड़ जाना चाहता है। इसलिये सर्वसहा हर रही है और धीरामा उमे धीर्य बिकेते हैं। अन्त में छप्पर उड़ ही जाता है वस्यति छायाविहीन हा वर्षा में भीषण लगने है। सर्वसहा मकार गाकर भववान् मे प्रार्थना करती है।

तीसरे दृश्य में धीरामा एक मीठी पोंकली लिये हुए द्वारका के पक्ष पर घुट्टियन होते हैं। वर्षा में घर फिर-फिर कर बिस्तुत बहुत गया है, अतएव सर्वसहा ने दुनिवार हठ करके उनकी इच्छा के विपरीत उन्हें द्वारका जाने को बिगन किया है। बीजे दृश्य में हम द्वारका के रसमहलों का दर्शन करत हैं जहाँ धीरुष और रुक्मिणी विराजमान हैं। धीरामा के जाने का समाचार पाकर दृश्य उन्हें आदरपूर्वक अन्तपुर में लाते हैं और अपने हावा उनका मोपचार पूजन करके उनके साथ हुए बाबल फेंकते हैं। पाँचवें दृश्य में राजपक्ष का दृश्य है। धीरामा दृश्य में बिना हाकर घर जा रही है परन्तु ने हृदय में बो दुखी है क्योंकि दृश्य ने बन्ने कुछ नहीं दिया। पर बाबाममालि पर जय व घर पहुँचते हैं तो वहाँ अप्रत्याशित अकस्मिन् परिवर्तन देख कर आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। इसी समय राजकीय वेसमूपा में जनक परिवारकात्रा ने मणिन मन्महा आकर उनका स्वागत करती है।

यह नाटक जनता की दार्मिक चेतना की अभिव्यक्ति का बड़ा सफल माहिषिय प्रथम है। इस नाटक का गठन सुन्दर है, धीरामा और उनकी पत्नी की अन्तःप्रवृत्ति का भी मनमें मनोरम उद्घाटन है और कथा-वक्त्र भी प्रथम तथा पात्रा के दीप्त क उपयुक्त है। इस वर्ष क नाटक का महोपरि महत्व यह है कि मनमें जीता की माग् के रूप में परिचय की प्रक्रिया प्रायः पूर्णता पर पहुँची रही जा सकती है। धीरामा की मुक्तता नरालमराय क प्रसिद्ध काव्य मुशामा चरित में करने पर यह बात भागानी से नमसी जा सकती है। नवाचरण के धीरामा के चरित में नरालमराय के मुशामा के चरित की अपेक्षा अधिक शुद्धता है जो दर्शक को समाज की सर्वकार मूल की ज्वालाओं के बीच बर्ष पर आहट रहन की प्रेरणा देती है।

रामलीला सम्बन्धी नाटकों की संख्या भी कम नहीं है। इन नाटकों में ज्वालाप्रसाद मिश्र का रामलीला (सातों काण्ड) और सीता बनवास दामोदर सप्रे शास्त्री का रामलीला सात काण्ड विषयों पर आधारित हैं। राजमहल दर्पण ब्रजचंद जनकस्तोत्री का रामलीला नाटक बन्दीरीय बीमित के सीताहुरण और सीतास्वयंवर प्रेमघन कुल प्रयाग रामायण तथा रामायण का चरित्रनाम-बह-व्याघ्र विषय सम्बन्धी है। रामलीला सम्बन्धी नाटकों के समान ही ये नाटक भी तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। पहले वर्ग के अन्तर्गत वे नाटक परिचयनीय हैं जो रामलीला के सांख्यिक तथा धार्मिक आधार और उनकी अभिनय एवं रंगमंच की परम्पराओं का विविध रूप प्रस्तुत करते हैं। दूसरा वर्ग उन नाटकों का है जो इन परम्पराओं को न छोड़ कर बीरे बीरे नवीन रंगमंच की प्रवृत्तियों से प्रभावित हो रहा है। तृते वर्ग के वे नाटक हैं जो प्राचीन परम्परा से जना तोड़ चुके हैं।

पहले वर्ग के नाटकों में ज्वालाप्रसाद मिश्र का रामलीला (सातों काण्ड) दामोदर सप्रे शास्त्री का रामलीला सात काण्ड और ब्रजचंद जनकस्तोत्री का रामलीला नाटक (आठकाण्ड) विशेष उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने धार्मिक चरित्र और धर्म के साथ रामलीला नाटकों की रचना की। इसलिये इन लोगों ने रामलीला की अभिनय-परम्परा को बचका नहीं की है। अतः ब्रजचंद जनकस्तोत्री अधिकधिक सम्मान करवना प्रयत्न किया है। ज्वालाप्रसाद मिश्र ने अपने रामलीला नाटक की श्रुति में बड़े विस्तार से सीता की विधि बताया है, जिसने पाठों के निर्वाचन में लेकर उनके आह्वानों के विधान एवं रंगमंचीय विधि आनन्दप्रसाद की पुति के निबन्ध प्रस्तुत किये गये हैं। रामलीला के अन्तर्गत लुकर नाटकीय विधान ने भारतीय और उनके समकालीन लेखकों को अभिनय और रंगमंच सम्बन्धी नयी दृष्टि प्रदान की इससे समझ के लिये भवकाय नहीं। इन रामलीला नाटकों की सामान्य विशेषता यह है कि वे सब के सब रामचरितमानस से आधार पर निर्मित हुए हैं। बन्धु इनके रूप में रामचरितमानस का नाटकीकरण उपलब्ध होता है और लुकर

की उस महिमामयी कला का प्रत्यक्षीकरण होता है जिसमें ध्वन्यात्म्य और व्यङ्ग्य्य दोनों का समन्वित रूप एक ही आधार में प्रस्तुत किया है। ज्वालाप्रसाद मिश्र की रामलीला रामायण इस नोष्ठि के नाटकों का उपयुक्त प्रतिनिधि है।

ज्वालाप्रसाद मिश्र ने रामायण के प्रत्येक काण्ड का दर्शना में विन्यासित किया है। प्रारम्भ में नहीं है जिससे बालकाण्ड के प्रारम्भ के संयोजकनात्मक स्वरूप होखे और साठे संकलित हैं और पादटिप्पणियाँ में उनका अर्थ दिया हुआ है। इसके बाद प्रस्तावना है जिसमें शिव पार्वती का सूत्रधार और मटी के स्थान पर रख कर रामचरितमानस के उनसे संवाद के एक जोड़ का कथोपकथन के रूप में उपबोध किया गया है। शिव-पार्वती का यह कथोपकथन रामायण की चौराहों के ही रूप में चलता है केवल अन्त में शिव भी कहते हैं "वह देखा रावबाहि स जब पाये देवता कीरखानर में मगवान् ने पास जाते हैं हम भी चलें"। इस प्रस्तावना के बाद बालकाण्ड का प्रथम दर्शन कीर्तनार के तट पर प्रारम्भ होता है जहाँ ब्रह्मादिक सम्पूर्ण देवता और पशुवपवारी पृथ्वी स्तुति करते दिखाई देते हैं। बालकाण्ड की इसी प्रकारके व्याख्ये दर्शनों में विन्यास है जिनमें दशरथ ने पुत्रटिप्पण स प्रारम्भ कहे विवाहे परान्त राम के घर कीटले तक की चरनाए समाविष्ट है। इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड की चरना दश भरवकाण्ड की चर, किष्किण्णकाण्ड की चर, लुम्बिकाण्ड की चर, लंकाकाण्ड की चर और उत्तरकाण्ड की तीन दर्शना में प्रवर्णित है। इन दर्शनों में समस्त रामचरितमानस की चरना विन्यास पात्रों के कथोपकथन के रूप में सजा दी गयी है। ज्वालाप्रसाद सारा कथोपकथन दोहा-चौताइयों में ही हुआ है कवयित्री विद्या प्रथम में विमेष पात्र गद्य का उपयोग करना है। पादटिप्पणियों में नाटककार ने अर्थ के अनिश्चित अन्य चरित्रों के कथित सबूतों भजन भाषि संकलित कर दिये हैं जिनका उद्देश्य चरित्रों यह है कि रामलीला ने अविनयता और व्यङ्ग्य्यात्मक रोचकता बहान और विविधता लाभ के लिये उनका भी यथास्थान उपयोग कर लें।

ज्वालामुखी के बगीचे के कुछ लोकाओं ने अपनी रचना का आधार ही रामचरितमानस ही रखा है, पर कवीपद्यों में मूल बीजाइयों का प्रयोग न करके उनका आशय तथा में अवस्था स्वरूप पद्य में विविध पाशों से कसलगाया है। अजयब जगदलाली के 'रामलीला नाटक' (बालकाण्ड) की नहीं सीधी है। यह नाटक रामचरितमानस का आधार छोड़ कर विदुष्ट लेखि का ही रखा है, कर्मण केन्द्र की पद्य और पद्य होना की भाषा में व्यवस्था लीप्य और विमुक्तता का अभाव है। नाटक की कथा दर्पण के स्थान पर प्रतीकों में विभाजित है।

दुबई बगीचे के रामलीला नाटकों का प्रतिनिधित्व करने वाली रचना बन्दीबीन दीक्षित का सीतास्वयंवर (सं १८५६) है। इस नाटकी और प्रस्तावना का प्रभाव नहीं है और कथा दुस्ती में विभाजित हो गई है। नाटकी और प्रस्तावना के स्थान पर प्रथम रूप में भेदभूषिणी बरनी मान करती हुई अपनी दुरवस्था का वर्णन करती है। ठुपुपल्लव बीजाइय में केन्द्र अनुपमंय और वरमुपम-संवाद पर्वत कथा लक्ष-वक्ष न बलित है। कवीपद्यों में प्रमुख पद्य अथ कही अवधी लक्ष्मी लिखी होने के कारण अव्यवस्थित है। पर रामचरितमानस रामलला लहलू रामचन्द्रिका आदि संघों में कवीपद्यों के लिये प्रत्येकपद्य पद्यों का सुवचिपुर्ण चुनाव किया गया है। कवि के विरचित नवीने की तरंग है।

।

इस वर्षी के तीसरे वर्ष के नाटकों में रामलीला के लोकवर्गी विभाग को छोड़ कर नवीन रंगमंच के नाट्यवर्गी विभाग का अनुसरण किया है। यहाँ भी इन नई परिस्थितियों के अनुकूल लीला की नाटक के रूप में आकाश लीला करते हुए देखते हैं। इन वर्ष के नाटकों में प्रेमपत्र व प्रयासपत्र और बालनाथानि निरुक्त आरिषनाथवक्षसीप आदि प्रमुख हैं। -

वर्षिक वेतना में इन विरलेपत्र में वह न अमला आया आरिष नि के अथक आध्यात्मिक अवस्था आरिष आर्यों के नाम पर पामश प्रववा

अन्धविश्वास का भी किसी प्रकार समर्थन करते हैं। धार्मिक अन्धविश्वास या पाश्चात्य के विरोध में ये आधुनिक से आधुनिक केन्द्र से भी जाते हैं। 'मार्कोम्ब ने 'देविकी हिंसा हिमा म'मकति तथा प्रेमजोमिनी' में धार्मिक पाश्चात्य पर अपने अग्य का बखा दिया था। 'मार्कोम्ब' ने उन्हीं स्पष्ट बोधित का दिया था कि धार्मिक अन्धविश्वास किसी भी रूप में उनका हितार्थ का प्रयत्न नहीं करने कर सकता।<sup>१</sup>

उनके समकालीन प्रसिद्ध केन्द्रों व भी उन्हीं के समान धार्मिक पाश्चात्य और अन्धविश्वास के दुर्ग को अग्य और अहिंस की सुरंगों से उखाड़नेका विचार प्रयत्न किया। इन प्रकार के प्रयत्नों में राजाचरण मोहार्थ का अनवरतन भी मुहार्थ भी का अर्थन और बड़े मुह मुहार्थ विशेष उत्तेजननीय है। उन मन मन भी मुहार्थ भी के अर्थन नामक बाठ बर्को के प्रहसन में एक मुहार्थ भी का जीवन चित्रित है जो अपने मनो से उनकी कबली बहू-देवियों का उत्कर्षण करवाते हैं। मुहार्थ भी न अपने भक्तों की इसी जीवन में मुक्ति मुक्त करने के लिए ऐसा नाम की एक, मुटनी रक्त छोड़ी है उसका भी पुनरीक इस प्रहसन में निरूपित है। बड़े मुह मुहार्थ में नामा नारायणदास नाम के एक परम भक्तवत्सल बर्कोदार के कर्मों की कथा है जो राम का नाम बप बप कर अपने ही निर्भग किमान मोक्त लेनी की जमान और मुन्दर स्त्री का मन में करने का नकल्प बूढ़ करते हैं। बीबी की वृष्टि से भी यह प्रहसन बाक्य है परन्तु उसमें अग्य विचारों की विचार स्पष्टता का बाक्यनीय है। संभवतः बड़े मुह मुहार्थ मोहार्थी भी की मोक्त रचना नहीं है। वह माइकेल मनुसुमानदा के बह सांसिकेर बोधों का कथानुवाद है।

इन केन्द्रों की धार्मिक चरमा प्रयोग विचार और परिष्कृत हान के साथ ही साथ किमती सारधाहिनी भी इसका निवर्धन राजाचरणदास का धार्मिक अर्थान् भारतीय मानाचर्मा का धार्मिक (अग्य गतिन)।

१ देविकी - मा १ मा सत्त्वानास कीवरा का मानन ।

नामक एकांकी (?) है। इसमें कुछ एक ही दृश्य है। बूढ़ सनातन। धर्म कीच में बैठे हुआ दिखाई पड़ता है जिसकी बहुत से कड़के चारों ओर से घेर कर बैठे हैं। इन बाकलों में विभिन्न प्रथमिष्ठ धार्मिक विचार-धाराओं के प्रतिनिधि पंडित बैद्यजी ब्राह्मण दीव धातु कील वैष्णव रामानुजी पंचपरिये (मुमुक्षुबान) ब्राह्मणे, पियोसोफिस्ट, ग्यूरसमिने मेडिब, क्रिश्चियन मेथरिमे या नास्तिक मारवाड़ी, सादोबी, काकासाहेब और प्रेमी प्रकट आदि सब हैं। सनातनधर्म प्रकृत मानव धर्म अथवा विश्वधर्म इन अंतस्व मनवालों के बीच प्रान्त प्रकृत एवं जीवन्मृत है। वह अपनी समु-पस्थित सन्तानों से अपनी रत्ना का कुछ उपवास करने का कहता है। इस पर प्रत्येक उन अनुष्ठानों का व्योम उपस्थित करता है जो उसने धर्म को तारने के लिये किये हैं। पंडित कहते हैं — “धर्म की ओर सचि और अडा बनाये रखने के लिये हम भवोभोने पाँच पैरों में पठनान करवा। अब तक सभाओं में जाकर एक दूसरे का सिर इसीलिए पड़ेते हैं कि धर्म की कर्तवि है।” दीव कहता है — “धर्म के लिये वैष्णवों को भाओं गालियाँ देने हैं और अगर बलत पड़ा तो भावुत में सिर कटान को भी तैयार।” मारवाड़ी भी अपने मन निवेदन द्वारा “तनमनमन थी गुसाई जी के धर्म के समर्पनवादी नेठ कथन की भाव दिखाते हैं — यहाँ तो महापुत्र पुणेहित जी की भावा बिना कोई काम करें नहीं। परवार लड़का जोह भरन तरन सबका हान पुणेहितजी जानें।” साहो भी बड़े मनोब से अपनी धार्मिकता का बोध करते हैं — “नित सनेरे लोपाओ नहाव भाई और अपना एक पैसा धार्मिक को दे दिया। अपना ती बाबा पुत्र धरमका बड़ा ग्यास रखी है।” इस पर काका साहब स्वर्दा ने बोले उठते हैं “कलमदान कमन हम तो बुद्ध का नाम लिये बिना कोई काम करते नहीं।” हुमांने तो पाजीमिनी बाबा सहार है “कहकर पंचपरिये सन्तोष की सांत देने हैं पर ग्यान्मी यह कह कह कह कर कि “आप लोगों के मारे कुछ नहीं होने पाया अनन्तोप प्रकट करते हैं। संभवतः ब्राह्मणों की अपने धर्म-धार कार्य पर विशेष गर्व है क्योंकि वह “दीव बनार को महापार्थ महापुत्र के साथ निकाला और ब्राह्मण का विधवा हुआसन्तोष का माय विवाहता” है। इसी प्रकार अन्य सब लोग जब अपनी-अपनी कह स्नेह हैं

तो प्रेमी बल्ल कट्टा है— ज्योति पति पुत्री नहि कोई, हरि को भवै सो हरि का होई.. परमधर्म हरिपद मदन तबहु न एकहु सोई ।

इस प्रकार जब जनमें किसी भी प्रकार यथैव नहीं होने पाता तो सब वास्तव में कहते हैं— 'अपुनो अपुने मत लै लै सब सगरत ज्यों भठिनाई' । इस पर समाप्तनयनं पुत्री हाकर मूर्च्छित हो जाता है ।

इस काल के नानाप की परिकल्पना बड़ी विचित्र यथार्थ और उदात्त है । विविध जनों के प्रतिनिधियों के मुँह से जो जो बातें सुनते ही अनुमायियों का यथार्थ चरित्र—विचित्र कल्पना में बरबस उमड़ जाता है । इसके अतिरिक्त केवल यह भी उचित करता है कि समाप्तनयनं केवल हिन्दुओं का ही नहीं अपितु मानवजात का है । पंचपिण्डि विविधजन आदि को उसके शास्त्रों के रूप में बिल्ला कर केवल यही निर्देश करता है । इस प्रकार मार्लेनु पुत्र के केवल हमें विविध यथार्थों से ऊपर उठा कर हमारे मन में एक आधारभूत विश्वधर्म की कल्पना भी—बयाते हैं ।

### राजनीतिक स्वातन्त्र्य की चेतना —

जिन कालों में अपने देश के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक नैतिक एवं सामिक जीवन का समग्रतया बोध इतना गम्भीर हो जनमें उसकी आर्थिक दुरवस्था और राजनीतिक पराजयता की अनुभूति का अत्यन्त तीव्र होना स्वाभाविक ही है । सबसे मूल की विराट् प्लाता में बसती हुई देश की बंदी जनता की यत्नशाली की अनुभूति मार्लेनु में चित्तनी अभिप्रेम की यह हम यथासंभव बिल्ला चुके हैं । उनके युव के अन्य केवल भी इस दृष्टि से उनके समाजिक से यह भी हम बिल्ला आ रहे हैं । सांस्कृतिक नैतिक सामिक अथवा आध्यात्मिक किसी भी परम्परा के नाटक में वे दुष्प्राप्त से अतिग्न अथवा निर्धनतावपी राजनीतिक पक्ष के देश में अग्रणीजन इस दुष्पी देश को नहीं घुमते हैं । यहाँ एक कि विपुल प्रेमात्मक परम्परा के नाटकों में भी वे किसी न किसी बहाने देश के आर्थिक जीवन की चेतना जगा देते हैं । ऐसे कालों में राजनीतिक स्वातन्त्र्य की चेतना का सबसे अवसरमयी था ।



परन्तु उस समय का भारत परम परतन्त्र था। अंग्रेजोंने जनता के नाबिक और राजनीतिक स्वातन्त्र्य का ही हर्ष नहीं किया था उसके अंगूठे काट कर और रोजी छीन कर पैरों में कुत्तामी की जंजीरें ही नहीं पहनाई थी भक्ति निर्दयतापूर्वक उसकी कबाल खींच कर मजबूती में उसका मुंह भी बन्द कर दिया था। उस युग में नाभी पर कठिना कठोर निदग्ध था इसका आभास भारतेन्दु ने भारत दुर्दसा नाटक में जिसमावटी के कार्य-व्यापार द्वारा दिया है। इस परिस्थिति में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने जो कुछ कहा और किया वह कर कहा वह कदु सार और उसकी कठनी-प्रसर ज्योति तो सम्मन्वित आज की सरकार भी कठिनाई से सहन कर पावेगी। अवश्य इन लोगोंने यह सब प्रायः बिगटीरिया के नाम की दुहाई देते हुए उनकी प्रशंसा की आज में कहा। पर ऐसा उन्होंने राजशेह के शायद आरोप से बचने के लिये किया राजभक्ति की अकृत्रिम प्रेरणा से नहीं। तात्पर्य यह कि इस काल के लेखकों ने पहले पहल इस मुक देश की प्रबुद्ध नाभी का प्रसार दिया उनकी राजनीतिक चेतना आज भी आश्चर्य में डालने वाली है। वह अपने समय के राजनीतिक नेताओं की स्वातन्त्र्य चेतना से ही नहीं जागे की कई पीढ़ी के नेताओं की स्वातन्त्र्य-चेतना से भी जागे है। डॉ. रामबिलास शर्मा ने अपनी भारतेन्दु-युग नामक पुस्तक में इस विश्व के आग्रह महारूपों का अध्ययन किया है<sup>१</sup>। इसका एक अंश उद्धृत कर देने से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

“ सारसुवागिनि का लेख जमीनकी घातघाती और वै सम्मता उस समय की राजनीतिक चेतना का प्रमाण है। हिन्दी के लेखकों ने देश के आचरण से कीमता आज लिया यह जानने के लिये ऐसे लेखों का पहला आचरण है। लोगों को यह कहते हुए हम सुना करते हैं कि नाभी बाबा के पहले तो लोक स्वराज का नाम लेते हुए भी करते थे सरकार के विरुद्ध एक शब्द कहने का उन्हें साहस न होता था ऐसे लोगों की वा तो सहित्य की जानकारी नहीं है, या जानबूझ कर वे झूठा बचार

कहते हैं। दक्षिण अफ्रीका के बूलू युद्ध में महात्मा गांधी ब्रिटिश सरकार के साथ थे, यद्यपि उन्होंने स्वीकार किया था कि स्वयं सरकार के साथ नहीं था। गांधीजी की उस की राजनीतिक चेतना से इस खेल का खेलक कोसों बाधे हैं - उसके समय के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञों ने सरकारी नीति की कभी ऐसी कड़ी जालोचना न की थी। बरन् के सरकार का साथ देते थे। राजनीति ने देश को स्वाधीन करना चाहते थे या ब्रिटिश राज में रह कर सुख की छाँट के स्वाधीनता को भूल जाना चाहते थे। सरकार, कचहरी और प्रेसपेक्ट के मुकाबिले में बट कर इन स्वार्थवागी कैलकों ने-जिनका इतिहास में नाम भी स्पष्ट नहीं लिखा है-देश में राजनीतिक चेतना फैलाई।”

राजनीतिक चेतना के कमान ही इन कैलकों की आर्थिक चेतना भी सुविकसित थी। भारतेन्दु युग का प्रत्येक लेखक जानता है कि देशकी भयंकर मुबमरी और गलत का कारण अंग्रेज है। भारतेन्दु के स्वर में स्वर निकाल कर युग के सभी प्रमुख लेखक 'बल विदेश बलि जात का राज जनता के रंगमंच पर बजापते हैं। बलों की टी बात ही बलगत सज्जद मुन्मुस ' जैसे वपान्ताष्टि नाटक का लेखक भी बलमायक समथोर के मुँह से अमरेओ की पोल खोलने का अवसर निकाल लेता है -

दूर बेबकूफ अंगरेज की बात है या कोई और है ? अपने ही तो चाहो इनकी बात की बात खरीद लो । अपने ही के किये न से सात समुद्र पार उतर के यहाँ आये हैं ।

इस आर्थिक-राजनीतिक चेतना को भारतेन्दु जी ने पहले पहल भारत बुर्खा में पुराने प्रतीक-नाटकों की सीरी में अभिव्यक्ति प्रदान की। तदुपरांत इस सीरी के अनेक नाटक इनके युग में लिखे गये, जिनमें प्रगाफनाराम्यम निषका भारत-बुर्खा इनके प्रेमपत्र का भारत सीमागम दुर्गादास की वर्तमान दया, बह्म बहादुर मस्क का भारत-भारत आदि हैं। राष्ट्रीयता के लक्ष्ये व्यापक अर्थ में भारतेन्दुयुग का साध साहित्य सम्पन्न है। पर उसका जो संकुचित अर्थ दुर्भाग्य से मात्र प्रसार

या गया है उसके अनुसार ये राजनीतिक आर्थिक चतुर्मासम्पन्न नाटक ही राष्ट्रीय और राष्ट्रीय नाटकों की राष्ट्रिय धारा के प्रवर्तक माने जा सकते हैं ।

इस प्रकार की राष्ट्रियता के अन्य आनुवंशिक पक्षों अथवा प्रतीकों का भी हम लेखकों की दृष्टि पर है । ऐसे प्रतीकों में हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न राजनीतिक दृष्टि में प्रधान समझा जाता रहा है । बालेन्दु ने भी कहा था—'वर में आग जले तक जिहानी जीतनी को आपस की राह छोड़ कर वह आग बुझानी चाहिये । वर में अथमान और दखिता को आग जली ही की इसलिये जिहानी के पक्ष के अनेक लेखकों ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए वातावरण तैयार करने वाले नाटक लिखे जिनमें अग्रेष्ठ १८९२ ईस्वी में प्रकाशित रत्नचंद्र का प्रभावशाली उल्लेखनीय है ।

इस नाटक के नाटक अकबर के चरित्र में आर्थिक उदारता और सहिष्णुता का पूर्ण विकास दिखाया गया है । वह बीरबल से कहता है— हमने यह नियम कर लिया है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक ही दृष्टि से देखें जिससे वह वर की प्रजा के मन में हमारे कौम के बापसाहो की नीति से उत्पन्न हो गया है, जाया रहे । बीरबल में हमें नर्मदा के एक ऐसे बुद्धिमान नीतिज्ञ चतुर, नागजी एक वृक्षप्रतिष्ठ नेता के दर्शन होते हैं जो अकबर से मिलकर देश-प्राप्ति का हित-साधन करना चाहता है । वह समय उन्नयन पर साधन के अभावों की ओर अकबर का ध्यान आकषिप्त करता रहता है और इस प्रकार ऐतक को अपने समय की नीकरसाही क उन कुर्यों के प्रति आवाज उठान का अवसर देता है । जब ऐतक को आई थी उस परीक्षा के विषय में कुछ कहना होता है तो बीरबल क मुख से वह इस प्रकार बोलता है— पराजित परीक्षा देकर ही सरकारी उत्पन्न अकबर के दरबार में प्राप्त होता है । पर इस परीक्षा से हिन्दुओं को अधिक उत्पन्न के लिये अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये हैं — (१) वह बाबुल में होती है । (२) अरबी के अनेक ग्रंथ जिनमें रत्न चिन्ने गये हैं । (३)

बीस वर्ष से अधिक बायु के होय उसमे बैठ नहीं सकते । (४) परीषद विदेशी होते हैं ।"

लेखक संभवतः यह भी जानता है कि अकबर की उदार नीति का प्रभाव इस देश में बहुत दूर तक नहीं पड़ा । इसलिये जब हम अकबर को यह कहते हुए सुनते हैं कि 'बैसी भी दया हमारी हो या देश की हो हम म्यामसाय से बहुत हाने की इरका नहीं रखते' या जनता के प्रतिनिधि हरमजनसिंह का यह कहते हुए भी वेसते हैं कि मल्लिक हमारी आँखों के सामने ही हमारे देशी भाइयों पर इज्जत सत्तामत् की आजा के बिछड़ कैसे कैसे ब्याप्य करत हैं । अकबर की शासन-नीति की आलोचना के ब्याव से अंगरेजों की नेत-नीति ( Divide and rule policy ) का बहुबोद्धाजन किया गया है ।

इस नाटक का बहस्य उपास है, इसमें सन्देह नहीं । सम्भवतः भारतेन्दुगुप्त में इसी नाटक में पहले-पहल अकबर की धार्मिक उदारता का चित्रण किया गया है । हिन्दु लेखक ने बड़ी कुपक्ता से यह भी समित कर दिया है कि उसकी यह उदारता भासे-भासे हिन्दुओं को फुसताने का साधन बन है । इस प्रकार चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी नाटक उत्कलनीय है सामयिक भाव-प्रवाह के बीच बीच पात्रों का शीक-बीधियम भी कुछ न कुछ प्रकाश में जाता रहता है । कपोलकण्ठ की भाषा भी एक योजना का अनुसरण करती हुई प्रतीत होती है । उदाहरणस्वरूप अकबर शास्त्र हिन्दी का प्रमाण करता है । पर उसके समस्त उपस्थित हिन्दु भी ( अंगरेजी शासन के नीर नज के कुषामयी बाबुओं की तरह ) उर्दू उपस्थित लेखकों की अपनी बात पूरी पूरी वह लेने की जितनी चिन्ता है उतनी नाटयवका के निर्वाह की नहीं ।

इस योजना के लेखकों की राजनीतिक योजना का विस्तरेण करने पर हम उनमे पीरय और विवेक का मनाज सार्वजन्य पाते हैं । वर्तमान के प्रति अनगोप उन्हें पलायनकारी अथवा मिरास नहीं बना पाता अपितु

उनके भीतर ऐसे सोमपूर्ण पौरव को जगा देता है जो आर्थिक दौलत और राजनीतिक पराजयता के सब आधार-स्तंभों को हस्त तथा ध्वज के प्रहरों से उड़ा देने का उत्साह रखता है। भारत-दुर्दशा तथा उसकी अनुवर्ती अन्य व्यंग्यप्रधान रचनाएँ इसी कोटि की हैं। दूसरी ओर अधिक संयत होने पर वही अर्धशायि उन्हें राष्ट्रीय ऐक्य-विधायक विविध उपादानों को संयोजित करने की प्रेरणा देता है।

### सामाजिक चेतना —

भारतभू की चेतना में अत्यन्त बेचना है। चेतना के इस भार के निवारण के लिये उनके आत्मबोध में अन्ध और हास दोनों का कार्यम स्रिया है जिसका उत्तम निर्वर्तन प्रेमयोगिनी ने प्राप्त किया था उक्तता है। भारतभू के अन्य समाकालीन लेखक भी इसी प्रकार सामाजिक जीवन के कटु अर्थार्थ का तीव्र बोध होने पर क्षिप्त होते हैं। उनकी यह क्षिप्तता पहले आदिमों के रूप में बहु जाना जाहती है। पर उतने से ही जब उसका निवारण नहीं हो पाता तो वह हास के रूप में फूट पड़ती है। तात्पर्य यह कि इस समय के लेखकों की सामाजिक चेतना जीवन के अर्थार्थ एवं के विमर्श में प्रवृत्त है और भारतभू ही के द्वारा प्रारम्भ किये हुए अर्थार्थवाद के विकास के लिये अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है। इन लेखकों का अर्थार्थवाद वस्तुतः उनके आदर्शवाद का ही सुवर्ण पत्र है, जो समय और समाज की जीवनचारा को अवकट करने वाले विविध अन्तरासों के सन्धे स्वरूप का उद्घाटन कर करी हुये कर्मों का उपक्रम करना है और करी हुँसाने का, और इसीलिये जिसको मैंने पहले ही भारतभूमुख अर्थार्थवाद का नाम दिया है।

इन लेखकों के सामने समय और समाज की जीवनचारा को अवकट करने वाले अन्तरास कौन से थे ? विचार करने पर स्पष्ट रूप से ये अन्तरास हमें दो प्रकार के दिखाई पड़ते हैं। एक तो वे असाधारणिक प्राणी जो अपनी अनेक प्रकार की सामाजिक अथवा आर्थिक विहितिओं की चरितार्थ करने के लिये समाज के जीवन की गूट गूट और विचाल कर रहे थे और दूसरे

ये दुर्बल और जो इन विवृतियों के धिक्कार होकर अनेक प्रकार के निर्दय अत्याचार पहले पहले अपना जीवन समाप्त कर देते थे। दोनों के कारण समाज की स्थिति दयनीय हो रही थी। अतएव इन लेखकों ने दोनों का विचित्र अपने नाटकों में किया। दूसरे वर्ग के विचित्र में यदि उन्होंने अपने इरादों की कदवा बड़ेकी तो पहले वर्ग के विचित्र में विमर्षता से हास्य और व्यंग्य के साथ बरछाये। इसी वर्ग को स्पष्ट करके प्रतापनारायण मिश्र ने कहा था— "दक्षिण देशवासियों का दुःख देख के बर्षा जाती है, पर ऐसे लोग जिनसे सर्वसाधारण का अनिष्ट सम्भावित है अत्यन्त दयनीय हैं"। अतएव इस लेखकों ने जहाँ उन मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक कारणों प्रकृतियों और परिस्थितियों की सुस्पष्ट चेतना नहीं है, जिनके कारण समाज में अनेक प्रकार की दुःखों और दुःखदायक दृष्टियों का जन्म होता और पनपना सम्भव होता है। परन्तु समाज में वास्तव में दुखी क्यों है उनको कुछ देने बाकी दृष्टियाँ क्यों हैं तथा इन दृष्टियों की मुराबा में जिनका हित और स्वार्थ निहित है, वे व्यक्ति, वर्ग अथवा संस्थाएँ क्यों हैं इस सम्बन्ध में इन लेखकों की अत्युत्प्रेरित निम्नलिखित है।

इस स्थिति में इन लेखकों की सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति जिन नाटकों में हुई, उनमें चेतना और व्यंग्य किवा करुण और हास का साथ साथ परिपाक मिलता है। जिन नाटकों में समाज के दयनीय व्यक्तियों और उनकी भाविक परिस्थितियों का विचित्र है उनमें करुणा की प्रधानता है। जिनमें विद्वत्ता और उनकी विवृतियों का चित्र है उनमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है। वास्तव में सामाजिक दुःखरत्ना के दो प्रमुख पक्षों को प्रधान में लाने की वे दो प्रभावशाली प्रीतियाँ हैं अन्य कोई तात्त्विक अन्तर दोनों में नहीं प्रतीत होता। करुणाप्रधान नाटकों में भी प्रतिपाद्य विषय और प्रसंग के अनुरूप हास्य की योजना है और हास्यप्रधान नाटक या व्यंग्य के माध्यम से समाज के शत्रुओं पर आक्रामक प्रकट करते हुए उनके हाथ पीड़ितों पर हमला करना उनाने के इरादे से ही लिखे गये हैं। पहले वर्ग में भारतीय का 'कमुद्र-याचाचर्चन और वर्णव्यवस्था', निद्रिकाक का विवाहित

विलाप उपाध्यायदास का 'बुझिनी बाला', सख्त सदा का 'बबका विलाप नाटक' 'जनमेक व्याहृ बुद्धिपथ' देवीप्रसाद 'बाकविद्याह' और राममनोहरदास का बुद्धावस्थाविवाह आदि हैं। इससे बड़े से प्रतापनारायण बिष का कलिकौतुक रूपक, बाकहृन्म भट्ट का 'सिद्धाराम' साधनप्रसाद का हास्यार्थक एक भाष तथा किशोरीलाल मोस्वामी के चौपल चपेट आदि अनेक नाटक हैं, जो हिन्दी नाटक की प्रशस्त शाय के आधार माने जाते हैं।

पहले वर्ग के नाटकों में उन कुरीतियों का चित्रण है जिनके कारण समाज की जीवनीयता का दिन प्रतिदिन हाथ हो रहा है। इन कुरीतियों में बालविवाह और जनमेकविवाह आदि वैवाहिक प्रथा की बुराइयों के उन विविध पक्षों का विवेक रूप से उद्घाटन किया गया है जिनके कारण स्त्री-जाति अन्याय और दुःख आति हीनवीर्य हो रही है। साथ ही वैराग्यमय और मर-मेहन आदि की बुद्धिमत् कुत्सित कुप्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है जिनके कारण पारिवारिक जीवन विपटित और धाम्प्य जीवन विरल हो रहा है। इन सब कुरीतियों का दुपरिमाण सबसे अधिक निरुहण नारी की योगिता पर रहा है। इनलिये उसके साथ इन लेशको भी विवेक सहानुभूति है। बुझिनी बाला में तबकी दिव्या प्रेमा का कथन चित्र है जिसे भीतरी सामाजिक परिस्थितियाँ पर-पुण्य-सम्बन्ध स्वीकार करने को बाधा करती हैं। वह निश्चय का कोई उपाय न देख विष आकर प्राण दे देती है। अन्य नाटकों में भी इसी प्रकार दुःखान्त सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। प्राति-प्रथा उन्मादित समूह-वाता-निषेध कलित-प्योत्रिण पर अम्पविश्वास दोष के कारण बुद्ध-वी की महार्पणा आदि अपने समय की सभी प्रकार की बुराइयों का भी नाटकीकरण हम लेखकों ने किया है। इस वर्ग के नाटक प्रायः प्रचारार्थक अथवा उपदेष्टार्थक दृष्टि से लिखे गये हैं। इतिहास के आधार में आश के उपाधियों के उन्माद छोटे हैं। इनमें से अधिकतर नाटक दुःखान्तक हैं, वह इनकी दूनरी विशेषता है। इस वर्ग के कुछ नाटक प्रतीक-प्रकृति या भी अवलम्बन करते हैं जैसे अविवादा

ध्यास का 'कस्मियुग' और भी । इस नाटक में दिखाया गया है कि कस्मियुग की जो 'बर्बाद' का मेक-वेकर झूट करने का प्रयत्न करता है और अस्वाह तथा एकता उसकी रक्षा करते हैं। जाधवदास में मित्रावत जैसे समाज विरोधी दूरियों पर भी भारतेन्दु-युग के लेखकों की दृष्टि जाती है। सामाजिक चेतना की यह प्रगुडता नये से नये लेखकों में भी कम ही दिखायी पड़ती है।

नाटकों के इस वर्ग को कुछ विद्वानों ने समस्या-प्रधान नाटक कहा है<sup>१</sup>। पर समस्या-प्रधान या समस्या नाटक में जिस निःसंग विचारशीलता, तर्क-प्रणयता या बौद्धिकता की आवश्यकता रहती है, वह इन नाटकों में नहीं। ये नाटक हृदय को छूने के लिये गये हैं, बुद्धि को नहीं। परिष्कृत भावना अथवा संवेदन की भूमि पर भी इनकी प्रतिष्ठा नहीं हो पाई है। वस्तुतः ये प्रायः भावों और अस्वेपधान नाटक हैं जिसका श्रेय सम्भवतः तत्कालीन आर्य-समाज के आन्दोलन को है। इन नाटकों में समाजिकतः दुराचारों का ही विषय है और सामान्य रूप से समाज पर उनका क्या प्रभाव पड़ रहा है इसी का निरूपण है। पर विषय रूप से इनका प्रभाव व्यक्ति पर और समाज पर कैसा पड़ रहा है ऐसे निर्देशों का प्रायः अभाव है। फिर भी इन नाटकों में प्रायः इतिहासिक अथवा परम्परापूजित दुराचार और अधिनियमों का सर्वथा अभाव है। ये नाटक अपने युग की गहन तमिषा को चीर कर जिस निर्मोक्षता के साथ प्रत्येक प्रकार की छोटी-बड़ी दुराचारी को जोषित करते हैं, उसे देख-सुन कर चकित रह जाना पड़ता है।

यह लघु ग्रहण-बाध के नाटकों के अनुशीलन से और भी प्रकाश में आ जाता है। भीतर भीतर सब रख चुके कह कर भारतेन्दु ने बता दिया था कि अन्तरेय केवल यन ही नहीं 'बूझ' रहा अपितु यहाँ की संस्कृति और शैलिकता का हनन करके जातीय जीवन तन-मन को अन्तःसार-रूप बना रहा है। इस प्रकार उन्होंने सब दुराचारों के मूल विदेशी शासन (मुसलमान और अंगरेज दोनों का) और उसके विविध



आचार-स्थानों का सूक्ष्म विवेक अपने समकालीनों को प्रदान किया था। अतएव उनके प्रबुद्ध समकालीनों ने सामाजिक अव्यवस्था के विधायक उपाचारों की कपास-धिया अपने प्रवृत्तियों में विनिर्मुक्त की। विदेशी शासन ने जनता को निरस्त और विवस्त्र कर दिया था सब प्रकार उसकी स्थिति अरक्षित थी। दुखी और इस शासन ने अपने सहायक कुछ ऐसे बर्षों की सृष्टि कर दी थी जिसको निःसहाय जनता की बहुदेही तक पर अपना पम्पसिद्ध हुए समझने की कृष्ण छू थी। बूढ़े मुँह मुँहासे के लाला मारकरनास बहुर ऐयाजों में यह ऐसे ही एक बर्ष प्रतिनिधि के रूप में अंकित किये गये हैं जिसका कामकाज तो बस यही है कि दिनभर बैठ बैठे मड़ गड़ सटक सड़सड़ाना और सोच नहीं कि लटिरे पर आके पड़े। विदेशी शासकों के चरण जहाँ मजबूती से जमे उन नगरों का आचरण क्षिप्रता भ्रष्ट हो गया था इसका धोर धर्माव्यवस्था विचित्र अतिशयोक्त रूप में प्रतापनाशयक मिथ में किया है। अवरोधों की आर्थिक धोपन-नीति के साक्षर बन धर्मसाध सङ्ग और महाबलों के चरित्रविभ्रम भी इनमें है जो धर्मिर, धर्मसाध मधिराज्य और वैष्णव्य सबके एक साथ मूखधार हैं। साथ ही भारतीयता के कट्टर अनु उर्ध्व के प्रेमियों (कलिकौमुक रूप के संकरलाक) और अवरोधित के दीवानों (बनासी बाहुओं) के भी जीवन्य देखा-विभ्रम जन्मे प्राप्त हैं। सर्वोपरि नई सम्पत्ता के प्रकाश बाहुकृत बुबको के अति के भी कटुपित विभ्र हैं जिन्होंने भारतीय नारी के जीवन को पीरव बना दिया है। मिथ्याधर्म की मान्यता ऐसे एक युवक की चर्चा करती हुई विवस्त्रता-युक्त नारी-जीवन की मूक विवस्त्रता को निषिद्ध चित्रोद्धार का स्वर प्रदान करती है—

कभी हमसे जानते नहीं इस बात का हमें कुछ दुःख नहीं है। जो बड़ा था सा धमा जो से सुखी रहें, जो थावें सो करे। हमारे भाम्य के जो मुक्त बड़ा होता तो क्या तिरिया का जन्म पाती। नारी के जन्म समान पिनीला जन्म किनी का न होया जिसने मुँहसे में बड़े बड़े पाप कर रता है, बड़ी स्त्री का जन्म पाती है। पराधीन तिरि कर भी अनेक मानना जैसा पित्रो में बन्ध पछक हो ऊँची ऊँची दीवानों से पिरा हुआ घर क्या माने पित्रो है। मुँहदेव भी जिसका मुख कभी नहीं देखते

हो, न हवा जंगलपथ कर सकती हो वहीं नारी सती कुलबंती पतिप्रतापी  
में मुझिया समझी जाती है जो बाहर कभी पाँव न रखती हो। सिक्खे  
पढ़ने से बरिब बिगड़ जाता है इस कुलस्कार के कारण उन्ह पढ़ना सिक्खना  
नहीं सिखसाया जाता। बाठ ही बर्य में हमे ब्याह देते हैं सो भी बिना  
देने वाले बहुषा एक ऐसे के साथ कि जन्म ही मर्य हो जाता है।<sup>१</sup>

भारतेन्दु पुत्र के इन लेखकों ने परबलित और प्रपीड़ित हिन्दू नारी  
को बनने इरप की सम्पूर्ण सहानुभूति व्यक्त की है। इस प्रक्रिया में  
लेखकों ने सम्पट पुरुषों की भी कुछ छीछासेवर की है। शिक्षागत  
का उत्तिकलाक 'विवाहिता विकास' का मनवीर, 'बूढ़ मुँह मुँहासे का  
बूझा साका' बारोगना रहस्य महानाटक' का राजीबलाचन, 'वैद्याविकास' २  
का मकरध्वज 'मानन्दोद्भव' नाटक का संन्यासी बैरवा नाटक 'और  
कुंदकली (पं जयसाय शर्मा) के मनुकर और काय बादि इसके  
उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन लेखकों ने ऐसी आदर्श पत्नियों का भी चित्रण  
किया है जिनके सामने बड़े से बड़े सम्पट पुरुष अपने को असमर्थ  
और असफल पाते हैं। ये आदर्श नारीपात्र पोस्वामीजी की इस उक्ति  
की बार बिलाले हैं—

‘विद्य न सम्भू तरावन कीं। कामी बचन सती मन बीसे ॥  
देस आदर्श पत्नी—बरिबों को प्रस्तुत करने वाल नाटकों में हनुमन्तसिंह  
रघुबीरजी का सती बरिब रघुबीरसिंह बर्मा का मनारंजनी नाटक  
दुर्गाप्रसाद मिश्र का सरम्बती नाटक बादि उत्कीर्णनीय हैं।

प्रेम और स्त्रीध्वंस की चेतना—

भारतेन्दुवास क लेखकों ने अपनी प्रेम और स्त्रीध्वंस-चेतना की  
अभिप्रायति के बिये जो नाटक लिखे हैं, उनकी टीसी इन नरकृत नाटकों

१ केशव-निदिताक

२ देवकीमन्थन त्रिपाठी।

३ वृष्णाबिहारी मिश्र।

४ मूल लेखक बीपरी मवलसिंह (ठरुं) अनु-ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

जैसी है, जिनका अनुवाद पड़े तो चुका था। इन अनुचित नाटकों में समुत्पत्ता और ग्लान्डी सर्वाधिक लोकप्रिय थे। भारतभू इस दिशा में कोई मौखिक कार्य करने का अवकाश नहीं निकाल पाये थे।

चन्द्रावली उन्होंने व्यक्तिगत का कसूरमक निरूपण करने के लिये लिखी थी यद्यपि उसमें प्रेमाकुलताबन्ध आयेगीकी थी ऐसी समझता है, जो अत्यन्त दुर्लभ है। अतएव इस दिशा में उनकी नाटकीय कृतिमें में 'अपूर्व संजरी' और 'विद्यासुंदर' के रूपान्तर का ही उल्लेख किया जा सकता है जिसमें उन्होंने अपनी रचि और प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है।

प्रत्येक क्षेत्र में गरीबी तथा मौखिकता के कारण ही इन उल्लाही लेखकों को संस्कृत नाटकों में निरपिष्ट प्रेम का आदर्श ही क्यों बनकर हुआ? इसका कारण यह है कि संस्कृत नाटकों में प्रायः प्रेम के बड़े स्वरूप और मुक्त स्वरूप के वर्णन होते हैं। यह प्रेम यदि अवैतिक नहीं तो माता-पिता और समाज उसके विकास और परिष्कार के मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नहीं करते। प्रेमियों के मार्ग की बाधाएँ या तो दौबी होती हैं जबकि प्रतिस्पर्धियों की ईर्ष्या से उत्पन्न। इन बाधाओं के अतिक्रमण की अवधि में प्रेमी-मुख्य का जीवनगत उदाम-आवेग संभव हो जाता है, और मिलन की पुष्पवेला में इनका प्रेम सारसीया संघा में समान प्रसन्न और धीर-समीर होकर प्रकट होता है। प्रेम के इस मुक्त और पवित्र, निर्बाध किन्तु संयत स्वरूप की आर इन लेखकों का मुकाब होना स्वाभाविक था।

पर नात-विवाह, अनपेक्ष-विवाह और असंभव विवाहों के अधिष्ठापन में जीवन की पहिल किडबनाओं से परिपूर्ण समाज में क्या प्रेम के इस उल्लाह आदर्श की प्रतिष्ठा संभव थी? प्रेमाकलानुसूक्त नाटकों के अनुदीप्तन से यह जातिष्ठ होता है कि नाटककार बड़ी महत्वाकांक्षा के साथ इस लक्ष्य की दिशि के लिये प्रयास करते हैं परंतु सामाजिक विकृति और दरवारी नाट्य-वर्तपरा के कुदृष्टिपूर्ण संस्कारों के कारण अपने प्रयास में बड़ी तरह असफल होते हैं। भीतिबानधायक जैसी इस काल के समर्थ केतव भी इही कारणों से तत्प्रासंवरण नाटक में सफलता नहीं पाते।

तत्पासंवरण की वस्तु और उसका विन्यास दोनों अभिज्ञान साधुतल से प्रभावित हैं। पहले शंक में तत्पा के लडा-मंडन का वृष्य है जिसमें संवरण पहुँचता है। कण के वायव्य में शकुन्तला के लडा-मंडन के निकट पहुँचने पर वृष्य को बिना प्रकार शुभ-शकुन हुए थे, वैसे ही संवरण को भी होते हैं। जब तत्पा जाती है तो वह भी वृष्यों की ओट में छिपकर वृष्य की तत्पा बसको देखता और उसके सौम्य की प्रशंसा करता है। जैसे बसकर जब दोनों का प्रेम परिवर्तन होकर पारस्परिक बिबाह में परिणति प्राप्त करता है तो इस नाटक में भी दुर्वास-घाप की बदनामी कावृत्ति होती है। यौतम शक्ति के जाने पर तत्पा के ध्यान में बूढ़ा संवरण उनका यौतमिष्ठ सत्कार नहीं कर पाता तो वे शपथ देते हैं कि वह जिसके ध्यान में है वही उसे मूल धार। शार्वता करने पर इस शपथ के निवारण का उपाय भी वे दुर्वास के समान ही बता देते हैं। परिणामस्वरूप प्रेमी-युवक को बीरकाक तक असह्य बिबु-बापा सहनी पड़ती है। अंततः सबोगवश घाप-यौतम की परिस्थिति भी आ जाती है और दोनों का बिबिध बिबाह हो जाता है।

अभिज्ञान साधुतल की अनुकृति का यह प्रवास साधारण धुंगारी रचना बनकर रह गया है। कारण इसमें पीपलिक बीबाय का सर्वसावधान है। बिबि-बिबि की दृष्टि से संवरण के रूप में हमें एक निरंतर स्तन व्यक्ति के दर्शन होते हैं और तत्पा तथा उसकी समवयस्क कुमारियों के बिबि में भी बिबिबिबि पीपल और शास्त्रीनता की कमी खटकने वाली है। कपोपकपन अत्यंत आकर्षक है और उनमें प्राचीन कलाकारिक शक्तियों को गद्य में प्रस्तुत किया गया है।

(१) तत्पा (लडाकर संवरण से) — महापति आपका कल्याण हो।

संवरण — प्यारी मेरे कल्याण में सब क्या संघर्ष है। एक संघर्ष के कर्मकर्म देखने से अभिज्ञान जान होता है। मैंने तो एक कर्म पर दो संघर्ष निहारने, मेरे कल्याण में क्या संघर्ष है?

करने निकलता है और वन में मार्ग भूलकर प्रेमपुर के दुर्ग के समीप पहुँच जाता है। वहाँ पहुँच कर वह प्रेमपुर की राजकुमारी रति तथा उसकी सहोदरियों के पीछे से जाक़्कट होता है। दुसरे दृश्य में कुमुदामुख और रति का मिलन होता है, दोनों में पूर्वराग का उदय होता है। प्रथम मिलन की इस बेसा में ही कुमुदामुख की सेना भी उसे खोजते हुए वहाँ पहुँच जाती है, दोनों मिलकर तत्काल विस्तार करते हैं। इस दृश्य की योजना पर अभिज्ञान साकुन्तल तथा रत्नाम्बी दोनों का प्रभाव पड़ा है। इस दृश्य में अस्वाभाविकता और अनीतिता भी है। राजकुमार के तीनों सखा राजकुमारी की छवियों में से एक-एक को चुन लेते हैं और अद्वितीय बन्ने। प्यारी कहने लगते हैं। बिना होते तमस सब रोते भी हैं। तीसरे दृश्य में कुमुदामुख के विधोष का वर्णन है। वह विधोष में अतिसय व्यथित और अस्मत्विस्तृत है, किन्तु जब उसे मोक्षक सिद्ध का समाचार मिलता है तो वह उसे मारने की उद्यत हो जाता है यह दृश्य-योजना 'साकुन्तल' के ठीके ढंग के अनुसार है। चौथे दृश्य में मनोहर भादुरी के द्वारा कुमुदामुख का पत्र विरहसम्पत्ता रति के पास पहुँचाता है। पाँचवें दृश्य में उपवन में रति का पुनर्मिलन तथा मार्गव विवाह होता है। छहवें दृश्य में मत्स्य की कल्पवृक्ष भाष्ट-भाष्ट। महाराष्ट्र हस्तिकालिका नाटक आदि अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध हैं। उन सब में ऐतिहासिक तथ्यों की अनुकूलता है किन्तु कुछ बिजाकर मत्स्य की प्रेम-सौन्दर्य-वैभवा अपने समसामयिक काल की निवास दास, अमानसिंह बोटिया द्वितीयकाग गोस्वामी आदि की अपेक्षा अधिक परिष्कृत प्रतीत होती है।

अमानसिंह नाटिका के महान मञ्चरी नाटक में भी राजकुमार यदनमोहन तथा राजकुमारी मञ्चरी के प्रेम में बाधक कुमारी के पिता हैं जो दोनों के पत्र-व्यवहार का पता पाकर राजकुमार को पकड़कर बन्दीपुर् में डाल देते हैं। 'मञ्च-मञ्चरी' नाटक में भी मयक के पिता मुनरदेव उसका विवाह इन्द्रामुख से करना चाहते हैं। परन्तु मयक और मीरेन्द्र वरत्पर अनुरक्त हैं, इसीलिए मुनरदेव मयक मञ्चरी के 'कुमुदामुख' के

घटीर में बसंत यम-याता सदा बनेय पहुँचाते हैं, और राजस का धर्म' व्यवहार में लाते हैं। रणवीर प्रेममोहिनी नाटक में राजकुमारी प्रेममोहिनी के पिता मूल-मरेख ऐसे ही राजस धर्मी हैं, जो रणवीरसिंह में अन्य अनुरागवती अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ नहीं होने देते। इसका कारण यह है कि रणवीरसिंह राजकुमार नहीं बल्कि एक साधारण राजपूत है। इस नाटक की विशेषता यह है कि इसमें अधिक वैषम्य के कारण होनेवाले अनैसर्गिक विवाहों की समस्या की ओर सख्त किया गया है और राजाओं व बर्ष की असोकोपयोगी तथा समाज विरोधी प्रवृत्तियों को भी प्रकाशमें लाया गया है। मूल के राजा का अभिमान तथा अविश्वेकी पिता का वृथाह्वयितकर अपनी पुत्री का जीवन नष्ट कर देना है। इन नाटक का अर्थ दुःख होता है। इस बर्ष के नाटकों से इन प्रकार के और भी उदाहरण लिये जा सकते हैं, जिनमें समाज को बेवनाशों और मर्पों का स्वर स्पष्ट सुन पड़ता है और जिनमें युग का यथार्थ जीवन जीवन और प्रेम सबको धूलों से भरता दिखाई देता है। लाला भी विवाह नाम में लज्जाविरस के बाद रणवीर प्रेममोहिनी नाटक लिखा। कहा जाता है कि उनका प्रथम नाटक प्रकाश चरित और अद्वितीय संयोजिता स्वयंवर। ये क्रिपु उनके नाटकों में 'रणवीर प्रेममोहिनी' को जो लाकप्रियता प्राप्त हुई वह किसी दूसरे नाटक को नहीं। रणवीर प्रेममोहिनी अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय हिंदी नाटकों में से एक था इसीलिए इसके अनुकरण में कई अन्य नाट्यकृतियाँ लिखी गईं जिनमें मालिशाम वीर का लावण्यवती मुरलीन, जवाहरलाल वीर का कमलमोहिनी 'नेकरीसिंह', श्रीबालमुकुंद पाण्डेय द्वारा बगोबी नाटक, जाकि उत्कलसीन हैं। ये सब नाटक दुर्लभ हैं, और लेखकपिपर की दुर्भाग्यवर्तियों की दृश्य-योजना में प्रभावित हैं इन नाटकों में रंगरस पर एक अनेक दृश्य दिखाये गये हैं या भारतीय परंपरा में अंतर्भूत हैं।

इस बर्ष के कवि-कल्पित लौकिक प्रेमास्थानमूलक नाटक अनेक हैं और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे भक्तिमार्ग के मूर्धियों के प्रेमास्थानमूलक कान्यों में कई बातों में समानता रखते हैं। इन प्रेमा

व्यापक काम्यों में भी प्रायः प्रेमियों के मार्ग में माता-पिता की ओर से ही बाधा उपस्थित हो जाती है। प्रेमकाम्यों में जिस प्रकार नायक को प्रेमिका की प्राप्ति के लिये असाध्य कष्ट सहन पड़ते हैं, उसी प्रकार इन प्रेम-नाटकों में भी नायक ही प्रलय-मार्ग के अविश्व कष्ट झेकते हैं। जिस प्रकार प्रेमकाम्यों में पशु-पक्षियों के सहयोग और अतिप्राकृत अपादाओं के उपयोग उदाहरण मिलते हैं, उसी प्रकार के एक ही उदाहरण इन नाटकों में भी उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरण के लिए शास्त्रात्मक नाटक माधवानन्द कामकंदसा के एक पूरे पर्चा में नायक नागिना अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त एक कुत्ते को सुनाते हैं। महम मंजरी' नाटक के अंत में मंजरी अन्धरा बनकर राजकुमार मदनमोहन के प्रेम की बरीदा लेती है।

ये सब नाटक रत्नागुामी हैं, अरिगुणामी नहीं। इसमें विविध अवस्थाओं की अवस्थिति, पात्रों की कल्पना संघर्षों की बीजना और भाषा का रूप-विधान आदि सब-कुछ रस-विशेष की निष्पत्ति की दृष्टि से किया गया है। इस दृष्टि से इनको उत्कृष्टता भी मिली है, कारण इन नाटकों में प्रायः विविध स्त्री और संघर्षी भावों एवं अनुभावों को बड़ी हरम अन्विष्टि मिलती है तथा विचारों का विधान भी प्रायः समीप्य लब्ध के अनुकूल दिखाई पड़ता है। परंतु अरि-विनाश-प्रधान नाटकों की विशेषताओं का अनुसंधान नाटकों पर्य्य होना। प्रेमभाव की एकात्मिकता की ओर झुकाव होते हुए भी इन नाटकों में क्रोध-यत्न की अवहेलना नहीं की गई है। 'रघुवीर प्रेममोहिनी' का रघुवीर अश्वमेध का होठें हुए भी प्रजा का प्रतिनिधि बनकर बीजना है। 'रति कुमुनायुध' का कुमुनायुध भी अत्यंत विरह-विलसता की अवस्था में भी यो धातक सिंह का समाचार पाकर उसे मारन की उद्यत हो जाता है।

जिन प्रकार सभी वर्गों के नाटकों में हमें प्रतीक-परंपरा की रचनाएँ उपलब्ध होनी आई हैं, उनी प्रकार इन वर्ग के सैरकों द्वारा अभी इन दिशा में किये गये एकाग्र अथुरे प्रयास का परिणाम हमें मिलता है। इस दृष्टि से राहु मठापुर यस्त का रति कुमुनायुध नाटक विशेष उत्कृष्टनीय है। इस नाटक में सैतव्य प्रेमपुर और अनुरागपुर के रति तथा कुमुनायुध

के प्रेम-प्रसंग द्वारा मानवीय प्रेम और अनुराग के मूल में व्याप्त काम संबंधी वास्तव प्रसंग को उठाने का उपक्रम करता प्रतीत होता है। दोनों के सहचर-सहचरियों के नाम मधुकर, माधुरी कुमायिनी, लक्ष्मी आदि इस नाटक के पातावरण के रूप में वर्तमान कुसुमाकर-वसंत की ओर संकेत करते हैं, जो यति और कुसुमायुष का समग्र सहचर है। पर, समस्या के संभव में लेखक की दृष्टि बहुत अस्पष्ट है, और प्रतीक विधान इतना दुर्बल है कि इस सत्य को लेकर किया गया लेखक का भ्रम भी भावानी से अक्षित नहीं होता।

### सांगीत

इस युग के लेखकों की प्रेम और सौम्य-वैतना की अभिव्यक्ति ऐसे नाटकों के द्वारा भी हुई जिसको सांगीत कहते हैं। ये सांगीत वास्तव में गीतों के रचयण और अभिनय परंपरा को दृष्टि में रखकर सिद्धे मये गीति-रूपक हैं। गीतही हमारे गीति-रूपक नाट्य की जति प्राचीन परंपरा है, यह पहले विस्तार से बताया जा चुका है। गीति रूपक या गीतिनाट्य इसी परंपरा का पद्यबद्ध नाटक है। सांगीतों के रूप में इसी सीढ़ी के साहित्यिक नाटक भारतेन्दुकाळ में प्रस्तुत किये गये और इन्हीं सांगीतों से आगे चलकर हमारे गीति-नाट्यों की साहित्यिक चारा बसी।

भारतेन्दुकाळ के विभिन्न सांगीतों में प्रतापनारायण मिश्र का 'सांगीत पार्श्वक', बुध मैत्रीनाथ का 'सांगीत गोपीचरदोषाख्यान', अमानत की 'इन्दर समा' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें अमानत की 'इन्दर समा' का प्रकाशन सबसे पहले सन् १८५३ ई० में हुआ था, जिसे कुछ विद्वानों ने प्रायः रंगमंचीय नाटकों में सबसे पुरातन नाटक माना है<sup>१</sup>, और इसके ऐतिहासिक महत्त्व के प्रतिपादन में अनेक पन्ने रंगे हैं। इस प्रकार के कवन अपनी नाट्य-परंपरा की प्रचीनता के संदर्भ में हिन्दी भाषा-भाषियों में प्रचलित अज्ञान का परिचय तो देते ही अपनी व्यक्तिकता से अनेक प्रकार के भ्रमों की सृष्टि भी करते हैं। नाटक तत्त्व-

१ डॉ. मोहनदास गुप्त का हिंदी नाट्य साहित्य का इतिहास, पृ० ९।



दृश्यकाम्य होने के कारण सनत रंगमंच-सापेक्ष्य अर्थात् रंगमंचीय हैं। अरंगमंचीय इति नाटक स्वीकार नहीं की जा सकती। पुनश्च 'रंगमंचीय नाटकों' की परंपरा भी हिंदी में तीकाओं के रूप में अतिविश्रुत रूप से अस्तित्वियों से चली आ रही है, जिनका विवरण हम पीछे प्रस्तुत कर चुके हैं। इनके पष्ठे अमानत की इत्यर सभा को प्राप्त रंगमंचीय नाटकों में भी सबसे पुरातन स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्राप्य अर्थात् जिनका अती प्रकाश में आना है उनकी चर्चा का अधिकार किसे है ? 'इत्यर सभा' वास्तव में मोटेकी अथवा स्वांश का वात्रिदयकी राह की रचि के अनुकूल संयोजन (Adaptation) मात्र है। 'इत्यर सभा' में ऐसे कोई विविष्ट नृप नहीं जो मोटेकी की परंपरा में पहले से ही प्रार्थन<sup>१</sup> हो। इसके अतिरिक्त भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से यह ऐसी अष्ट रचना है, कि उसे समकालीन लेखकों ने हिन्दी नाटकों की परंपरा में सम्मिलित करता ही अचित नहीं समझा था। पं० प्रद्युम्न नारायण मिश्र ने तो इसीलिए वही समय उसे चौपट<sup>२</sup> विवेचन से भूषित किया था और अथर्व मोरगा-म्याय नाटक के लेखक जयसमारायण ने उसे देश का नायक करनेवाला बताया था<sup>३</sup>।

इन युग में मोटेकी का सब से साहित्यिक रूप हर्षे प्रतापनारायण मिश्र के 'सांगीत शाकुन्तल' में मिलता है। इसकी भूमिका में लेखक ने बताया है कि एक और तो यह अपासम भी बुराकर देना चाहता है कि हिन्दी में ऐसा कोई नाटक नहीं जिसे सचमुच कीतिबन्धक यह उन्हें और

१. वे प्रतापनारायण मिश्र युग सांगीत शाकुन्तल की भूमिका—  
'किसी उर्दू के रचिया ने उसे अमानत की इत्यर सभा' से भी अधिक चौपट किया है हाथ।'

२. वे 'अथर्व मोरगा-म्याय' नाटक की प्रस्तावना—  
'सम्यकार-प्रान्धारी। मेरा अविश्रय इत्यर सभा इत्यादि नाटकों की भांति यह नहीं है कि जैसा इन नाटकों को देखकर हमारा भारण नाश हुआ है वैसे ही उनके मुख्य एक और निष्कर्षकार नाश नहीं परंतु इच्छा यह है कि माना बजाया भी इन्हीं की भांति हो जित्नु बेधोपकारी और अमरकर हो।'

दूसरी ओर 'काश्मिर' की कविता को 'उन्हीं के देश में उसके भट  
 और अनुपम अनुवाद करके जो दुईसा की गई है। उसका प्रामाणिक करना  
 चाहता है। लेखक का पहला उद्देश्य तो सिद्ध हो चुका, और दूसरा भी  
 इस दृष्टि से सफल हुआ कि उसने काश्मिर के विश्वप्रसिद्ध भाटक को  
 प्रत्येक अविदित ग्रामवासी के लिए अर्थात् सरस और सुबोध रूप में प्रस्तुत  
 कर दिया। इस दृष्टि से भी प्रतापनारायण मिश्र की कृति का महत्त्व है  
 कि इसने बीटंकी की अंतर्निहित क्षति का फिर से उद्घाटन किया भारत  
 ग्रीसदेवी रखकर इस विद्या में मार्ग-दर्शन कर नये थे।

इस सीरीज में लड़ीवाली जबरी और बजभापा तीनों का प्रयोग  
 है। उच्चरणा के लोच लड़ीवाली का प्रयोग करते हैं मध्यम बजभा  
 निम्नवर्ग के पात्र जबरी बोझते हैं और नीत बजभापा में है। इस नाटक  
 की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक कल्पकत्वों की पद्यबद्ध भाषा  
 को आश्चर्यजनक रीति से प्रतिविम के व्यवहार की बोली के निकट के  
 भाषा है। पाठ्य की कला में अत्यन्त अभिरुचि के मूह से वह गद्य ही  
 प्रतीत होता है। इसके दो उदाहरण पर्याप्त होयि—

(१) शरणा-ज जाने क्या व्यर्थ बक रहे हो।  
 बरे कोई युक्ति वह बतावे कि बिस्व क्षपि भी प्रसन्न  
 होते जयत में हम पुष्प कीर्ति पावे। उपस्थितों पर तो  
 हम जो तन मन भी बार वें तो महाक्षिप्त है। मेरी  
 उन्हीं के प्रसाद से तो हमारा हावा सर्वत्र हित है।

(२) प्रतीहारी-यह जीती रही, वे फिर गई घर।  
 जो दीक्षानि यह मोरे हावे झी बिट्ठी।  
 तो अपना किर न आई नाम ऐयो।

प्रतीहारी की यह उक्ति ही में मनुकांत काव्य का प्रायः सब  
 से पुराना उदाहरण है। महाकवि विरासाजी ने भाग्यकार कपीलनबनों  
 में मुक्तछंद के प्रयोग की आशय्यता अनुभव की थी १७ प्रताप नारायण

मित्र के इस प्रकार के प्रयोग उसके पूर्वकथ माने जा सकते हैं। इनके छापील में छन्दोत्तरा द्वारा बयाने बने एक-आध गीत<sup>१</sup> असम्भव रूप से गये भी हैं, जो विरसमानता में प्रतिष्ठित छन्दोत्तरा की अयोग्य सीमार्थ-मंडित परिभा को असम्भ्यता के साथ आघात पहुँचाते हैं।

### रूपान्तर और अनुवाद

भारतेन्दु ने अनुवादों और रूपान्तरों का भी आदर्श स्थापित किया था उसके पाठन में भी इस युग के कुछ लेखकों ने लक्ष्मण प्राप्त की। अनुवाद संस्कृत, बंगला और अंगरेजी सीमा के नाटकों के हुए। संस्कृत के नाटकों में काकिकाच, जयमूर्ति और सीमा की छतियों के अतिरिक्त 'बेनीसंहार' और 'मुष्कटिका' के भी अनुवाद हुए। किसी किसी नाटक के तो कई कई अनुवाद प्रस्तुत किये गए। निश्चयेत, इनमें से कुछ अनुवाद अत्यंत प्रष्ट हुए, जिनको देखकर प्रतापनारायण मिश्र को छापील 'छन्दोत्तरा' की मुद्रिका में खेद प्रकट करना पड़ा था। अनुवादों में अस्तेनशील लक्ष्मण नाममुकुंद मुत्त की 'रत्नावली' काका सीताराम के 'मातृविकान्तिमित्र' और अविनाश व्यास के 'बेनीसंहार' की प्राप्त हुई।

हेमचंद्र और भारतेन्दु जो के परिचय ने हिन्दी और बंगला के आदान-प्रदान का मार्ग साध दिया था।<sup>२</sup> भारतेन्दु ने विद्यालुहर का अनुवाद प्रस्तुत करके हिन्दी के लेखकों को बंगला साहित्य की ओर प्रवृत्त किया था। अतएव उनके युग के कुछ लेखकों ने बंगला-अनुवाद का कार्य भी आगे बढ़ाया। इन अनुवादों में बाबू रामकृष्ण वर्मा का कार्य उल्लेखनीय है। इसके अनुवादों में 'गीत गौरी', 'पद्मावती', और 'कृष्णकुमार' काही लक्ष्मण हैं। इस युग में बंगाल के महाकवि मादरेल मधुसूदन दत्त के नाटक हिन्दी में विदेश लोकप्रिय हुए और उनके 'पद्मावती' 'सर्विध्या', 'कृष्णकुमार' और 'एई कि बोले सम्भवा' के अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये।

१ "दीपां परी में विहारी राजा मोघ बँधरा छाईना"।

२ देविए-प्रचार के काव्यकला तथा अन्य निबंध पृ० ८६।

जैसे-जैसे के नाटकों के अनुवाद का कार्य भी इस युग में चलता रहा । अनुवाद के लिये प्रायः रोक्सपियर के नाटक ही चुने गये । भारतेश्वर जी ने रोक्सपियर के नाटकों में 'मरिचक ऑफ बेमिथ' के प्रति विशेष अनुत्पन्न प्रशंसित किया इसलिए संभवतः उनके युग के लेखकों ने उसके कई अनुवाद कर दिये ।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त रोक्सपियर के 'कमेडी ऑफ ऐरल' एवम् 'काइक इट', 'रोमियो क्लियर', 'वीकनेज' और 'क्विन्सियर' आदि के भी अनुवाद हुए, जिनमें पुरोहित पोसीनाप द्वारा 'ऐज यू काइक इट' और 'रोमियो क्लियर' के अनुवाद 'वीकनेज' और 'प्रैमसीका' के नाम से किये गये अनुवादों में कुछ की कुछ न कुछ शरारत भी है ।

इस युग के अत्यन्त प्रसिद्ध नाटकों में केवलराम घट्ट के 'सन्सार संकुल' और 'समसार सौजन्य' उल्लेखनीय हैं । इनका रूपांतर बंगला के 'सन्-संकुल' तथा 'सुरेन्द्र विनोद' के आचार पर किया गया था । मूल कृतियों के प्रमुख हिन्दू पात्र इसमें मुसलमानों के रूप में हमारे सामने आते हैं इसलिए नाटक की भाषा बहुत ही रसीली गई है, हिन्दीयन उसमें बाधा ही है । परिस्थितियों की योजना और पात्रों की परिकल्पना में भी इनमें मूल से पर्याप्त पार्यव्य है । मूल कृतियों के हिन्दू पात्रों को मुसलमान बना देने का ठीक कारण समझ में नहीं आता । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—<sup>२</sup>—“इन दोनों नाटकों की विशेषता यह है कि ये वर्तमान जीवन को लेकर लिखे गये हैं । इनमें हिन्दू मुसलमान अन्तरेक्ष छुट्टे, लक्ष्मी मुन्दनेबाब, पारपीट करनेवाले स्वया हजम करनेवाले अत्यादि अनेक प्रकार के पात्र आये हैं ।” यथा नाटकों की इस अपेक्षा कुछ अपूर्ण चटनाकली की मुसलमान पात्रों में कैथिन, कपता ही मूलक से पर्याप्त समझा ? निरवशपूर्वक इस सन्दर्भ में कुछ न कुछ कहना कठिन ही है । संभव है हिन्दू-मुसलमान एकरा के प्रतिपादन के—लिए ऐतदिक के मुसलमान नायक-नायिका की योजना की हो । 'सन्सार-संकुल' का सन्सार

१ द्यादनिह टापुर हट 'बमिथ' वा सँसार, आर्या का बेमिथ

नगर का व्यापारी' आदि ।

२ हिन्दी साहित्य वा इतिहास—पृ० ४०० ।

एक ऐसा ही मुसलमान नायक है, जो जानता है कि सिर्फ़ त्रिहास्य इन्तज़ामी और तन्ज़ुम की-बग़ल से हम सोच इस कुरी हास्य को ग्रहण करेंगे।<sup>१</sup>

### विषय सामाजिक प्रश्न

नाटक लिखने का उत्साह भारतेन्दु-युग के लेखकों में इतना था कि जिनमें से कुछ ने तो अपने समय की साधारण से साधारण घटना के नाटकीकरण में भी अपनी छाप छोड़ी। इसका एक उदाहरण इटावा के किर्नू बलदेवप्रसाद का लिखा 'रामलीला विजय' नाटक है जिसमें सन् १८८६-८७ के अयमय विजयवाहसी और मुहम्मद के साथ साथ पड़ने पर हिन्दू-मुस्लिम बंधे की जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, उसका नाटकीय विवरण है। मुसलमानों के द्वारा वह हिन्दू को बर्बर करने का प्रयास है। रामलीला का अपना पुरातन मार्ग बर्बर देने की आज्ञा दी थी। अंत में संप्रति हमारे हिन्दुओं के द्वारा ग्याय की माँग करने पर यह भासा रर हुई, राम का विमान पुराने मार्ग से निकलता तथा मेखल को 'रामलीला विजय' का बधाई-मिला।

हमारे अंगों के कुछ नाटक उन परिस्थितियों को लेकर निर्मित हुए, जो उन्हें को कचहरीयों और बालों की भावा स्वीकार करने से उत्पन्न हुई थी। ऐसी अनेक कृतियों में बलिषा के पं० रविदत्तचुल्ल का 'देवान्तर जति' एक बड़ा सरल और पंभीर प्रहसन है, जिसमें कारली बघरी के दुर्गुनों से शक्ति व्यवहार में उत्पन्न कठिनाइयों का विवरण है। नेष्ट के प्रसिद्ध हिन्दी-मीमी पं० श्रीरामचंद्र सराफ़ी नाटक भी इसी-श्रेणी में बिना जा सराफ़ा है। अर्थसमाज और समाजनयन के बाहरी तथ्यों को लेकर भी 'रामानन्द प्रहसन' जैसे एकाय भर नाटक लिखे गये।

### कथा-यज्ञ

आलोच्य यम के नाटककार भारतेन्दु के दिशाये हुए मार्ग पर चले थे इसलिए उनकी रचित अपने युग के प्रेक्षक और रंगमंच दोनों पर

सदैव रही। परिणामस्वरूप इनके नाटकों में प्रायः अनभिज्ञता का बीज नहीं धरने पाया और इसका के सुनों का बाहुल्य रहा जिन्होंने प्रायः प्रसक्त भावपूर्ण तथा युगधर्म में सीमित हुए। अपने प्रसक्तों को अधिकाधिक वैविध्यपूर्ण मनोरंजन प्रदान करने के लिये इन लेखकों ने वस्तु-प्रयोग के अनेक प्रकार के कीचड़ों का उपयोग करते हुए रूपक और उपरूपक के कई चोखों की व्यवस्था की। पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंग तथा सांस्कृतिक आध्यात्मिक एवं धार्मिक विषयों को लेकर नाटक और नाटिकाएँ लिखी गईं। रास-रास भर नाटक देखनेवाले दर्शकों की रुचि को धृष्टि में रखकर, जिसकी संस्था आज भी हमारे समाज में कम नहीं, 'रघवीर-प्रेममोहिनी' 'छोटी साकुंतल' और 'भावधानन्द-कायकंदला' जैसे बड़े-बड़े नाटक और 'मयंक मंजरी' जैसे महानाटक भी लिखे गए। जसाधारण सीमा के प्रसंगों को लेकर एक ओर जहाँ 'प्रद्युम्न-विजय' तथा 'आदिनाद-वध' जैसे एकांकी व्यापोग लिखे गये, वहीं यक्षि, त्याग, बलिदान और बलिदान सामाजिक प्रसंगों को लेकर भी छोटे छोटे नाटक लिखे गये, जिन्हें क्रिया-कर्म की दृष्टि से एकांकी कहना ही उपयुक्त होगा। हमारे यहाँ वस्तुनिष्ठता की भी, नाट्यरसक, काव्य प्रबंध रासक भी बरिष्ठ और हल्कीज आदि अनेक प्रकार के सरस एकांकी लिखे जाते रहे हैं। परंतु उल्लिखित एकांकियों से मैं किसी पर इन बातों में से किसी एक के समान पूरे पूरे छाया नहीं होते। सास्त्र-प्रसिद्ध एकांकियों में भावप्रसाद किसित 'हास्यार्चन' जैसे भाव और अनेक प्रकारके प्रहसन अवश्य प्राप्त होते हैं। 'रति कुमुदायुध', 'भावधानन्द-कायकंदला' और 'रघवीर-प्रेममोहिनी' के वर्ण के प्रेमप्रधान-नाटक प्रकरण कहे जा सकते हैं, क्योंकि उनका युक्त कवि-कल्पित और लीलात्मक है तथा धृंगार अभी रास है। कभी कबल इसी ही है कि इनके नामक प्रायः औरसाम्य विषय, जमाप्य धयवा अधिक न होकर नीरोरास या नीरकसित भावा क्रिया राजकुमार है।

इस काम के बहुत से नाटकों में प्रस्तावना मिलती है, जिनमें प्रायः वसन्तीन रस, वर्ण बयवा समाज की दशा का वर्णन और नाटक के

संदेश का कथन रहता है। प्रतापनारायण मिश्र के समीप छात्रों के जैसे कुछ नाटकों की प्रस्तावना में सूत्रधार ने कवि का तथा उसके मेधा का परिचय भी दिया है। अन्य अनेक नाटकों में प्रस्तावना नहीं है इसका कारण अंगरेजी नाटकों का प्रभाव माना जाता है। जैसे हमारे यहाँ भी प्रेक्षक और पाठक आदि असूत्रधार नाटक लिखे और देखे आते रहे हैं। पता नहीं आता कि कुछ के अनुभवधार नाटककारों की दृष्टि इस ओर भी अथवा अंगरेजी नाटकों की ओर।

इसी प्रवृत्ति में यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि इन लेखकों ने अपने युग के प्रेक्षक की दृष्टि में रखकर जहाँ अपने नाटकों में अविनयता आदि पहले बताये हुए, अनेक युक्तों का समावेश किया वहाँ वे प्रेक्षकवर्ग की बौद्धिक और सांस्कृतिक स्थिति से प्रभावित होने से भी अपने को न बचा सके। इस समय देश में निरक्षरता का सामान्य वा अत्यन्त नाटकों के प्रसक्त वर्ग का अधिमित्त होना स्वाभाविक था। फलतः भारतेन्दु कास के लेखक को अपने नाटकों द्वारा ऐसे प्रेक्षकों को युग वर्ग का संदेश सुनाना पड़ रहा था जिसमें समीक्षा-बुद्धि का सर्वथा अभाव था और ईशतियों पर विवेक वाले योग्य भी बड़े बहुत पद-विशेष विशेषतः नयनों में वे उन्हीं की आलोचनात्मक-वैदग्ध्य का विकास नहीं हो पाया था। भरत और ब्रजराज के इस देश में इस समय और अधिका के कारण नाट्य-चिन्तन गूँथ-बिन्धु तक पहुँचा हुआ था। भारतेन्दु ने 'नाटक' नामक निबन्ध लिखकर नाट्य-चिन्ता का मार्ग तो खोला था पर उस पर चम्पेवाले जन्म जन्म आते नहीं आ रहे थे। इस परिस्थिति में इस समय का नाटकधार यदि अपार विविधता और मनोरंजकता के साथ बुनबानूति का सर्वोच्च सफलतापूर्वक युगा होता था तो फिर उससे क्या-मदकी और विशेष ध्यान देने की बात करनेवाला कोई नहीं होता था।

इसका परिणाम यह हुआ कि इस युग का नाटक-साहित्य जनता को बुनबानी-बुन बनाकर जनता के चप पर प्रेरित करने का ऐसा यत्नशीलतापूर्ण बना जैसा स्वयंसेवक विभीषण की भाँति माना जा रहा है। परन्तु साथ ही साथ 'नाटक' में यह कमी भी पड़ गई

कि उसका कला-पक्ष प्रायः उपेक्षित रहा अतएव वह परिस्थितिरमयीयता से भेंटित न किया जा सका। इसीलिए जब हम भारतेन्दु धर के नाटक के बस्तु-विन्यास पर दृष्टि डालते हैं, तो उसमें विविधता के साथ साथ विषयता भी पाते हैं। उसके अन्तर्गत एक ओर जहाँ हमें सुगठित और सुव्योजित कथा बस्तु वाले नाटक मिलते हैं तो दूसरी ओर ऐसे भी अनेक मिलते हैं जिनकी बस्तु-बोजना विविध और विमिश्रित है। सुगठित और सुव्योजित कथाबस्तु-सुष्ठु नाटकों का प्रणयन करनेवालों में उपाधरत्न मोस्वामी अग्रवर्ण्य हैं। उनके नाटकों में कार्य-व्यापार का बेसा संकलन और सम्भव मिलता है वैसे मात्र भी बहुतेरे नाटकों में नहीं बिनाई देता। वे अपने नाटकों में प्रायः प्राचीन कथा की दृष्टि किये बिना तीर की तरह सीधे लक्ष्य पर पहुँचते हैं। उनके 'अमरसिंह राठीर', 'चन्द्रावली सीतारामा' आदि नाटक तथा अन्य ग्रन्थ इससे प्रमाण हैं।

बड़े बड़े नाटकों के लिखनेवालों में सबसे व्यवस्थित बस्तु-बोजना का विधान करने वाले उपाधरत्न हैं। उनका नाटक 'महाराजा प्रताप' अनेक दृष्टियों से इस युग की अन्यतम रचना है। यह सात अंकों का नाटक है जिसमें मुलार्जुनसिंह और माछती की सभी प्राचीन कथा-पञ्चाङ्ग है। ऐसे भी कुछ प्रसंग आ गये हैं जिन्हें प्रकटी के अन्तर्गत परिचित किया जा सकता है। इसका कथानक उत्तरोत्तर अविक्रमिक प्रतिधीन होता जाता है। अमरसिंह इसमें कतिपय अतिनाटकीय तत्वों की भी योजना है, जो अतिनाटकीयता की प्रेमी उस युग की जनता की दृष्टि का प्रतिबिम्ब है। लोकप्रियता को भी अपने वर्णों की दृष्टि में रक्कड़ अपने नाटकों में अतिनाटकीय तत्वों (Melodramatic) की योजना करनी पड़ी थी। इस नाटक की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि इसमें व्यापक तथा की तरह चरित्र-चित्रण में जीवा-पौटी नहीं की गई है। जो बेबा या बहू उसी प्रकार का चित्रित हुआ है। सात अंकों का यह शूरकाय नाटक कहीं विविध बचवा नीरव नहीं होने पाया है। अपनी रचना के प्रायः तीन दशक तक यह हिन्दी रंगमंच का सबसे लोकप्रिय और उत्तम नाटक रहा है। आज भी यह बीड़े से हरेद्वार और परिष्कार के साथ रंगमंच पर बड़ी जलज्वाला से अभिनीत हो सकता है।



इस युग के जिन अन्य नाटककारों को अपनी कुछ कृतियों में वस्तु योजना में अपेक्षाकृत अच्छी तकल्लता मिली है, उनमें श्रीनिवासदास और प्रतापनारायण निम्न प्रमुख हैं। इस युग के नाटककारों के वस्तु-विस्थापन में जो एक सामान्य युष्म विद्यार्थी देखता है, वह यह है कि अनेक अशक्तिशाली अटिक्का नहीं, नहीं माने जाती भले ही अतिनाटकीय तत्वों की अति के कारण वह चित्रिक और अशुद्धि रह जाय। काला अङ्गनहादुर मस्त और रिपोटीलास मोस्सावी के नाटकों के कबानक अतिनाटकीयता के कारण ही चित्रिक हो गये हैं। दूसरा सामान्य युष्म जो इनमें उपलब्ध होता है, वह यह है कि अनेक नाटककार अपने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश से कुछ नार्मिक लक्ष्यों और अनुभूतियों को चुनकर इस जूबी से वस्तु के अंतर्गत समा देते हैं कि हन रीने अचवा हुँतने को बाध्य हो जाते हैं। तीसरा सामान्य युष्म इन लेखकों में वह उपलब्ध होता है कि वे रामलीला, राघवीला और मोटकी आदि की जूबी प्राचीन परम्पराओं को छिट में रखकर रचना कर रहे थे और इस प्रकार यहाँ की मध्यवर्गीय और शोकवर्गीय लोगों की परम्पराओं को धिक्काकर अपने वर्ग में राष्ट्रीय नाटककी नीम आन रहे थे। परन्तु साथ ही एक दोष भी सामान्य रूप से इन नाटकों में मिलता है जिसकी ओर पहले भी हम लक्षित कर आये हैं। वह यह है कि अतीत का सुसमीक्षित बोध न होने के कारण ये नाटककार बीर्यामिक और ऐतिहासिक नाटकों में दैत्य-काल की सम्यक् अवतारवा नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप प्रायः ऐतिहासिक अशुद्धि आदि दोषों के प्रायी होते हैं<sup>१</sup>।

नैता--

इन नाटकों में विध्य, अतिव्य और शिक्काविध्य एवं उत्तम मध्यम तथा अथवा सभी विधियों और धीधियों के प्राचीन वा समावेश किया गया है। पुरय-प्राचीन में जहाँ एक ओर हमें अज्ञात अज्ञान ललित और धाम्प्य तथा प्रकार के अतिरिक्त मिलते हैं, तो दूसरी ओर स्त्री-प्राचीन में भी हमें रचनीया परनीया और यगिरा सभी प्रकार के ललितवाली नाविचारों

१. देखा--'गुप्तीर की रागी और रचनीर प्रेमयोहिनी आदि।

मिल जाती है। हमारे सामाजिक परिवेश के प्रत्येक स्तर और प्रत्येक विभाग का कोई न कोई प्रतिनिधि इन नाटकों में कहीं न कहीं अवश्य उपस्थित है। ऊपर से विशेषता यह कि प्रायः वह छोड़े से छोड़े बातों अपना कम से कम कार्य-व्यापार द्वारा अपने चरित्र और उसकी पूरी सामाजिक-पृष्ठभूमि पर सर्वसाईट का सा तीव्र प्रकाश डालता है। चरित्र चित्रण की इस कला में भारतीय-काल के कुछ लेखक बेजोड़ हैं। उदात्त चरित्रों के चित्रण में तो इस देश के लेखक सदा से चिह्नहस्त हैं यह उनकी अपनी कला है जिसे दूसरों को उल्टे सीढ़ना है। अतएव श्रेष्ठ पात्रों के सील-निरूपण में इस युग के कुछ लेखकों ने प्राशंसनीय सफलता पायी है। राधाकृष्णदास के प्रताप गुकारसिंह, माकली और पद्मिनी गोस्वामी रामाचरण के अमरसिंह, श्रीवामा पद्मावती और, श्रीनिवासदास के रत्नचरित्र आदि मुझसे नहीं जा सकते, वे हिन्दी नाटक साहित्य की विभूति हैं। इनके विपरीत अनुराध अथवा असुर-वर्ग के काल-पात्र हैं, जिनके चित्रण में यूरोपीय नाटककारों की चिह्नहस्तता की बड़ी नृम है। लेखकपिपर तथा प्रान्स के मोल्मर आदि अनेक नाटककार इस कला में अद्वितीय माने जाते हैं। पर हमारे प्रताप-नारायण, मित्र इस कला में भी किसीसे पीछे नहीं रहे हैं। कलिकीशुक कम्प में बरकीया श्यामा, कुलदा, चम्पा सेठ किशोरीदास, सामान्या लक्ष्मीराम गुंठा लक्ष्मिसिंह और पवित्र बन्धु-पुत्र परमसिंह आदि का असाधारण रूप से सजीव चरित्र-चित्रण करके मित्रजी ने स्वयं कलिमुग महाराज की अपना मुक्त देखकर प्रसन्न होने के लिए दर्पण प्रस्तुत कर दिया है।

इन लेखकों के साथ सब प्रकार के चरित्रों को सजीव बनाने का प्रमुख साधन कथोपकथन है। इन कथोपकथनों में कथा के सील का सत्व और अंतस् का सत्व निचीड़ कर भर देना इस युग के श्रेष्ठ लेखकों की कला की सामान्य विशेषता है। आनंद अनुराध, मान मनुहार, मुग्धता (मोक्षपन), सोम और गुना आदि सब प्रकार के पात्रों अनुरूप साया लिपने में ये लेखक दक्ष हैं। ये लेखक वही संस्कृत के कवियों की छेती पर आनंदारिष्टाकृतपूर्ण कथोपकथन लिखते हैं, वही

मो भावा को अत्यंत सरस और सरस बनाकर मर्मकारों को प्रतिरिक्त के व्यवहार की बोली का अनिवार्य-सा जंग बना देते हैं—

(१) “संवरण—हे मित्र उसने मेरा विश्वास नहीं किया तथापि मेरा मन वही मैं बना रहता है। आहा पवन के झोंके से उसकी कटि लथकती है, पान की पीछ उसके कंठ में झलकती है। जब उसके जोड़ों की अरबाई ने मुझे मोती में बिंदुम का छंदिह पड़ गया तब उसने मुत्कण की मेरा छंदिह हार लिया। अब वही मुत्कण मेरे मन को हरण करे है।”

(२) “हे शिवा मुझे अकेला देव बन के पशु-पक्षी भी मेरी हँसी करते हैं। हे पिक्कवनी मृग के गमन पत्र की भाँस कुँद की कभी अनार के शाने कमल का विकसल देव मेरे मन को बड़ा दुःख होता है, तू बन्दी आकर इनका अहंकार हू।”

—(जीनिवासवास कृत लज्जा संवरण नाटक)

मेरा तात्पर्य यह है कि कवीपद्यों में इस युग के प्रतिनिधि लेखक विल के स्वामी दोम और भावादेय को इस कौशल और चारुता से व्यक्त करते हैं कि उनके नाटक कम से कम काव्ययुग से कभी हीन नहीं होते। इसके अतिरिक्त ये लेखक शायद की भाषाविक्रम, स्थिति और शारीरिक विशेषताओं को प्रकाश में लाने के लिए भारतीय भाषाशास्त्र की संरचना के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर विविध विभाषाओं और शब्दों से भी काम लेते हैं जिसके उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं। इन लेखकों की भाषा में ब्रजभाषा, अवधी, छत्तीस और जाजिस्टा आदि उद्भूत हैं, कभी है तो केवल यह कि इनकी दृष्टि अभी अच्छी तरह से व्याकरण के नियमों पर नहीं पड़ी है।

रस

इस युग के लेखकों के मुख्य रस कथन और हास्य है। इसके सामाजिक कारणों की विवेचना हम जल्द कर चुके हैं। वीर और

पुनः रस की रचनाएँ अथवा संस्था में कम नहीं परन्तु वे भी देशकाल के प्रति कष्टम परिणाम से जाग्रत हैं। प्रत्येक नाटक के मर्म में—बहु किसी भी रस का हो—राष्ट्र की अज्ञानमयी बेवसा, हिंसा, दुर्गति, जो हमें बारम्बार झेलना पड़ रहा है, अपने दुर्भी देश की हृदयस्थिति जनता की मोह बेवसा को बेरिक्त करती है।

### विदेशी प्रभाव

अंगरेजी के अनेक नाटकों के अनुवाद इस युग में हो गये वे भी पारसी रंगमंच के माध्यम से विदेशी रसमंचों के आचरण की संस्कृति भी बीरे बीरे प्रचार पा रही थी। इसलिए हिन्दी नाटकों पर भी परकीय प्रभाव बढ़ता प्रारंभ हो गया। प्रस्तावना और अन्तर्भाव को तो बीरे बीरे त्यागपत्र लिखना प्रारंभ हो गया था, और उसके स्थान पर एक-दो नाटकों में नाट्यशास्त्र में वर्णित ऐसे दृश्यों का समावेश भी प्रारंभ हो गया था जो सदैव हमारी संस्कृति के परिपक्वी समझे जाते रहे हैं। उदाहरणस्वरूप किमोरीबास गोस्वामी ने 'मर्मकर्म' महाकाव्य में मर्मक और बीरेन्द्र को रंगमंच पर चुम्बन और आलस्य की पूरी स्वतन्त्रता प्रदान कर के हिन्दी नाटक की भारतीय नाट्यशास्त्र की, सांस्कृतिक, मर्माशयोक्त, मुक्त करना प्रारम्भ कर दिया था। प्रसन्नता की बात है कि इस प्रकार विदेशी प्रभाव अस्वस्थ करने का उत्साह इस युग के अन्य श्रेष्ठ नाटककारों में नहीं उमड़ा। उन्होंने विदेशी नाटकों के कुछ ही ग्रहण करने का प्रयत्न किया। ऐसे केसको में जाला नीतिशास्त्र शास्त्र का नाम विशेष उल्लेख किया जा सकता है। इस युग के नाटकों में दुःखान्तकी का प्रवेश भी विदेशी प्रभाव माना जाता है। । । ।

### दुःखान्तकी की मातृभाषा

इस प्रश्न में एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है क्या भारतीय युग में हिन्दी में दुःखान्तकी का जन्म अंगरेजी के प्रभाव के कारण हुआ? इस प्रश्न का ठीक उत्तर प्राप्त करने के लिये हमें भारतीय-युग के कुछ दुःखान्त नाटकों की परिस्थिति पर विचार करना चाहिए। इनके लिये

हम तीन नाटक चुनते हैं। पहला मास्तेनु का 'नीलदेवी' दूसरा रम्या-कृष्णदास का 'कुञ्जिनी बाला' और तीसरा श्रीनिवासराव का 'रघवीर प्रेममोहिनी'। ये तीनों ही रचनार्थे कुञ्जान्त हैं, पर तीनों 'कुञ्जान्तकी' की परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न भिन्न हैं।

इस विवेचन में प्रविष्ट होने के पूर्व हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि मास्तेनु के युव एक बंबईजी के प्रायः ऐक्स्पिरिटर के नाटकों का ही अनुसार हिन्दी में हो पाया था। अतएव ऐक्स्पिरिटर अपना उसके पूर्व के नाटककारों के कुञ्जान्तकी के आधार का ही हिन्दी में लोकप्रिय होना अधिक सम्भव था। ऐक्स्पिरिटर की कुञ्जान्तकी का मुख्य लक्ष्य यह है कि इसमें नायक को दुर्भाग्य से ऐसी प्राक्पाटी स्थितियों का सामना करना पड़ता है, जिन पर उसका कोई बल नहीं होता<sup>१</sup>। चाहे ही उसके नायक येष्ठ वंश के और असाधारण शक्त के व्यक्ति होते हैं, जिनके स्वभाव में एकाग्रता का ऐसा दोष होता है जो दीर्घ समय पर उनकी या तो अकर्मण्य बना देता है अथवा असमय में कोई अवाञ्छित काम करवा डालता है। ऐक्स्पिरिटर के पूर्व अस्तु का कुञ्जान्तकी का आधार पुरोप में सर्वाधिक साम्य था। उसने भी नायक का येष्ठ हीना आवश्यक माना है किन्तु वह न तो परम दुर्भाग्य होता है और न अपराधपूर्ण<sup>२</sup>। उसके जीवन की परिस्थिति किसी मानवीय दुर्बलता या बाधना के कारण दुर्भाग्य होती है, यद्यपि वह स्वयं से अपराध के पथ पर पैर नहीं रखता<sup>३</sup>।

१ दैवि-ए. निकोल इट 'मिस्ट्री ऑफ़ ड्रामा' पृ० १७२—

It is this almost fatal confronting of the hero with forces beyond his strength that marks the tragedy of shakespeare.

२ दैवि-वही पृ० १४७—

'The tragic hero for him is a person neither eminently virtuous nor yet involved in crime by deliberate vice or villainy but by some reason of human frailty'

ध्यान से देखने से ये कोई भी सख्त भारतेन्दुकासीन दुस्मान्तकी पर भागू होते नहीं दिखाई देते। 'नीलदेवी' में नायिका नीलदेवी असाधारण श्रेणी की तो है, पर स्वभाव की एकाग्रता अथवा किसी अन्य मानवीय दुर्बलता के कारण उसका अन्त दुःखद नहीं होता। अपनी असाधारण सक्रियता के अर्थों में जब वह कौशल्या और कुन्ती आदि राजमाताओं की तरह अपने पुत्र की पथप्रदर्शिका बन कर जीवित रह सकती थी, वह दिव्यत पति की स्मृति में खड़ी हो जाती है। अतएव यह दुस्मान्तकी दोस्त्रपियर की दुस्मान्तकियों के किसी वर्ग में परिगणित नहीं की जा सकती। दोस्त्रपियर के हैमन्त, ओवेको कियर, मैकवेम और ब्रूटन आदि सब नायक अपनी इच्छा के विरुद्ध काळ के हाथ बनते हैं क्योंकि नीलदेवी और बाहरी सब परिस्थितियाँ उनके प्रतिकूल हैं और वे अपनी विफलता से मयपीत हैं। इसके विपरीत जब सब दृष्टियों से सभी परिस्थितियाँ नीलदेवी के अनुकूल हैं और सकलता बरगों पर खोद रही है तब वह स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करती है। जहाँ दोस्त्रपियर की दुस्मान्तकियों से कबल और नाश की उत्पत्ति होती है और उनका नामक हमारी सहाय्यमूर्ति का पाश बनता है, जहाँ नीलदेवी का विवाहवचन उसके प्रति हमारी अन्ध उत्पन्न करता है और नाश के स्वप्न पर उत्साह और उत्साह के- भावों को जगाता है। इसलिए 'नीलदेवी' दुस्मान्तकी होते हुए भी शुद्ध भारतीय परम्परा में है, जिसे हम कर्मव्यय या बलिदान दुस्मान्तकी कह सकते हैं। बिहारी लाल दशरथ जोषा 'नीलदेवी' को दुस्मान्त नहीं मानते। उनका कहना है—“दुस्मान्त तो तब होता जब वर्म के ऊपर अथर्व की विजय होती या रानी नीलदेवी को पथप्रवृत्ति प्राप्त हो जाती। रानी नीलदेवी का ध्येय पूरा होता है। वेध स्वतंत्र रह जाता है, पति का हृष्याकार परलोकनामी बनता है और रानी का पुत्र सिंहासनासीन होता है। एक आर्य-कल्याण को और क्या चाहिए? पति मृतमूर्ति में अश्वमिषों का संहार करते हुए वीरगति पाता है और पुत्र उसके राज्य को सम्हाल लेता है। रानी स्वर्ग से पति का पुनरागमन कराने में अथर्व की अथर्व बनसे मिथने की प्रशंसा करती है। इसमें कुछ किसको और क्यों हो? प्रेशाद रानी को विवाहद्व नहीं देखते। हाँ, रानी अन्त में यह कहते

हुए अवश्य चुनी जाती है, "येटी यही इच्छा थी कि मैं इस जागत का अपने हाथ से बच करूं...। वो इच्छा पूर्ण हुई। अब मैं सुखपूर्वक लौटी हूँगी।"

"साक्षर्य यह कि इस नाटक को बुखान्त मानने के विरुद्ध डॉ. मोता की दो प्रमुख आपत्तियाँ हैं—एक कथानक-विषयक और दूसरी प्राविधिक। कथानक को लेकर यह आपत्ति कि "बुखान्त तो ठग होता जब बर्म के ऊपर अर्थ की विजय होती" मान्य नहीं हो सकती। कारण मध्यकालीन भारत की सभी सत्तियों का जीवन ऐसा ही रहा है। स्वेच्छा से मृत्यु का वरदान देनेवाली इन सत्तियों का अन्त अर्थ पर बर्म की विजय से ही संभव है पर उनकी कलियान-यात्रा लोक-भाग्य की 'विराट' तक करना में नियन्त्रित रखने का अनोख साधन भी है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अथवा यह कथ्य पारम्पर्य के भाव-कथन से अधिक उदात्त है और यही भारतियों की अमीष्ट भी था। मिसक रानी को विजास्य नहीं देखते यह प्राविधिक आपत्ति भी अधिक व्यावहारिक नहीं। रानी के मुख से लौटी होने का संकल्प मुनकर सहृदय प्रेक्षक उसका बलनात्मक तादात्म्य ही कर ही लेते हैं। मेरा मत है कि भारतियों के अनुकूल बुखान्त नाटक का ठाठ धड़ा कर रहे थे। यह उनका पहला प्रयत्न अवश्य है पर कार्य की असाधारणता और बुद्धि को देखते हुए उनकी सफलता छोटी नहीं है।

कलिकर्ता काता पर भी कलिकर्ता पारम्पर्य बुखान्त की के लक्षण संगत नहीं बैठते। इसकी नायिका सरला बुद्धिमान और शिष्टोत्तम आदि की तरह न किमी राजकीय की है और न असाधारण कुल की। उसमें कोई मायवीय पुर्वकता या कामना भी ऐसी नहीं जिसके कारण उसे विप काये को बाध्य होना पड़ा हो। नियति ने अणिु बालविवाह के उत्तरदायी लक्षण और उसकी कर्तियों के लक्षे विषय बना दिया है इसलिए उसी समाज के बुद्धिवादी कर्तव्य, द्वारा टिपकर अपनी बुद्धि वासना चरित्रार्थ बनाना चाहते हैं। भाव्य निरवर्तनता की दशा में यह अपनी नर्पाय की दशा

के लिए बिल साकर प्राण से बेटी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटक का सारा दुःखान्तकी की सृष्टि के लिए रोससपियर की तरह उच्चरार्ण के सम्राट-साम्राज्ञी, बीरों और सेनापतियों एवं उनकी प्रेमिकाओं को नहीं चुनता अपितु जन-साधारण के जीवन को उसका आधार बनाकर वर्गगत उच्चता की भावना को बसा देता है। सामाजिक दृष्टियों के द्वाकन निपीड़न-यंत्र में पिसते हुए साधारण से साधारण मानव की महत्ता का प्रजापचाकी प्रतिपादन करते हुए वह उच्चता की हमारी परम्परागत भावना को सहा के बिने शकमोर देता है। राजाकुम्भवात की 'दुःखिनी बाका' वीसी रचनाओं में जिस दुःखान्तकी का बीजापेपण किया वही भावे बलकर 'गोवान' के होरी में पूर्ण-विकसित रूप में दिखाई पड़ी। इन रचनाओं में दुःखान्तकी का जो आदर्श अन्य से रहा था, उसी का प्रतिपादन इसी समय के आसपास के रोससियम में मारिस मैटर्लिक कर रहा था।

रजबीर प्रेममोहिनी को दुःखान्तकी भी 'रोमियो जूजियट' के समान शुद्ध निपति-कृत (Pure tragedy of fortune) नहीं। हम पहले ही बतका चुके हैं कि उसमें प्रेमी और प्रेमिका के मार्ग में सामाजिक स्थिति का वैधम्य बाधक है क्योंकि दूर-भरे रजबीर को एक साधारण राजपूत समझ उसके साथ अपनी राजकुमारी का विवाह करने को प्रस्तुत नहीं होते। अतएव यहाँ भी नायक और विशेषतः नायिका 'दुःखिनी बाका' की सरका की तरह, निपसयामी सामाजिक दक्षि के विरुद्ध अपने को निरबर्तन पाकर कात-कथस्थित होने को बाध्य होती है। ये दोनों कृतियाँ सामाजिक दुःखान्तकी कही जा सकती हैं। भारतेन्दुयुग के अन्य दुःखान्त नाटक भी इन्हीं दोनों बनों में से किसी एक के अन्तर्गत हैं, अर्थात् या तो वे कर्तव्य-दुःखान्तकी हैं जैसे 'अमरसिंह पठौर' और 'बन्नावली' यात्रि अथवा सामाजिक दुःखान्तकी हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि हिन्दी की दुःखान्तकी का वरप स्वतंत्र रूप में शुद्ध सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना की भूमि पर हुआ। रोससपियर की दुःखान्तकी की तरह भय करना और त्रास के



एक में इस युग की दुःस्थितियों की प्रतिक्रिया नहीं होती, उसकी प्रतिबिम्बित कर्तव्य के प्रति सात्त्विक उत्साह और कठमापेक्षित समाज-सेवा के उत्साह के रूप में होती है।

### हास्य और व्यंग्य

भारतेन्दु की प्रतिभा का वैभव कबचा और विनोद के दो रूपों में विद्यमान प्रतिपाद्य हुआ था। उनके समकालीनों में से प्रायः प्रत्येक ने हास्य और विनोद के मृदुल की प्रतिभा का प्रमाण दिया। इसी को लक्ष्य करके आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है—‘हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन लेखकों में जो एक सामान्य गुण कल्पित होता है वह है लचीलता या विन्यासिली। सब में हास्य या विनोद की भाषा बोझी बहुत पाई जाती है।..... विविध समाज में संचारित भाषा को भारतेन्दु के सहोदयियों ने बड़े अनुरक्षणकारी रूप में ग्रहण किया। इस काल के हास्य की प्रेरक चेतना का स्वरूप हम पहले ही निरूपित कर चुके हैं। इन विन्यासिल लेखकों ने अनेक प्रकार के श्रम कीशकों से हास्य की आवश्यकता की जड़ों का संश्लिष्ट निर्वहण इस प्रसंग में देखें।’

इन युग में जो हास्य हँसे प्राप्त होता है, उसकी कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) श्रम्य और शैत्य हास्य, (२) चरित्रजन्य हास्य (३) परिस्थितिजन्य हास्य (४) आचरणजन्य हास्य (५) बाष्पी जन्य हास्य ? (बाष्पी मर्म)। शैत्य हास्य श्रम्य विरूपक प्रमाण होता है। इस काल के बहुत बड़े नाटकों में विरूपक का उपयोग किया गया है। परन्तु इन वर्ग के हास्य की आवश्यकता अन्य अवसरों पर हुई है। भारतेन्दु ने ‘भारत दुर्दशा’ की भाषा विन्यासी और भाषा मुमलमानी रूप प्रदान कर इसी कोटि का हास्य उत्पन्न करना चाहा है।

चरित्रजन्य हास्य का सब से सुन्दर उदाहरण ‘बूढ़े मुँह मुँहासे के काला नाट्यमहात्म्य’ प्रस्तुत करते हैं जो राम का नाम से लेफ्ट टेम्पे की

कड़की को यध में करने की प्रतल्ला करते हैं और सोचते हैं कि जब यह हाय बड़ बानेयी तो फिर बाब को गगवान से गी निपट हेंगे । धामिक ठंके दरजे के हैं, इसलिए एक पुराने मंथिर को संकेतस्थल बनाते हैं । ऊपर से तुर्र यह कि एक इन की लीधी भी वहाँ से जाते हैं, जिसका प्रयोप प्रेयसी के मुख की प्याज की यम्य का निवारण करने के लिए करता बड़ते हैं ।

परिस्थितिबन्ध हास्य के उदाहरण 'ककिनीतुकल्पक' में अनेक मिलते हैं । स्वामा का उपपति रसिक बिहारी उसके पके में हाय बाल कर उसको उर्बू के समवोपयुक्त रसीले घेर कहवा सिखा रहा है । उसी समय उसका पति किशोरीवास आ जाता है जिसे स्वयं बेस्सा के यहाँ जाने की बल्ली है । इधर स्वामा अपने उपपति की क्षिया देती है और उधर पति महालय बामिकता का डोग रचकर कथा सुनने के बहाने बेस्सा के घर की और प्रस्थान करते हैं । पत्नी कुछ समय के लिए इस त्रियोग की बली से बाहर से बहुत दुखी होती है, पर पतिदेव के टक जाने से रसिक बिहारी के साथ एकान्त का उपयोग करती है । इस प्रकार के हास्य के इससे भी और यथार्थवादी अन्य उदाहरण 'ककिनीतुकल्पक' में उपलब्ध हैं ।

व्यवहार भववा आचरणबन्ध हास्य का एक उत्तम उदाहरण 'सज्जब समुक्त ढाटक का वैज्ञानिक हेमचन्द्र प्रस्तुत करता है । वह मूर्ख नहीं है, बड़ा भारी विद्वान् है । पर उसको बानि के विकास बाद की ऐसी सनक सवार है कि वह प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु को उसी के चरमे से देखता है । 'सज्जब' से उसका पुराना परिचय है पर एक अनुसन्धान के सिलसले में जब वह समुद्र की लुवाई करा रहा है तो कंसकी भेंट सहसा सज्जब से हो जाती है, जिसको कुछ काकुली ने वहाँ कीर कर रखा था । उसे देखते ही उसके भीतर का ज्ञानि सज्ज हो उठता है—

वा धूब बोझते पारे देखनी लोम क्या मानुय हाय ! ना । एकटा आपटा प्रमाणे किछु बिरसाय जचित नोय । पुक्ति सास्त्र नियम बिन्दु ।

हाम या मानुषेर बिये एकटा जम्हा बोले बोल होन्नि । सोमको दुम है कि नहीं देवे । सोम घूम जावो सो हाम तुमरा दुम देखने को नाँवता है ।

बायी-जम्ह हास्य नाटक में कथोपकथन का ब्यंगमूल होता है, इसलिए इसका महत्व बहुत अधिक है । इसका सबसे निकटतम साधन बिहून भाषा का प्रयोग और सबसे उदात्त रूप बायी-जम्ह है । इन दोनों कीटियों के बीच में भी इस वर्ष के हास्य के अन्य प्रकार और स्वर हैं । भारतेन्दु मुन के नाटककारों ने इनमें बिकस जाया से जया कर बायी-जम्ह तक बायी जम्ह हास्य के विविध रूपों का उचित प्रयोग किया है, जिसके कुछ उदाहरण पहले दिये जा चुके हैं । भारतेन्दु जी की हास्य-श्रुष्टि की कला का क्लेश करते हुए हमने उनकी विन विरोधताओं की और संकेत किया है, वे इस रूप के अन्य केसकों में भी सहज उपलब्ध हैं ।

इसके अतिरिक्त विन प्रकार भारतेन्दु में हमें नर्व के अनेक प्रकार के प्रयोगों के बचत्कार विचार पड़ते हैं, उसी प्रकार उनके रूप के लेखकों में भी उसका अभाव नहीं । विरोधता प्रेमाख्यात्मक नाटकों में हमें इनके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं । प्रेमाख्यात्मक नाटककारों में भी निराशासत और अस्मयहास्य मल्ल आदि दो चार लेखक कीटिकी श्रुति और नर्व के प्रयोग में विशेष रुचक हैं ।

अन्त में यह भी कह देना आवश्यक है कि भारतेन्दु-मुन में हास्य-रस का प्रवाह धीरे धीरे उद्गम होकर बाद में वर्षों की वाद तर्जु बह जाता । परिणामस्वरूप इसमें कुछ कूर्च-कचरे का हीना स्वाभाविक था । पर सबसे इस युग के हास्य और व्यंग्य में जो ज्येष्ठ और महत्त्वपूर्ण है, वह निरुद्ध और निर्महत्त्व नहीं बन जाता । मेरी छीट इस युग के उत्कर्ष की चूड़ा पर निर्दिष्ट है, वही चरणाब्जिनी पर नहीं । कैर है, कुछ विद्वानों ने भारतेन्दु-मुन के हास्य और व्यंग्य के उदात्त पक्ष की उपेक्षा ही की है<sup>१</sup> ।

१. इतिहास—डॉ. लक्ष्मीकापर बाघ्येय इस आधुनिक हिन्दी साहित्य ।

# द्विवेदी-युग

अथवा

उत्तर भारतेन्दु-युग



# द्विवेदी-युग

( उत्तर भारतेन्दु-युग )

## नामकरण की समस्या

भारतेन्दु के बाद हिन्दी भाषा और साहित्य का जो दूसरा उत्थान हुआ उसके प्रमुख प्रेरणा केन्द्र पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी थे । इसीलिए साम्प्रदायिकता यह युग द्विवेदी-युग के नाम से अभिहित किया जाता है । इस दूसरे उत्थान में काव्य, उपन्यास कहानी, निबन्ध समालोचना आदि साहित्यांगों की उत्तरोत्तर वृद्धि तो होती रही पर नाटक की प्रगति अचञ्चल होती हुई दिखाई पड़ी । भारतेन्दु युग के 'खेबाकों' का जो अमूल्यपूर्व उत्साह बहुसंख्यक नाटकों के प्रचयन का कारण बना था वह इस युग में आकर मंद पड़ गया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि भारतेन्दु के पीछे नाटकों की ओर प्रवृत्ति कम हो गई । नाम के दो मीठे बच्चे मीडिक नाटक बहुत दिनों तक न दिखाई पड़े । अनुवादों की परंपरा अचञ्चल चकती रही । '१ वस्तुतः भारतेन्दु जी का समय हिन्दी नाटकों का स्वर्णयुग कहा जा सकता है, और उनके बाद ही नाटकों के क्षेत्र में जो हासोमुकता दिखाई पड़ी थी उससे उस समय के विद्वानों और कैंसलों को मामिक कष्ट हुआ था । 'बीपट चपेट नामक ग्रन्थ में उपलब्ध किशोरीदास गोस्वामी कथन इसका प्रमाण है—

“ हिन्दी के अनाम्यकाल जब से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी परलोक विधारे हैं, तब से साहित्य की बड़ी दुर्दशा हो रही है । गद्य की तो जो हुई है तो हुई है, पर पद्य की दशा ऐसी भयानक हो रही है कि देखते ही घटीर कांप उठता है । बहुत से भूखाभिराम कविता का आद्य करने पर क्लेश भये हैं, वस्तु और नाटक-विद्या को तो क्लेशित बाबू साहब अपने सग ही के नये हों । उनके पीछे दो-एक रूपक कि जिससे पंजाब की लकी छोड़के और आन तक कोई नाटक नहीं बने जिससे हिन्दी भाषा की पुष्टि होय यह अनाम्य नहीं तो क्या ?

इसी प्रकार रामकृष्ण वर्मा ने भी अपने कृष्णकुमारी नाटक में भारतेन्दु के पीछे नाटकों की हीन अवस्था पर सन्दर्भकाय किया है—

जब से श्रीकृष्ण भारतभूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने और विद्येयल विद्वद्भिरोद्यमि लाला श्रीनिवासदासजी ने इस भारत्यभ्य को छोड़कर स्वयं को भूषित किया तब से अभागिनी हिन्दी में कोई भी नाटक उभरना अथवा कोई अपूर्व मनोहर रंग देखने में न आया। नाटका की जैसी कुछ बुद्धिमान हम दिनों है वह कबल से ही खोय जाय सच है। जो नाटक के पुष्प-दोष और लक्ष्यों से अभिन्न हैं। इन दिनों यह परिपानी यह यह है कि जो तीन पुरुषों की बातचीत अथवा रंगभूमि पर खड़े हो हाथ पैर हिलाने ही को साम नाटक, कह देते हैं। स्वयंवासी बाबू हरिश्चन्द्रजी ने इन दोषों की दूर करने और लोगों का नाटक के लक्षण और काम समझाने के लिये 'नाटक' नामक एक उत्तम ग्रंथ लिखा या परम्परा आसानी लोग उसे कम देखते हैं ... ।

भारतेन्दु-युग की तुलना में द्वितीय-युग के प्रारंभ में नाटकों के प्रति लेखकों का जो ज्येष्ठा-भाव दिखाई पड़ा इसी का यह परिणाम है कि हिन्दी-नाटक-साहित्य के इतिहास अथवा विकास पर लिखनेवाले प्रायः सभी लेखकों ने उसकी निर्मूल्य समझ कर उसकी स्वतंत्रता सत्ता नहीं स्वीकार की है। बाबू बजरंगदास ने लिखा है कि 'भारतेन्दु की तथा उनके मण्डल के अन्त होने पर हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों ने नाटकों की ओर अपनी कृपाकुण्डल एकदम कुछ दिन के लिये बन्द कर दी।' इसीलिए संभवतः उन्होंने अपने हिन्दी-नाट्य साहित्य में भारतेन्दु-काल के नाटकों का स्वतंत्र रूप से विवरण देने के बाद वर्तमानकाल का विशेषण प्रारम्भ कर दिया है और नाटकों की बुद्धि से द्वितीय युग का स्वतंत्र अस्तित्व और महत्व स्वीकार नहीं किया है। इसी प्रकार डॉ० लोचनदास गुप्त ने भी हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास नामक ग्रंथ में १९०५ ई० से १९१५ ई० तक के समय को जो भुलें रूप से द्वितीय की कद ही युग है सम्बोधन की संज्ञा प्रदान की है। अतएव, द्वितीय युगमध्य की ने भी

इसी प्रकार संश्लेषण कह कर द्विवेदी युग की उपेक्षा की है<sup>१</sup>। प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. बरारम बोध्या जैसे व्यक्तियों के उत्कर्ष की दृष्टि से द्विवेदी युग के सम्बन्ध में ऐसी ही चारणा पाई जाती है। पर हिन्दी-नाटक-साहित्य के इतिहास में द्विवेदी युग के प्रति इस प्रकार के दुर्बल्य या उपेक्षा-भाव की प्रशय देना समीचीन नहीं है।

इसमें कोई संशय नहीं कि भारतेन्दु-युग में जितने नाटक लिखे गये संभवतः उसके आगे भी द्विवेदी-युग में नहीं लिखे गये। यह भी सत्य है कि युग-धर्म और अपने युग की सभी समस्याओं को नाटकीयता प्रदान करने का जो अथक उत्साह भारतेन्दु युग के लेखकों में दिखाई पड़ा था उसके बर्तन हूँ द्विवेदी-युग के लेखकों ने नहीं होते। हिन्दी नाटक और रंगमंच के उत्थान और निर्माण के लिए भारतेन्दु जो न ऐतिहासिक महत्व का जैसा कार्य किया वैसा द्विवेदी भी नहीं कर सके। फिर भी द्विवेदीजी ने नाटक की नितान्त उपेक्षा की ऐसा नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' नामक एक पुस्तिका इस विषय के संस्कृत अंगरेजी, मराठी और हिन्दी के उस समय के सब उपलब्ध ग्रंथ पढ़कर लिखी है। इस पुस्तिका को पढ़कर यह प्रकट होता है कि आचार्य द्विवेदीजी को अपने समय के नाटकों की देखकर बड़ा दुःख हुआ था<sup>२</sup>, और वे अभीष्ट दिशा में उनका अधिक से अधिक उत्कर्ष-साधन करना चाहते थे। पर नाट्य-शास्त्र के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक ज्ञान से विहीन जो अनधिकारी केवल अपनी सैलानी की काव्यिक नाटक-साहित्य के मुख पर पोतने लगे थे उनकी अवस्था उन्होंने बड़े बड़े ग्रन्थों में व्यक्त की है—

'नाटक लिखने की प्रणाली का जिन्हें अखण्ड भी ज्ञान नहीं उन्होंने भी हिन्दी में नाटक लिखने की इजा की है। ऐसे लोगों को समझना

१ मुकाबलाग्रहण 'काव्य के रूप' पृष्ठ ८१।

२ शैलिये—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'नाट्यशास्त्र' का उपदर्शन—'अमाम्यवस्था हिन्दी में दो बार को छोड़ कर कोई अच्छे रूप की नहीं। नाटक लिखना लोगों ने केवल समय रखा है।'



बाहिर कि इस प्रकार ऊटपटांग लिख कर उसे प्रकाशित करने से हिन्दी की ही नहीं स्वयं जगदी भी हानि है। नाटक जिसमा तबका काम नहीं उसके लिये उपयुक्त विद्या-बुद्धि के अतिरिक्त लोक-व्यापार और समुप्य-प्रकृति का पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिए।<sup>१</sup>

इसी प्रकार उन्होंने उन लेखकों को भी कड़ी फटकार बताई है, जो पारसी कम्पनियों के लिये अत्यन्त विकृष्ट बोली के ऐसे नाटक लिख रहे थे जिनसे कलाचार की बर्बाद का हमन हो रहा था—

नाटककला का फल उपदेश देना है। उसके द्वारा मनोरंजन भी होता है और उपदेश भी मिलता है। चाहे जैसा नाटक हो और चाहे उसे जिनने बनाया हो, उससे कोई न कोई विद्या अवश्य मिलनी चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो नाटककार का प्रयत्न व्यर्थ है अविनष्टा का परिधम व्यर्थ है और दर्शकों का नेत्र-व्यापार भी व्यर्थ है। जो कोय इन्द्र सभा और युल्लकावली आदि खेल जो पारसी थियेटर वाले आनकल प्रायः देखते हैं, देखने जाते हैं उन्हें अपना हानि-जान होकर नहीं समझना चाहिए।<sup>२</sup>

इन अवसरों से यह सिद्ध है कि आचार्य त्रिवेदी हिन्दी नाटक की बलि-बलि को बहुत ध्यान से देखते रहने के कम से कम से उस और से असाधजन ता बदापि नहीं थे। उनके द्वारा हिन्दीभाषी जनता के माथ हो दर्शकों के मनवरन साहित्यिक अनुशासन के परिनामस्वरूप जिस साहित्यिक आदर्शवाद का जन्म हुआ था उसने नाटक-साहित्य की प्रकृति पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। अवरर इस साहित्यिक आदर्शवाद से अनुभावित ऐसा कोई महान् स्थितिय नाटक के क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ा जैसा आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र गुप्त का कविता के क्षेत्र में दीक्षी-शरण दुष्ट का और उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का था। त्रिवेदी जी का रोचपूर्ण मुद्रि-मंग देख कर अनविद्यारी और व्यवसायी दोनों

ही प्रकार के नाटक-लेखकों के विषय बहुत कम ज्ञान था और उनके आतंक के कारण उनके समय के नाटकों की 'बेयबती' चारा मंत्र पड़ गई थी और जीव भी। किन्तु मंत्र और भीषण होकर इस चारा में जो निर्मलता आई, वह हिन्दी नाटक के इतिहास की निर्मलता भटमा नहीं है। अतएव भारतेन्दु युग की परिस्थिति के बाव हिन्दी नाटक की विकास-दिशा में जो परिवर्तन संभूत होता है, उसका सम्पूर्ण श्रेय आचार्य द्विवेदी जी को प्राप्त होना चाहिए। द्विवेदी जी का प्रभाव हिन्दी नाटक-साहित्य पर कई स्तरों में प्रतिबिम्बित प्रतीत होता है। एक तो जैसा उपर कहा जा चुका है, आचार्य जी के आतंक के कारण अनधिकारी लेखक हिम्मत हार बैठे जिसके परिणामस्वरूप उस कूड़े कचरे की बाढ़ रुक गई जो नाटक साहित्य के नाम पर हिन्दी के कलेवर को मलिन बना रहा था। दूसरी बात यह हुई कि अपनी उल्लिखित नाट्यशास्त्र नामक पुस्तिका में आचार्य द्विवेदी ने जो निर्देश दिये, उनके प्रकाश में लेखकों ने अपनी प्रतिभा और योग्यता को ठीक ठीक पहचाना। इसका परिणाम यह हुआ कि मौखिक नाटक-रचना की सहज समता रखनेवाले कुछ इने-गिने व्यक्ति ही पूरी रीति के साथ इस क्षेत्र में टिके रह पाये। अन्य लोग जिनको हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध करने की सच्ची इच्छा थी संस्कृत बंगला अंगरेजी आदि भाषाओं की थोड़ी नाटकीय कृतियों के सफल अनुवाद करने में रतनित हुए। इसीलिए आलोचकात्ममें उत्तम अनूदित नाटकों की बहुत अच्छी संख्या हमें उपलब्ध होती है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह हुई कि, पारसी मियेटर के नाम से प्रसिद्ध विमुक्त व्यवसायी रंमन पर हिन्दी और हिन्दुस्तानी दोनों का थोड़ा-बहुत प्रवेश हुआ। द्विवेदी जी ने अपने युग के लेखक और प्रेक्षक को पारसी मियेटर वाले अभिनयों के सम्बन्ध में जो चेतावनी दी,<sup>१</sup> उसका अभीष्ट प्रभाव हुआ। इसी समय पारसी रंमन पर राबेत्साम नवावाचक जैसे लेखकों को स्थान मिलता जिनकी रचनाओं में हिन्दीपन के साथ साथ भारतीय आचार की मर्यादा का निर्वाह भी दिखाई पड़ता है।

१. इसलिए आचार्य द्विवेदी इत-नाट्यशास्त्र का उपसंहार।

२. देखिए-वही।

इस प्रकार हम आचार्य त्रिवेदी जी के साहित्यिक आदर्शवाद और नीतिवाद से व्यवसायी रंगमंच को भी थोड़ा-बहुत प्रभावित पाते हैं। चौथी जम्मेखानीय बात यह है कि त्रिवेदी जी के समकालीनों के अधिकांश मौखिक नाटक उनके साहित्यिक-व्यक्तित्व की मुद्रा धारण करते हैं। इन सब नाटकों में हमें त्रिवेदी जी द्वारा अनुष्ठित "नीतिवाद, व्यवहारवाद अथवा भावधारितक बुद्धिवाद" का ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष व्याख्यान सुनाई पड़ता है। परन्तु नाटक मनुष्य की मूलतः विविध धार्मिक और मानसिक अवस्थाओं का अनुकरण है<sup>१</sup>। इसलिए इतने कठोर प्रतिबन्धों के बीच सबसे सहज विकसित का एक जाना भी स्वाभाविक हो है। वही कारण है, त्रिवेदी-युग के मौखिक नाटक सजीवता, सरसता और ककारमक परिष्कार की दृष्टि से भारतेन्दु-युग के नाटकों से आगे नहीं जाते। अक्सर उनकी भाषा कुछ अधिक परिष्कृत और परिष्कारित है जो त्रिवेदी-काक की सर्वप्रमुख विशेषता है। सम्भवतः इसी कारण से अनेक व्यवसायी नाटक-जड़ कियों जो भारतेन्दु-युग के सम्पुल्ल वातावरण में प्रादुर्भूत हो चली थी, त्रिवेदी-युग के घोर नीतिवादी तथा बुद्धिवादी वातावरण में साँस न ले सकी और कुछ समय बाद काक-कबलित हो गईं। पं० माधवजी मुखर्ज जैसे उस्ताही नाटक-मैत्रकों और थोड़े अभिनेताओं ने भी लखनऊ, जौनपुर और कलकत्ते आदि में जाकर नाटक-मण्डलियों की स्थापना के का प्रयत्न किए, वे भी अवफल हो पड़े। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए हम आचार्य त्रिवेदी जी के प्रभाव को हिन्दी नाटक के लिए पाषाणबर्षी तो नहीं मानेंगे फिर भी समष्टि रूप से उनके व्यक्तित्व की सीमाओं ने हम उसकी चारों ओर से सर्पाक्षित अवश्य पाते हैं। पर आचार्य के आदर्शनिष्ठ व्यक्तित्व की सीमाओं से सर्पाक्षित होकर हिन्दी नाटक की हानि ही हानि हुई, ऐसा समझना बहुत भारी भ्रम होना। अपने कठोर साहित्यिक अनुशासन में आचार्य ने हिन्दी नाटक को सर्वम का जो पाठ पढ़ाया, उसी से वह प्रसारकाशीन गण्योत्थान के उपनृत्त ध्वनि संवित्त कर सका। तात्पर्य यह कि त्रिवेदीजी ने

प्रभाव की हिन्दी नाटक के लिए परिणाम में हम सुमान्वही पाते हैं और इसलिए इस आलोच्य अवधि को यदि कोई द्वितीय-युग कहे तो हम उसे अनुपपुष्ट नहीं समझते ।

परन्तु आधुनिक हिन्दी-साहित्य के इस त्रितीय उत्थान-काल में, बिसे काव्यरचना आदि के क्षेत्र में द्वितीय-युग कहा जाता है, मौखिक नाटकों की रचना की अपेक्षा अनुवाद का कार्य बहुत अधिक हुआ । इसीलिए कतिपय विद्वान् से 'अनुवाद-काल' कहना अधिक उचित समझते हैं । भारतेन्दु के जीवनकाल में हमें वैसे उत्साह भरी मौखिक नाटकों का प्रथम भंडार प्राप्त है । वैसे ही उत्साह अब नाटकों के अनुवाद कार्य में लक्षित होता है । ये अनुवाद विभिन्न मापानों में किये गये पर इनमें सैयदा के अनूदित नाटकों की संख्या संभवतः सब से अधिक है और संस्कृत अंगरेजी मराठी गुजराती आदि का स्थान कमरा उसके बाद आता है । द्वितीयजी ने स्वयं विभिन्न मापानों से अनेक सबों का हिन्दी अनुवाद किया था और इस कार्य को वे निरंतर प्रोत्साहित भी करते रहते थे । अतएव इस युग के लेखकों में अनुवाद-कार्य के प्रति विशेष उत्साह होना स्वाभाविक ही था ।

। इस युग के मौखिक नाटक पूर्ववर्ती पीढ़ी के नाटकों की अपेक्षा संख्या में बहुत कम तो हैं ही भाषा-परिष्कार को छोड़कर अभिनेयता आदि नाटक के अन्य अन्तर्गत व्यावर्तक गुणों में भी हीन हैं । भारतेन्दु-युग के नाटकों में जीवन के मर्याद के अभिव्यंजन और अनुकरण का जो अद्भुत उत्साह परिलक्षित होता है, वह भी स्वयं नहीं है । भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के नाटकों में व्यंग्य और परिचाय की भी जो सहज बेमिसली कस्तोरिकता प्रबलमान है, उसका उत्पन्न भी अब कुछ मूकता-सा प्रतीत होता है । इन सब दृष्टियों से हम इसे भारतेन्दु-युग के नाटक का हासकाल कह सकते हैं ।

किन्तु इस युग में मौखिक नाटकों की सर्जना का प्रयास अकेले ही मंद पड़ गया ही पर हिन्दी रंगमंच की स्थापना और हिन्दी नाटकों के अभिनय की कलापूर्ण वरपण के प्रयत्न का वैसे संश्लिष्ट प्रयास इस युग में हुआ वैसे

उसके बाद आज तक नहीं हो पाया है। भारतेन्दु के आदर्श से अनुप्राणित अनेक साहित्यकारों और साहित्यप्रेमियों ने स्थान स्थान पर नाटक मंचकर्मियों की स्थापना कर हिन्दी नाटक और रंगमंच के अन्तुत्थान का जो संमिश्र प्रयत्न किया वह हिन्दी नाटक-साहित्य के इतिहास का सुवर्णछाँदों में लिखने योग्य अत्यन्त पीरबखानी अध्याय है। लेकिन वह अब तक विरमुक्त है। जिस समय वह प्रयत्न किया गया उस समय व्यावसायिक भारतीय रंगमंच का साम्राज्य था उसकी होड़ में बिना किसी सहजीव सहायता या समर्थन के वह महाप्राच आशीर्जन असंख्य बखाम हो गया पर आये आनेवाली पीढ़ियों के लिये एक महान् आदर्श छोड़ गया। मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि अन्धारे हिंदी की का आशीर्वाद जी इन अवार्ता को नहीं प्राप्त हुआ। वय से कम उसका कोई हस्तैस का प्रमाण नहीं मिलता। मैं जाने इन समयों का आवायिक विवरण प्रस्तुत करूँगा। भारतेन्दु युग की नाट्य लेखकों के इस प्रतिभापूर्ण उत्सार को देख कर इस युग को मैं भारतेन्दु-युग का उत्तरार्ध कहना ही अधिक उचित समझता हूँ।

### पीठिका

आलोच्यकाल प्रारंभ होने के पूर्व राष्ट्र के जीवन में ऐसी कई महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हो चुकी थी जिनका हमारे साहित्य पर बड़ा प्रभाव पड़ना अवश्यज्वावी था। एक तो राष्ट्र की विद्या-व्यवस्था में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया था जिसके परिणामस्वरूप देश की सांस्कृतिक भाषा संस्कृत और विविध देशी भाषाओं को पूर्णरूप से अपरस्व कर उनके स्थान पर अंग्रेजी की प्रतिष्ठित कर दिया गया था। अंग्रेजी के द्वारा अंग्रेजिकन का व्यापक प्रकाश करके देश की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय केतना को निरुद्ध कर देने की योजना की व्यापक योजना जब पूर्व १८ में व्यवहन हो चली थी। सन् १८५४ ई० में सर चार्ल्स कुड ने अपनी आयोजना में 'हार्मिन्स तक की प्रार्थिक विद्या का माध्यम देशी भाषाएँ और उच्चविद्या का माध्यम अंग्रेजी रखने की सम्मति प्रकट की। परन्तु सरकार ने अपने दिन-राधन के लिए उन बातों को कार्यक्रम में सम्मिलन नहीं किया और न उनमें उनका प्रासाहन ही दिया। अंग्रेजी ही विद्या का माध्यम बनी

रही। 'अंगरेजी के माध्यम से उच्च शिक्षा देने के लिए कठकपता बम्बई और मद्रास आदि में विश्वविद्यालयों की भी स्थापना हुई। पर, 'अंगरेजी भाषा को माध्यम बनाने से भारतीय साहित्य और जीवन का बड़ा महिठ हुआ। भाषाओं की उन्नति रुक गई और देश की विचारमग्न शक्ति का बड़ा ह्रास हो गया। अंगरेजी शिक्षा पानेवालों पर पाश्चात्य शिक्षा का बुरा प्रभाव पड़ा। परन्तु उससे उनकी मौखिकता और मानसिक शक्ति का विकास न हुआ। बिदेसी भाषा के माध्यम द्वारा भारतीय संस्कृति और संस्कृति पर जो कुत्तराघात हुआ वह सामयिक सत्कार के किसी अन्य देश में न हुआ होगा। सत्य यह कि आरम्भ में जो शिक्षा-प्रणाली इस समय अस्तित्व की गई थी वह यहाँ की जनता के लिए सर्वथा अनुपयुक्त थी। 'वह देशीय आवश्यकताओं के प्रतिबद्ध एवं भारतीय मनोवृत्तियों के प्रति उदासीन थी। उसका आधार पूर्ण रूप से अंगरेजी था।' भारतम्बु ने अंगरेजी-शिक्षा के कुम्भारिणियों का अनुमान लगा दिया था इसलिए समय समय पर उन्होंने जनता का ध्यान अपनी सहज मनोहासि धीमी द्वारा इस विषय में आकृष्ट किया है। उनकी यह मुकरी बहुत प्रबल है—

सब मुदजन को बुरी बतानी अपनी लिखनी आप बकावें।

भीतर तब न, झूठी ठेकी क्यों खलि सजजन नहि अंगरेजी॥

हिन्दी पुन तक पहुँचते पहुँचते इस शिक्षा-व्यवस्था के परिणाम चारों ओर अच्छी तरह प्रकट होने लगे थे। इसीलिए सन् १९०२ में जो एनिकसिटी कमीशन नियुक्त हुआ और उसके परिणामस्वरूप सन् १९०४ में जो 'एनिकसिटीज् ऐक्ट' पास हुआ उन दोनों का ही भारतीय जनता द्वारा घोर विरोध किया गया।

परन्तु प्रबल भारतीय संस्कारों की प्रेरणा से अंगरेजी शिक्षा प्राप्त कुछ ऐसे व्यक्ति भी आभास्वर में निकल आये जिनमें अपने देश की हीनावस्था के प्रति असंतोष का उदय हुआ। उन्होंने अंगरेजी शासन की नीति और व्यवहार के मनार्थ स्वरूप को समझा इसलिए वे इस विपत्ति के प्रतिरोध के

सिए इतसंकल्प हुए। ऐसे ही लोगों द्वारा इस देश में राजनीतिक संघर्ष का बीजारोपण हुआ। राष्ट्रीय आत्मसम्मान का यह समेय राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा उसके परिणामस्वरूप सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में भी असाधारण प्रगति हुई। अब चारों ओर गुफार की भाँप होने लगी। समाज-मुबारक राजाराममोहन राम ने बड़ा समाजकी स्थापना की। इस समाज में हिन्दुओं के पारस्परिक मैत्रीभाव का बुर करमे के लिए मूर्तिपूजा और जातिभेद का विरोध किया। उन्हे स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की। इस समाज ने वैश्व-वर्षित उच्च भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का प्रथमनीय प्रयास किया। इसके प्रचारकार्य से भारतीयों की अपनी सम्पत्ता एवं संस्कृति के प्रति मीरब-भाव और अपने अतीत के प्रति घट्टामात्र उत्पन्न हुए। इन सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं ने भारतीयता को संकल प्रदान किया और राष्ट्रीयता की जगति में योग दिया। साथों ने समझ लिया कि हमारी सामाजिक एवं धार्मिक अवनति का मुख्य कारण हमारी राजनीतिक परतावता है।

इन्हीं विनों प्लेस और बुजिज के देशध्यापी भीषण प्रकोप के कारण चारों ओर चाहि चाहि मची हुई थी। मरी और भुतामरी के डरम बिदारक दुःखों को देश भर भारतेशु-काल के लेराको की केतना दिन प्रचार आन्वोलित हुई थी इसका निवरण बचावपात्र दिया जा चुका है। इस युग में भी वह स्थिति प्रायः लगी थी रही। सन् १८९९ ई में जब लार्ड कर्जन वायसराय होकर आया उस समय देश पीप और बुजिज की कुसह दमनपात्रा के कारण छटपटा रहा था। कर्जन ने सारे देश का दौरा करके अमंरय भारतवागियों को कीड़ों-मकाड़ों की तरह बिलबिलाने लड़पते और करते देखा और इन्हीभूत होकर उसने स्वयं देश-विदेश के लोपो से पीड़ितों की सहायता के लिए अपनी की। कर्जन जैसे घोर साम्राज्यवादी को इन्हीभूत कर देनेवाली इस स्थिति ने राज की उदीयमान राजनीतिक केतना को भी उदीयत किया। चारों ओर अंधरा की सामन नीति की कटु से कटु आलोचना और तीव्र से

तीव्र विन्ना हुई। इन सब बातों का एक परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस, जिसकी स्थापना ए ओ छूम नामक एक सिविलियन अफसर द्वारा सम्भवतः राष्ट्रीय चेतना को प्रवर्धित करने के लिए हुई थी एक राष्ट्रीय संस्था बन गई। जब कांग्रेस बाबासाहेब भीरोजी, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सर फीरोजसाह महेता श्री मोक्षसे महामना माकडवीय प्रभुति नेतृत्वों के प्रभाव में आ गई, जिससे उसकी लोकप्रियता बढ़ी और वह लोकहित और लोकमत की अभिव्यक्ति का एजन्ता प्रभावशाली साधन बनने लगी। इस प्रकार देश में जिन दिनों भारो और असन्तोष और ओम बढ रहा था

ने १९ जुलाई सन् १९०५ को बंग-विच्छेद की अपनी योजना घोषित की। इस योजना ने भारतीयों के जैसे हृदय पर गमक छिड़का और वह भाग ओ भीतर भीतर सुलभ रही थी उसमें भातो धृत की भावुति पड गई। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा है कि, यह घोषणा एक बम के गोले की भाँति गिरी। हमें ऐसा लगा कि हम पमानित उपेक्षित और प्रवर्धित किये गये हैं। बंग-भग की इस योजना की कार्यरूप में परिणत करने की बड़ी भीषण प्रतिक्रिया हुई, जिसके परिणामस्वरूप वह ऐतिहासिक स्वदेशी आन्दोलन बढा ओ साठ बयों तक निरन्तर जारी रह कर अन्त में सन् १९१२ में तभी रुका जब बंग विभाजन का कानून रद्द कर दिया गया। इस स्वदेशी आन्दोलन को निमूक्त करने के लिए सरकार ने कठोर दण्ड का आभय लिमा, पर उसकी बमन-नीति भी इस विराट् बन-आन्दोलन के समक्ष असफल सिद्ध हुई।

इस प्रसंग में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बंगभग से पूर्व राजनीतिक चेतना का प्रसार बीहू ने सिद्धित उष्ण और उष्ण-मध्यम तक ही हो पाया था। इसलिए उस समय की राजनीति ने ओ वैधानिक नीति ग्रहण की थी वह सिबरस अथवा नरमपदीय कही जाती है। सन् १९०५ तक नरम बढ वालों की इस नीति का ही देश की राजनीति में प्राधान्य रहा। पर सन् १९०७ के कमभग देश की राजनीति का सूत्र नरम रसुमारों के हाथ में बढा गया ओ सिबरसों की वैधानिक नीति को निर्वह और व्यर्थ समझते थे तथा उपातिउप मार्ग का अवलम्बन करके धीमे से धीमे अधिजी-मत्ता का उन्मूलन कर डालना चाहते थे। गरम



इसबाबों में प्रधान लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जिनका केसरी अंगरेजी घासन का सब से प्रभावशाली सन्धु था। लोकमान्य तिलक की ही नीति के प्रबल पोषक गंगाधर के त्रिपिनपत्र पाल और पंजाब के काना साजपतराय थे। इन परम बलवाले नेताओं के प्रभाव से राजनीतिक चेतना का प्रसार निम्नमध्यम और जन-साधारण में भी हो गया और जब जब विरोधी आन्दोलन ने इस पूर्वकल्प से सर्वसाधारण तक पहुँचा दिया। सन् १९०६ में काँग्रेस ने भी वैधानिक सुधारों की धुन बाजना का मार्ग छोड़कर अपना ध्येय स्वराज्य घोषित कर दिया था। इसका ही नहीं आत्मसम्मान के अन्तर्गत ही साधारण जैसे राष्ट्रवाचक केवली ठरने में अतिव्यवहार जैसी संस्थाओं का भी संघटन किया था जिसकी दृष्टि अन्तिम समस्त जाति के द्वारा राजनीतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकत्रित करना थी।

दूसी अवकाश में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी कुछ ऐसी बटनाएँ घटित हुईं जिन्होंने हमारी अन्तर्जातीय राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित और पुरस्कृत करने में महत्वपूर्ण योग दिया। इस प्रकार की एक उल्लेखनीय बटना रूस और जापान का युद्ध है जिसमें छोटे से लड़ियाने देश जापान ने बल का करारी प्रदर्शन की। अभी तक योरोपीय अर्थोप समझे जाते थे। परन्तु जब सन् १९०५ में लड़ियाने देश जापान ने रूस जैसे विपक्षी योरोपीय देश को युद्ध में पराजित कर दिया तो रूसिया के अन्य परराष्ट्र देशों की भांति बलवती हो गई<sup>१</sup>। इसके अनिश्चित विवेचनान्त और राजनीति अनेक महानुरागों ने भारत और अन्तरीका आदि जागरण में और अभ्यास के क्षेत्र में भारतवर्ष की सर्वोपेक्षित अतिपाति और प्रचारित की। इसके पहले ही बालिवाल के मेघदूत और अतिशय शाश्वत आदि अन्य योरोपीय भाषा में अनुदित हो चुके थे जिनकी परिचयी विद्वानों के मुद्रणस्थ में प्रकाश की थी। इन सभी कारणों से राष्ट्र के प्रमुख आत्मसम्मान की अधिकृति हुई। इसीलिए सन् १९१३ में जब रवीन्द्रनाथ टागोर की मोक्ष पुष्पाकर प्राप्त हुआ तो देश में अनुदित होने और प्रकाश की तरह फैल गई।

वस्तुतः सन् १९०५ से १९२० तक का समय भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के विकास का काल है। राष्ट्रीयता के उद्भव और विकास में सहायता देनेवाली शक्तियाँ और परिस्थितियों का सख्तिपुर्ण विवरण पहले दिया जा चुका है। ध्यान देने की बात यह है कि राष्ट्रीयता का यह नम्योत्थान अंग्रेजों के पास अधिकारिक अधिकारों और राजनीतिक सुधारों के आवेदनपत्र भेज करके ही सम्पुष्ट रहनेवाला नहीं था बल्कि यह संघटित और बल होकर स्वराज्य तथा होमरूल के लिये आपस में आन्दोलन करने लगा था। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि हमारे आन्दोलनकारियों का आरम्भ कमसे कम उसी समय होता है जब देश बंय-भय विरोधी विराट् जन-आन्दोलन में प्रवृत्त होने लगा है और इसका अन्त भी प्रायः उस समय होता है जब सारा राष्ट्र महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सन् १९२० का ऐतिहासिक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारंभ करने की तैयारी कर रहा है। ऐतिहासिक महत्व के इन दो राष्ट्रीय जन-आन्दोलनों के बीच अवस्थित द्विबेदी-मुप के साहित्य ने सदैव शक्तिपूर राष्ट्रियता का पोषण और सुवर्धन किया।

पर, यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि द्विबेदी-मुप की राष्ट्रीयता का साँचा राजनीति में भी पूर्ण स्वदेशी था। उस पर बिदेसी छाप तब तक नहीं पड़ पायी थी। उस समय के प्रायः सभी प्रमुख राजनीतिक नेता भारत के ही परिवर्तनशील अतीत से अनुप्राणित थे। गीता के महान् ध्यास्याता श्रीकृष्णाय तिलक ही उस समय की राजनीतिक चेतना के प्रमुख सूत्रधार थे। उनके द्वारा राष्ट्रीयता के जिस स्वरूप का निर्माण हो रहा था वह विधुत भारतीय था। उसका विकास भारत की अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक परम्पराओं के बीच से हो रहा था। निस्संदेह हमारे राजनीतिक नेताओं के समक्ष मेत्रिमी और गैरवास्ती के आवेग भी आ चुके थे और इन बिदेसी रोगभक्तों के प्रति हमारे देश के नेताओं और मनुष्यों में श्रद्धा भी थी। पर, वे सोम राग हृत्पन्न, प्रताप और शिवा को भुले नहीं थे। प्रयुक्त इन्हीं अपने महापुरुषों के आदर्श उनके जीवन में सतत प्रियासील थे। इन लोगों के हृदय में अपने देश के लिए जितनी मन्त्रि भी खतनी ही शक्ति अपने धर्म के लिए थी। इसीलिए सघन श्रम में विरवास रहनेवाले

तब भी जब धाँसी पर चढ़ने से तो उनके हाथ में मीठा और मुँह में उनके स्मोल्क होते थे ।

राष्ट्रीयता का यह स्वरूप द्विवेदी-युग के साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होता है । हमने इस काल में नाटकों के अनुवाद की ओर अधिक प्रवृत्ति होने का उल्लेख किया है । अनुवाद के लिए चुने गये नाटकों का अध्ययन करने से भी इस चारणा की पुष्टि होती है । इस काल में लिये गये मौलिक नाटकों में प्रतिपादित विषय-वस्तु से भी हम प्रवृत्ति की सूचना मिलती है कि यह स्वदेशी भाषा की धर्मप्रवचन राष्ट्रीयता के उत्थान का युग था । भारतवर्ष का धर्म और धर्मप्रवचन दोनों ही सर्वत्र विनाश साम्राज्याधिक रहे हैं और उनकी स्मरण-श्रुति सर्वत्र आध्यात्मिक रही है । फिर भी इस युग के साहित्य में किसी को कहीं साम्राज्यविनाश का आरोपन प्रतीत हो तो उसे उस साम्राज्यविनाश की सहज प्रतिनिधता या परिणाम माना जा सकता है जिसका बोधन घर-घर, बहुराज्य तो जैसे लोगों की छत्रच्छाया में अजीब-गढ़ जाति स्थानों में हुआ था और जो अब अंधरेजों से प्रोत्साहन पाकर निरंतर वृद्धि करती जा रही थी ।

इस युग की राष्ट्रीयता का स्वरूप यह है जबकि उन अध्ययनार्थी नाट्य-मंडलियों के अभिनया द्वारा प्रकाशमें आया जो इन दिनों विभिन्न नगरों में स्थापित हुई थी । इन अभिनयात्मक प्रयासों को महामना मानवीय जो का जातीय और राजति दृष्टान्त जी का सहयोग प्राप्त रहता था और नायक सुबल, रामबिहारी सुबल तथा महादेव मट्ट जैसे उस समय के प्रमुख अभिनेता सन् १९१५ के आये-पीछे पुलिस की मुर्ची में प्रथमधेनी के जालिकारी बिले जाते ॥ । इसी से हिन्दी के इस युग के नाट्यीय प्रयासों का वास्तविक स्वरूप समझा जा सकता है ।

### १५ युग के नाटकों का स्वरूप और उनके प्रकार

इस युग के मौलिक नाटककारों की व्यक्ति आध्यात्मिक सामाजिक और राजनीतिक चेतना की परिधि और परिणाम बहुत-कुछ बड़ी है, जो

पिछ्सी पीढी के नाटककारों में उपलब्ध है। पर दो बातों में अंतर अवश्य स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है। एक तो यह कि भारतेन्दु और उनके सहयोगी क्लेशकों की हास-संज्ञा जितनी विनम्र है उतनी इन परवर्ती क्लेशकों की नहीं। हास्य और व्यंग्य अब भी सिखा जाता है और उसके लिखनेवालों की संख्या भी निरन्तर वृद्ध होती है, पर भारतेन्दु और उनके सहयोगियों की जितनादिली इस हास्य और व्यंग्य में नहीं रह गई है। सम्भवतः द्विवेदी-पुण का कठोर नीतिवाद अथवा आदर्शात्मक बुद्धिवाद इसके लिए उत्तरदायी है। दूसरी बात यह है कि भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने देश की आर्थिक दुरवस्था और राजनीतिक पराधीनता की पीड़ा को जितने अप्रत्यक्ष तथा मार्मिक रूप में व्यक्त किया है, वैसे वे क्लेशक नहीं कर पाये हैं। इसका कारण सम्भवतः यह था कि अब अंगरेजों का दमन-शक्ति अधिक सक्रिय एवं बाधक हो गया था और राष्ट्र को साहित्यिक गति-विधि की अधिक संका और संरिह की दृष्टि से बड़ी सुखमता के साथ जीना पाने लगा था। विशेषतः हमारे नाटक और रंगमंच पर साम्राज्यशाही की छविदृष्टि की इसके जगैक प्रमाण मिलते हैं। प्रयाग में बासकृष्ण भट्ट और मुरलीधर मिश्र जैसे साहित्यसेवियों की प्रेरणासे 'मायरी प्रगतिशील संघ' की स्थापना हुई थी। इसी के अवकाश में सन् १९०० के आसपास वहाँ हिन्दी नाटक-समिति की स्थापना हुई, जिसके मुख्य संस्थापक माधव घुक्क थे। यह समिति लगभग १९१६ तक चलकर टूट गई। इसके टूटने का कारण यह था कि इसके प्रमुख अभिनेता राजनीतिक क्षेत्र के कार्यकर्ता नहीं थे। सन् १९१६ ई. में इस समिति ने लोकमान्य तिलक को 'महाराणा प्रताप नाटक' का अभिनय करके दिखाया था। नाटक का आरम्भ इस पद्य से हुआ था— 'जय जय श्री तिलकदेव भारत हितकारी'। इसी कारण समिति को सरकार का कोप-माजम होना पड़ा और माधव घुक्क को प्रयाग से हटना पड़ा। समिति के अन्य सामान्य सदस्यों ने यह समझा कि इसमें रहना पुच्छ ने अत्याचारों को निर्ममण देना और छिछ जाना है। इसलिए माधव घुक्क के जाने पर वह बच न सकी। यही कारण है कि इस काल के अधिकांश नाटककार देश की आर्थिक दुरवस्था और राजनीतिक पराधीनता की जगै अब उतने ज़ुखनर नहीं करते

ये । उन्हें सामयिक समस्याओं पर जो कुछ कहना होता है, उसे वे पौराणिक अथवा ऐतिहासिक रूपों में प्रतीकात्मक या सांकेतिक रीती में कहते हैं । विदेशी धारण के निरुद्ध का प्रभाव इन नाटकों में प्रत्यक्ष है <sup>१</sup> ।

नाट्यकला के स्वरूप और विषय-वस्तु का निर्माण और निर्णय अंततः वर्तक मंडली के द्वारा होता है । कहा गया है कि नाटक के प्रतिष्ठकों का विधान उसके संरक्षक करने हैं <sup>२</sup> । अतः नाटक के प्रेरक ही उसके संरक्षक होने हैं और प्रेरक का भाव-अवस्था ही नाटक की रूप-रचना का अभिधान होता है । अतएव भारतेन्दु युग के इस अंतराई अथवा हासकाल के नाटक का स्वरूप समझने के लिए नाट्यमयी दर्शक-मंडली की रूढ़ि और प्रवृत्ति से परिचय हो जाना आवश्यक है ।

यह बताया जा चुका है कि भारतेन्दु ने हिन्दी की स्वकीय नाट्य-परंपराओं को ध्यान में रखते हुए अपने नाटक सिखे थे और स्वयं उनका

१. दक्षिण-वर्तमान मंडल इत दुर्गावती <sup>३</sup> पृष्ठ १०० ।

कमचारी-क्या तुम विदेशियों के दंड में अपनी स्वतंत्रता अपने मुक्त अपने घर, अपने माई-बापु अपने छेद और अपने मंदिरों की रक्षा करके संसार में अपनी बात बनाए रखना चाहते हो ?

मैथिल-हाँ ।

देसिए-आसनमाल जगुबंदी इत इच्छार्जुन बुद्ध —

मारद- सत्ता का दुरुपयोग करने से क्या दुर्घटनाएँ होती हैं । यह सब का मादम ही पायगा ।

राजमद में आकर भण्ड राबा भी ग्याय के सिद्धान्तों का अन्वयन करने में नहीं टिक्कते । ऐसी अक्षरों में हीन निर्बल की रक्षा का कोई टिकाना नहीं रखा ।

२ The drama & laws the dramas patrons give

अभिनय करके उनके लिए अपने आदर्शों से अनुप्राणित दर्शक-मंडली तैयार करने का प्रयत्न भी किया था। पर उनके गुण के उत्तरार्ध का कोई भी मौखिक नाटक-लेखक भारतेन्दुजी के इस प्रयत्न को प्रयत्ति न प्रदान कर सका। इस समय के प्रधान मौखिक नाटककार वे मिश्रबन्धु, बन्नीनाथ भट्ट, मात्तनसाह बतुवेंसी जी पी श्रीवास्तव आदि। इनमें से किसी का भी अभिनय या रंगमंच से सीधा सम्बन्ध नहीं था। अतएव नाटक सिखाते समय इन लोगों का ध्यान त्रिभ प्रेक्षकों पर रहता था उनकी रचि या प्रकृति के निर्माता भारतेन्दु जी की तरह वे जोय रचय नहीं थे। वस्तुतः इन प्रेक्षकों की रचि और प्रकृति का यथार्थ दर्शन उस समय की बहुसंख्यक व्यावसायिक पारसी नाटक कम्पनियों थी। आलोच्य अवधि के बीच इन कम्पनियों का बढ़ता हुआ प्रभाव तत्कालीन दर्शक की रचि की सच्ची कसौटी है। किन्तु पारसी नाटक-कम्पनियों के प्रभाव को समाज के लिए अनिष्टकर समझ कर भारतेन्दु के चरम-चिह्नों का अनुगमन करने वाले अभिनय और रंगमंच की कला के कुछ साधनाधान् रपासकों ने हिन्दी का अव्यवसायी रंगमंच प्रतिष्ठित करके प्रेक्षकों की रचि को परिष्कृत कर उसे अभीष्ट दिशा में प्रेरित करने का प्रयत्न किया। इस व्यवसायी और अव्यवसायी रंगमंच और उसकी दर्शक मण्डली का प्रभाव आठान्तर रूप में उस समय के सब मौखिक नाटककारों पर पड़ा था। इसलिये मौखिक नाटककारों की रचनाओं का अनुशीलन धारम करने के पूर्व तत्कालीन व्यवसायी एवं अव्यवसायी रंगमंच की पतिविधि का अध्ययन कर लेना आवश्यक है।

### व्यवसायी रंगमंच

पारसी नाटक कम्पनियों के रूप में व्यवसायी रंगमंच का उद्भव और प्रसार भारतेन्दुकाळ में ही हो चुका था। पर भारतेन्दु के नाटक व्यवसायी कम्पनी के रंगमंच पर अभिनीत नहीं हुए थे। हेमचन्द्रनाथदास गुप्त ने लिखा है कि व्यवसायी रंगमंच पर पहला हिन्दी नाटक १८९८ ई० में खेला गया था। यह कौन सा नाटक था और किस कम्पनी

हारा खेला गया था इसका उत्सेह उन्होंने नहीं किया है। सम्भवतः पहली पारसी नाटक कम्पनी ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी की जिसका सन् १८७० ई० तक वर्तमान रहना निर्दिष्ट माना जाता है।<sup>१</sup> इसमें दो मुख्यतः मान नाटक लिखे थे—मोहम्मद मिर्मी रौलक तथा हुसैन मिर्मी जरीफ।<sup>२</sup> जरीफ ने तीस नाटक लिखे थे। सन् १८७७ ई० में सुरेश्वर बरहीवाला ने थियेटोरिया थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना की जिसके लिए काशी के मूली विनायक प्रसाद ने गोपीचंद 'हुरिद्वार' रामायण कल्पतरु आदि अनेक नाटक लिखे। इन नाटकों की भाषा जरीफ के नाटकों की अपेक्षा हिन्दी की प्रकृति के अधिक निकट है। इसी समय के आस-पास थियेटोरिया पारसी आपरा कम्पनी की स्थापना हुई जिसने सन् १८८२ ई० में कलकत्ते के प्रसिद्ध कोरिथियन स्टैज पर कई नाटक दिलाये। बम्बई के पारसी एम्प्लेटन डामेटिक क्लब के कुछ हिन्दी नाट्य-प्रयोग भी कलकत्ता में बहुत लोकप्रिय हुए थे। सन् १८८४ की फरवरी में बम्बई थियेटरों के अनुरोध पर इस कम्पनी ने कोरिथियन स्टैज पर गिरीशचन्द्र घोष के प्रसिद्ध नाटक कल-दमर्मा की हिन्दी अनुवाद का अभिनय किया था।<sup>३</sup> इस कम्पनी ने 'हुरिद्वार' नाटक का भी अभिनय किया था जिसमें प्रमुख हिन्दी भाषा बंदासी की सी परिभाषित और संशुद्धिपट्ट की।<sup>४</sup>

सन् १८७७ ई० में कावसजी बटाऊ ने पारसी एम्प्लेटन थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना की। इस कम्पनी ने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की जिसका बहुत कुछ श्रेय इसका दो लेखकों को है जिनके नाम हैं रंगर मेहरी हसन अहसान और वं नारायण प्रसाद बेठाव। महामारत, रामायण पौराणिक पानी प्रताप, कृष्ण-सुरामा आदि व्यवसायी रंघमंच के सबसे सफल नाटक समझे जाते थे। कावसजी बटाऊ ने कभी तक में अपने नाटका का अभिनय करके लोकप्रियता

१ डॉ० सोमनाथ मुक्त हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १००-१०१

२ डॉ० हेमचन्द्राव दाममुक्त की इंडियन स्टैज, पृष्ठ २२२

३ वही पृष्ठ २२२।

प्राप्त की थी। सन् १९१० के पश्चात् कावसजी सटाऊ के अभिनयों की कङ्करी में बढ़ी बूम थी। उनके द्वारा प्रस्तुत महामारत 'रामायण' विश्वभङ्ग, 'यहूदी की कङ्करी', पत्नी प्रताप 'धर्मनय' आदि के हिन्दी अभिनय बंगाली और हिन्दीभाषी दोनों ही प्रकार की जनता में अतिशय समावृत्त थे। 'महामारत' में विशेषरूप से कुछ हिन्दी शब्दों का अधिकारिक प्रयोग किया गया था। १ दिसम्बर १९१६ ई में बर्द की पारसी बिदेट्रिकल कंपनी तथा एल्फिस्टन बिदेट्रिकल कंपनी दोनों मिसकर एक हो गयीं। इस विलयन के पश्चात् कम्पनी के लिए पंडित गिरधोब बिद्यारत्न ने विशेषरूप से 'रामायण' 'महामारत' 'धीकृष्ण-धरित्र', 'सती सावित्री' 'भक्त-दमयन्ती' 'मधुर मुरली', 'वीर बासक' 'सुख चरित्र' आदि नाटक लिखे। इन नाटकों के अभिनय ने बंगाली प्रेक्षकों को भी मग्न कर दिया। इस कम्पनी की अभिनेत्री कुमारी गौहर ने स्त्री-पात्रों के अभिनय में असाधारण सफलता और प्रसिद्धि प्राप्त की थी। पुरुष-पात्रों के अभिनय में मास्टर मोहान बीरावजी मेहताबाबा, धोमाराम नखन आदि को भी ऐसी ही प्रसिद्धि मिली थी।<sup>१</sup>

हिन्दी नाटक—रचना की दृष्टि से इन पारसी कम्पनियों में सबसे अधिक उत्तेजनीय न्यू एन्फोर्ड कम्पनी मानी जा सकती है जिसके प्रमुख नाटककार आगा मोहम्मद 'हय' कास्मीरी और पं राघव्याम कमा बाबक थे। हय ने उर्दू के अतिरिक्त हिन्दी में भी अत्यन्त ही नाटक लिखे हैं। पं० राघव्याम कमाबाबक ने लगभग एक दर्जन हिन्दी नाटक लिखे हैं। इनके कथानक पौराणिक हैं और वे सब की सब आदर्शवादी कृतियाँ हैं। पारसी रंगमंच पर मुश्फि के संचार और हिन्दी के प्रचार का सर्वाधिक श्रेय राघव्याम कमाबाबक को ही दिया जा सकता है। इनके लिखे हुए वीर अभिमन्यु का पारसी रंगमंच पर प्रवेश एक स्मरणीय घटना है क्योंकि इतने हिन्दीत्व का कोई नाटक इसके पहले पारसी स्टेज पर नहीं गया था। इसके बाद ही हरिकृष्ण जीहर के पवित्रलि एव वीरमारत, तथा धीराजी के भक्तदमयन्ती आदि हिन्दी-प्रधान नाटक पारसी रंगमंच पर पहुँचे<sup>२</sup>। उपर्युक्त कम्पनियों के



अतिरिक्त अन्य शैक्षिक पारसी कम्पनियों का भी उद्भव हुआ जिनमें न्यू एन्ट्रेड ड्रेफ्टपियर विद्येद्विकस कम्पनी, ओल्ड पारसी विद्येद्विकस कम्पनी बुचिरी कम्पनी अलेक्जेंड्रिया कम्पनी आदि हैं। इन व्यवसायी नाटकों के ध्येय का अनुसरण करनेवाले अन्य उल्लेखनीय नाटककार किसानचन्द पेंसा 'मुलसीबत दीवा', हरिकृष्ण चौहर, भीकृष्ण और हसरत ब।

पारसी नाटकों के अतिरिक्त व्यवसायी रंगमंच के क्षेत्र में कुछ और भी उल्लेखनीय उपक्रम हुए थे। इनमें काँटावाड की श्री सूर्यविजय और मेरठ की व्याकुल भारत 'नाटक मंडली' के नाट्य-प्रयोग मुख्यतः नहीं जा सकते। इन व्यवसायी नाटक मंडलियों ने अपने अभिनयों को पारसी रंगमंच की बहुत सी कुशलपूर्ण एवं असांस्कृतिक प्रवृत्तियों से मुक्त करने का कुछ प्रयत्न किया था। व्याकुल भारत कम्पनी का बुद्धदेव नाटक अपने समय में बहुत लोकप्रिय हुआ था। इसी कम्पनी में रहकर द्विवेदीयुग के प्रसिद्ध नाटककार योगिन्द्र बल्लभ पंत ने नाटक लिखने की प्रेरणा प्राप्त की थी। पर व्याकुल की के अंतर्गत वैराग्यचरित से यह कम्पनी भी सीपसीपी नहीं हो पायी। अहिन्दीप्रवेश काठियावाड की सूर्यविजय नाटक कम्पनी की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि इतने अपने सब नाटकों का अभिनय हिन्दी में ही किया। राजेश्वरदास कलावाचक का अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय नाटक 'धर्मधनुषार' विशेषतः इसी कम्पनी के लिए लिखा गया था। यह कम्पनी भी सीपसीपी नहीं हुई सम्भवतः सम्पन्न पारसी कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा में यह टिक नहीं पायी।

हिन्दी नाटक के इतिहास में पारसी रंगमंच के प्रभाव और योगदान का मूल्यांकन कई दृष्टियों से किया जा सकता है। पारसी कम्पनियों ने अपने रंगमंच द्वारा सुरक्षित असांस्कृतिक प्रवृत्तियों का मुक्तकर प्रचार दिया यह स्पष्ट ही है। जमार्दन भट्ट ने माधुरी में लिखा था—“कहते की एक बड़ी प्रसिद्ध पारसी कम्पनी के सम्मुख में एक प्रसिद्ध नाटककार ने मुझसे बातचीत हुई। उन्होंने बताया कम्पनीवाले कहते हैं—

१ माधुरी वार्तिक १०५, मुलसी संवत्, 'पारसी रंगमंच और हिन्दी नाटक'।

हम यहाँ अपना पैदा करने जाते हैं कुछ साहित्य-मंडार भरने नहीं।  
 दोस्रोद्वार और समाज-सुधार का हमने ठेका नहीं के रखा है हमें तो  
 जिसमें अपना मिश्रण नहीं करने।" उन्होंने यह भी लिखा है कि  
 पारसी कम्पनियों ने पहले तो कुछपूर्ण आसिक-माधुक के उर्वु नाटक  
 खेलकर बूब बन कमाया नर जब अनता का ध्यान हिन्दी नाटक की  
 ओर गया ... यहाँ तक कि उर्वु नाटक देखनेवाली मुसलमान जनता  
 भी हिन्दी नाटक पसन्द करने और अपनाने लगी तब तो इन  
 पारसी कम्पनियों ने अपना रुख दूसर भी किया। इनका ध्येय अपना पैदा  
 करना है। ... ये कभी नहीं चाहते कि अनतर का ध्यान सुख  
 की ओर चले। ये एकमात्र व्यवसायी हैं अपना जीवना ही इनका काम  
 है। जब ये पारसी कम्पनियाँ हिन्दी के नाटक करने लग गई हैं अच्छे-  
 बख्ते सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक नाटक न करके बे-सिरपैर के  
 नाटक बनवा और छात्रों अपने तीन-तीनरी में यह कर, मेंनों को  
 मचवा, अनता के धन और समय का अपहरण करती हैं ... ।"  
 पारसी रंगमंच की इन असांस्कृतिक प्रवृत्तियों को उद्घाटन करते हुए  
 आचार्य विनयचन्द्र सहाय ने लिखा था पारसी थियेटर की मिस  
 पुटी भी तो सीता' की भूमिका में कलकत्ते के बल्लेड कोरेवियन के  
 रंगमंच पर उतरती है। मैथिल से रंगमंच तक आते आते तक न जाने  
 कितनी बार उसकी कनर बह जा जाती है। उसकी हर एक  
 बचक चित्रण में सीता के आवर्त की हत्या और हर एक मनहर मुसकान  
 में राम की मर्यादा की अक्षेपना होती है। और वहाँ के राम भी बड़े  
 रसीले होते हैं। मैथिल को ओर आते समय ऐसी सिरछी लिप्याहूँ के  
 साथ सीता को अपनी छटपटी शल्लभाहियों में समेट के जाते हैं कि  
 शक्तिओं की बड़बड़ाहूँ के मध्य बार-बार उन्हें प्रत्याग और प्रवेश  
 करना पड़ता है। इसी प्रसंग में आचार्य विनयचन्द्र सहाय जीने पारसी  
 नाटक के प्रेषक नर भी बड़ी सटीक टिप्पणी की है। वे कहते हैं  
 'रंगमंच तो वास्तविकता सामाजिकता और आवर्त के प्रकृत प्रदर्शन  
 का स्थान है जहाँ के जँसाने का सिकारगृह नहीं। अपने हुनर और

नाटकों का इतिहास विपकाने के लिए पोस्टरबोर्ड नहीं। किन्तु इसे समझें क्यों ? हमारे समाज की जनता ही ऐसी कुछ है कि नाटक का वैस्वामृत्य की तरह सिर्फ दिलेबस्तबी का एक सामान समझती है।<sup>१</sup>

इन व्यवसायी पारसी कंपनियों के पेटेन्टर लेखकों की सामान्य विशेषताएं संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती हैं। ... सारी रचनाओं कंपनी की सुविधा और विधेयता के भीतर ही सीमाबद्ध हैं। इनके अधिकारों पात्र यद्यपि भी सुकर्मिन्ना जोड़कर जोड़ते हैं, बातालाप में भी पक्षों की भरमार करते हैं और छुब पाना पाते हैं। हंसते भी गीत में हैं रोते भी गीत में हैं, किसी काम की करते भी भीत में हैं और किसी काम के करने का आवेद्य भी भीत ही में होते हैं। फिर भीतों का क्या कहना ? एक ही में दास्य भी है, सारंग्य भी है और मीरबी भी एक ही में चार-चार और पांच-पांच राय-रायिनियाँ मिश्रित हैं। ताक में भी अभी मुरकारता अभी ठीक अभी देह और अभी मयकनाली है। संगीत में सामञ्जसता भी अनिवार्य नहीं। नी बच्चे रात में बिहाय या भेरबी सपा हो बच्चे रात में मातकोष्ठ या बायेरचरी असाये पाते हैं। पुष्पवर्णित या वनप्रसिद्ध घटनाओं की तो जाने बीदिण, कात्पनिक वचनक में भी वे लेखक केवल दुःसंस्कार हीन की धाभा के लिए बेचारे हृत्प नारद और धर्मादि देवताओं को लज चाहते हैं—बच्छुमो से हर बयह बसीह लाते हैं। इनके विद्वक का अपना परिवार ही अक्षय है।<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त पारसी रंगमंच का सामान्य लेखक अस्वाभाविक आवेद्य और नरनी की सर्वना करता या उसके स्त्री-प्राणों की जोष-लजक और धावमबी आहिवापन की विविध ठर पढ़ने छने से।

इन दोषों के होते हुए भी पारसी रंगमंच की ही उपलब्धियों का भेद्य दिया जाता है। उनमें से एक यह है कि उनके द्वारा हिन्दी का प्रचार हुआ। विचारणीय यह है कि इन पारसी कंपनियोंने हिन्दी के प्रचार के

१ माधुरी, जुलाई १९२७ ई०।

२ कतिप्रभुमार गिह 'मन्बर' इन हमारा रंगमंच और अधिनय वना', माधुरी दिलाप गुलमी मन्वत् १०६।

लिए न तो हिन्दी के नाटक लिखाये और न उनका अभिनय करवाया। बताया जा चुका है कि पहले ये उर्दू के नाटक ही लेखती थीं। हिन्दी के नाटक तो इन्होंने व्यावसायिक दृष्टि से यह समझ कर लिखाये और खेले कि उनके प्रेक्षक देश के कोम-बाने में उपलब्ध हूँ और उन्हीं की संख्या सर्वाधिक है। आज भी यह कहकर कि सिनेमा के द्वारा देश में हिन्दी का प्रचार हो रहा है, एक जस्टी बात प्रचारित की जा रही है। वस्तुतः सिनेमा-व्यवसायी सारे देश में हिन्दी का व्यापक प्रचार देखकर ही हिन्दी फिल्मों का अधिक से अधिक निर्माण करते हैं। पारसी रंगमंच की दूसरी उपलब्धि थी उसके सुघोषन चीन-चीनरियो उनके दूरद-विधान की यह बका हिन्दी रंगमंच के विकास की एक निश्चित अवस्था मानी गयी है।<sup>१</sup>

### अध्यवसायी रंगमंच

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि ट्रिवेदीयुग का व्यवसायी रंगमंच अर्थात् समूह और साधनसम्पन्न था। दुर्भाग्य से उसे साहित्यिक मुक्ति संस्कृति और सञ्चार की चिन्ता नहीं थी। इसके विपरीत इस काल का व्यवसायी रंगमंच व्यवसायी रंगमंच के अभावों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हुआ था। उसके अन्तर्गत के लिए कुछ संगठित प्रयत्न भी हुए थे कुछ ऐसे व्यक्तियों ने उसके उन्मयन में योगदान दिया था जिनके नाम भारतीय इतिहास में अमर हैं। फिर भी यह व्यवसायी रंगमंच साधन और समुचित संरक्षण के अभाव में अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। इस रंगमंच को उक्त समय की सरकार से सहयोग मिलने की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि जनता भी इतनी चिन्तित संस्कृत और मुक्तिसम्पन्न नहीं थी कि इन रंगमंच के प्रयत्नों का महत्व समझती और प्रयास अपना अप्रयास रीति ॥ उसके विकास की सामक्य बनती।

इस युग की अवधि में साहित्यिकी और साहित्यप्रेमियों द्वारा लोकसचिके परिष्कार और संस्कार के लिए त्रिम हिन्दी माध्य-परिपक्षों की

नाटकों का इस्तिहार निपकाने के लिए पोस्टरबोर्ड नहीं। किन्तु इसे समझें कौन ? हमारे समाज की जगह ही ऐसी कुछ है कि नाटक की वैयक्तिकता की तरह सिर्फ विवेकस्थयी का एक सामान समझती है।<sup>१</sup>

इन व्यवसायी पारसी कंपनियों के वेबेवर लेखकों की सामान्य विरोध एवं संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है। '...छापी रचनाओं कंपनी की मुक्ति और विरोधता के पीछर ही सीमाबद्ध है। इनके अधिकार पात्र वस्तु में भी तुल्यविद्या जोड़कर बाँधते हैं, बाँधताप में भी पक्षों की भरमार करते हैं और कुछ जाना पाते हैं। हंसते भी गीत में हैं रोते भी पीठ में हैं किसी काम को करते भी पीठ में हैं और किसी काम के करने का आदेश भी गीत ही में देते हैं। फिर पीठों का क्या कहना ? एक ही में बाहर भी है छारप भी है और भीरवी भी ... एक ही में बार-बार और पाँच-पाँच राय-रायिनियाँ मिश्रित हैं। ठाक में भी सभी सुरफास्ता सभी ठीन सभी डेह और सभी नकुदमासी है। संपीठ में सामयिकता भी अनिवार्य नहीं। भी बने छतमें बिहाम या भीरवी तथा या बने छत में माककोष या बादेद्वरी अलापे जाते हैं। पुच्छनमित्त या कषामरिद्ध भटनार्यों को ही जाने दीजिए, कास्मिक कषामक में भी ये केवल केवल ट्रांसकर सीन की घोना के लिए बेचारे हृत्प नारद और बर्मादि देवताओं को जब चाहते हैं—देहमी से हर बयह मसीट जाते हैं। इनके विद्वक का अपना परिवार ही मलय है।'<sup>२</sup> इसके अतिरिक्त पारसी रंगमंच का सामान्य केवल अस्वाभाविक भावें और नस्ती की सर्वता करता या उसके स्त्री-पुरुषों की लोच-लपक और भावमयी आहिसापन की स्थिति तक पहुँचे रहते थे।

इन दोषों के रहते हुए भी पारसी रंगमंच को दो उपलब्धियों का भय दिया जाता है। उनमें से एक यह है कि उनके द्वारा हिन्दी का प्रचार हुआ। विचारणीय यह है कि इन पारसी कंपनियों ने हिन्दी के प्रचार के

१ माधुरी, जुलाई, १९२० ई०।

२ ललितकुमार मिश्र 'नगर' दृष्ट हमारा रंगमंच और अभिनय कला' माधुरी वैशाख तुलसी संवत् ३९१।

किए न तो हिन्दी के नाटक ध्वस्तनाये और न उनका अभिनय करवाया । बताया जा चुका है कि पहले ये उर्दू के नाटक ही खेलती थीं । हिन्दी के नाटक तो इन्होंने व्यावसायिक दृष्टि से यह समझ कर लिखाये और सोचे कि उनके प्रेक्षक देश के कोने-कोने में उपलब्ध हैं और उन्हीं की सख्या सर्वाधिक है । आज भी यह कहकर कि सिनेमा के द्वारा देश में हिन्दी का प्रचार हो रहा है, एक जल्दी बात प्रचारित की जा रही है । वस्तुतः सिनेमा-व्यवसायी सारे देश में हिन्दी का व्यापक प्रचार देखकर ही हिन्दी फिल्मों का अधिक से अधिक निर्माण करते हैं । पारसी रंगमंच की दूसरी उपसन्धि भी उसके सुशोभन सीन-सीनरियाँ उनके दूर-विधान की यह कला हिन्दी रंगमंच के विकास की एक निश्चित अवस्था मानी गयी है ।<sup>१</sup>

### अध्यवसायी रंगमंच

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि द्विवेदीयुग का व्यवसायी रंगमंच अत्यंत समृद्ध और साधनसम्पन्न था । दुर्भाग्य से उसे साहित्यिक सुबधि संस्कृति और सदाचार की चिन्ता नहीं थी । इसके विपरीत इस काल का अध्यवसायी रंगमंच अध्यवसायी रंगमंच के अभावों की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हुआ था । उसके उत्थान के लिए कुछ सघटित प्रयत्न भी हुए थे कुछ ऐसे व्यक्तियों ने उसके उन्नयन में योगदान दिया था जिनके नाम भारतीय इतिहास में अमर हैं । फिर भी यह अध्यवसायी रंगमंच साधन और समुचित धोरण के अभाव में अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका । इस रंगमंच की उस समय की सरकार से सहभाग मिलने की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती थी । सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह था कि जनता भी इतनी चिन्तित संस्कृत और सुबधिसम्पन्न नहीं थी कि इस रंगमंच के प्रदर्शनों का महत्व समझती और प्रत्यक्ष अपना अग्रगण्य रीति से उसके विकास की साधक बनती ।

इस युग की अग्रिम में साहित्यिकी और साहित्यप्रेमियों द्वारा लोकशिक्षे परिष्कार और संस्कार के लिए जिन हिन्दी नाट्य-परिचरों की

स्थापना हुई थी उसमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—प्रयाग की हिन्दी नाट्य मंडली और हिन्दी नाट्यसमिति कलकत्ते की नागरी नाटक मंडली तथा भारतीय नाट्य समान बनारस के सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर स्थापित नाट्य समिति आरा की मनोरंजन नाटक मंडली मुजफ्फरपुर की नवमुखक समिति और बाघोप कारिणी समिति लखनऊ की धारदा नवमुखक समिति आदि। इन हिन्दी नाट्य परम्पराओं के विषय में ज्ञातव्य यह है कि इनके अधिकांश संस्थापक और अभिनेता बड़े उच्च राष्ट्रीयता के और अपने नाट्य प्रयोगों के द्वारा समा-जन नाट्य-परिपक्वों के इतिहास का यह पक्ष बड़ा वीरवधाही है। जिन दिनों पारसी कम्पनियाँ बिकासिता और आचारहीनता का प्रचार कर रही थीं उन्हीं दिनों ये साधनहीन नाट्य-परिपक्व राष्ट्रीय चेतना को प्रबुद्ध करनेवाले अभिनय आयोजित करती थीं।

आचार्य चित्रपूजन सहाय जी के अनुसार उल्लिखित नाट्य-परिपक्वों में प्रयाग की हिन्दी नाट्यसमिति सबसे पुरानी थी। सन् १८९१ ई. में यह रामलीला नाटकमंडली के रूप में स्थापित हुई थी इसके संस्थापकों में प्रमुख थे पं. माधव मुख्तार व बालकृष्ण भट्ट के दूसरे पुत्र महारैव रमाकान्त मालवीय बाद की सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण हृदयकान्त मालवीय बेदीप्रसाद गुप्त ईश्वर प्रसाद बनर्जी आदि। सन् १९०५ ई. के जनवरी फरवरी के हिन्दी प्रदीप में बालकृष्ण भट्ट ने प्रयाग की रामलीला नाट्य-मंडली धीरे-धीरे एक सैक लिका का उसका कुछ संघ इस प्रकार है—

“पुनर्जात ग्याय न बहुधा जसंभव मी संभव और असाध्य बात थी मुसाफ़ हो जाती है, पर अभी जब तुम बाँध गीत सुना के उसके पीछ पड़ता —बुद्ध अस्पृश्यताय न रहने से बहुधा लोग मल करने पर भी पूरी तरह प्रभाव नहीं होते। यहाँ मुहूर्त से कुछ लोग मल करते थे कि १ मासुटी मार्गशीर्ष सुकली संवत् १०६ पू० ८५३।”

नाटक की एक मण्डली कायम करें पर बीच में बीबा भी बिष्म आ पड़ने से सब लोग गिरस्त हो जाते थे। बिष्म आ पड़ने के अनेक कारण होते थे, बड़ा कारण अगुआ बनने का था। हम अपने एक साधारण विद्यार्थी को सम्प्रदाय से हैं जो कोपों से जगुरसाहित होने पर भी अनेक कठिनाइयों को सह रामसीता नाटक मण्डली के नाम से अभिनय करनेवालों का एक दल कायम हो तो 'कर डाला और तीन रात तक बराबर रामायण का बड़ी सफाई क साथ नाटक के आकार में अभिनय किया जो दर्शकों को बहुत ही रचा। इस मण्डली का दूसरा अभिनय ७ जनवरी को भारतेन्दु बाबू रचित राय हरिश्चन्द्र' का किया गया। सुनधार ने अपने पाठ में हिन्दी की वर्तमान दशा को अच्छा बरसाया और सिद्ध कर दिया कि भाषा की उन्नति में एकमात्र नाटक बड़ा सहारा है। उपस्थाओं की भरमार और नये नाटकों का फिस्सना एकदम गुम हो जाना अभिनय के अन्त होने से हुआ है। माधुकारी पारसी थियेटर में भी इसीलिए लोगों की रुचि बढ़ गई है—मण्डली ने अभिनय बहुत उत्तम किया। हरिश्चन्द्र सीमा रोहित नारद विश्वामित्र कलि सबों ने अपना अपना नाम बहुत अच्छा बरसाया। अभिनय भी हम सबों का सब भाँति निर्दोष था—छोटा सा बासक रोहित का अभिनय देख दर्शक बड़े चकित और मुग्ध हुए। अब मण्डली से यही उक्तम्प है कि आपस में पूरा का बीच न भी सब लोग मेक—मिठाप से यह निरूप नया नाटक तैयार कर लेते हैं, तो भाषा और देश दोनों का बहुत कुछ सुधार हो।" इस उद्घरण में जिस 'साधारण विद्यार्थी' का उल्लेख है, वे सम्भवतः माधव दुबल थे।

बाबायें त्रिभुवन सहाय जी ने बताया है<sup>१</sup> कि इस नाटक मंडली का पहला खेल 'सीतास्वयंवर' था जिसके दर्शकों में पुष्परत्नोक महामता माकवीयनी भी थे जो उस समय राजनीतिक विचारों की दृष्टि से पूरे माइरेट थे। 'सीतास्वयंवर' के अभिनय के बीच एक बड़ी स्मरणीय घटना घटित हुई। राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित अभिनेताओं में से एक जो अनेक का अभिनय कर रहा था बड़े जोर से कह बैठा—



“ ब्रिटिश-कूटनीति के समान कठोर इस सिक्कनुप को तोड़ना तो दूर रहा वीर भारतीय युवक इस टस से मस भी नहीं कर सके यह अत्यंत दुःख का विषय है। हाय ! इस कथन पर प्रेसकों में आपत्त भन मयी मालवीयजी भी उठ खड़े हुए। फिर भी इस मरछी के सचाककोने अपने नाट्यप्रयोगों में राजनीति और राष्ट्रीयता का पुट बराबर रखा, इस प्रकार की बटनामो से वे विचलित नहीं हुए। यह रामलीला नाटक मंडली १९०० तक बराबर चकती रही। माधव युक्त इसके मुख्य संचालक थे और उनके मुख्य सहयोगी थे महादेव भट्ट तथा पं गोपालरत्न। पं माधव युक्त असाधारण प्रतिभासम्पन्न नाट्यप्रयोगज्ञ थे। नाटक के अययन में वे बिलकुल कुछ से उत्तरी ही कुशलता और पटुता से वे रंगमंच पर उसके अभिनय की भी प्रभावशाली व्यवस्था करते थे। उन्होंने भाषा बेध-धुपा भाव आदि में नवीनता एवं सामयिकता का समावेश किया था। किन्तु मालवीयजी के परिवार के नवयुवकों से कुछ मतभेद हो जाने के कारण यह मंडली बंद हो गयी फिर भी अप्रतिहत उत्साहसंपन्न पं माधव युक्तने १९८ ई में हिन्दी नाट्य-समिति के नाम से इसका पुनर्गठन किया। इस कार्य में उन्हें पं बालकृष्ण भट्ट का पूरा सहयोग मिला। माधव युक्तने बीकानेर, लखनऊ आदि में भी घूम-घूम कर हिन्दी नाटक मंडलियों की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य शुद्ध हिन्दी के नाटकों का प्रचार था। माधव युक्त की ही इस साधना के पीछे पं बालकृष्ण भट्ट की बलवती प्रेरणा बराबर काय करती रहती थी। कहा जाता है कि माधव युक्त के अनेक नाट्य-प्रयोगों में पं बालकृष्ण स्वयं सूत्रधार के रूप में उपस्थित होकर अपनी ओजस्वी भाषा से प्रेसकों को नाटक के आदर्श और उद्देश्य की भावना से आविष्ट कर देते थे। कल और तरंग भी माधव युक्त के आदर्शों से अनुप्राणित होकर उनके सहयोगी बन गये थे जिसमें कुछ के नाम हैं—प्रधान अंतर्प्रदाय बाबू भालानाथ बाबू मुद्रिका प्रसाद, पं जयमीनारायण नाथ, रासबिहारी मुक्त मनेय बाबू देवेन्द्रनाथ बनर्जी प्रमथनाथ भट्टाचार्य आदि। हिन्दी के अभ्यवसायी रंगमंच के इतिहास के ये अविस्मरणीय व्यक्तित्व हैं। माधव युक्त और एवं कल रत्न का बहुत अच्छा अभिनय करते प और प्रमथनाथ भट्टाचार्य नाट्य के तथा महादेव भट्ट हास्यरत्न के

सफल अभिनेता थे। रासबिहारी शुक्ल ब्रजनायक के अभिनय के लिए प्रसिद्ध थे तथा ब्रजनायक बगर्जी और मुद्रिकाप्रसाद स्त्री-पात्रों का अभिनय बड़ी स्वाभाविकता से करते थे।

धीरामजीका नाटक मंडली के बिगटन के नाम जिस हिन्दी नाट्य समिति का पुनर्गठन हुआ उसके उन्मादकों में तबण (राजपि) पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे कई अपूर्व उस्ताही युवक थे। इस समिति के इतिहास की सबसे स्मरणीय घटना राजाहट्टणदास लिखित महाभारत प्रताप नाटक का अभिनय है। इसकी देखने के लिए जयपुर अस्वस्थ होते हुए भी बाबू राजाहट्टणदास स्वयं प्रयाग आये थे। इस समिति ने प्रयाग में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के छठे अधिवेशन के अवसर पर माधव शुक्ल का लिखा हुआ महाभारत (पूर्वाह्न) नाटक का अभिनय किया था जिसके दर्शकों में भारतेन्दु-सखा बदरी-नाट्यम चौधरी प्रेमचन और आचार्य द्विवेदीजी भी थे। माधव शुक्लजी ने भीम की भूमिका में अपना ओजस्वी अभिनय दिखाया। दुर्वासन से पं बेबीप्रसाद शुक्ल और घृतराष्ट्र से पं महानेब मट्ट। इन तीनों का अभिनय ऐसा हुआ कि न मृता न यवियति। आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है, आश्चर्य मैंने किसी हिन्दी रंगमंच पर ऐसा सफल एवं प्रभावशाली अभिनय नहीं देखा है। इसी प्रकार इस समिति ने सल्लगू के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर भारतेन्दुजी के 'सग्य हरिश्चन्द्र' का बड़ा सफल अभिनय किया था। इस अभिनय के अवसर पर हिन्दू पंच के यज्ञस्वी संपादक पं० ईश्वरीप्रसाद समी उपस्थित थे जो पं माधव शुक्ल के साहित्य-गुरु भी थे। वे इस अभिनय से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने लौटकर अपने जयराम में मनोरजन नाटक मंडली की स्थापना की थी। शुक्लजी नाटक को ही हिन्दी प्रचार का अमोघ साधन मानते थे। आचार्य शिवपूजन सहायजी ने उनके सम्मन्य में जो कुछ लिखा है उसमें प्रतीत होता है कि उनका व्यक्तिगत बड़ा बिपाक और वैजस्वी

१ दे० शिवपूजन सहाय का स्व० कविवर माधव शुक्ल कीर्तिक लेख बिपान माछ मई १९४४।

था उनका शरीर झुगठित एवं स्वस्थ डीछबीछ प्रकाश एवं बापी यम्भीर थी।<sup>१</sup> तात्पर्य यह कि बीर रस के अभिनय के लिए मार्गों प्रकृति ने ही उनके व्यक्तित्व को गढ़ा था। उनके साहित्यिक जीवन का निम्नलिखित प्रसंग<sup>२</sup> महाकवि गिरासा की चारित्रिक युद्धता का स्मरण दिखाता है। ध्रुवसूत्री बीररसात्मक अभिनय की कक्षा में अग्रिणीय थे। य केवल स्वयं करनेवाले अभिनेता न थे। उनका सिद्धान्त भी वैसा ही आवश्यकपूर्ण था जैसा उनके अभिनय। जिस समय उनका एकमात्र आमाता छठ से मिरकर मर गया था, वे राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण जेल में थे। यह कहते थे कि समावाचना करके सान्त्वना देने चाहिए, उन्होंने कहा - मैं हरिश्चन्द्र और महाराजा प्रताप का अभिनय करनेवाला व्यक्ति हूँ ऐसे मौखिक आवाज से विश्विष्ट होकर समा-प्रार्थना करना असंभव है। हिन्दी का रंगमंच अब भी मायब ध्रुवसूत्री तपस्वी अभिनेता और रंगमंच के उन्मादक की प्रतीक्षा कर रहा है।

प्रयाग की हिन्दी नाट्य-समिति के साथ महामना माधवीय जी का अनिष्ट सम्बन्ध था। एक विवरण यह भी मिला है कि एक बार समिति ने 'कुद्राजसप्त' नाटक का अभिनय किया था जिसमें बालकृष्ण भट्ट ने रंगमंच पर अभिनेता के रूप में अपने पिता का आखिरी क्रिया जिससे उनके चरवासे बड़ बूट हुए थे। जिस परिस्थितियों में प्रयाग की हिन्दी नाट्य समिति सरकार का कोपभाजन बनी उसका विवरण पहले दिया था चुका है। सम्भवतः सरकार के विशेष कोपभाजन होने के कारण ही पं माधव ध्रुवसूत्री १९१९ ई में प्रयाग छोड़कर कलकत्ता चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने हिन्दी नाट्य परिषद की स्थापना की। उनके कलकत्ता चले जाने के बाद प्रयागस्थ नाट्य समिति को पं महादेव भट्ट रातबिहारी ध्रुवसूत्री आदि ने कुछ दिन चलाते रहने का प्रयत्न तो किया पर पं महादेव भट्ट का स्वर्गवास ही जाने के कारण यह जाने न चल सकी। पं माधव ध्रुवसूत्री ने कलकत्ता में जिस नाट्य-परिषद की स्थापना की थी वह कुछ दिन बड़ी सक्रिय रही। तत्कालीन परिस्थिति में पारसी कम्पनियों ने आकाश कलकत्ता

१ चिबपूजन सह्याय स्व कविवर माधव ध्रुवसूत्री शीर्ष लेख विद्यालयालय मई १९४४ ई

२ वही।

जैसी महानगरी में उनके नाट्य-प्रयोगों ने हिन्दी का गौरव बढ़ाया । उस समय का बंगला रंगमंच भी पारसी कम्पनियों से प्रभावित था, इसके विपरीत शुक्लजी अपनी नाट्य परिपक्वता द्वारा पारसी कम्पनियों के प्रभाव से मुक्त छुट्ट राष्‍ट्रीय-परिपक्व और चेतना के नाटक प्रस्तुत करते थे । दुर्भाग्य से यह 'नाट्य-परिपक्व' भी अधिक दिन जी नहीं पायी । इसके दो कारण थे — एक तो शुक्लजी राष्‍ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेते थे और वेक जाते थे । वे कम से कम चार बार तो जेल बसे ही थे और कम्‍जी सजायें भी दी थीं । दूसरा कारण यह था कि उनके जैसा ध्येयनिष्ठ दृष्टान्त समर्थ नाटकलेखक और अभिनेता आये नहीं आया जो उनके रिक्त को सहेज कर उसे आगे बढ़ाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले सकता ।

प्रयाग की नाट्य-परिपक्वों से प रासबिहारी शुक्ल का अनिष्ट संबंध रहा था । कुछ वर्ष पूर्व इनके विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए मैं उनसे लखनऊ में मिला था । वे अकमोड़ा के निवासी हैं किन्तु अवकाश प्राप्त कर लखनऊ में रहने लगे थे । उन्होंने बताया था कि उपर्युक्त परिपक्वों के आविर्भाव के पूर्व प्रयाग में 'सैन्ट्रल थियेट्रिकल क्लब' नाम की एक अव्यवसायी नाट्यसंस्था थी पर उसके रंगमंच और अभिनय का आदर्श पारसी कम्पनियों ही थी । इसके अतिरिक्त पं बासकृष्ण मेट्टे द्वारा स्थापित नागरी प्रबुद्धिनी समा भी वर्ष में एकबार नाटकों के अभिनय कर छेती थी । इधर-उधर के अवसर पर यह समा मासवीयजी के निवास-स्थान पर कोई न कोई नाटक अवश्य खेलती थी । उन्होंने यह भी बताया कि बसंत पंचमी के अवसर पर पं मंगानाथजी के निवास-स्थान पर भी संस्कृत हिन्दी अंगरेजी आदि के नाटकों के अभिनय होते थे । हिन्दी-नाटकों के अभिनय के लिए वे माधव शुक्ल आदि उपर्युक्त नाट्य समिति के सचालकों को आमंत्रित करते थे । इन राष्‍ट्रवादी मुखों का अभिनय देखकर पं मंगानाथ कहा करते थे कि "तुम लोग सर्वत्र देश भुसेद दिया करते हो ।" रासबिहारी शुक्ल से यह भी बात हुमा कि सन् १९१० ई० में प्रयाग की बसिन्हा प्रशिक्षिणी के अवसर पर पैट्रिऑटिक पैजेंट का जो प्रदर्शनी प्रदर्शन हुआ था उसमें प्रेमचनजी के प्रयाग रामायण नाटक के कई दृश्य बड़ी सफलतापूर्वक दिखाये गए

साहित्यिक रंगमंच की परंपरा कभी निर्योप नहीं हुई। जिस ओर-तेर के साथ उसका आधिर्भाव भारतेन्दुपुर में हुआ था उसे ही उसका सम्पूर्ण निर्वाह परवर्ती युग में न हो पाया हो। भारतेन्दुपुर के पश्चात् पाराजसी की रंगमंचीय प्रतिभा को प्रकाश में लानेवाली दो नाट्य-संस्थामें मानी जा सकती हैं—ये हैं 'भारतेन्दु नाटक मंडली' और 'नागरी नाटक मंडली'। इन नाट्यमंडलियों के आधिर्भाव और भारतेन्दुपुरीय नाटकीय विधायीकता के बीच एक व्यवधान दिखायी पड़ता है जिसे दूर करने का प्रयास १९०४-५-६ ई के आसपास कुछ लोगों ने व्यापक ड्रामटिक क्लब नाम की एक संस्था स्थापित करके आरंभ किया था। इन लोगों में जिन लोगों का उल्लेख प्राप्त हुआ है, उनमें भारतेन्दुपुरी के आतुषुष बाबू बजरंग मूठे गोरेबासे गोपालदास बड़ीबासे श्रीचंद गुप्त राम अग्रवालदास आदि थे। बाबू बालकृष्णदास (बस्तीबाबू) के कथनानुसार इस क्लब का पहला कार्यक्रम राम अग्रवाल दास के घर पर एक छोटे कमरे में एक छोटा पर्दा लगा कर भारतेन्दु के अंबर नागरी और भीमसेनी के अभिनय द्वारा सम्पन्न हुआ था। इस क्लब का यही प्रथम और अंतिम कार्यक्रम था वह जाये नहीं चल सका। इस क्लब के असफल होने पर इसके जैन अवलाल सदस्यों ने जैन नाटक मंडली की स्थापना की जिसमें सम्पूर्ण क्लब के कुछ को छोड़कर शायद सब सदस्य सम्मिलित थे। इन लोगों ने कुछ जैनधर्म मंडली नाटकों के अभिनय कुछ समय बाद इस मंडली की प्रवृत्ति बदल गयी और इसने पारसी कंपनियों के सिक्कर किम और कासी नादिन आदि नाटक खेलने आरंभ कर दिये। इसी बीच सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज में भी एक 'ड्रामेटिक क्लब' की स्थापना हुई जिसके प्रधान कार्यकर्ता रामगोपाल मिश्र नाम के एक छात्रन थे। रामगोपाल मिश्र ने ड्रामेटिक क्लब के अवधान में कॉलेज में राधाकृष्णदासके महाराजा प्रताप के अभिनय का आयोजन किया। इसके लिए उन्होंने बाबू बजरंग से प्रार्थना की कि वे जैन नाटक मंडली से पर्चे आदि दिये जायें। बाबू बजरंगने जैन नाटक मंडली के कर्मचार श्रीचंदजी से उन्हें आवश्यक सामग्री दे देने का अनुरोध किया। बजरंगजी के साथने बचन दे दिया पर समय पर आपने बचन का पालन नहीं किया। इन व्यवहार से दुःख होकर बाबू बजरंग ने सन् १९०७ के उत्तरार्द्ध अथवा १९०८ के पूर्वार्द्ध में

नागरी नाट्यकला संगीत प्रवर्तक मंडली नामक नाट्यसंस्था की स्थापना की।

इस मंडली के संस्थापकों में वज्रचंदजी के अतिरिक्त भारतेन्दुजी के दूसरे भ्रातृपुत्र कृष्णचंद्र एवं शाहबंश के बाबू कृष्णदास प्रमुख थे। प्रारंभ में काशी के कई प्रमुख नागरिकों में से प्रत्येक ने इसके बरख सीन-सीनरी परें आदि बनवाने के लिए दो सौ रुपयों की सहायता की। इसके प्रथम समापति श्रीकृष्णचंदजी थे और इस मंडली के द्वारा अभिनीत पहला नाटक भारतेन्दुचिंतित सत्य हरिश्चंद्र था। इस नाटक के अभिनय के सबसर पर मंडली के संस्थापकों में बड़ा उग्र मतभेद उत्पन्न हो गया। जब इस नाटक के अभिनय की सिधि निकट आ गयी तो कृष्णचंद्रजी ने मंडली में यह प्रस्ताव रखा कि इसका नाम बदलकर 'भारतेन्दु नाटक मंडली' कर दिया जाय। मंडली की बैठक में सबने इस प्रस्ताव का स्वागत किया और सब ओरों ने निर्ममणपण भी इसी नाम से छानबाने तथा बाँटने का निश्चय किया। किन्तु निर्ममणपणों के इस नाम से बँट जाने के बाद बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी। कुछ सदस्यों ने यह कहना प्रारंभ किया कि बाबू कृष्णचंद्र अपने पादों की स्थापति चाहते हैं इसलिए उन्होंने प्रबंधकारिणी से इस नाम का विरोध किया। इस विरोध में परिस्थिति ऐसी बिपन्न हो गयी कि नाटक का अभिनीत होना ही संदिग्ध हो गया। कृष्णचंद्रजी 'भारतेन्दु नाटक मंडली' के नाम से ही नाटक अभिनीत करने को वृत्तसंकल्प थे और विरोधी अपना हठ नहीं छोड़ रहे थे। इन बातों को लेकर आपस में बड़ी कटुता उत्पन्न हो गयी। अंत में कुछ लोगों के उद्योग से यह निश्चय हुआ कि यह नाटक 'भारतेन्दु नाटक मंडली' के नाम से ही अभिनीत हो और इसके बाद इन मतभेदों को दूर करने के लिए उचित उपाय कर लिया जाय। अतएव ऐसा ही हुआ पर इसके परिणामस्वरूप नागरी नाट्यकला संगीत प्रवर्तक मंडली को शाखाया से विभक्त हो गयी—एक 'भारतेन्दु नाटक मंडली' और दूसरी 'नागरी नाटक मंडली'।

जब ये दोनों मंडलियाँ प्रथम हुई, तो दोनों के माग भी असम हो गये। दोनों में 'नागरी नाट्यकला संगीत प्रवर्तक मंडली' की प्रत्येक बस्तु

भापी-भापी बाँटी गयी। 'भारतेन्दु नाटक मंडली' का सारा उत्तरदायित्व बाबू कृष्णचंद्र और बाबू ब्रजचंद्र के मत्ते पड़ा। बाबू ब्रजचंद्र 'भारतेन्दु नाटक मंडली' में कुछ सचि केते थे और उसके लिए अधिक से अधिक समय भी देते थे। इस मंडली का पहला अभिनय 'भारतेन्दु' पत्रित सत्य हरिश्चंद्र का किया गया जिसको सेक्टर नागरी माध्यमता संगीत प्रवर्तक मंडली का बिघटन हुआ था। यह अभिनय अत्यंत सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था। इस नाटक के अभिनय में भाग लेनेवालों में गोबिन्द छास्री रुपशेकर (हरिश्चंद्र) हरिदास माथिक (सत्या) जयमोहनदास साहू (नारद) बर्महस्त कुम्हार (विश्वामित्र) कुम्हारदास गुजराली (इंद्र) बस्ती बाबू (वर्म) हरिबाळ (सत्य) आदि प्रमुख थे। सत्य हरिश्चंद्र नारद एवं विश्वामित्र का अभिनय अत्यंत उत्तम हुआ था। इस नाटक के सीम-मीनरी आदि प्रसिद्ध सिन्धी की टी के मिश्र ने प्रस्तुत किये थे और उन्होंने अपनी सखि तर प्राचीन वातावरण का ध्यान रखा था। फिर भी यह कमी रह गयी थी कि पौराणिक पात्रों के अनुरूप वेष्ट-भूषा की व्यवस्था नहीं हो पायी थी। इस नाटक के अंत में जगन्नाथ क प्रकट होने के समय दृष्टिकरणीय के प्रयोग द्वारा कमला का इस स्वर्ण में परिवर्तित किया गया था। बाबू कृष्णचंद्र और ब्रजचंद्र के जीवनकाल में इस मंडली ने दो उत्कल्लेखीय अभिनय किये—एक था महाराजा प्रताप और दूसरा सीमचंद्रहरण। 'सीमचंद्र हरण' का अनुवाद गोबिन्द छास्री रुपशेकर ने मराठी से हिंदी में किया था। इन दोनों भाष्यों ने 'भारतेन्दु' पत्रित विद्यामुन्दर तथा उत्तर रामचरित (हिन्दी अनुवाद) के अभिनय की योजना भी बनायी थी। उसका अन्धाध भी पूरी तैयारी के साथ प्रारंभ हो गया था। किन्तु किन्हीं अनिवार्य कारणों से यह योजना कार्यान्वित नहीं हो पायी। इस योजना क असफल होने पर दोनों भाष्यों को बड़ा दुःख रहा।

नागरी नाट्यकला संगीत प्रवर्तक मंडली के बिघटन क पश्चात् 'भारतेन्दु नाटक मंडली' की स्थापना ही जाने पर बाबू ब्रजचंद्र के प्रयत्न और बाबू सिधप्रसाद गुप्त के सहयोग से 'भारतेन्दु प्रकाशन मंडल' नाम की एक संस्था स्थापित की गयी। इस संस्था के अन्तर्गत में 'भारतेन्दु' नामक एक साप्ताहिक पत्र निष्कास्य गया जिसका संपादन

मोक्षिन् मास्त्री हुक्मेकर करते थे। बाबू सिधप्रसाद गुप्त के सेवस्त्री व्यक्तित्व एवं अन्त्य राष्ट्रीय भावना से अनुभावित यह साप्ताहिक योत्रे ही दिनों में सरकार का कोपमाजम बना और मरद हो गया तथा इसके साथ ही प्रकाशन मंडल भी बँठ गया। भारतेन्दु नाटक मंडली 'कृष्णचंद्र और वज्रचंद्र के संरक्षण में कुछ दिन और चली। पर सन् १९१२-१४ के बीच दुर्भाग्यवश बाबू वज्रचंद्र का स्वर्गवास हो गया। भारी की मृत्यु के कारण बाधात से कृष्णचंद्र मंडली की ओर से उदासीन हो बने और मंडली बिककुल निष्क्रिय हो गयी।

भारतेन्दु नाटक मंडली की इस निष्क्रियता से निम्न होकर रामबहादुर बटुकप्रसाद लखी ने सन् १९१६ ई के आसपास इसको पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया। सम्भवतः सन् १९१८ के सितम्बर में बाबू कृष्णचंद्रजी की भी मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात् बटुकप्रसाद लखी आदि न इसे दो-तीन वर्ष तक 'भारतवर्ष महामण्डल' के उत्साहवान में चलाया। इस अवधि में मंडली ने दो तस्मैकनीय यधिनय किये—एक था मोक्षिन् मास्त्री हुक्मेकर का लिखा हुआ हर हर महारेव और दूसरा पं माधव दुषक रचित 'महाभारत'।

'भारतेन्दु नाटक मंडली' की निष्क्रिय देखकर काशी के कुछ कला प्रेमी नागरिकों ने जिसमें बाबू मनाहरदास पं व्याघ्रायम बाबू दुर्गाप्रसाद लखी बिष्णु बोसा बालकृष्ण आदि प्रमुख थे आचार्य चारसेन्दु नाटक मंडली नामकी एक नवीन संस्था बनायी। इस नाटक मंडली ने भी नाबब गुप्त के महाभारत नाटक का अभिनय किया। इस प्रकार के उपलब्ध संस्थों ने यह प्रमाणित होता है कि उस युग में पं माधव दुषक अभिनेता और नाटककार दोनों ही रूपों में सर्वाधिक भोक्तृप्रिय थे।

सन् १९२० ई के आसपास एक बार पुनः भारतेन्दु नाटक मंडली के उद्धार का संकल्प प्रयत्न किया गया। केसरीराम दण्डन के प्रयत्नों से मंडली को 'भारतवर्ष महामण्डल' के प्रयत्न में मुक्ति मिली। दण्डु ने मंडली को नवजीवन प्रदान किया, नये नये सदस्यों की भरती



की और अनेक नाटकों के अभिनय आयाजित किये। कहा जाता है कि इन्होंने अजिमेठा के रूप में अनेक प्रतिभाशाली तरुण साहित्यिकों का सहयोग प्राप्त किया जिनमें महेशकाक येदु, कुंवरकृष्ण कौल बगमनाथ प्रसाद सर्मा ( अब डॉक्टर ) पंड्या पुष्पोत्तम बस्ती बाबू आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। मंडली ने जिन नाटकों का अभिनय कर लोकप्रियता अर्जित की उनमें रामेश्वराम का अभिनय द्वावेन्द्रकाक राय के सेबाइ फतन : दुर्गादास साहजहाँ आदि तथा विक्रमचंद्र कृत भीष्म द्रोण और गार्दिन्साहू आदि हैं। किन्तु इस मंडली के कृतित्व का सबसे गौरवशाली पक्ष प्रसाद के नाटकों का सफल अभिनय है। प्रसाद के नाटकों के सर्वथा अनभिज्ञ होने का जो प्रभाव उस समय प्रचारित कर दिया गया था उसे इस मंडली के अभिनयों ने अमर्य प्रभावित कर दिया। इस मंडली ने नागरी प्रचारिणी मण्डल के वर्षावर्षी महोत्सव पर 'चन्द्रगुप्त' नाटक का सफल अभिनय किया। काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दार्पिक अभिवेदन के अवसर पर 'स्कन्दगुप्त' नाटक का बड़ा सफल अभिनय हुआ जिसके प्रेरण का सीनाम्य इन पत्रिकाओं के लेखकों की प्राप्त हुआ था। द्विद्वी अभिनन्दन संघोत्सव के अवसर पर 'धुवस्वामिनी' का सफल अभिनय हुआ था। उस समय तक 'धुवस्वामिनी' प्रकाशित नहीं हुई थी यह अभिनय प्रसाद जी की पाण्डुलिपि के आधार पर किया गया था। सम्भवतः प्रसाद जी के नाटकों के अभिनय के प्रमुख सूत्रधार बाबू बालकृष्णदास बस्ती बाबू थे।

### नागरी नाटक मण्डली

यद्यपि चारतेन्दु नाटक मंडली और नागरी नाटक मंडली दोनों एक ही मूल संस्था से आधिष्ठित हुईं किन्तु नागरी नाटक मंडली प्रायः एक वर्ष बाद क्रियाशील हुई, इसलिए कुछ लोग चारतेन्दु नाटक मंडली की उससे एक वर्ष खेप्ट मानते हैं। इस मंडली ने पहले-पहल १७ जुलाई १९०९ को चारतेन्दु जी के एक नाटक का अभिनय किया था जिसमें हरिदास माधिक और चर्मदत्त दुर्गंबर का अभिनय अत्यंत प्रशंसनीय हुआ था। उनी वर्ष २० नवम्बर को इस मंडली ने रामाकृष्णदास जी के महायना प्रताप नाटक का अभिनय किया। इस नाटक के प्रदर्शनों में कई राजा महाराजा और

सम्मामित नागरिक ने जिन्होंने अभिनय से प्रसन्न होकर इस मंडली को विशेष प्रोत्साहन और सहायता प्रदान की। काशी विश्वविद्यालय के शिक्षान्यास महोत्सव के अवसर पर देश के कई नरेशों ने इस मंडली का अभिनय देखा था और प्रसन्न होकर उसके लिए नाट्यसभाका के निर्माण के निमित्त पुष्कळ सहायता देने का वचन दिया था। काशीनरेश को स्वाधीन शासक का अधिकार प्राप्त होने के अवसर पर इस मंडली ने 'युधिष्ठिर' नाटक का अभिनय किया था। इस मंडली ने एक बार महाराष्ट्र प्रताप नाटक का अभिनय कर काशी विश्वविद्यालय के लिए चंदा भी एकत्र किया था। ९ जनवरी १९२९ ई. को इस मंडली ने अत्याचार नामक नाटक का अभिनय कर संयुक्त प्रांत के बाबू-पीठियों की सहायता के लिए चार सौ बीस रुपये भेजे थे। इन उत्सवों से यह सिद्ध है कि यह मंडली साहित्यिक कार्यों के साथ साथ अनेक लोकोपकारी कार्य भी करती रहती थी। इस मंडली के सभासदों में डा. मंगलानदासजी भी थे और राजा शिवप्रसाद शितारेहिन्य के बंदाब राजा नित्यानंदासहू ने भी इसके उत्सवों में विशेष योग दिया था।

इस मंडली ने बिन नाटकों के अभिनय द्वारा विशेष लोकप्रियता प्राप्त की थी उनमें सर्वाधिक उत्कृष्टनीय थे—'महाराष्ट्र प्रताप', 'सम्राट युधिष्ठिर', 'सम्राट अशोक', 'महाभारत', 'भीष्मपितामह', 'वीरबाळक अभिमन्यु', 'भक्त सूरदास', 'विश्वर्मनक', 'संसार स्वप्न', 'कतिपय-पाप परिणाम', 'अत्याचार' आदि। मंडली के अभिनयों में बिन कोपोंकी प्रतिमा अभिनेताओं के रूप में विशेष रूप में प्रकाशमें आयी उनके नाम हैं पं. राजकुमार व्यास, काशीनाथ (बच्चुजी), दुर्गाप्रसाद खत्री, बाबू स्वामिमुन्दरदास, हरिदास माणिक, बाबू नानंदप्रसाद कपूर, बलदेवीप्रसाद अग्रवाली, बनारसीदास खन्ना, बाबू ठाकुरदास, बाबू शिवप्रसाद, पं. श्रीदुष्ण दुधन, पं. अमरीन-रायन शास्त्री, पं. विश्वेश्वरनाथ, पं. रत्नियाराय आदि। बाबू नानंदप्रसाद कपूर नाटककार भी थे, वे अनेक दिनों तक मंडली के संचालक रहें। उनका अभिनय-कौशल असाधारण था। अभ्यवसायी रत्नमंथ के तत्पक्ष अभिनेताओं में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है—“मैंने भी मंडली का अभिनय देखा है। देखन से अनुभव हुआ कि मंडली के अभिनयों में अभी पारसीपन की बू बाकी है।

हरिचंद्र जैसे नाटकों की माया भी अधिकतर खरू थी। मुसलमान डाइरेक्टरों के निर्देशन में तैयार नाटकों की माया का वांछा खरू होना स्वाभाविक ही था। लगभग दो वर्ष तक आलावाड़ में मिर्जा नजीरखान महाराजा के विशेष वृत्तपात्र बने रहे। परन्तु अकस्मात् एक घटना ऐसी घटी जिससे उन्हें अपने आयरा के साधियों के साथ आलावाड़ छोड़कर जाना पड़ा। मिर्जा के द्वारा आयोजित एक विशेष अभिनय में महाराजा स्वयं पकारनेवाले थे। परन्तु उसी दिन सहसा राजमाता अस्वस्थ हो गयीं और रात्रि में उनकी मृत्यु हो गयी। इस घटना के कारण मिर्जा नजीरखान के अभिनय बहुत माने जाने लगे तथा महाराजा एवं उनके सन्तानों ने उनका प्रेक्षण अर्थात् नैतिक मानकर त्याग दिया। फलतः मिर्जा तथा उनके साथी अभिनेताओं को आलावाड़ छोड़ देना पड़ा।

मिर्जा नजीरखान के चले जाने के बाद १९०६ में इस नाट्यसंस्था की व्यवस्था का उत्तरदायित्व तुलसीराम नाम के एक सज्जन ने अपने ऊपर लिया। वे आलावाड़ के स्थानीय अभिनेताओं की सहमति से अपना काम चलाते रहे। किन्तु बीड़े ही समय में तुलसीराम का स्वर्णवास हो गया इसलिए नाटकों के अभिनय कुछ समय के लिये बंद हो गये। नाट्यसंस्था के जन्म में तात्का पड़ गया। इसका रंगमंच भी अब तक अन्धाधी का बन चुका था।

किन्तु आलावाड़ की नाट्यसंस्था एक बार फिर पुनरुज्जीवित हुई और कुछ नाट्य प्रेमियों ने मिलकर १९०८ ई. में अमेन्थोर ड्रामेटिक कंपनी नाम की एक नया की स्थापना की। इस संस्था ने महाराज के अग्रनिष्ठ तथा विविध राजकीय क्रियाधियों के सम्मानमें कुछ अभिनय प्रस्तुत किये। इससे प्रसन्न होकर महाराजा सर भवानीसिंह ने अपने होम मिनिस्टर को आदेश दिया कि वे कोई अच्छी जगह चुनकर स्थायी रंगमंच का निर्माण करवा दें। तदनुसार राजभवन के कोने में मई १९१० ई. में स्थायी रंगमंच का निर्माण करवाया गया। इसी का नाम आगे चलकर भवानी माण्यपाला हुआ। इस स्थायी रंगमंच पर मुल्तान-दीराज भाषक नाटक पहले-पहल खेला गया। इस नाटक के दर्शकों में स्वर्ध महाराजा सर भवानीसिंह भी थे।

प्रधानमन्त्री मन्त्रालय और निमित्तों के लिए बैठे थे और अभिनय के बीच में अच्छे अभिनेताओं को प्रस्तुत करने लिए रमनच पर बरसाते थे। इस अभिनय को देखकर महाराज ने इस नाट्यप्रस्था के उभयन की ओर ध्यान दिया। इसीलिए उन्होंने एक बार फिर मिर्जा नजीरबेग को आदरे से बुलावात का आदेश दिया।

महाराजा भवानी सिंह को मुसलमान-खीरोर नाटक बहुत पसंद था। वे इस नाटक का कोई अंगरेजी नाटक पहले देख चुके थे। इसीलिए उन्होंने इसके अभिनेताओं के प्रसाधन के लिए आहवा देव चोरीदार नाक आदि सभी ही सामग्री बिदेसों से भेजवाई। रमनच पर प्रशिक्षित लोगों की प्रशिक्षण में उसी वेगमूला में अभिनेताओं के लिए शिक्षण कर महाराजा प्रति तीसरे मास के अंत में इंग्लैण्ड के किसी नाटककला को भेजते थे। महाराजा अपने संबंधों एवं भिन्न तरीकों की भी कमी-कमी अपने रमनच पर नाटकों के अभिनय दिखाते थे। अभिनेताओं के बर्खास्त और इलाहाबाद के लिए महाराजा ने सन् १९११ ई. में रामनच कला को काठिक के मेले के अवसर पर नाटकों के अभिनय प्रस्तुत करने का आदेश दिया। वे अभिनय जनता को कई दिनों तक मुग्न दिखाते थे।

सन् १९१४ ई. में महाराजा भवानी सिंह ने बंबई की पाश्चिमी सिनेमिक कंपनी से अभिनेताओं के प्रशिक्षण के लिए मस्टर पुष्पातमदास को बुलावा। वे बड़े अच्छे अभिनेता एवं संघीय थे। इन्होंने ब्रह्मसूत्र बका और महाभारत नाटक अभिनय के लिए तैयार करावा। सन् १९१५ ई. में सोहराबजी की कंपनी से मद्रास से अशुक्त रक्त भी नाटकों की तैयारी में सहायता देने के लिए बुलाव मय। पुष्पातमदास और अशुक्त रक्त दोनों का मारा जीवन आलाबाद राज्य की इन नाट्यप्रस्था की सेवा में बीता, वहीं दोनों की मृत्यु भी हुई।

सन् १९१७ ई. में भवानी नाट्यप्रस्था में कुछ अंगरेजी नाटकों के अभिनय भी सफलतापूर्वक किये गये। इन नाटकों के अभिनय के लिए उत्तम से उत्तम देव आदि इंग्लैण्ड से भेजवाये गये थे। जिस

इस नाट्यसंस्था की प्रवृत्तियों का आ विवरण दिया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि पहले इसके द्वारा जो नाटक सजे जाते थे उन पर पारसी रंगमंच का बहुत प्रभाव था। शिष्टसेक और अभिकांक्ष अभिनेता भी व्यवसायी पारसी कंपनियों से वेतन लेकर बुलाये गये थे। उनकी भाषा भी अभिकांक्ष बम्बई-फ़ारसी-मिश्रित बर्षाव् जर्बू की और झुकी रहती थी। महाराजा राजेन्द्रसिंहने जब से इस संस्था में अभिरुचि लेना आरंभ किया उस समयसे इस प्रकार की भाषा का स्थान हिन्दी को मिला।

इन नाट्यसंस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि इसकी नाट्यशाळा है जिसकी जाड़ की नाट्यशाळा उस समय देश में दुर्लभ थी। यह नाट्यशाळा इंग्लैंड को अच्छी से अच्छी नाट्यशाळाओं को देखकर उनके नमूने पर बनवायी गयी थी। इस पर सब प्रकार के नाटक प्रस्तुत किये जा सकने थे और सब प्रकार के जटिल से जटिल वृत्त्य भी प्रदर्शित किये जाते थे। इस नाट्यशाळा में रोबसपिवर के लिखे हुए अनेक अंगरेजी नाटकों का भी मूल में अभिनय होता था। इन नाटकों के लिए हजारों रुपय लगाकर सभी प्रकार की अपेक्षित सामग्री इंग्लैंड से मंगायी गयी थी। जिस समय मैंने इस नाट्यशाळा का देखा था उस समय विभिन्न अंग्रेजी नाटकों के लिए बेशमूदा आदि के सेट अत्यन्त उत्तम संवृद्धि में सब सुरक्षित रहे थे। वहीं से बड़ी व्यवसायी पारसी नाटक कंपनी भी अभिनय और रंगमंच के उपकरणों की दृष्टि में अपनी समृद्ध रही होगी इसमें शक नहीं है। इन नाट्यशाळा के नेतृत्वशु की बीबी में अभिनेताओं के प्रशासन के अत्यन्त-उत्तम अनेक कला के जिनमें वे स्वतंत्र रूप में अपनी तैयारी करते थे। प्रेक्षागृह भी सभी ध्येयों के दर्शकों को ध्यान में रखकर बनाया गया था। सब है यह उत्तम नाट्यशाळा उस समय भी हिन्दी नाट्य-साहित्य के विकास में किनी प्रकार का योगदान न कर सकी और आज भी वह अज्ञान पड़ी हुई है। परिशिष्ट में इस नाट्यशाळा का जो चित्र दिया जा रहा है उससे इसके स्वरूप का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

जिन प्रमुख अध्ययसायी नाट्यसंस्थाओं का विवरण यहां प्रस्तुत किया गया है इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी अध्ययसायी नाट्य-संस्थितियाँ थीं। इन सब नाट्यसंस्थाओं की गतिविधि का उल्लेख कर अभिनय कुमारसिंह

नगर न इनकी बड़ी यथार्थ गङ्गा प्रश्रुति की थी —“ हमारे अधिकतर नायक समितिवां संशोधन पार्टी स्त्रियों की भी नकल हैं। यही इसलिए कि पार्टीजन की वह चुन्नी वह मस्ती वह प्रीतिरेचन नाम-मात्र को भी नहीं होते कबल हाथ-पैर और आँख-मुँह के बेशुद्ध गवाहन बेगमूपा तथा उच्चारण की बोझी बहुत नकल अवश्य की जाती हैं। उनमें वा विराम-नियमानुसार रुक-रुक कर वाक्य का प्रयास अधिकतर बेमौक और बेरुमि तीर पर किया जाता है। नियम है कि पद्य के अंतिम चरण के अंतिम दो छप्पा का उसके पहलेवाले छप्पा को बरा बड़ाव पर लाकर उतार पर लाया है। और एक से दूसरा चरण कुछ बड़ाव पर बढ़ता-कहीं एक ही स्थान पर भी टहरता—हृत्वा उच्चरित होता है। इस तरह के तीन और पाँच चरणवाले चरणों की बड़ी प्रशंसा है। इनके पद्य भी यही यही पद्यारम्भ रूप के ही रहते हैं—इसमें भी बड़ाव उतार हाता है, परन्तु एका प्रयोग वह कमजूर नहीं होता न उसी पात्र ही ऐसा करता है। बड़ा आवेग और बड़ी मस्ती है इसमें। बनता फड़क उठती है कमर पकती है। पारमियों की वह भाषा विशेषता है मगर है वह अम्बामात्रिक। हमारे नकलची मठ निरंतर अम्बाम न होने के कारण इसकी और भी रही हालत बना डालत हैं। धियेद्विकल तर्कों की वा और भी मद्धी पत्नी की जाती है। इन्हीं प्रकार पार्टी रंग के ली-पाशों के उच्चारणमें इतनी लज और भाव-जबो में इतनी लज्जा और फाटिहारन होता है कि कुछ न पूछिये। हमारी नाटक-समिधियां बनका बड़ा गुण अनुकरण करता है। इसमें समाज को बिलती उठने शक्ति पढ़ने की संभावना नहीं होती—उन्हे अधिक निकट मजबू के कारण इन नाटक समिधियोंने पढ़ने की संभावना रहती है। बेगमूपा की भी यही नकल की जाती है..... बाँधी भी दूसरी प्रकार की नाटक समिधियां हैं, जो बंधका स्टेज की नकल करती हैं। इनमें अधिकतर मिलित वह जानेबाने सम्यन सम्मिलित हैं। आर्थिक और कुछ वाचरण वार्तालाप को छोड़कर बंधका का उच्चारण व्याकरणानुसार होता है। पार्टी को हटाकर केवल ध्वनि का प्रवाह गुना पाप दो साक मात्तुम होता कि अंतरही स्वीच का चयन है। बीमे ही विराम उठी तरह का बड़ाव-उतार और आवेग के भाव बना रोना-बैना कर बम्बराहूँ सभी माधाय निशक्तता बंधका स्टेज

इस युगके तीसरे वर्ग के मौलिक साहित्यिक नाटक-लेखकों की कृतियों को सम्यक् कर भी बबरीसाहब माधुर<sup>१</sup> ने लिखा है कि उनको भारतेन्दु-सैन्धी के ही संतर्पण माना जा सकता है, क्योंकि उनकी कृतियों में उन्होंने गुप्तों का विकास मिलता है जिनकी भाँती भारतेन्दु और उनके समकालीन नाटककारों के नाटकों में मिला चुकी है, इसमें कोई छद्मि नहीं कि इस वर्ग के नाटककारों की कृतियाँ भारतेन्दुगुणीन नाट्यपरंपरा का ही अनुसरण करती हैं, पर इनके ऊपर समसामयिक पारसी रंगमंच की नाट्यप्रवृत्ति का भी प्रभाव पड़ा है जिससे भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के नाटक प्रायः मुक्त थे। डॉ. सोमनाथ गुप्त का यह कथन सर्वथा उचित है कि इस काल के नाटककारों का यह प्रयत्न था कि समसामयिक सभी नाट्यप्रवृत्तियाँ यथार्थमय मिलकर एक हो जायें। साहित्यिक और रंगमंचीय नाटकों में भवभाव न रहने पाये और अंगरेजी तथा संस्कृत नाट्यविज्ञान में भी समन्वय की स्थापना हो। पारसी रंगमंच के चमत्कार और व्यवसायी होने के कारण इनमें और छात्सीय रंगमंच में जो ऊपरी मेढ्र दिखाई देता था वह मिट जाये<sup>२</sup>। इस प्रकार का प्रयत्न उस काल के प्रमुख नाटककारों की कृतियों में स्पष्ट दिखायी देता है।

### बबरीसाहब भट्ट

इन वर्ग के नाटककारों में बबरीसाहब भट्ट प्रमुख हैं। उन्होंने 'चंद्रगुप्त' 'कुलीचास' 'गुर्गावती' 'दुस्मनबहान' 'बेन बरिच' 'चुगी की उर्मरबारी' 'मिम अमेरिकन' आदि कई नाटक लिखे हैं। इन नाटकों में 'गुर्गावती' और 'बेन बरिच' सबसे सफल माने गये हैं। भट्टजी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में भारतेन्दु युग के ऐतिहासिक नाटककारों की अपेक्षा ऐतिहासिकता का अधिक ध्यान रखा है। फिर भी उन्हें ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण में वह सफलता नहीं मिली है जो प्रभावगी के नाटकों का आचारमूर्त वैशिष्ट्य है भट्टजी के नाटकों की भाषा अभिनययोग्य शरत्, सरस समस्त और मुहावरेशार है और कवित्व स्वगत-कवनों का छाड़कर उनके कथोपकथन

१. आलोचना— हिंदी रंगमंच और नाट्यरचना का विकास 'पृ २६-२७।

२. डा. सोमनाथ गुप्त हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास पृ ६

भी मने और मायका-जीवा के नहीं हैं। परन्तु इसका कथापकननों में पद्यात्मकता की भरमार है। यहाँ तक कि दैनिक व्यवहार की कामचलाऊ बातें भी पद्यों—ऊर्ध्व और हिंदी दोनों प्रकार के छंदा—में कही गयी हैं जो अस्वाभाविक होने के साथ साथ पारसी रसमय के सहारे प्रभाव का प्रयत्न प्रस्तुत करती हैं। दुर्गावती 'नाटक के आरम्भ में ही अकबर का स्वयं कथन है—

हाथ हुआ मैं यना ऊबम मचा रहा है,  
कौनों को पकड़ों पर मेरी नचा रहा है।

इस प्रकार स्वयं-कथन करते हुए अकबर को ललित कर पृथ्वीराज की इसी प्रकार स्वयं-कथन करने हैं—

किस पर मला मैं आज यह त्योरी बकी है आपकी ?  
क्यों, थोड़ा किस पर हुलबामी है तुम इस चाप की ?  
हो अहो यो यमराजने किस पर उठाया दह है ?  
किसका प्रचंड घमंड होने को मंत्री पत खह है ?  
इसी प्रकार यही दुर्गावती अपने मैमिकों में कहती है—  
यही आज्ञा है मेरी मेरे सैनिक धनु की रोकें  
जलाई अग्नि जो उसन अभी मैं उसका बर भाऊँ,  
न जा सीछोदियावाँ का मिठा, बहू धरा मिने हुमको,  
मयावै हम सदा को जीत का मज मारकर बम का।

विचारणीय है कि ये कथन व्यक्तिसत्ता तथा में प्रस्तुत किये जाने पर अधिक प्रभावशाली होते। परन्तु इसका नाटककार वरपण और विमर्श-समस्यामयिक प्रभाव से अभिभूत होने का कारण नहीं होकर सका। मनु जी के पूर्ववर्ती भारतेंदु के नाटकों में तथा परवर्ती प्रभाकर की के आरंभिक नाटकों में भी पद्यात्मक कथापकनन मिलता है। पर भारतीय अथवा प्रभाकर प्रायः सामान्य दैनिक व्यवहार के तथ्यों और कथ्यों को पद्यात्मक संका के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। उन्होंने विदेश भाषापूर्व और रामात्मक भ्रमनों पर ही प्रायः पद्यात्मक कथनोपकथनों की योजना की है। यह विवेक भट्टजी एवं उनके समकालीन नाटककारों में नहीं है।

मनु जी हास्य और व्यंग्य के विरल लेखक थे अतएव उन तथा की सफल योजना उन्होंने नाटकों में की है। उस समय हास्यरस की योजना



की दृष्टि से तीन प्रकार के नाटक लिखे जाते थे—१) विदूषक संयुक्त २) प्रहसन युक्तका युक्त और ३) हास्य पात्र संयुक्त। कुछ संस्कृत-परंपरा के नाटका में विदूषक की योजना की जाती थी। स्वयं प्रसादजीने स्वीय मुक्त नाटक तक इस परंपरा को निभाया है। यह पहले बताया जा चुका है कि पारसी रंगमंच के लिए जो नाटक लिखे जाते थे उनमें मुख्य कथावस्तु से स्वतंत्र प्रहसनों की युक्तका रहती थी। भट्टजी ने हास्यरस की व्यवस्था की इन दोनों ही चीजों को अपने नाटकों में स्थान नहीं दिया है। तीसरी हास्यपात्र संयुक्त शैली का प्रयोग उन्होंने अवश्य कई प्रकार से किया है। उनके नाटकों में जो हास्य मिश्रित है वह प्रायः आधिकारिक कथानक के कुछ प्रमुख पात्रों द्वारा ही अभिव्यक्त कराया गया है। उदाहरणस्वरूप 'दुर्गावती' नाटक में बिहारीबिहारी जिनेलूबिहारी बनेलूबिहारी गिरबारीबिहारी आदि पात्रों के द्वारा जो राजा दुर्गावती के सामीप्य में हास्य की दृष्टि की गई है। वह हास्य प्रायः विष्ट, और नयनीत होते हुए भी ध्वन्य के तीक्ष्ण से युक्त है। दुर्गावती नाटक के दूसरे अंक के भीने इसमें उपर्युक्त पात्रों के कथोपकथन में स्वामी देवदोही एक कामर सरदारों के चरित्र को हास्य एवं ध्वन्य के माध्यम से उद्घाटित किया गया है।<sup>१</sup> भट्ट जी में हास्य की

१ मनेलू—आपका कहना ठीक है कि ध्वन्य खटना—सझाई! लड़ है!  
आवनी न हुए, कोई जानवर हुए।

जिनेलू—परममाने मनुष्य को इसलिये बलम नहीं किया है, कि वह अपनी ही—पैली लुख के दूसरे आँखों से कड़वा होने लगे  
गई लुखे एक वस्तु की आवश्यकता है। तो लू लेते—जान तो छोड़। बस इसनी ही नक़्क़ा दिखाने से दुनिया पिछलकर योग हो जाती है, और सब शयन—टंटा मिट जाता है।

बनेलू—राज बिरबारी बिहारी जो उपदेश इस समय राजपूतों को दिए हैं  
व मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।

जिनेलू—क्या हैं वे?

बनेलू—वैसे तो राजनी मजबूत है किन्तु उन्होंने अपने बरोसे के आँखियों द्वारा यह कहाया है कि है राजपूत लक्ष्मी बीरता  
अपन-संघम-पूर्वक कोष की जीतने और राज को समा  
करनेमें है, व कि ध्वन्य प्राप्त देने और लेने में।

सृष्टि के लिए मामों में कुछ विकृति अपना बिलक्षणता का नाम की प्रकृति मिलती है। गिरधारी सिंह को पिछवाड़ी सिंह बना देना और महेन्द्र सिंह, जिनमू सिंह आदि नाम इसके प्रमाण हैं। मट्टजीने 'जुगी की उम्मेदबारी विवाह-विज्ञापन मिस अमेरिकन', आदि कुछ स्वतंत्र प्रहसन भी लिखे हैं। ये प्रहसन भी पी पी भीमास्तव के प्रहसनों की तरह बलपूर्वक किसी पूर्व निर्धारित सीमा में फिट नहीं किये गये हैं। इनके हास्य और व्यंग्य का कवच अपनी सामाजिक विकृति है। इनमें पी पी भीमास्तव की सी सीधता तो है, पर अविष्टता नहीं। इनका हास्य प्रायः मीठबपूर्ण और मर्मदायक है। केवल मिस अमेरिकन को इसका अपवाद माना जा सकता है। मिस मैयोने भारतीय राष्ट्र का अपमान करने के लिए मदर डॉल्फा नाम की जो बुद्ध्यात पुस्तक लिखी थी उसकी राष्ट्रव्यापी रोषपूर्ण प्रतिक्रिया हुई थी। उसके उत्तर में विविध भारतीय भाषाओं में अनेक पत्र लिखे गये थे। मिस अमेरिकन नामक मट्टजीका प्रहसन भी उसी प्रसंग में लिखा गया था। उस क्षोभपूर्ण प्रतिक्रिया के आवेग में इस प्रहसन के हास्य का कुछ अमर्यादित हो जाना स्वाभाविक था।

इन विधेयताओं के अतिरिक्त मट्टजी के नाटकों में कतिपय पात्रों के अंडईनु का भी अच्छा चित्रण मिलता है<sup>१</sup>। उनके कतिपय नाटकीय गीत भी बड़े सरस हैं। ये ही विधेयताएँ आगे चलकर प्रसादजी के नाटकों

१. ये दुर्गावती नाटक बूतरा अंक बूतरा हंस बदनासिंह का स्वयं-कथन-बदनासिंह - (आप ही आप) बहुत सोचता हूँ परन्तु कुछ उपाय नहीं मूमता। इन दोनों चिट्ठियों ने मुझे डीवाडोल कर दिया। सारा किमा करवा मिट्टी में मिला जाना है। मुमति की ओमबो की धार में बरी प्रतिमा कागज की बाप की मति ओपी-पीपी बही जाती है।  
 .... (उदास हाँकर) किन्तु, बदनासिंह! बदनासिंह! क्या तू कायर है? क्या तू लक्ष्मा धर्मिय नहीं? .. .. (हँसता हुआ) मुमति तू रानी होनी मुत होगा राजकुमार निय ही प्रेमपूर्ण दरबार चुदा करेगा। बापसाह ललामत ने मुझे 'पत्रा की उपाधि देकर नियम पूर्वक शिकार तो कर ही दिया है। .. (सोचता हुआ) किन्तु देगोही! यह मुमति क्या कहती है? देगोहीही कोन है? ... ।

## अनुवाद —

डिबेदी-युग में इतने अधिक नाटक हिंदी में अनूदित हुए कि बहुत से विद्वान इसे अनुवाद-काल कहना ही समीचीन समझते हैं। ये अनुवाद देवी विदेही सभी भाषाओं से किये गये। डिबेदी भाषाओं से अनुवाद का माध्यम बंगरेजी था। इस प्रकार के प्रयत्नों में बबनदासी काका सीताराम के द्वारा किया हुआ रोक्सपियर के नाटकों का अनुवाद उल्लेखनीय है। उन्होंने हुमसेट रिचर्ड क्रिस्पी, मैकवेथ आदि कई नाटकों का अनुवाद किया था। सन् १९६७ में 'हुमसेट' का जर्मन नाम से एक दूसरा अनुवाद भी हुआ था। काका सीतारामने संस्कृत के भाषानंद 'मृच्छकटिक' महावीर चरित 'उत्तररामचरित' भासकी माधव और भासविक्रमिष का भी हिंदी अनुवाद किया था। पं. सरवभारतचंद्र कविराजने भी नवमूर्ति के 'उत्तर रामचरित और भासकी माधव' का बड़ा सरस अनुवाद प्रस्तुत किया।

इस युग में बेंगला बराठी आदि भारतीय भाषाओं के नाटकों के भी अनुवाद हुए। इस प्रयत्न की आचार्य डिबेदी जी का समर्थन प्राप्त था। बेंगला नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करनेवालों में गोपालराम महमरी स्मरणीय हैं। उन्होंने बनवीर, 'अनुवाहन देवदा' विद्याकिनोर आदि बेंगला नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये एवं एवं बाबू की निर्माणा का भी हिंदी अनुवाद किया। बेंगला नाटकों के दूसरे समर्थ अनुवादक पं. रूप नाथ्यय पाण्डेय थे जिन्होंने अनुवाद-कार्य का प्रारंभ डिबेदी युगमें होता है, और जो प्रभाव-युग का भी अधिकतम कर जाता है। उन्होंने डिबेन्द्रनाथ टैगोर के 'आम' सब नाटकों का हिंदी अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त उन्होंने मिरीछ बोप, धीरोद कबीर रबीन्द्र आदि प्रसिद्ध बेंगला नाटककारों की कृतियों का भी अनुवाद किया। पांडेयजी के अनुवाद बड़े सफल हैं, उनमें मूल के आभा की अधिक से अधिक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। इन क्षेत्र में पं. रूपनारायण पाण्डेय का दृष्टित्व अनुपम है।

इस युग में बेंगला बराठी आदि भारतीय भाषाओं के नाटकों के भी अनुवाद हुए। इस प्रयत्न की आचार्य डिबेदी जी का समर्थन प्राप्त था। बेंगला नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत करनेवालों में गोपालराम महमरी स्मरणीय हैं। उन्होंने बनवीर, 'अनुवाहन देवदा' विद्याकिनोर आदि बेंगला नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये एवं एवं बाबू की निर्माणा का भी हिंदी अनुवाद किया। बेंगला नाटकों के दूसरे समर्थ अनुवादक पं. रूप नाथ्यय पाण्डेय थे जिन्होंने अनुवाद-कार्य का प्रारंभ डिबेदी युगमें होता है, और जो प्रभाव-युग का भी अधिकतम कर जाता है। उन्होंने डिबेन्द्रनाथ टैगोर के 'आम' सब नाटकों का हिंदी अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त उन्होंने मिरीछ बोप, धीरोद कबीर रबीन्द्र आदि प्रसिद्ध बेंगला नाटककारों की कृतियों का भी अनुवाद किया। पांडेयजी के अनुवाद बड़े सफल हैं, उनमें मूल के आभा की अधिक से अधिक सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया गया है। इन क्षेत्र में पं. रूपनारायण पाण्डेय का दृष्टित्व अनुपम है।

बराठी का नाट्य साहित्य और रंगमंच भी बेंगला की ही तरह समृद्ध एवं संपन्न है। उसमें बेंगला के रंगमंच की अपेक्षा बरानुसरत कम एवं निराल अधिक है। आचार्य डिबेदीजी बेंगला की अपेक्षा बराठी के अधिक

निकट से अवश्य बहुतस मराठी नाटकों के भी हिन्दी अनुवाद हुए। मराठी-नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत करनेवालों में पं. कवमीधर बाजपेयी का नाम प्रमुख है। उन्होंने 'अभ्युत बलवर्ध कोल्हाटकर लिखित 'स्वामी विवेकानंद' नाटक के अपने अनुवाद की भूमिका में अपना उद्देश्य इस प्रकार निरूपित किया है— "मराठी पाठकों को यह नाटक बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ है हम माना करते हैं कि हिन्दी-पाठक भी इसे प्रेमपूर्वक अपनायेंगे। यदि हमारी हिन्दीभाषी सक्षममंडली इसे स्टेज पर लाने का भी प्रयत्न करेगी, तो अच्छा होगा। हम यह बात जानते हैं कि अनी हिन्दी में संघीत-नाटकों के विषय में ही विशेष उत्साह नहीं देखा जाता, फिर बिजकुल पछ-नाटक उनके खेळने में बहुत प्रिय मान्य नहीं हो सकता। तथापि मनार्दन की जो भाषा इस नाटक में रखी गयी है उससे सर्गीत की कभी बहुत बंधो में पूर्ण हो जाती है। इसके विषय में प्रेम पात्रों के माने की विचारगता भी इस नाटक को समशील तथा कीर्तुहस्तबर्धक बनाती है, जो हम पहले ही कह चुके हैं। महाराष्ट्र इत्यादि में पछ-नाटक खेळने का भी सुब प्रचार है, और 'साहू नगरवासी नाटकमंडली' तो पछनाटक खेळकर ही जो सफलता और कीर्ति प्राप्त कर चुकी है वह बहुत कम संघीत मंडलियों ने प्राप्त की है। सब जो यह ले कि अभिनय कला में अपने कार्य में निपुण होने चाहिए फिर वे चाहें पछ-नाटक हो चाहें पछ उसे दर्शकों के सामने इस प्रकार अभिनीत करें कि दर्शक लोग बाह बाह करके ही मर्दन हिंसने लगते हैं। इसी लिए हम चाहते हैं कि हमारे हिन्दी भाषी नवयुवक भी पछ-नाटकों का अभिनय प्रारंभ करके अपनी अभिनय-निपुणता का परिचय देना प्रारंभ कर लें। इस उद्देश्य से यह स्पष्ट है कि हमारे अनुवादक विभिन्न प्रांतीय भाषाओं की साहित्यिक प्रगति के संबंध में वे और उनके पात्र उपासना को हिन्दी में आत्मसात करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

**रवीन्द्रनाथ का अभ्युत्थान —**

रवीन्द्रनाथ का आधिर्भाव भारतीय साहित्य-जगत की एक महत्वपूर्ण घटना है। उनका बड़ा व्यापक एवं बहुमुखी प्रभाव प्रायः सभी भारतीय

नायामो के साहित्य पर पड़ा। नाटक का क्षेत्र भी उससे बंझा नहीं रहा। रविदासने यद्यपि नाटक कम ही लिखे पर ध्यानिमिष्टान में तथा कलकत्ता में भी वे नाट्य-प्रदर्शन की योजना किया करते थे और स्वयं उसमें भीमिष्ठित होते थे। अभिनय-कला का एक सरल किंतु सुदक्षिण निर्माण रवि दास के प्रयासों से संपन्न हुआ। रंगमंच में प्राचीन प्रथाचरण और प्रस्थापन की योजना भी उन्होंने की और इस कार्य में ध्यानिमिष्टान के प्रतिष्ठ कलाकारों ने विराधत धीमंदात्मक बोधने उन्हें पुरा दान दिया। गेय और नृत्य की भाँति बहति रंगमंच पर प्रतिष्ठित हुई। कहा जा सकता है कि ध्यानिमिष्टानसे अभिनय और रंगमंचीय प्रस्थापन की एक नई परिपाटी ही एक निष्पत्ती और केवल संगम में ही नहीं भारत के अन्य प्रदेशों पर भी उनका प्रभाव पड़ा केवल नाटक-लेखन के क्षेत्र में भले ही रविदास का कोई उल्लेखनीय प्रभाव साक्षात्मीय हिन्दी नाटककारों पर न पड़ा हो पर मान चलकर नवीन रंगमंच तथा तथा भवे अभिनय एवं नृत्यगीत-बोली का भी अभ्युदय हुआ उस पर रविदास की कुछ न कुछ छाप अवश्य है।

उत्पत्ति-कार —

द्विबेदी-युग एवं प्रसाद-युग की विभाजक रेखा अत्यंत सीध है। प्रसाद-युग के प्रथम सभी लेखकों का रचनाकाल द्विबेदी युग में आरंभ होता है। प्रसाद जी की आरंभिक नाट्यकृतियाँ द्विबेदी-युग की सीमा में आती हैं परंतु आगे चलकर उनकी नाट्यकृतियाँ वे भी वैमिष्ट्य आता है वह उन्हें द्विबेदी युग के लेखकों से पूरक कर देता है। ऐसा ही अन्य नाटककारों के संकेत में भी कहा जा सकता है। 'सर्व' के लेखकों के नाट्यकाल भगुर्बेदी का स्थान विधिष्ठ है। उनकी अन्य कृतियाँ द्विबेदी-युग के आने की शानु हैं। पर उनका कृष्णार्जुन-मूढ नाटक द्विबेदी-युग के रंगमंचीय विधान और साहित्यिक परंपरा का समुचित समन्वय है। भारतेंदु युग के नाटककारों ने जिस प्रकार नाटकीय पात्रों के माध्यम से समाजव्यवस्था राजनीतिक परिस्थिति पर अपनी प्रतिज्ञा व्यक्त की है, वही ऐसी इस नाटक में भगुर्बेदी जी ने भी अवगाही है। इन्द्र कुंवर, नारद आदि के आत्मज्ञान से समाजव्यवस्था राजनीतिक परिवेश का परिचय मिलता है। 'कृष्णार्जुन मूढ' नाटक द्विबेदी-युग की महत्त्वपूर्ण उत्पत्ति है जिसमें प्राचीन परंपराओं का प्रतिफलन एक नवीन आभोधन का नामाव मिलता है।

## सहायक पुस्तक-सूची

### (अ) हिन्दी नाटक

पुस्तक (अ)	लेखक
‘धकधर गोरखा-न्याय नाटक	जयंत नारायण खर्मा
‘सब रामचरित नाटक	जय गोविन्द मालवीय
‘अद्भुत नाटक	कमलाचरण मिश्र
‘घनर्ष भक्त चरित	सुरधर्मनाथार्य
‘धर्ममय नाटक	द्यानिधाम वैश्य
‘धर्मरक्षिण राठीर	रामाचरण पोद्दामी
‘धर्मन-मह-मर्दन	
‘धर्ममति नाटक	उदित नारायणलाल वर्मा
‘धर्मपाम	देवादि
‘महिषवत नीला (हस्तलेख)	उदय
‘धर्मि नवरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(आ)	
‘मानन्दोद्भव नाटक	कृष्णबिहारी पुस्त
‘मानन्द रघुनन्दन	महाराज निरन्तराचारिह
‘मानसुति प्रहसन	नागर
‘धर्ममत्त मार्तण्ड	दत्तदास शर्मा
(इ)	
‘इन्द्रतमा (अमानत)	कृष्णबिहारी पुस्त
‘इन्द्र जयन्त या स्वाय	(नाटक रूप में संग्रहित)
‘विदित परिवार का	द्यानिधाम वैश्य
(उ)	
‘उत्तर भारत	मिश्रबन्धु



# सहायक पुस्तक-सूची

पुस्तक  
मोक्ष निवेद्य नाटक  
मोरसङ्गम  
गो संकट नाटक  
मीनेबारी सीता  
गंगा माहात्म्य  
ग्राम पाठशाला

(ब)

बीरहरण सीता  
बीरट वनेट  
बन्दाबली  
बन्धुगुप्त  
बुमी की उम्मेदवारी

(घ)

छपमोगिनी

(च)

जय नारसिंह की  
जानकी रामचरित  
जैसा काम वैसा परिणाम  
जोयसीमा (हस्तलेख)  
जोयी सीता  
जोहरा बहिराम नाटक

(ज)

जप्ता सुंदरन

जुमसीबास

(झ)

झमझमी इक्ष्वाकु  
झमान्ध परास्त  
झपाई इन्द्र सभा  
झपावतार (मराठी)  
झामोहर सीता  
झुर्गबली  
झेबासर बरिष्ठ  
डो बिपों का बार्तमान

लेखक

देवकीनन्दन खत्री

—

अम्बिकादास व्यास

—

बंसीधर पाठक  
काशीनाथ खत्री

समितकिशोरी  
किशोरीदास गोरधामी  
भास्तेन्दु  
बदरीनाथ भट्ट

बिपोंनी हरि

देवकीनन्दन त्रिपाठी  
हरिराम  
बाबूदास भट्ट  
उदय

—

मुहम्मद अम्बुल्हा

धी विवाहदास  
बदरीनाथ भट्ट

बाबूदास भट्ट

"

रामभजन मिश्र

—

देवीदास  
बदरीनाथ भट्ट  
रविदास गुप्त  
भास्तेन्दु



पुस्तक  
छन्द नाटक  
छन्द बसीठि नाटिका  
छपा हरम

(ए)

एक-एक के तीन-तीन  
एई कि बोसे सम्बन्ध ?

(क)

कनक तारा  
कम्पा सम्बोधिनी नाटक  
कपटो मुष्टि नाटक  
कमल मोहिनी मैथिलिह  
कवयानरव नाटक (हस्तलेख)  
कल्पवृक्ष नाटक  
कलि कौतुक कथक  
कर्ण परं  
काली नायिक  
काली सीमा  
कंस बन्ध  
काशी दर्शन नाटक  
क्रिम तियर  
कुन्द कमी नाटक  
कुदवन पहन  
हज्जाकुमारी  
कृष्ण नाट्यम्  
हृष्णार्जुन युद्ध

(ख)

क्यास राजा भरवरी

(घ)

कुम्हार की छबी  
गोपीचन्द्र  
गोपीचन्द्र नाटक  
गोपीचन्द्र

लेखक

गोप

विद्याधर विपाठी  
काविक प्रसाद खत्री

देवकीनन्दन विपाठी  
धनु०

दिनाथक प्रसाद  
कामताप्रसाद  
चन्द्रराम पांडेय  
जगद्गुरुदास वैद्य वैद्य  
सन्धीराम  
काङ्ग बहादुर मल्ल  
प्रतापनारायण मिश्र  
मिथु योदित्य वर्मा

बबबासीदास  
राजनारायण मिश्र  
हरशंकर प्रसाद  
धनु० साका सीताराम  
जगन्नाथप्रसाद वर्मा  
बन्नीनाथ महु  
धनु० रामकृष्ण वर्मा  
मानवेद  
माधनभात जसुबेदी

माताजी

काशीनाथ खत्री  
विनायक प्रसाद  
श्रीमती लालजी

# सहायक पुस्तक-सूची

पुस्तक  
गोबब नियेय माटक  
गोरबब बा  
यो संकट माटक  
गैनेबारी सीमा  
नया माहात्म्य  
ग्राम पाठशाळा

(ब)

बीरहरण सीमा  
बीनट बयेन  
बगदाबसी  
बगदमुण्य  
बुपी की उम्मेदबारी

(घ)

दसमोपिनी

(ङ)

बय नार्थसह की  
जानकी रामचरित  
त्रैसा काम बीसा परिणाम  
बोगसीमा (हस्तलेख)  
जोयी सीमा  
जोहरा बहिराम माटक

(च)

छप्पा संबरन  
गुमरीबाम

(छ)

हमसमती रबयम्बर  
हयानम्बर परास्त  
हयाई हम्बर समा  
हयाबतार (मराठी)  
हामोटर सीमा  
हुर्गाबती  
देवाछर चरित  
दो निर्मो का बार्तानाय

लेखक

देवकीनन्दन खत्री

—

प्रमिबायल व्यास

—

बंसीधर पाठक  
काशीनाथ खत्री

ललितकिशोरी  
किशोरीमास गोरवामी  
भारतेन्दु  
बदरीनाथ मट्ट

बियोपी हरि

देवकीनन्दन बिपाठी  
हरिराम  
बालकृष्ण मट्ट  
उदय

—

मूहम्मद अजुल्ता

श्री निवासबास  
बदरीनाथ मट्ट

बालकृष्ण मट्ट

"

राममदन मिश्र

—

देवीबास  
बदरीनाथ मट्ट  
रबिरत पुस्त  
भारतेन्दु

पुस्तक  
श्रीगद्दी बस्त्र हरण

(घ)

मन श्री बिद्या की विवाह (हस्तलेख)

धर्मासाप

म व तपस्या

(न)

मल कमयन्ती

महुप

ग्याम सीमा नाटक

मनीन बेदाम्त नाटक

मागरी बिनाप

मादय संमच

मिहृष्ट लीकरी

मोलबेबी

मवाग्मीलन

मौका लीला

मोटकी

मद बिदा

मृषिहावतार

(व)

मम वसतारन लीला

मन्नी प्रताप

पति भक्ति

पद्मावती

परीतिथ

परम प्रकाश विष्णु नाटक (हस्तलेख)

पानेद बिहजन

पुरविजय

पुष्पिनाटक

पूर्व भारत

प्रद्यम्न विजय

प्रद्युम्न विजय (हस्तलेख)

प्रवीण चण्डीय

लेखक

राम प्रभुलाल

नरहरि

राधाकृष्णदास

मसारायण मारवाड़ी

नित्यबोध विद्यारत्न

गिरधरदास

रत्नचन्द बकील

रामगिरीप चतुर्वेदी

किरोरीमान गोस्वामी

काशीनाथ खत्री

भाटेगु हरिचन्द्र

मिथबन्धु

ललित किछोरी

नयमन

बन्धेवप्रसाद मिश्र

रामप्रजन मिश्र

कोई बालक

नारायणप्रसाद बतार

हरिचन्द्र चौहर

रामकृष्ण वर्मा

भानुप्रसाद कपूर

महाराज रघुदाससिंह

भाटेगु हरिचन्द्र

वालिप्राम बैरप

मूलचन्द्र

मिथबन्धु

हरिचन्द्र

गणेश

ब्रजबानीदास

# सहायक पुस्तक सूची

पुस्तक  
पबोब पम्पुदय

" "

" "

" "

" "

प्रभास मिसन

"

"

प्रयाग रामागमन

प्रह्लाद चरित्र-नाटक

प्रह्लाद चरित्र नाटक

प्रह्लाद चरित्रावृत

प्रम की बेल

प्रम जोमिनी

प्रम बाटिका

प्रेम मंजरी

प्रम सीता

प्रम स्वयं

प्रम मुन्दर

प्रमियों की नैर

(क)

कमचारी सीता

(ब)

बमबीर नाटक

बयानीस सीता

बान भल या घुब चरित्र

बाम बिषबा संताप नाटक

बाम्य बिबाह रूपक

बाम्य बिबाह नाटक

बाम्य निगु बिबाह

बनचारी सीता

बीर नारी (यनुपाह)

बेल छे टवे बी

लेखक

नामकदास

धनु० देवीवीम

धनु० मकदेव बुब

गुलावसिंह

धौकस मिश्र

मधुसूदनलाल

कामीकृष्ण मृजोपाध्याय

बस्देवप्रसाद मिश्र

प्रमचन

महारात्र दीन दीक्षित

बीमिबास दास

जगन्नाथचरण

बब जीवन दास

भाप्टेनु हरिदबग्न

धीराबेन्द्रसिंह

" गोपीनाथ पुराहित

बब जीवनशान

लिजावन लाल

कृष्ण बिहारी मुखन

रसिक बिहारी जी

गोपालराम महमरी

बाबाहित बन्दावननाम

बामाचर दासनी

कामीनाथ

देवदत्त मिश्र

देवीनमाध शर्मा

गिर करण रामरत्न

दबदीनरत्न त्रिपाठी

पुस्तक  
बीर बामक  
बेन बरिह  
(ब)

मकल मूरदास  
भारत भारत  
भारत भारत (भा० १ १८८३)  
भारत डिमडिमा नाटक  
भारत सीमाम्य  
भारत सीमाम्य  
भारत बगनी  
भारत दुईसा  
भारती हरण (हस्तलेख)  
भारतखोर नाटक  
भारतेन्दु नाटकावली  
भारतेन्दु नाटकावली  
बीर सीता

(म)

मपुर मुरसी  
मदन मंजरी  
मन भावन  
मनोरंजनी नाटक  
मयंक मंजरी  
महासंधेर नवरी  
महाभारत नाटक  
महामोह दिशावध नाटक  
महारामा प्रताप  
महारानी  
महारानी पद्मावती  
महाराम  
मरण रामा  
मायब विनोद नाटक  
मायबानन कामकदमा  
मान माधुरी

मैलक  
नित्यबोध विचारल  
बहरीनाथ भट्ट

भीलाम सपाध्याय  
बह्म बहादुर मस्त  
(रसिक पंच अंग्रेज जून पुनाई)  
जगतनारायण  
बहीनारायण बीधरी प्रमथन  
धम्मिकावत व्यास  
भारतेन्दु हरिचन्द्र

"

देवकी मन्दन विपाठी  
छात्रकुमार मुन्नीपाध्याय  
ब्रह्मरत्नदास

माधुरी बी

नित्यबोध विचारल  
धमानसिंह ब बामरवर  
धनु पारीनाथ पुरोहित  
रघुवीरसिंह बर्मा  
क्रिपोरीलाम गोस्वामी  
विजयानन्द  
माधुब रावल  
विजयानन्द विपाठी  
राधाहृण दास  
नह्म बहादुर मस्त  
राधाहृणरास  
रह्म बहादुर मस्त  
मदनराज बी मानी  
लोमनाथ  
वासिप्राम  
धातम

## सहायक पुस्तक-सूची

### पुस्तक

मानसीला

मासवी वसंत

मासवी मासव भाषा

मासविकाप्रिमित्र

मिषिपेय कुमारी

मिष घमेरिकन

मीराबाई

मुष्टनर समा

मैकवेव

मोरप्वज

(घ)

युगत बिहार नाटक

जीवन योगिनी

(इ)

रमबीर प्रेममोहिनी

रसि कुमुतायुष

रत्नावली

राजदान सीला

राजानन्द कुमार

राजकदवाकर नाटक (हस्तलेख)

राजवरिष

राजवरिष नाटक

राजवरिष नाटक

रामानाटम्

राम यस र्वय (प्राठ कांड)

रामसीला या नाटककार

रामायण (घ. कांड)

रामसीला नाटक (हस्तलेख)

रामसीला विजय नाटक

रामसीला कीमुदी

रामसीला सहायक नाटक

रामसीला नाटक रामायण

रामसीला नाटक

### लेखक

बीरे रामप्रसाद

नासा सीताराम

प्रनु० सासा सीताराम

बिध्वेश्वरप्रसाद राय

बदरीनाथ भट्ट

बस्देवप्रसाद मिष

सूर्य नारायणमिह

प्रनु० सासा सीताराम

शालिग्राम र्वय

टिजकृष्णदास

सोपाल राम गहमरी

भी निवासदास

लक्ष्म बहादुर मल्ल

प्रनु० बालमुकुन्द गुप्त

रामसरमदास

उषय

मिष बन्धु

जय पोषिन्द मासवीय

टिजदास

किरल बर्मा

विजयचंकरलाल बाजपेयी

वामोदर दास्वी

देवकी नन्दन त्रिपाठी

बस्देवप्रसाद मिष

बस्मूलात

दाउरियराम 'दिग्ध'

योस्वादी नारायण महाय

बज्रबन्धु जनकस्मयी

## पुस्तक

रामसीता रामायण  
रामसीता नाटक  
रासछन्द बिनोद  
रामसीता बिहार  
रामकल्या (सदयण संग्राम नाटक)  
रामायण  
रामाश्रयेक नाटक  
रामायण नाटक  
रवमणीहरण नाटक  
रूपवती  
रोमियोजूलियट

(स)

लवङ्ग धौधौ  
समित माधव  
समित (मछली)  
लम्हा बाबू  
समिता नाटिका  
लव जी का स्वप्न  
सावम्पवती सुदर्शन

(ब)

बंटी सीता  
बारंगना रहस्य  
बिद्या-बिनोद नाटक  
बिद्या बिलासी मुखबंदिनी  
बिषबा बुद्धि नाटक  
बिषबा सन्तान नाटक  
बिबाह बिडंबना नाटक  
बिबाहिता बिलास नाटक  
बिषम्य बिषमीयम्  
बिदबाबिष  
बिषयाचन्द्र हास  
बिलास नाटक  
बिषिष नाटक

## लेखक

पद्मलामराव मिश्र  
बाबाहित बृन्दावनदास  
सहमण्यारथ मन्जुवर  
उदय  
बिनायक प्रसाद  
अनु० रामयोगाच  
प्राणचन्द  
बेबकीनन्दन बिपानी  
परमेश्वर मिश्र  
अनु० योगीनाथ पुरोहित

बबरीनाथ मद्रु  
रम गोस्वामी

बस्देवप्रसाद मिश्र  
अम्बिकाचरण व्यास  
काशीनाथ सन्नो  
धामिधाम वैद्य

बद्रीनाथयण चौधरी  
गोपालराम बह्मणी  
वीरकृष्ण काश्मीरी  
रामरतन  
बापीनाथ खत्री  
सोदासराव बक्रीस  
निडिनास  
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र  
नैनासनाथ बाबूपेयी  
सी० एन० शिन्हा  
शंकरानन्द तृतीय  
मुद गोविन्दसिंह

## सहायक पुस्तक-सूची

पुस्तक  
बीर घमिमन्नु  
बुद्धरेव  
बीर भारत  
बीर बामा  
बीर नारी  
बेनिम नवर का व्यापारी  
बेनी मझार  
बेरा नाटक

बेस्मा बिनास  
बैरिही हिंसा हिमा न भवति  
बह-बिबाह नाटक  
बहुलना  
बभ्रु बाहुन  
बनबीर  
बिद्या विनोद

(११)

घटुन्तसा (हस्तलेख)  
घटुन्तसा  
घटुन्तसा नाटक  
घमराव सीसन  
घमिप्य  
शिवाजी  
घीत सावित्री  
स्यामानुराग नाटिका  
भरण कुमार

(१२)

गाय हरिचन्द्र  
मज्जाद मंजुल  
सनी नाटक  
मठी बग्यावनी  
मठी बरिज नाटक  
सनी प्रताप

## सेवाक

राधेस्वाम कपाबाबक  
व्याकुल भारत कम्पनी  
हरिकृष्ण जीहर  
बैबनाथ  
घनु० रामकृष्ण वर्मा  
घाय उपनाम महिमा  
घम्बिकादत्त व्याम  
घोषरी नवमिह  
(घनु० ईश्वरीप्रसाद वर्मा)  
देवकीमन्त्र भिपाटी  
भारतेन्दु हरिचन्द्र  
बनस्वामदास  
बालकृष्ण मट्ट  
घनु० गोपालराम महमरी

" "

धाकत मिथ  
नेबाब  
हाकिम मुहम्मद अगुल्ता  
केराबराम मट्ट  
घनु० रामकृष्ण वर्मा  
मिथबन्धु  
बगुपानास  
मुर्यनारायण मिह  
राधेस्वाम कपाबाबक

भारतेन्दु हरिचन्द्र  
केराबराम मट्ट  
उदित नारायण बनीस  
रामचरण नास्वामी  
हनुमन्मिह रघुवीरमिह  
भारतेन्दु हरिचन्द्र



## पुस्तक

सरयवती नाटक  
 सरय हरिद्वन्द्व नाटक  
 सत्योदय  
 सई जात गोपाल की  
 समयसार नाटक  
 सेवेरा नया सेवेरा पुराना  
 सरस्वती  
 सराफी नाटक  
 सावित्री  
 मिथु देश की राजकुमारियाँ  
 सिलवर बिम  
 सीता बनबाम नाटक  
 सीता स्वयम्बर नाटक  
 सीत स्वम्बर नाटक  
 सूर्यन सनाप नाटक  
 मुदामात्री का स्वायं व नाटक  
 मुद्रामा चरित्र  
 मुमोक्षमा सती या सती महारम्य  
 मुमोक्षमा सती नाटक  
 मूरत की बडीत सूरज  
 मनापति ऊदय  
 सोमा सती  
 मौमर हरन  
 मंगीन गाबुम्पल  
 मंयोमिना स्वयम्बर  
 ममार मामर रत्न पर्यान् बैरव नाटक  
 मरीत मोरीचम्य  
 मदीन गापीचम्य  
 मदीन नामलीना  
 मदीन प्रह्लाद  
 मदीन सङ्गुधना  
 मांन रात्रा मरवम  
 मांग कर वमम

## लेखक

छगनलाल काससीवाल  
 रामनजलमिष 'स्वतन्त्र'  
 नग्लेमन  
 भारतेशु  
 बनारसीदास  
 (मावर सभा)  
 दुर्गाप्रसाद मिष  
 गौरीरत्न  
 लाला देवराज  
 काशीनाथ सत्री  
 (पारसी फियेटर)  
 लालाप्रसाद मिष  
 बन्धोरीन बीरित  
 माचन दुबल अम्बिकादत्त त्रिपाठी  
 लल्लुलाल मुन्त  
 बैठाव कपूर, महाराज राधेराम नरबामन  
 मरोलमबास  
 बरदेवजी प्रसहृरि  
 मचदेव  
 बालकृष्ण भट्ट  
 बृहदाचललाल वर्मा  
 बीनेश्वर कियोर  
 प्रनु० गोबिन्द दासजी दुगबेकर  
 प्रतापनारायण मिष  
 श्री निवासदास  
 मोहनलाल  
 महमम  
 इम्श  
 कृंवर मेम माहम  
 महमम  
 —  
 छुशीराम  
 सरमन के सिप्य

## सहायक पुस्तक-सूची

## पुस्तक

मगीत ध्रुव

पी रामा नाटक

संदीप प्रह्लाद

मोरचन्द्र

" गोपीचन्द्र

" पूजनमल

(ह)

हनुमन्नाटक

हनुमान नाटक (हस्तलेख)

हर-हर महाद्व

हृत्किपा (मराठी)

हरितालिका नाटक

हरिचन्द्र

हरिचन्द्र नराल भाषा

गदिग तकरीरे

हिन्दी साहित्य की बुदगा

हिन्दी उद्गु बा नाटक

होनी रूप नाटक

## लेखक

बिरंजीताल तथा मत्पाराम शर्मा

रविदत्त शुक्ल

बिरंजीताल तथा मत्पाराम शर्मा

, ,

= "

" ,

हृदयराम

उदय

गोविंद दास्नी दुर्गादेकर

—

जह्म बहादुर मन्स

बिनायक प्रसाद

—

मन्नीर बेग

प्रभास प्रसाद बिपाटी

रत्नचन्द्र बी० ए०

शिवराम पौड्य बेग

## (आ) अन्य हिन्दी पुस्तकें

## लेखक

रविन्दर रावल

## पुस्तक

धर्मज्ञ का कला संकल्प

अध्यात्म रामायण

अभिनेत्र भारती (हिन्दी टीका)

अभिनेत्र मादय दास्

अनवेकनी का भारत

आलोच

आधुनिक भारत

आधुनिक हिन्दी साहित्य

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास

आय मरुति के मूलाधार

उद्गु साहित्य का इतिहास

उद्गु साहित्य परिचय

अभिनेत्र पुस्तकालयायें  
मीत्राचार्य अनुबंसी

मंदाकर

ईदरीप्रसाद

महमीनायर दास्

धीरज्य सात

बस्देव उपाध्याय

मध्य एशियायाम हुनेन

पुस्तक  
 एकांकी कला  
 नस्यान का भागवतपुराण ग्रंथ  
 कवितावली  
 कवि कचन सुधा (पवित्रा)  
 कुल्गोपनियत  
 कांसस का इतिहास  
 कामायनी सीदपे  
 कामसूत्र  
 काव्य कला तथा अन्य निबन्ध  
 कुग ज्ञातक  
 गङ्गापर भट्ट की काली  
 गीत रघुनन्दन (हस्तमेख)  
 गीतमय भागवत  
 छानना  
 छत्रपोदिनी  
 जीवन और मरण (भूमिका)  
 जानकी रामचरित  
 नाट्य कला दशक  
 नाटक की परम्परा  
 नाट्य प्रबन्ध  
 नाट्य निर्धन्य  
 नाट्य शास्त्र  
 निबन्ध-नवनील  
 निम्बार्क भाष्यरी  
 पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ  
 प्रणय पीपुष  
 प्रणय समीक्षा  
 त्रिदिग भागवत का भाषिक इतिहास  
 भजनमास  
 भजन कल्याण म  
 भजन नामावली मीमांसा  
 भाष्यन मन्त्रप्रदाय

लेखक  
 रामकुमार वर्मा  
 गोस्वामी सुलसीदास  
 ग्रंथ मई, १८७२ ई०  
 पट्टाभि मीतारमैया  
 कठहस्तिह  
 वात्स्यायन  
 जयलकर प्रसाद  
 महाराजा विश्वनाथमिह  
 बृन्दावनदास  
 भयवतीछात्र बाबपेबी  
 मियोगी हरि  
 छत्रयसकर भट्ट  
 हरिराम  
 जन्मराम मंडारी  
 एस पी कबी  
 बल्लभप्रसाद मिश्र  
 रमाचंदर गुप्त रसास  
 महावीरप्रसाद द्विवेदी  
 प्रतापनारायण मिश्र  
 बिहारीदास  
 कन्हैयालाल  
 सं० रमाकान्त त्रिपाठी  
 प्रेम नारायण टंडन  
 केदारबेब  
 माभादास  
 महाराजा प्रतापमिह  
 प्रबुधान  
 बलदेव उपाध्याय

पुस्तक

भारतेन्दु की नाट्य कला  
भारतेन्दु युग  
भक्त कवि व्यास  
भारत का सामिक इतिहास  
भारत दुर्घटा (भूमिका)

h

h

भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा  
भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच  
भारतीय नाटकशास्त्र (भराडी)  
भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास  
भारतेन्दु का नाट्य साहित्य  
भारतेन्दु की नाट्यकला  
भारतेन्दु की का जीवन चरित्र  
भारतेन्दु मंडन  
भारतेन्दु हृदयचित्र  
महाकवि सूरदास  
महाकाशी  
मिश्रबन्धु बिनोद भाग १ २ ३  
मन्मथी महाराणी (भूमिका)  
राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित  
ग्रन्थों की शोध  
राजस्थानी लोक नाट्य  
राजपूत कौटिल्य  
राजाह्वय ब्रम्हावली  
रामचरित मानस  
रामभक्ति माधना में मधुर उपासना  
रामभक्ति में रमिक मन्त्रशाय  
राम पंचाध्यायी  
राम और रामावली बाध्य  
रामावली मन्त्रशाय —

निर्दिष्ट और अध्याय

रामनी नानुद्वय और श्री नारायणभट्ट

लेखक

प्रमनारायण भुक्त  
रामविभास शर्मा  
बामुण्डे मोरबामी  
शिवचंद्र मिश्र  
सम्पा० बाण्येय  
सम्पा० रामप्रकाश ब्रह्मदास  
मन्मा० सत्यव्रत सिन्हा  
मनेन्द्र  
मोहनबल्लभ पन्त  
इन्दुमती केतकर  
सत्यकेतु विद्यालकार  
बोरेन्द्रकुमार शुक्ल  
प्रमनारायण भुक्त  
राजाह्वय ब्रम्हा  
नारायणदास

।

मन्दरुनारे बाजपेयी  
हरिध्याम  
मिश्रबन्धु  
सद्गुणचरण बरस्वी

द्वितीय भाग  
देवीनाथ सामर  
मानन्दकुमार स्वामी

मोरबामी तुलसीदास  
भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'  
भगवतीप्रसादमिह  
मन्त्रशाय  
सत्यव्रत मोन्मा एवं सत्यव्रत शर्मा

विश्वनाथ रमाशक्त

बाबा हृदयदास

## सिद्धांत

राधाकृष्णदास  
स्यामगुप्तर दास  
सपाध्याय वैदमित्र जती  
स्वामी नारायण नन्द धरस्वती  
स्याम परमार

कृष्णदास बाबपेयी

फतहसिंह

केशवराज (बा. जगदल दास द्वारा प्राप्त)

शिवनारायण द्विवेदी  
काशी नागरी प्रचारिणी सभा  
सत्येन्द्र

धीतराम जगुबंदी  
बाह्यामाई शिवराज  
हरिचन्द्रन बियाणी  
कन्हैयालाल पोद्दार  
बलदेवदपाध्याय  
शिवनारायण शर्मा  
सत्यदेव जगुबंदी एवं गिरिजा  
मोहन जगुबंदी

सुधीश्वर  
सूरदास

श्रीकृष्णदास  
राजेश्वरसिंह गीढ़  
टीका • गदाधर शर्मा

## पुस्तक

रास सर्वस्व  
रूपक रहस्य  
रूपक विकास  
माधवी का इतिहास  
लोकदर्मी नाट्य परम्परा  
लोकमाध्य  
व्यक्तीक संस्कृति  
व्योत्पन्न चित्रिका  
ब्रह्मभूत  
विक्टोरिया राजवर्षण  
वेदान्तिक (कन्याम नाम ११)  
वैदिक वर्णन  
विज्ञान बीता (हस्तलेख)  
सन् १८१७ के मंदर का  
इतिहास पृष्ठ ४  
सभा की ११वीं खोज रिपोर्ट  
समीक्षा के सिद्धांत  
सर्व वर्णन संग्रह  
समीक्षापत्र  
संवीत कलापर  
मंदिर रासक  
संस्कृत साहित्य का इतिहास  
संस्कृत साहित्य का इतिहास  
साहित्य  
साहित्य-शरीराल

साहित्य समीक्षाजालि  
मूर सागर  
मठ मोहिन्ददास समिन्धन ग्रंथ  
हमारी नाट्य परम्परा  
हमारी नाट्य साधना  
हरिश्चंद्र पुराण पूर्वांश

पुस्तक	लेखक
हरिश्चन्द्र	बुद्धीमान
हरिश्चन्द्र जीवन चरित्र	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हरिश्चन्द्र चरित्रिका	दि० १८७७ ई०
हरिश्चन्द्र मैगधीन	१५ अगस्त १८७३ ई०
हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र गुप्त
हिन्दी का सामयिक साहित्य	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	इब्राहीमदाद द्विषेदी
हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास	शिवसुत
हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास	बदरप सोमा
हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास	सोमनाथ गुप्त
हिन्दी नाटककार	जयनाथ नमिन
हिन्दी नाटकों का विकास	विश्वनाथ
हिन्दी नाट्य साहित्य	बजरत्नदास
हिन्दी में नाट्य साहित्य का विकास	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य—एक अध्ययन	रामरत्न मटनागर
हीरक बर्मन्टी ग्रन्थ	काशी नागरी प्रचारिणी सभा

### (४) संस्कृत एवं पाली ग्रन्थ

नाट्यशास्त्र	भट्टमणि कव (१६२६)
भूदेव	" (दि० म० १८४३)
साहित्य रूप	आचार्य विश्वनाथ (शान्तिनाथ गारगीहृत्त टीका)
रसकल्प	आचार्य बर्मन्धव (हिन्दी टीका डा० विष्णु- बापल्लव डा० मोसाचंदर व्यास)
माधवकाव्यम्	धारदातलय (१६९०)
अभिज्ञान-शाकुन्तलम्	महाकवि कालिदास
विश्वमोक्षदीपम्	" "
पाताविकल्पिमित्रम्	" "
मेघदूतम्	" "
उत्तर रामचरितम्	महाकवि भवभूति
महावीरचरितम्	" "
भारतीमार्गदम्	" "
हनुमन्नाटक	श्री पद्मभुमार श्री हनुमता प्रणीत



पुस्तक	लेखक
गीता भाष्य	( " )
ब्रह्मसूत्र भाष्य	( " )
प्रत्यक्ष ब्राह्मण	( " " )
सायनतत्त्वदर्प	जीवयाम्बाजी
यक्ति विवेक	नारायणभट्ट
श्री नर नाथरत महापुराण	
नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र
रामायण (वाल्मीकीय)	"
रामायण (आम्बारण)	" "

### (ई) अंग्रेजी के ग्रन्थ

Books	Writers
A History of Hindi Literature	Keay (Modern period)
A History of Indian Literature	Winternitz Vol. I
A History of Modern India	Dr Ishwari Pd. and S.K. Subed
An Advanced History of India	R.C. Majumdar Raychaudhari and Datta
Ancient Indian Theatre	D.R. Mankod
Annals of antiquities of Rajasthan	Todd
Archaeological Survey of India (1933-4)	Dr Theodore Blosch
Bagh Caves	India Society London
Bengali Literature	Anand Shanker and Lila Roy
British Drama	A. Nicoll
Buddhist India	Rhys Davls
Catalogue of Manuscripts in the Library of H.H. Maharana of Udaipur	
Die Sagentis offe des Rigveda	Maxmuller
Drama in Sanskrit Lit.	R.V. Jagirdar
History of Classical Sanskrit Lit	M. Krishnamachari
History of Bengali Language and Literature	Dinesh Chandra Sen



पुस्तक  
 कर्पूरमंजरी  
 प्रसंगरायन  
 प्रमोद चन्द्रोदय  
 मुद्राराक्षस  
 हृष्योपनिषद्  
 चण्डकौणिकम्  
  
 मृच्छकटिकम्  
 वृत्तापहम्  
 बेनी सहरा  
 दिव्यावदान (पाली)  
 दिग्ग निकाम (पाली)  
 चातक कथा  
 बाबुसनेय संहिता  
 सैत्तरीय संहिता  
 नारदीय मन्त्रिसूत्र  
 घांक्षिस्म सूत्र  
 मन्त्रिरसामृत सिन्धु  
 उज्ज्वल नीलमणि  
 भक्तिरस तरंगिणी  
 नवरत्न धनबा स्वचर्मपद्धति  
 नाट्यवाचार्थ अष्टाश्रुत  
 समु नाट्यमभट्ट अष्टाश्रुत  
 प्रेमाङ्कुर  
 रत्नभासा  
 विदग्ध भावद नाटक  
 सतिन माधव  
 दानकेति वीरुदी  
 चैतन्य चन्द्रोदय  
 प्रमद रायन  
 बेहान्त सप्रह  
 बेहान्त सार  
 बेहान्त प्रदीप

## लेखक

राजसेनार

जयदेव

कृष्णमिथ

विद्यादास

धर्म समीक्षर एवं भास्वतोप विद्याभूषण

भिरयमोष विद्यारत्न

धूरक (टीकाकार ब्रह्मानन्द शुक्ल)

सुभट कवि (टीकाकार अनन्तराम शास्त्री)

भट्टनारायण

सं० रिजबेदिन तथा कार्पेटर

सं० " "

"

"

"

कृष्णोस्वामी

कृष्ण पोस्वामी

नारायण भट्ट

हरिराम वराध

पोस्वामी आनकीराज

श्री नारायण भट्ट

कृष्ण पोस्वामी

कवि कर्मपूर

(रामानुजाचार्य)

( " )

( " " )

## सहायक पुस्तक-सूची

पुस्तक	लेखक
बीठा माध्य	( , , )
बहुमुख माध्य	( , )
सुतपत्र बाहुष	( " )
मालवतसुदर्प	बीबभोत्तामी
वसिष्ठ विवेक	नारायणचमट
श्री मर बागवत महापुराण	
मालवतसुदर्प	रामचन्द्र गुणचन्द्र
पद्मावत (बात्मीकीय)	
पद्मावत (बाष्पावत)	"

## (ई) अंग्रेजी के ग्रन्थ

Books	Writers
A History of Hindi Literature	Kany (Modern period)
A History of Indian Literature	Winternitz Vol. I
A History of Modern India	Dr Ishwari Pd. and S.K. Subeda
An Advanced History of India	R.C. Majumdar Raychaudhari and Datta
Ancient Indian Theatre	D.R. Mankod
Annals of antiquities of Rajasthan	Todd
Archaeological Survey of India (1933-4)	Dr Theodore Bloch
Bagh Caves	India Society London
Bengali Literature	Anand Shanker and Lila Roy
British Drama	A. Nicoll
Buddhist India	Rhys Davis
Catalogue of Manuscripts in the Library of H.H. Maharana of Udaipur	
Die Sagents offe des Rigveda	Maxmuller
Drama in Sanskrit Lit	R.V. Jagirdar
History of Classical Sanskrit Lit.	M. Krishnamachari
History of Bengali Language and	Dinesh Chandra Sen





India Today	R. Palme Dutt.
Indian Theatre	E.P. Horwitz
Introduction portion of Bharat Natya Shastra	Man Mohan Ghosh
Indian Antiquary 1903	
Mathura District Memoirs Mirror of Gesture	S L. Growse
On Poetry in Drama	Harles Granville Barker
Philosophy of Veda and Upanishads	Keith
Sanskrit Drama	Keith
Sanskrit Drama and Dramatists	K.P. Kulkarni
Social and Religious Movement in the 19th Century	C.S. Shrinivasaachari
The Indian Stage Vol. I	H.N. Das Gupta
" " II	"
" " III	" "
" " IV	"
The Concept of Vajra in Vedic Sociology	Dr. Fatch Singh
The Concept of Vedic Sociology	" "
Theory of Drama	Allardyce Nicoll
The Theatre of the Hindus	H.H. Wilson
The Types of Sanskrit Drama	D.R. Mankad
World Drama	A. Nicoll

